विष्णु प्रभाकर का कहानी साहित्य

डॉ. सौ० सविता सबनीस

साहित्य सागर, कानपुर

Vishnu Prabhakar Ka Kahani Sahitya

By : Dr. Savita Sabnis

Price : Rs. Six Hundred Twenty-five Only

समर्पण

आदरणीय गुरुवर्या

स्व० डॉ० सिंधु भिंगारकर जी

की स्मृति में

सादर समर्पित

प्राक्कथन

विष्णु प्रभाकर हिंदी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार हैं। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में एक अलग दृष्टि और चेतना रखकर उन्होंने साहित्य का निर्माण किया है। वे अपने आपको कहानीकार ही अधिक मानते हैं। सामाजिक यथार्थपरक अभिव्यक्ति का आरंभ प्रेमचंद की साहित्य परंपरा से माना जाता है। विष्णु प्रभाकर जी की साहित्य परंपरा कुछ भिन्न है। उनका कहानीकार सीधे जीवन से जुडा है जिससे वे सीधे मनुष्य के यथार्थ परिवेश को देखते तथा तद्नुसार चित्रित करते है। मध्यवर्ग की मिट्टी से स्वय जुडे रहने के कारण अपने भोगे हुए यथार्थ को व्यापक अनुभूति के विभिन्न आयामों में ढालने में वे काफी सक्षम सिद्ध हुए हैं। उनके समस्त साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन दृष्टि विविध भंगिमाओं के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में उभरकर सामने आई है। उनके साहित्य में प्राप्त नवीनता ही उनके साहित्य के प्रति आकर्षण का कारण है और इसी कारण मैंने उनके कहानीकार के रूप का अध्ययन हेतु चयन किया है।

पुरानी पीढ़ी के कहानीकार होते हुए भी स्वातंत्र्योत्तर काल में परिवर्तित नए मूल्यों की स्थापना करके कई युगीन परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति और समाज का संबंध फिर से स्थापित करने मे विष्णु जी का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। वे सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं को लेकर लिखनेवाले कहानीकार हैं। यथार्थ का सूक्ष्म निरीक्षण, अंकन इनका लक्ष्य रहा है। जिसमें उनकी मानव के प्रति सहानुभूति भी बराबर बनी रही है। उनकी कहानियों और समस्त साहित्य में व्यक्ति और समाज इस प्रकार घुल-मिल गए हैं कि दोनों की पृथक सत्ता-स्वीकृति कठिन है। उनके सृजन का मूल स्वर मनुष्य की पहचान और हर प्रकार के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का है।

स्त्री-पुरुषों के नए नैतिक संबंधों की समस्या, व्यक्ति-स्वातंत्र्य की समस्या, राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक आदि बदलते परिप्रेक्ष्य में भ्रमित मानव की समस्या आदि आधुनिक जीवन के विविध आयाम हैं। उनकी कहानियों में इन समस्याओं को समेटने की यथार्थ और संवेदनात्मक क्षमता है। उनकी आधुनिकता संस्कृति से विरोध नहीं रखती तो समकालीन जीवन को संस्कार देती है। विषयगत नवीनता, लेखक की जिज्ञासापूर्ण दृष्टि, बदलते परिवेश तथा कहानियों में नए सिरे से उभरनेवाले संबंधों के आयामों के प्रति सजगता, विश्लेषण की कला में भावपक्ष में डूबकर विवेचन करने का सामर्थ्य अध्ययनशीलता आदि विशेष गुण

उनकी कहानियों में दृष्टिगोचर होते हैं। अतः उनकी कहानियॉ आज के हिंदी साहित्य के लिए मार्गदर्शक बन गई हैं और उनका यह मार्गदर्शक रूप बनता रहेगा। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए शोध की दृष्टि से उनके कहानी क्षेत्र को चुना गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबध भूमिका के अतिरिक्त सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत स्वातंत्र्योत्तर कहानियों के लिए जो आधारभूत प्रेरणास्रोत रहे उसका अध्ययन किया है। इस अध्याय के उपशीर्षक 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी साहित्य' के अंतर्गत स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की रचनात्मक पृष्ठभूमि के साथ उसमें विष्णु प्रभाकर की भूमिका को देखा है। स्वातत्र्योत्तर हिंदी कहानी में कथा की सहजता पीढ़ियों के संघर्ष में आदर्श और यथार्थ के संघर्ष में व्यक्त हुई है। सहजता के साथ विविधता आधुनिक कहानी की सबसे बडी विशेषता है। आज की कहानी की कथा ग्रामीण अंचल से लेकर महानगरीय जीवन की विडंबनाओं तक को समेटी हुई है। सामाजिक एव राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त असंगतियों से लेकर ग्रामीण तथा नगरीय अंचल का उपेक्षित जीवन पट आज की कहानी की संवेदना की परिधि है। संक्षेप में, यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति, यथार्थ परिवेश में आज के सही आदमी की खोज आदि कई बिंदुओं के बीच विष्णु प्रभाकर का कहानीकार बिलकुल खरा उतरता है। उनके सृजन का मूल स्वर ही मनुष्य की पहचान है और उद्देश्य है हर प्रकार के शोषण के खिलाफ आवाज उठाना। लेखक की अभिव्यक्ति की मूल प्रेरणा उसकी सर्जना को उभारती है। इस तरह हर लेखक की रचना समसामयिक परिवेश को अपने विभिन्न स्तरों पर परिलक्षित करती है। विष्णु प्रभाकर का समस्त साहित्य इस तथ्य को रेखांकित करता है।

आलोच्य अध्याय का उपशीर्षक 'विष्णु प्रभाकर' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अंतर्गत विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं और उनकी कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वर्णन, जीवनी, बाल-साहित्य आदि समस्त विधा में उनके साहित्यिक योगदान को प्रस्तुत किया है। उनके व्यक्तित्व के दो सशक्त पक्ष हैं– एक उनका बौद्धिक प्रशासनिक व्यक्तित्व और दूसरा मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण सर्जनशीलता साहित्यकार का व्यक्तित्व। एक संस्कारित रचनाकार के दायित्व को भी उन्होंने भली-भाँति स्वीकारा है। इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में उनका योगदान बहुत सक्षम सिद्ध होता है।

द्वितीय अध्याय "विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के स्वरूप" से संबंधित है। उनकी कहानियों का फलक अत्यंत विस्तृत है जो व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र और इनसे जुड़ी भारतीय संस्कृति और इतिहास को परिलक्षित करता है। आलोच्य अध्याय में उनकी कहानियों के परिचय के साथ-साथ कहानियों के कथ्य, प्रतिपादन का विवेचन भी मिलता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में समाज के बदलते स्वरूप को अभिव्यंजित किया है। नागरी जीवन से जुड़े पारिवारिक जीवन के साथ-साथ ग्राम्य जीवन में पर्याप्त परिवर्तन लक्षित होता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियाँ इस जीवन से जुडी मानव की विभिन्न संवेदनाओं को सक्षमता से चित्रित करती हैं। भारतीय समाज एवं शासन व्यवस्था से संबंधित राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रश्नों के प्रकाश में विष्णु प्रभाकर जी ने जीवन के तथ्यपूर्ण रूप को देखा है। इन कहानियों में विभाजन पूर्व से लेकर विभाजन के बाद की त्रासदी को विस्तृत भूमिका मिली है। इनमें मानव के प्रति आस्था और विश्वास झलकता है। स्वतंत्रता के बाद देश के सांस्कृतिक नव-निर्माण की आवश्यकताओं ने साहित्यकारों को अपने देश के अतीत-इतिहास की ओर देखने और अतीत के पृष्ठों से कथा और पात्र ग्रहण कर कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया। आज साहित्य निर्माण की अनेक समस्याएँ हैं जो हमें सोचने के लिए विवश कर रही हैं। विष्णु प्रभाकर की कहानियॉ इनके प्रति देखने का एक नया दृष्टिकोण देती हैं।

तृतीय अध्याय है, 'विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में यथार्थ के विविध आयाम . आलोच्य अध्याय में विष्णु प्रभाकर की कहानियों में चित्रित यथार्थ जीवन दृष्टि का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। जिसमें प्राचीन तथा वर्तमान समाज के तुलनात्मक अध्ययन के साथ कहानी में जिन नए संदर्भ स्तरों का सर्वतोंमुखी विकास परिलक्षित होता है उसके यथार्थ संवेद्य स्तरों की उद्‌भावना का चित्रण किया गया है। व्यक्ति को एक सामाजिक संदर्भ में चित्रित करने की चेतना यथार्थ के मूल में होती है। विष्णु प्रभाकर पुरानी पीढ़ी के होते हुए भी यथार्थ की उस भित्ति से जुड़े एक प्रतिनिधि कहानीकार हैं। यथार्थ के प्रति देखने की उनकी एक दृष्टि है। इस अध्याय में उनकी यथार्थवादी दृष्टि को विभिन्न आयामो में देखा गया है।

विष्णु प्रभाकर जी के समस्त साहित्य का केंद्र नारी है। पारिवारिक जीवन चित्रण में उन्होंने उसके विवाह पूर्व जीवन के विविध पहलुओं के साथ-साथ विवाह के बाद उसके बदलते रूपों की प्रस्तुती को यथार्थ संवेद्य बनाया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक जीवन में परिवार और समाज के मध्य ग्रामीण और नगरीय परिवारों के बदलते जीवन दृष्टिकोण, उनकी संवेदनाओं, विसंगतियों के साथ समाज में बदलती धर्मसंकल्पना और उसमें आई परिवर्तन की प्रक्रिया, सामाजिक विकास के मूल में कार्य करती अर्थ-चेतना और उससे प्रभावित सामाजिक मानसिकता, ग्रामीण जीवन और नागरीय जीवन की बदलती अर्थसंवेदनाओं के मध्य कार्य करते सूत्र और इनसे उत्पन्न समस्याओं का चित्रण भी उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। जातीय तथा धार्मिक संकुचितता पर वे कड़ा प्रहार करते हैं। उनकी कहानियों में परंपरावादियों पर संकीर्ण सांप्रदायिक दृष्टि, ऐतिहासिक समन्वय की दृष्टि के मध्य संस्कृति की एकसूत्रता स्थापित करने का प्रयास किया

है। स्वतंत्रता के बाद की बदलती राजनीतिक चेतना को भी उनकी कहानियों में विस्तार से देखा है। इस प्रकार कहानियों में यथार्थ की पृष्ठभूमि का व्यापक विस्तार पाया जाता है, जिसमें समस्त मानव जीवन की व्यापक संवेदनाएँ, मानवहित और मानव कल्याण की कामना की दृष्टि परिलक्षित होती हैं।

चतुर्थ अध्याय में 'विष्णु प्रभाकर की कहानियों में चित्रित संघर्ष' का चित्रण आता है। प्रस्तुत अध्याय में विष्णु प्रभाकर की कहानियों में चित्रित संघर्ष के विंभिन्न स्तरों पर चित्रित अवधारणाओं को विश्लेषित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में समाज के स्थान पर जैसे व्यक्ति का महत्त्व बढने लगा वैसे व्यक्ति का समाज के परंपरागत मूल्य-मान्यताओं के प्रति विद्रोह को एक व्यापक पृष्ठभूमि मिली है। विष्णु जी की कहानियों में संघर्ष के इन विभिन्न पड़ावों को अलग-अलग स्तर पर चित्रित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में साहित्य में संघर्ष के जो विभिन्न कोण नजर आते हैं उनकी मुख्यतः दो स्तर पर अभिव्यक्ति होती है। एक स्तर है अंतःसंघर्ष का और दूसरा है बाह्य संघर्ष का। स्वातंत्र्योत्तर काल में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। इसने व्यक्ति के बाह्य जीवन संबंधी दृष्टिकोण के साथ-साथ उनके अंतस् में प्रवेश किया। नारी के अचेतन में व्याप्त उद्दाम प्रणयावेग और चेतन में दृष्टिगत होनेवाले विवेक के बीच का संघर्ष, व्यवहार और आंतरिक भावना में सामंजस्य न होने के कारण संघर्ष, आत्मविश्लेषण से संघर्ष का प्रकटीकरण आदि को विष्णु प्रभाकर ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है। लेखक ने राजनीतिक परिस्थिति से उत्पन्न संघर्ष से लेकर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में झुलसता मध्यवर्गीय समाज, देश विभाजन की विभीषिका और उसके बाद स्वातंत्र्योत्तर कालीन उभरता पूरा संघर्षमय जीवनपट कहानियों द्वारा खोल दिया है। इसके अलावा पारिवारिक जीवनस्थिति से जुड़े प्रश्नो के साथ जूझता मानव-जीवन, सामाजिक, राजनीतिक-आर्थिक-धार्मिक स्थितियों में बदलते जीवनमूल्य और प्रणालियों में अपने आपको ठीक प्रस्तुत न कर पाने के कारण उत्पन्न संघर्ष की स्थितियों को भी उन्होंने विस्तार से लिया है।

संघर्ष का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है मानव का यथार्थ जीवन और मूल्य बोध की दृष्टि से बनी आदर्शजीवन प्रणाली, जो समाज का एक मापदंड मानी जाती है। 'विष्णु प्रभाकर' जी की कहानियों में इसके सभी रूप मिलते हैं। समय के गतिरोध को उन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

पंचम अध्याय : 'विष्णु प्रभाकर की कहानियों में चित्रित समकालीन बोध' से संबंधित है। आलोच्य अध्याय में साहित्य और युग, जीवन, हिंदी कहानियों में युगचेतना को अभिव्यक्त करने के लिए प्रमुख माने गये राजनीतिक जीवन आदर्श, सामाजिक जीवन, नारी जागरण की चेतना, युद्ध और शांति, गाँधीवादी विचारधारा, मानवतावादी विचारधारा तथा अन्य सांस्कृतिक मूल्य आदि पर विचार किया गया

है। विष्णु जी की कहानियों पर इन समस्त विचारधाराओं तथा युगीन जीवन मूल्यों का प्रभाव है।

सामाजिक जीवन बोध का प्रतिबिंब उनकी कहानियों में दिखाई देता है। जाति प्रथा तथा अस्पृशता निवारण के प्रति सजग दृष्टि, दहेज प्रथा का खंडन और अंतर्जातीय विवाह की बदलती धारणाओं की स्वीकृति के साथ-साथ नारी स्वतंत्रता के प्रति उनका सजग सामाजिक दृष्टि्कोण यथार्थ बोध करता है। इसके साथ विभाजन के बाद की बदलती मानसिकता के साथ युद्ध और शाति, भ्रष्ट सामाजिक जीवन वृत्ति का खंडन कर मानवतावादी जीवन दृष्टि का समर्थन करती नजर आती है।

छठे अध्याय मे 'विष्णु प्रभाकर की कहानियों का तात्विक विवेचन' है। साहित्य के अध्ययन में उसके प्रतिपादन के साथ उसके कलात्मक अंगों की प्रस्तुति उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय मे उनकी कहानियों की समीक्षा कलापक्ष को प्रधानता देकर की है। उन्होंने जीवन के समसामयिक यथार्थ एवं युगबोध तथा भावबोध को लेकर अधिक कहानियॉ लिखी हैं। ऐसी कहानियों के कथानक जीवन की व्यापक संवेदनाओं को यथार्थ परिवेश में अधिक चित्रित करते रहते हैं। उनके पात्र उनके अनुभव संसार के पात्र होते हुए अपने परिवेश से संपृक्त हैं, जिनमें मानव सुलभ अपेक्षाओं और विकृतियों का यथार्थ विस्तार है। नारी पात्र भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व लेकर उभरते हैं। पात्रों के चरित्रों में मनोविज्ञान के साथ-साथ दर्शन और साम्यवादी विचारधारा को प्रश्रय मिलता है। वे कहानियो द्वारा पात्रों के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। वातावरण की सृष्टि में भी उन्होंने पात्रों को ध्यान में लिया है। उनकी कहानियों का अध्ययन करते समय एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में आ जाती है कि जिस प्रकार वे नये विषयों की प्रस्तुति करते हैं उसी प्रकार नये उद्‌देश्यों को भी सामने लाते हैं।

सातवें अध्याय में 'विष्णु प्रभाकर की कहानियों का शिल्प विधान' पर प्रकाश डाला गया है। आलोच्य अध्याय में उनकी भाषा और शैली पर विचार किया है। भाषा शिल्प का अनिवार्य तत्व है तथा आदान-प्रदान का महत्त्वपूर्ण साधन है। उन्होंने उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, विदेशी भाषाओं के शब्दो के खुलकर प्रयोग किए हैं। उनका भाषागत वैविध्य पात्रों की प्रकृति, शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक स्तर के अनुकूल है। उनकी शैली उनके व्यक्तित्व और विषय वस्तु से संबंध रखती है। सभी प्रचलित शैलियों के प्रयोग के साथ-साथ पात्र का चित्र, दृश्य चित्र उपस्थित करने वाली शैलियों को भी देखा गया है। उनकी शैली में जीवन के साधारण स्तरों पर व्यवहृत अनुभूतियों के मार्मिक क्षणों को साबित करके सुरक्षित रखने की कला है। विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ समकालीन कथा लेखन में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती हैं।

उपसंहार में शोध प्रबंध में विभिन्न आयामो में प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर तटस्थ भाव से कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। 'विष्णु प्रभाकर और उनका कहानी साहित्य' इस प्रबंध में किए गए विवेचन-विश्लेषण के आधार पर ज़ो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं उनको समग्रता से प्रस्तुत करना ही इस अध्याय का प्रमुख उद्देश्य है। इस प्रबंध का विषय इसमें किया गया विवेचन तथा उससे प्राप्त निष्कर्ष पूर्ण रूप से मौलिक है। आशा है, प्रस्तुत शोध प्रबंध साहित्य के अध्येताओं तथा हिन्दी के जिज्ञासु पाठकों एवं शोधकर्ताओं को नवीन सामग्री प्रस्तुत करते हुए नए तथ्यों की ओर प्रेरित करने में सफल होगा।

प्रबध के विषय निर्वाचन से प्रबध को साजिल्द प्रस्तुत करने की यात्रा में अनेकों का सहयोग प्राप्त हुआ है। उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है।

प्रथमतः जिनकी प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से यह शोध प्रबंध लेखन सुचारु रूप से सम्पन्न हो सका है, वे फर्ग्युसन महाविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रा. डॉ० अरुण प्रभाकर पुजारी जिनके प्रति शाब्दिक या लिखित रूप मे आभार व्यक्त करना केवल औपचारिकता होगी। समय-असमय में उन्हें प्रबंध के संबंध में कष्ट पहुँचाती रही लेकिन नित्य शांति एवं पूरे मनोयोग से उन्होंने मेरा जो मार्गदर्शन किया उसे मैं भूल नहीं सकती। मेरी आदरणीय गुरुवर्या डॉ० सिंधु भिंगारकर जी का पुत्रवत स्नेह और मार्गदर्शन मेरी प्रेरणा का पथ प्रदर्शक रहा है। इसके साथ-साथ मैं अपने महाविद्यालय के प्राचार्य प्रा० अनिल मसू व्हनकलस जी के प्रति भी ऋण व्यक्त करती हूँ। पुणे विद्यापीठ के जयकर ग्रंथालय, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पुणे, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-पुणे, महाराष्ट्र राज्य पाठ्य पुस्तक निर्मिति-संशोधन मडल-बालभारती-पुणे, फर्ग्युसन एवं मॉडर्न महाविद्यालय पुणे के ग्रंथालय तथा इनसे संबंध कर्मचारियों की सहायता के लिए मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

अंत में अपने आत्मीय जनों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मेरा परम कर्तव्य है। मेरे श्रद्धेय माता-पिता के आशीर्वादों तथा प्रिय पति बालाजी सूर्यवंशी जी की प्रेरणा के बिना प्रबंध लेखन का काम करना मेरे लिए असंभव था, साथ ही अपनी प्यारी बच्ची स्वराली का विशेष सहयोग रहा तथा अनेक हितैषियों की मंगल कामनाओं को मैं भूल नहीं सकती।

— डॉ० सविता सबनीस

अनुक्रमणिका

1

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी साहित्य तथा उसमें विष्णु प्रभाकर का स्थान

विष्णु प्रभाकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

पृष्ठभूमि – व्यापकता और प्रसार की दृष्टि से कहानी का स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त प्रकारों मे सर्वोपरि रहा है। कहानी अपने साधारण रूप-कथा, लघुकथा, आख्यायिका और अख्यानक आदि रूपों में प्राचीन भारतीय साहित्य का श्रृंगार बन गई है। इसकी परंपरा वैदिक साहित्य से आरंभ होकर बौद्ध-जातक, जैन कथाओं, संस्कृत कथा साहित्य, प्राकृत अपभ्रंश तथा हिंदी के चारण-काल और मध्ययुग तक आती है। कहानी के इन विभिन्न स्रोतों ने समूचे संसार को प्रेरणा दी है।

हिंदी कहानी की विकास-रेखाओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह बात स्पष्ट होती है कि रचना प्रक्रिया संबंधी चेतना का विकास प्रेमचंद के उदय के साथ ही, हिदी कहानी में परिलक्षित होता है। इसी आधार पर प्राचीन हिंदी कहानी, पूर्व प्रेमचंद-युग की कहानी, प्रेमचंद युग की कहानी और प्रेमचंदोत्तर युग की कहानी का विभाजन कर सकते हैं। प्राचीन कहानी में अनेक कथात्मक प्राचीन पद्धतियों का असतर्क समावेश है। प्राचीन कहानी अपने रूप विधान और अपने प्रयोजन में प्राचीन परंपरागत रूढ़ि से बंधी हुई है। सामाजिक वास्तविकता का चित्रण करने की क्षमता प्राचीन कहानी में बहुत कम मिलती है, इसमें कल्पनातिरेक का प्राधान्य है, साथ-साथ प्राचीन कहानी में कुतूहल मिश्रित चमत्कार भावना का अधिक्य होने के कारण समाज के संबंधों की संवेदना मूर्त नहीं होती। इस दृष्टि से देखा जाय तो हिंदी कहानी अपने विशिष्ट रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से आरम्भ होती है। आधुनिक हिंदी कहानी का उत्थान वैसे वास्तव में बींसवीं सदी के प्रथम दशक में होता है। इस तरह हिंदी कहानी का विकास और उद्गम-सूत्र का अध्ययन अत्यंत व्यापक है।

हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया– हर साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह एक ओर युग का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है, तो दूसरी ओर वह तत्कालीन परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। कहानी की मूल संवेदना युग

तथा परिस्थितियों के अनुकूल अपना रूपाकार ग्रहण करती है। प्रारंभिक कहानियों में दैवी संयोग तथा अद्‌भुत तत्वों में दया, ममता, करुणा, त्याग, बलिदान जैसे उदात्त भावों की अभिव्यक्ति होती थी और सारी कहानी किसी आदर्श बिन्दु पर आकर समाप्त हो जाती थी। इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी', 'राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की', 'राजा भोज का सपना' आदि की संवेदना पौराणिक आख्यानों की नीतिवादिता तथा आदर्शवादी-धार्मिक मूल्यों की स्थापना तक सीमित रही।

हिंदी कहानी के प्रारंभिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से 'इंदु' पत्रिका द्वारा जयशंकर प्रसाद, 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा चंद्रधर शर्मा गुलेरी और 'मन्मन द्विवेदी' द्वारा 'सप्तसरोज'[1] की भूमिका से प्रेमचंद के अभ्युदय ने समष्टि रूप से एक नया युग-द्वार खोला। 'हिंदी कहानी की शिल्प-विधि का विकास', ग्रंथ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि की निश्चित प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हुई तथा समूचा विकास-युग इन्हीं तीनों के व्यक्तित्व से स्थिर हो सका। "यह विचार कहानी साहित्य की स्वतंत्र सत्ता को उपस्थित करते हैं। प्रेमचंद के उदय के साथ कहानी अपने कल्पना-विलास से हटकर यथार्थ बोध के समीप पहुँच गई। आदर्श और यथार्थ का संघर्ष भी इस युग की कहानी को प्रभावित करता गया। कहानी के कथ्य में आदर्श के प्रति अतिरिक्त आग्रह प्रसाद तथा प्रेमचंद की अनेक कहानियों में मिलता है। संवेदनात्मक विकास की दशा में यदि प्रसाद जी ने भावमूलक आदर्शवाद को अपनाया तो प्रेमचंद जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को प्रधानता दी है। स्वातंत्र्योत्तर नए कहानीकारों ने मानवीय यथार्थवाद को उसकी संपूर्णता में देखना चाहा।

'स्वतंत्रता' व्यक्ति तथा राष्ट्र जीवन का एक परिवर्तन बिंदु है। स्वतंत्रता पूर्व व्यक्ति-जीवन में राष्ट्र-चेतना ओतप्रोत थी। उसी से हर व्यक्ति का जीवन भी प्रेरित था। हर व्यक्ति एक मोह की स्थिति में था। स्वतंत्रता के बाद स्वार्थ-परता, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, बेईमानी आदि के परिणामस्वरूप मोह स्थिति खंडित होती गई। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आए परिवर्तनों ने व्यक्ति को सोचने के लिए विवश किया। उसे नया जीवन जीने के लिए प्रेरित किया और उसे अपने आत्मबल की अनुभूति कराई। जब भारतीय जीवन में स्वतंत्रता के पश्चात् पर्याप्त परिवर्तन आया, तो कहानी में भी उसी बदले हुए समाज जीवन का चित्रण किया जाने लगा। व्यक्ति और समाज के संबंधों में परिवर्तन, व्यक्ति-व्यक्ति के संबंधों में परिवर्तन, जो अंततः व्यक्ति और समाज के परस्पर परिवर्तित होते संबंध ही हैं– यह कहानी संरचना के विशिष्ट पक्ष रहे हैं। इस तरह स्वतंत्रता के बाद कहानी जगत् में एक नई पीढ़ी केवल आई ही नहीं तो एक बहुत बड़े गतिरोध को तोड़कर आई है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में बदलती परिस्थितियों ने हिंदी कहानी को नया स्वरूप प्रदान किया। वही से कहानी के विकास क्षितिज पर अनेक आंदोलनों का उदय हुआ। स्वातंत्र्योत्तर कहानी को इन्हीं आंदोलनों से गुजरना पडा। इस कहानी आन्दोलन का प्रथम उन्मेष 'नई कहानी' के रूप में हुआ। काल की दृष्टि से सन् १९५१ से आरभ होने वाली कहानी को ही नवीन जीवन-दृष्टि के आधार पर 'नई कहानी' कहा जाता है। नई कहानी का प्रयोग 'नई कहानी' के नाम के वजन पर हुआ है, जिसका श्रेय दुष्यंत कुमार को दिया जाता है। उन्होंने 'कल्पना' में प्रकाशित अपने एक लेख में सबसे पहले नई कहानी का उल्लेख किया था। इसी के बीच बयालीस की क्राति, बंगाल का अकाल, स्वतंत्रता-प्राप्ति और देश विभाजन आदि महत्त्वपूर्ण घटनाएँ रहीं। इन बदलती हुई परिस्थितियों में पुरानी पीढी के कहानीकार समय बोध को झेलने में असमर्थ रहे। इसलिए नई पीढ़ी ने रचनात्मकता के स्तर पर सामाजिक दायित्व बोध का परिचय दिया। पुरानी कहानी के शाश्वत मूल्यों की जडता का उच्छेद कर, परिवर्तित मूल्यों के प्रति जागरूकता दिखाई। इसलिए नई कहानी जीवन की सारी संगति-विसगति, जटिलता और दबाव की कहानी है, जिसमें समकालीन यथार्थ बोध तो है ही, प्रामाणिकता की खोज भी है। आत्मगत अनुभूति, ईमानदारी, सच्चाई और एक गहरी सवेदना इसके मूल में हैं।

हिंदी कहानी की विकास-यात्रा में आंदोलनों का दूसरा उन्मेष सन् १९६० के बाद उभरा, जिनमें 'अ-कहानी', 'सचेतन कहानी', 'सहज कहानी' आती है। 'अ-कहानी' अत्यधुनिक जीवन-दृष्टि से सम्पन्न है। रवींद्र कालिया की 'एक डरी हुई औरत', श्रीकांत वर्मा की 'प्यूमर', रमेश बक्षी की 'ईमानदार' आदि कहानियाँ इसी कोटि के अंतर्गत आ जाती हैं। 'अ-कहानी' ने कहानी में एक आक्रामक मुद्रा को स्वीकार किया और 'नई कहानी' में उत्पन्न भावुकता से मुक्त किया। 'सचेतन कहानी' के प्रवर्तक महीप सिंह हैं। इनके द्वारा प्रकाशित घोषणा पत्र में इसके स्वरूप, उद्देश्य आदि का निरूपण मिलता है। वे 'सचेतन कहानी' का उद्देश्य पुराने और नए के भेदाधिकार का विरोध मानते हैं। 'सचेतन कहानी' सक्रिय भाव बोध, जीवन स्वीकृति और निष्क्रियता विरोध की कहानी है। संचेतना जीवन जीने और जानने की दृष्टि है, जो गतिशील आधुनिकता की भी दृष्टि है। इसने सामूहिक संचेतना के फलस्वरूप कहानी के गतिरोध को तोड़ा है। संचेतन के अनुरूप ही देवीशंकर अवस्थी यथार्थन्वेषण के नए मुद्दे की बात कर 'समकालीन कहानी' को-नई कहानी' से अलग करते हैं। गंगा प्रसाद विमल ने इसे विच्छिन्न करते हुए 'अ-कहानी' नाम दिया है। 'संचेतन कहानी' का फलक बहुआयामी है। महीप सिंह की 'धुंधले कोहरे', 'और भी कुछ', रामकुमार भ्रमर की 'लौ पर रखी हुई हथेली' आदि कहानियाँ महत्त्वपूर्ण है। 'सहज कहानी' द्वितीय उन्मेष का तीसरा चरण है। यह आंदोलन अधिक विकसित नहीं हुआ। अमृतराय तथा उनके

द्वारा नई कहानियों में लिखी गई संपादकीय टिप्पणियों तक सीमित रहा। इसमें केवल सहज कथा की सहज अभिव्यक्ति पर ही बल दिया गया।

'समांतर कहानी आंदोलन' आठवें दशक में प्रारंभ हुआ। इसका सूत्रपात कमलेश्वर जी ने १९६२ के आस-पास सारिका पत्रिका के लिए लिखी जाने वाली संपादकीय टिप्पणियों मे किया। कहानी की मूल संवेदना सामान्य जन के संघर्ष से संबद्ध है, तथापि पारिवारिक स्तर पर श्रद्धा, सम्मान, सहानुभूति जैसे विघटन को भी उसने संपादित किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'समांतर कहानी' ने व्यक्ति की असहायता, नैतिक-संकट, मूल्यहीनता तथा विघटन को समग्र सामाजिक तंत्र के परिप्रेक्ष्य में देखा है। कामतानाथ की 'अंतेष्टि', कमलेश्वर की 'जोखीम', दिनेश पालीवाल की 'दुश्मन' प्रभुनाथ सिंह की 'कुछ कदमों का फासला', मधुकर सिंह की 'भाई का ज़ख्म' आदि कहानियों में आम आदमी के संघर्ष के साथ-समग्र सामाजिक तंत्र को कुशलतापूर्वक उभारा गया है। इस प्रकार 'समान्तर कहानी' का फलक सामान्यजन तथा उसका व्यापक सामाजिक संघर्ष है।

'समांतर कहानी' आंदोलन अपनी सीमित दृष्टि और कृत्रिम वैचारिकता के कारण शीघ्र ही समाप्त हो गया। आठवें दशक के उत्तरार्ध में कहानी के क्षितिज पर चतुर्थ उन्मेष में दो आंदोलन उभरे, जिनका सूत्रपात 'जनवादी कहानी' और 'सक्रिय कहानी' में हुआ। हिंदी साहित्य में 'जनवादी आंदोलन' प्रगतिशील आन्दोलन का ही विकसित रूप है। जनवाद का जन्म सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष करते पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय के साथ हुआ। जनवाद का नेतृत्व सर्वहारा के हाथ में होता है और वह समाज में सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करने के लिए है। 'जनवादी कहानी-आंदोलन समूचे जनवादी आंदोलन से जुडा हुआ है। 'जनवादी कहानी' के केंद्र में निम्न मध्यवर्ग का संघर्ष है, किंतु यह संघर्ष वास्तविक जीवन का है, उसका वैचारिक आधार मार्क्सवाद है। यशपाल की 'परदा', रांगेय राघव की 'गदल', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', अमरकांत की 'दोपहर का भोजन' आदि कहानियों से जनवादी कहानी की परंपरा, नई कहानी के दौर में समृद्ध हुई। 'जनवादी कहानी' ने अपने आस-पास की दुनिया से अपना सच्चा रिश्ता स्थापित किया। 'सक्रिय कहानी' आंदोलन के सूत्रपात का श्रेय 'मंच के संपादक श्री राकेश वत्स को है। राकेश वत्स 'सक्रिय कहानी' को चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी मानते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो 'सक्रिय कहानी' समग्र और अहसास की कहानी, जो आदमी की बेबसी, निहत्थेपन से अलग कर स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खडा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेती है। इस प्रकार वह व्यक्तिवादी दानवी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देती है। कुमार संभव की 'आखिरी मोड़', राकेश वत्स की 'काले पेड़', धीरेन्द्र अस्थाना की 'लोग

हाशिये पर', रमेश बतरा की 'जंगली जुगराफिया आदि कहानियों में उत्पीड़न सहते पात्रों का सक्रिय संघर्ष उभरा है। इस प्रकार 'सक्रिय कहानी' आंदोलन भी अपने आप में बहुत सीमित फलक लेकर उभरा। कहानी के इस आंदोलनात्मक पृष्ठभूमि के साथ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी का संवेदनात्मक स्तर पर भी उतनी ही सक्षमता से विकास हुआ, जिसके कारण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानी परंपरा से एक अलग छाप छोड़ती गई।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के इस विकास चरण में चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी का ऐतिहासिक महत्त्व है। इसमें यथार्थ के आवरण से झाँकते आदर्श के साथ ही यथार्थ के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों पहलुओं को कहानी के कथ्य में संजोया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे समाज में सभी क्षेत्रों के साथ-साथ चिंतन के क्षेत्र में भी बदलाव की स्थिति उत्पन्न हुई है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। साहित्य की सभी विधाओं के साथ हिंदी कहानियों में भी बदलाव आ गया। 'हिंदी कहानी का विकास' ग्रंथ में डॉ० देवेन्द्र ठाकुर का कथन है, " प्रेमचंदकालीन आदर्शवादिता और नैतिक उपदेश अब कहानी के सर्वमान्य मूल्य नहीं रह गए। इनके स्थान पर यथार्थ जीवन की प्रस्तुति और विद्रोह की भंगिमा को स्वर मिला।"[२] इसका विकास यशपाल, रांगेय राघव, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर, अमरकांत, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, मोहन राकेश, रामदरश मिश्र आदि की कहानियों मे हुआ है। आगे जाकर देखा जाए तो मार्क्सवाद के प्रभाव से कल्पना प्रस्तुत आदर्शवादी कहानी का युग समाप्त हो गया और कहानी अपनी सामग्री समाज से ग्रहण करने लगी। इस प्रकार साहित्य के माध्यम से अपने परिवेश को सचेत रूप में परखने की नई दृष्टि प्राप्त हो जाने से लेखक कल्पना-जन्य आदर्शवाद या दैवाधीनता का पल्ला छोड़ कर भौतिक समस्याओं का भौतिक समाधान खोजने लगे। इस प्रकार व्यापक दृष्टिकोण की परिधि के कारण लेखकों में दूसरा एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि समाज की पीड़ाओं के निर्माताओं को जानने का बल उनमें आ गया और उनको वर्गीय चेतना की निर्मिति में संगठन एवं विद्रोह की आवश्यकता महसूस होने लगी। परिणामस्वरूप आज की कहानी समसामयिक यथार्थ के दबाव में बनते-बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति से जुड़ गई।

भोगे गए जीवन वास्तव के फलक पर चित्रित, बदलते सामाजिक बोध की सही पहचान ही आज की कहानी का प्रमुख स्वर रहा है। इसने अपने समय, काल, परिस्थिति के जीवन और समाज, संघर्षकालीन स्थितियों से अपना सीधा संबंध स्थापित करके इसे अपना नया अर्थ दिया। 'हिंदी कहानी की शिल्प-विधि का विकास ग्रंथ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का वक्तव्य है, "आजादी के बाद समाज में नई समस्याएँ उभरी, उनके भीतर के नए प्रश्नों की चुनौती को इसने स्वीकार किया।"[३] इन समस्त बातों से ज्ञात होता है कि, कहानी की वस्तु और

अभिव्यक्ति में बहुत बडा परिवर्तन हुआ है। प्रत्यक्ष जीवन संघर्ष से ही विषय चुने जाने लगे, उपेक्षित जीवन की पीड़ाओं को सहानुभूति के साथ व्यक्त किया जाने लगा, विषयों का विस्तार बढ़ने के कारण नए दृष्टिकोण की निर्मिति हुई और उसे सुस्थिरता भी प्राप्त हो गई। जिसके कारण कथा में विद्रोह, व्यंग्य का स्वर उभर उठा और कहानी मात्र मनोरंजन की वस्तु न रहकर, गंभीर सोद्‌देश्य बन गई।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की रचनात्मक पृष्ठभूमि – स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की परिवर्तित मानसिकता को भिन्न-भिन्न कोणों से रेखांकित करने की दिशा में कहानी आज साहित्य की अन्य सभी विधाओं में आगे निकल गई है। उसमें समसामयिक जीवन अपने संपूर्ण परिवेश के साथ उभरा है। आज की कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया किसी धार्मिक-नैतिक मूल्य द्वारा नहीं, भोगे हुए जीवन यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति द्वारा परिचित है। १९३६ के बाद कहानी की समाजवादी तथा व्यक्तिवादी इन दो स्वतंत्र धाराओं में प्रस्तुति हुई है। स्वतंत्रता के बाद कहानियों के मात्र इन दोनों धाराओं के समन्वित रूप ने बड़ी सीमा तक प्रस्थापित किया है। स्वतंत्रता के बाद सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक मूल्यों में बड़ा भारी परिवर्तन आया। व्यक्ति-व्यक्ति के अपने संबंधों में आए बिखराव तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार ने स्वतंत्रता के बाद एक ऐसी मानसिकता को जन्म दिया, जिसे एक साथ दो-दो सीमाओं पर जूझना पड़ा। कहानी का कथ्य विभिन्न रूप लेकर सामने आया।

१. **कथ्य के रूपों में विभिन्नता** – कहानी की मूल संवेदना उसका कथ्य रहता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कहानी का कथ्य दो समांतर भूमिकाओं पर अवस्थित है। यह आज के मानव-जीवन से सीधे-सीधे जुड़ी है, इसलिए उसका कथ्य भी जीवन और उसके पक्षों से संबद्ध है। उसमें व्यक्ति के जीवन में आनेवाली समस्याओं एवं उनसे जूझनेवाली स्थितियों का निर्देशन होता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के कथ्यगत वैविध्य ने आदर्शवाद को कई कोणों से स्पर्श किया है। इसमें नई-पुरानी पीढ़ियों, मान्यताओं, जीवन मूल्यों का संघर्ष-आदर्श और यथार्थ का संघर्ष है। आज कहानियों में आँचलिक विशेषताओं को भी कई बिंदुओं से रेखांकित किया गया है। आँचलिक चरित्रों, बदलती परिस्थितियों तथा ग्रामीण एवं नगरीय जीवन मूल्यों के संघर्ष तथा आर्थिक विषमता आदि से भी कथ्य प्रभावित हुआ है। कथ्य वैविध्य के साथ स्वातंत्र्योत्तर कहानी में आधुनिक जीवन-यथार्थ के विविध संदर्भों का चित्रण भी स्वाभाविकता से होता आया है।

२. आधुनिक जीवन-यथार्थ-विभिन्न संदर्भों का चित्रण

आधुनिक चेतना की अभिव्यक्ति – एक अर्थ से स्वातंत्र्योत्तर कहानी में जीवन और जगत् की सच्चाई ही उभरकर सामने आई। 'आधुनिक हिंदी कहानी' ग्रंथ में गंगाप्रसाद विमल का वक्तव्य है, "स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज की तस्वीर अपने देशकाल के विषम वातावरण की आंतरिक कुरूपताओं और परिवेश संक्रांत

जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करती है।"[४] इसका व्यापार क्षेत्र आज अपनी सीमाओं में जितना अधिक व्यापक हुआ है, उतना ही आंतरिक रूप से जटिल और सघन भी बना है। यह संक्रमण जीवन के प्रत्येक स्तर पर परिलक्षित होता है। आज अपने देश से, समाज से, परिवार से रिश्तेदारो से, यहाँ तक की अपने आप से भी कट कर चलने के लिए बाध्य है, पारिवारिक संबंध उसके लिए चुनौती बन गए हैं। आज रूढ़ संबंधों के प्रति नई पीढ़ी का आस्थावान बने रहना संभव नहीं है। आज नई पीढ़ी उन संबंधों के प्रति कहीं भीतर से जुड़ना नहीं चाहती। प्रेम के संदर्भ में भी एक बार भी सारी की सारी मान्यताएँ बदल गई हैं और आज प्रेम शब्द एक निरर्थक जैसे भाव को अभिव्यक्त करने लगा है। आंतरिक घुटन, स्वार्थ-परस्ती और भयाक्रांत जीवन से आज का हर व्यक्ति त्रस्त हो चुका है। इस प्रकार दुर्निवार कटुता और नैतिक मूल्यों की गिरावट आज के व्यक्ति को आत्मनिर्वसन चुनने पर मजबूर कर देती है। संक्षेप में, परंपरागत विश्वासों की व्यर्थता, असहायता एवं आधुनिक जीवन मूल्यों की सार्थकता जो स्वातंत्र्योत्तर कहानी का कथ्य है, जिसमें आज की जिंदगी की सच्चाई अपने समूचे यथार्थ के साथ मुखरित हो उठती है।

३. **नारी जीवन के आधुनिक रूपों का चित्रण** – युगीन संदर्भों में बदलते जीवन-मूल्यों की सहज स्वीकृति, साथ ही नारी जीवन के विविध पक्षों की यथार्थ अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के कथ्य की एक समृद्ध दिशा है। नारी जीवन के अधुनातन आयामों में स्त्री-पुरुष के आपसी संबंधों का संकट है, प्रेमविवाद क़ी समस्याओं के बीच भी आर्थिक मजबूरियों से जूझती नौकरपेशा नारियों का उभरता स्वतंत्र व्यक्तित्व है, तो जीवन के किसी कोने में आर्थिक, सामाजिक स्थितियों, रूढियो, अंधविश्वासों से घिरी नारी भी है। आज के समर्थ कहानीकारों ने बदलते हुए स्त्री-पुरुष संबंधों का गहराई से अध्ययन किया है। टूटते संबंधों, परिवारों के पीछे कार्य कर रही मनःस्थितियों और कारणों की खोज की है, पिछले मूल्यों के विघटन और नए मूल्यों की स्थापना के प्रयास में अनेक विसंगतियों का आकलन किया है, नारी की बदलती हुई सामाजिक स्थिति के परिणामस्वरूप उसकी उपलब्धियों और समस्याओं-दोनों से उसका साक्षात्कार हुआ है। साथ ही उसकी वर्तमान व्यवस्था में व्यक्ति के ऊपर बढ़ते हुए दबाओं को भी महसूस किया है। उसने बौद्धिक और विकासोन्मुख समाज के बीच व्यक्ति के अकेलेपन को भी अभिव्यक्ति दी है। साथ-साथ सामाजिक यथार्थ जीवन की ओर भी उसका ध्यान गया है।

४. **समसामयिक यथार्थ जीवन दृष्टि** – स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय जनता का एक ही उद्देश्य था, स्वतंत्रता प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होना। इसलिए उसी कालखंड में साहित्य में भी मूलतः यही तत्व उभरकर सामने आया पर आज स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हम दूसरों की गुलामी से मुक्त होकर भी अपनी खुद की गुलामी की

ज़ंजीरों में जकड़ गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश को कई संकटों का सामना करना पड़ा तो दूसरी ओर यही वह समय था, जब देश को नई जीवन पद्धति भी देनी थी पर उस समय यथार्थ की भूमि पर खडे होकर हमने परिस्थितियों का आकलन कभी नहीं किया। आज भी इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता। बाँध बँधे और टूटे, कारखानों और फैक्टरियों के उत्पादन के वृद्धि से अधिक सरकारी आँकड़ों की वृद्धि हुई, अव्यावहारिक किताबी शिक्षा ने देश की समृद्धि के लिए लाखों बेरोजगार, स्नातकों, डॉक्टरों, इंजीनियरों को जन्म दिया। आज शोषित वर्ग की स्थिति भी वही है, मात्र शोषण की प्रक्रिया भिन्न हो गई है। समानता के स्थान पर गरीबी और अमीरी के बीच खाई चौडी हुई है। सरकारी कार्यालयों, अस्पतालों, धार्मिक संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार सीमा को लांघ गया है। राजनीति की गंदगी और कुत्सा से सामान्य जन-जीवन आक्रांत हुआ है। इस पीडा और मानसिक दबाव को आज के कृतिकार ने सहा है और समग्रता में उसे विभिन्न आयामों में डालकर अभिव्यक्ति प्रदान की है। उदा० गिरिराज किशोर की 'पेपर वेट', 'निमंत्रण' आदि कहानियाँ राजनीतिक संदर्भों की कुरूपता को उधेडती हैं। देश के व्यंग्यपूर्ण, परिवेश को लेकर माहेश्वरजी की 'साँप', 'ज्ञानरजन की घंटा', रवींद्र कालिया की 'काला रजिस्टर' आदि प्रामाणिकता से युक्त रचनाएँ हैं। इस प्रकार समसामयिक सदर्भों में विभाजन और सांप्रदायिक दंगों, बेरोजगारी, मँहगाई, भ्रष्टचार आदि को कथ्य बनाकर लिखी गई कहानियों में आज के भारतीय जीवन की सच्चाई चित्रित हो गई है। मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है', विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है', मोहन राकेश की 'परमात्मा का कुत्ता' आदि कहानियों में इसकी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

संक्षेप में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की हिंदी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उसकी कथ्यगत विविधता है, इनमें जीवन यथार्थ की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति और आधुनिक जीवन की पूर्ण स्वीकृति में परिवेश सहित आज के सही आदमी की तलाश की गई है। उसमें वर्तमान भारतीय जीवन अपनी हर अच्छी-बुरी सच्चाई के साथ विभिन्न कोणों-बिन्दुओं से संदर्भित हुआ है। स्वतंत्रता के बाद की कहानी जीवन के सर्वमान्य एवं मौलिक सत्यों की खोज में संलग्नता की कहानी है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के अलगाव का और एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी हो सकता है कि यह कहानी पाश्चात्य विचारधाराओं से भी प्रमाणित रही है।

भारतीय समाज को विभिन्न संस्कृतियों और विचारधाराओं ने पर्याप्त प्रभावित किया है। यह प्रभाव स्वतंत्रता के पश्चात् अधिक लक्षित होता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी को पाश्चात्य जीवन-दृष्टि ने पर्याप्त प्रभावित किया और यही प्रवृत्ति आगे जाकर स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी कहानी को विभिन्न वादों की विचारप्रणालियों के साथ जोड़ती भी गई।

५. **यथार्थवादी जीवन दृष्टि** – किसी भी काल में समय संगत यथार्थ की ही महत्ता होती है। डॉ० देवीशंकर अवस्थी ने सबसे पहले कहानी को इस कोण से आँकने का प्रयास किया है। 'नई कहानी की भूमिका' ग्रथ में कमलेश्वर जी ने इसकी मान्यता भी दी है। उनका कथन है, "कहानी में यथार्थ के प्रति लेखक के दृष्टिकोण और उसकी महत्ता के संदर्भ में देवीशंकर अवस्थी ने उस सूक्ष्म परिवर्तन को रेखांकित किया था, जो पुरानी कहानी से आधुनिक कहानी में पर्यवसित हुआ है।"[५] आज की कहानी में तथ्य और यथार्थ में केवल स्तर-भेद ही नहीं, गुणात्मक भेद है एक तर्क यह भी है कि जो कुछ तथ्य है वह सब यथार्थ नहीं होता आकस्मिकता से पैदा हुआ तथ्य भी एक वास्तविकता हो सकती है, पर यथार्थ नहीं। यथार्थ इतिहासजन्य परिस्थितियों की देन है, उसमें आकस्मिकता या घटनात्मकता का आंशिक योगदान हो सकता है, पर अनिवार्य रूप से इसे अप्रत्याशित की देन कह सकते है। तात्पर्य, परिस्थितियों के द्वंद्व से जो सच्चाई पैदा होती है, वही यथार्थ है, जिसकी कार्य-कारण परंपरा होती है और जिसे इतिहास की पीठिका में विश्लेषित किया जा सकता है। जहाँ कहीं आकस्मिक रूप से तथ्य उभरते हैं, वह यथार्थ नहीं होता। यथार्थ द्वंद्व की लम्बी परम्परा होती है और उसे सभी आवरणों के नीचे से खोजना ही होता है।

'नई कहानी' में यथार्थ में यथार्थ की अपनी सत्ता की पहचान का प्रयास है। 'नई कहानी' के प्रस्तोता कमलेश्वर की मान्यता है कि, "यथार्थ की सत्ता की पहचान ही निरंतर बदलते रहने की प्रक्रिया को जन्म देती है क्योंकि स्वयं यथार्थ बदलता जाता है। आधुनिकता की इसी दृष्टि के आधार पर कहानी पहचानी जा सकती है।"[६] यथार्थ के इस परिवर्तन को परखकर उसे तदनुसार अपने को परिवर्तित करना ही आधुनिकता हो सकती है। इसलिए यथार्थ और आधुनिकता दोनों एक-दूसरे के पूरक भी हैं और प्रणेता भी है। निर्मल वर्मा की 'परिंदे', कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ', दूधनाथ सिंह की 'रीछ', 'सुखांत', 'चाय घर में मौत', श्रीकांत वर्मा की 'शव यात्रा' आदि कहानियों में आज के व्यक्ति की अस्तित्वगत सार्थकता पूरी यथार्थता के साथ चित्रित होती है।

६. **अस्तित्ववादी जीवन–प्रणाली** – पिछले दो दशकों में हिंदी कथा साहित्य ने दार्शनिक आधार के लिए अनेक नवीनतम पश्चिमी प्रवृत्तियों को अपनाया है। इसका कारण कदाचित यही है कि, आज जब हम किसी जीवन-दर्शन की बात करते हैं तो हमें कोई भारतीय परंपरा इस संदर्भ में नहीं प्राप्त होती। जो भी भारतीय दर्शन प्राप्त होता है, वह आधुनिक परिवेश में अनुपयुक्त ही नहीं, अव्यवहारिक भी प्रतीत होता है, इसलिए पश्चिम की ओर दृष्टि उठाकर देखना आधुनिक कथा-साहित्य की विवशता ही नहीं, एक अनिवार्य शर्त भी बन गई है। साहित्य में अस्तित्ववाद का प्रसार १९३० से पूर्व ही हो चुका था, १९४१ तक आते-आते यह दर्शन काफी स्पष्ट और पूरी तरह मान्यता प्राप्त हो गया। द्वितीय

महायुद्ध के बाद इसकी प्रमुखता बढ़ी और यह सारी दुनिया में व्यष्टि तथा समष्टि स्तर की प्रभाव दृष्टि के कारण अपरिहार्यतः महत्त्वपूर्ण हो उठा। यह एक संपूर्ण जीवन-प्रणाली है। इसका मूलतंत्र मनुष्य की सही स्थिति की अर्थहीनता है अस्तित्व का प्रधान अर्थ स्वतंत्रता है।

अस्तित्ववाद का काल्पनिक साहित्य-सृजन में विश्वास नहीं है। वह जीवन के नित्य प्रति स्वाभाविक संघर्ष को महत्त्व प्रदान करता है। वह मानव मुक्ति के प्रति गंभीर रूप से आस्थावान है। मानव की विवशता से परिपूर्ण एवं असहाय स्थिति से ही अस्तित्ववाद का आरंभ होता है। मानव जीवन क्षणभंगुर है, इस अनिश्चयात्मक स्थिति में मनुष्य अपने को अनेक बंधनों में फँसा हुआ पाता है और देखता है कि उसे स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। वह अपने जीवन को एक निश्चित अर्थ देना चाहता है, भावाभिव्यक्ति से पूर्ण करना चाहता है और मानव स्वतंत्रता एवं मुक्ति को उद्‌घोषित करना चाहता है। अस्तित्ववाद की सीमा यहीं से आरंभ होती है। अस्तित्ववाद मनुष्य की स्वतंत्रता का अपना मूलभूत आधार स्वीकारता है। इस संदर्भ में 'हिन्दुस्तानी पत्रिका में अस्तित्ववाद और हिंदी कहानी' लेख मे डॉ० सुरेश सिन्हा का यह वक्तव्य एक गहरी दृष्टि दे जाता है। उनका वक्तव्य है, "स्वतंत्रता के प्रति मनुष्य की चेतना को जागृत कराने और उसे उस दिशा में सक्रिय रूप से प्रयत्नशील बनाने के लिए साहित्यिक रचनाओं तथा राजनीतिक एवं पत्रकारिता संबंधी कार्यों का दायित्व बढ़ जाता है। अस्तित्ववादी स्वतंत्रता उसी उत्तरदायित्व का आधार है।"[७] साहित्य में उसको लाने और फलस्वरूप नया जीवन दर्शन उभारने का महत्त्वपूर्ण कार्य ज्याँ-पाल-सार्त्र को दिया जाता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी पर इसका बहुत गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। खासकर नए कहानीकारों पर इसका गहरा प्रभाव है। रामकुमार वर्मा की 'सपाट चेहरे का आदमी', मोहन राकेश की 'मिस पाल', निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात', दूधनाथ सिंह की 'अनुभव का अकेलापन', राजेंद्र यादव की 'तारों का गुच्छा', रवींद्र कालिया की 'एक प्रामाणिक झूठ', 'नौ साल छोटी पत्नी', गंगा प्रसाद विमल की 'प्रश्नचिह्न', 'विध्वंस', ज्ञानरंजन की 'संबंध', कृष्णा सोबती की 'यारों के यार' आदि जैसी कहानियों में इस अस्तित्ववादी चिंतन पद्धति का प्रभाव दीख पड़ता है। इसी विचारधारा के समकक्ष चलने वाली, नवमानवतावादी विचार प्रणाली का भी प्रभाव हिंदी साहित्य पर दिखाई देता है।

७. नव-मानवतावादी दृष्टिकोण – इसी विचारधारा को लेकर चलने वाले विचारकों ने मानवता को विकसनशील तत्व के रूप में स्वीकारा है। इन विचारकों का मानना है कि मनुष्य का विकास पशु से हुआ, उसी प्रकार मनुष्य भी विकसित होकर अपना एक शक्तिशाली जीवन बनाए। अतः इस शक्तिशाली मानव की उत्पत्ति के लिए जो विचार आवश्यक है, वही आदर्श है। इन्हीं का अनुसरण होना चाहिए। 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में सामाजिक परिवर्तन' ग्रंथ में भैरूलाल गर्ग

ने दी यह अवधारणा नव-मानवतावाद के मूल की ओर संकेत करती है परंतु उनके विचारों में संक्षेप में अंतर है। वे मानते हैं कि, "नए-मानवतावादियों ने परोक्ष सत्ता का विरोध किया है और मनुष्य को ही प्रतिमान घोषित किया है। उनका कथन है कि मनुष्य में ही पाशविक और दिव्य दोनों ही प्रकार के तत्व हैं किंतु इनके मध्य की स्थिति मानवता है। नवमानवतावादियों ने उसके दिव्य शक्ति के उदय को ही चरम मूल्य माना है।"[८] परन्तु नवमानवतावाद किसी स्वतंत्र विचारधारा का परिणाम नहीं है। इस विचारधारा में विभिन्न विचारधाराओं का समावेश है– ऐसी विचारधाराएँ तो मानव-हितकारी हो अर्थात् जिसका केंद्र केवल मानव ही हो, वे सभी मानववाद के अंतर्गत समाविष्ट हैं। योगी अरविंद, रोमन कैथोलिक विचारक आदि का नवमानवतावाद भी अस्थावादी है। 'हिंदी साहित्य कोश' में डॉ० धर्मवीर भारती ने इसकी सीमा निर्धारित की है। उनका मानना है कि यद्यपि साम्यवाद को भी नवमानवतावाद के अंतर्गत रखने का प्रयत्न किया गया किंतु यह भौतिकवादी जीवन दर्शन होने से उसमें समाविष्ट न हो सका।"[९] राजकमल चौधरी पर बंगाल की भूखी पीढी के माध्यम से पाश्चात्य प्रभाव आया है, वह इसी नवमानवतावाद का द्योतक कहा जाएगा। आज नए साहित्यकारों की प्राचीन मूल्यों की नकार में भी नवमानवतावादी दृष्टि ही मिलती है।

८. **अति-आधुनिकतावादी विचार प्रणाली** – स्वातंत्र्योत्तर कहानी और कहानीकारों पर अति-आधुनिकतावाद का भी पर्याप्त प्रभाव है। अस्तित्ववाद की भाँति यह कोई जीवन दर्शन नहीं है और न कोई वाद भी है। यह तो पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से उद्भूत एक मात्र धारणा है, जिसने स्वातंत्र्योत्तर संपूर्ण साहित्य और साहित्यकारों को प्रभावित किया है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी में भी सन् ६० के बाद की कहानी पर अति-आधुनिकतावाद का प्रभाव अधिक लक्षित होता है। इसे एक प्रकार का आंदोलन ही कहा जा सकता है। इसी कालखंड में आधुनिकतावाद का प्रभाव पत्र-पत्रिकाओं पर भी पडा और अति-आधुनिकतावाद का सूत्रपात करनेवाली लघु-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। इन्हीं आंदोलनों के परिणामस्वरूप अनेक शब्दों का प्रचार भी हुआ, जैसे 'टेरर', 'एब्सर्ड बोध', प्रतिबद्धता', 'संत्रास', 'युगबोध', 'ऐतिहासिक बोध' जैसे अनेक सार्थक-असार्थक शब्दों का भी प्रयोग किया जाने लगा। इसी प्रकार साहित्य में प्रवेश होनेवाली यह नई स्थिति थी। हर नई स्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति प्रवेश होनेवाली हर स्थिति को उसी मूल रूप में समझ नहीं पाता, जिसके कारण इस प्रकार की फैशन-परस्त स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी के प्रभाव स्वरूप अनेक प्रकार के नए-नए नारे साहित्यकारों ने प्रस्तुत किए, जिनमें से सर्वाधिक चौकानेवाला नारा था, 'ईश्वर के मृत होने की घोषणा। यह नारा इन आधुनिकतावादी लेखकों ने नीत्शे की पुस्तक 'जरथुश ने ऐसा कहा था' के प्रभावस्वरूप ग्रहण की थी। वास्तविक रूप से नीत्शे ने जब यह बात कही थी तो उसके मूल में ईश्वर के नकार का भाव नहीं था, तो मनुष्य के पास वह शक्ति

है और विवेकवान जिसके द्वारा वह ईश्वर के समान संस्कारशीलता को प्राप्त कर सकता है। इन धारणाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होती गई।

कई कहानियों की भी आधुनिकता के नाम पर प्रस्तुति हुई जिनका मुख्य उद्देश्य जीवन के विपरीत पक्ष का ही चित्रण करता था। उदा० महेंद्र भल्ला की, 'एक पति के नोट्स', गंगाप्रसाद विमल की 'अपना मरना', कृष्णा सोबती की 'यारों के यार' आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इन आंदोलनों की कहानियों का आधार व्यक्ति का आंतरिक यथार्थ-नग्न यथार्थ स्थिति ही रही। इन कहानीकारों ने संभोग तक की स्थिति का यथार्थ चित्रण कुछ सीमा तक इनसे पूर्व कहानीकार कमलेश्वर की 'मांस का दरिया' में भी मिलता है किंतु कुछ परदा है, यहाँ परदाफास कर दिया है, इन कहानीकारों का धर्म ही यह बन गया है कि नारी और पुरुष की जितनी भी आंतरिक स्थितियॉ हैं उनका उद्घाटन होना चाहिए। राजकमल चौधरी की 'मरी हुई मछली' और गंगा प्रसाद विमल की 'अपना मरना' कहानियों में भी यही स्थिति देखी जा सकती है। यह आधुनिकतावाद हिंदी कहानी में अधिक न चल सका क्योंकि इसके पास कोई जीवन दर्शन नहीं था। इस प्रकार पाश्चात्य जीवन दर्शन के परिणामस्वरूप कहानी के क्षेत्र में विभिन्न वादों की अवधारणाओं के साथ-साथ नवीन जीवन मूल्यों की अवधारणाओ की दृष्टि भी एक नई चेतनात्मक संकल्पना बन गई जिससे कहानी में इसके विभिन्न रूप सामने आए और कहानी का कथ्य अधिकाधिक प्रबल बनता गया।

६. **नवीन जीवन-मूल्यों की अवधारणा** – स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के लिए एक नई पृष्ठभूमि निर्माण करती गई। व्यक्ति-स्वातंत्र्य, बंधुत्व, मानव समानता, न्याय, प्रेम, यौन संबंध ही वे मूल्य हैं जिनकी ओर नई कहानीकारों का ध्यान आकर्षित हुआ है। समय तथा परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ मूल्यों मे भी परिवर्तन आया है। पहले हमारा समाज धर्म पर आश्रित था। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र किसी-न-किसी रूप में धर्म से संपृक्त रहा था, मात्र आज वैज्ञानिकता, यांत्रिकी, बौद्धिकता आदि ने मानव जीवन को अधिक व्यस्त बना देने के कारण उनके पास धर्म या भगवान का नाम लेने के लिए समय ही नहीं रहा है। भविष्य के विषय में भी उसकी धारणाएँ बदल गई हैं। आज धर्म का स्वरूप बदल गया, इसकी परिभाषा भी बदल गई, नैतिकता के संदर्भ में भी हमारे विचार नित्य ही बदलते जा रहे हैं। युगीन परिस्थितियों के अनुसार रूढ़िगत नैतिक मूल्य प्रायः नष्ट हो गए हैं। नैतिकता के प्रति हमारा दृष्टिकोण प्रायः मानवतावादी हो गया है। युगबोध और हिंदी नाटक ग्रंथ में डॉ० सरिता वशिष्ठ की विचार प्रवृत्ति भी इसकी पुष्टि करती है। उनका कथन है, "पहले नीति धर्म का पर्याय थी, आज नीति धर्म का पर्याय न रहकर कर्म पर, मानव-मात्र की सेवा पर आधारित है। आज आदर्शों का स्थान यथार्थ ने लिया है। जो आदर्श तर्क की कसौटी पर उतरते हैं, वे ही आज माने जाते हैं।"[१०] इस प्रकार नवीन मूल्य मानवतावाद पर आधारित है। मानव

मात्र का जिससे कल्याण हो वही पवित्र है, वही धार्मिक है, वही नैतिक है। आज नवीन मूल्य मनुष्य के मार्ग को प्रशस्त करते जा रहे हैं। हमारे परंपरित मूल्य आदर्श पर आश्रित थे लेकिन नवीन मूल्य यथार्थ पर आधारित हैं। ज्यों-ज्यों भौतिक स्थितियाँ बदलती हैं, उसके साथ मानव जीवन भी बदलता है। उसके सोच-विचार रहन-सहन आदि के सारे तरीके बदलने लगते हैं। हर पल समाज में परिवर्तन आता है और उसके साथ उस समाज के जीवन मूल्यों में भी बदलाव आता है यह यथार्थ पर वर्तमान जगत है जो धीरे-धीरे अपने परिवर्तनों में जटिलतर होता गया है और इसी आधार पर आदिम युग से आज तक मानवीय सभ्यता के परिवर्तनों के विभिन्न स्तरों का विवेचन किया गया है।

समकालीन हिंदी कहानी की यही सार्थकता है कि वह अपने समय के बाह्य तथा आंतरिक, सामाजिक तथा मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति है। आज प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पुरातन और नूतन के मध्य जो संघर्ष चल रहा है, उसे इन कहानीकारों ने विभिन्न रूपों में देखा है। यही स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का प्रतिपाद्य है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी अपने प्रतिपाद्य से, पुरानी कहानी से भिन्न तो है ही लेकिन उसकी शिल्पगत रचना में भी विभिन्नता है, अलगाव है। उस अलगाव के कारण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी शिल्प की दृष्टि से भी अपने आधुनिक रूपों को लेकर अपने वर्तमान के साथ चल रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में बहुत से नए वर्ग उभरे हैं, विभिन्न सामाजिक संस्कार और परंपराऍं टूटकर बिखर गई हैं। समाज के आर्थिक धरातल पर भी नए प्रश्न उठ खडे हुए हैं। प्रजातंत्रीय व्यवस्था ने भी शासक वर्ग में नवीन प्रश्नों और समस्याओं को प्रसारित होने का अवसर दिया है। अंतर्राष्ट्रीय सपर्क ने विविध प्रकार के व्यक्तियों को हमारे विचार, व्यवहार और भाव क्षेत्र में उतार दिया है। इन सभी स्थितियों को ठीक से समझने और कुशलता से व्यक्त करने का प्रयास हिंदी कहानी साहित्य ने किया है। इनसे संबंधित असंख्य पात्र कहानी की कथाभूमि पर प्रतिष्ठित हुए हैं। उनके व्यक्तित्व का निरूपण और विश्लेषण करते हुए इस युग के कहानीकार ने युग-धर्म और युग-रूप पर सतर्क दृष्टि रखी है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि पर गांधीवादी दर्शन से चलकर साम्यवादी विचारधारा तक आने की क्षमता आज के हिंदी कहानीकारों में विद्यमान है। अब तो वे व्यक्ति की गहराई में उतरकर उसके मानस का निरपेक्ष विश्लेषण करने लगा है। मनोविज्ञान की स्थापनाओं में और उपयोगी निष्कर्षों का कहानी के क्षेत्र में व्यापक रूप से उपयोग किया गया है। फ्राइन्ड के यौन-सिद्धांतों से बहुत आगे बढ़कर सार्त और कामू के जीवन दर्शन तक कहानी की दृष्टि पहुॅंच चुकी है। आर्थिक मान्यताएँ तो कभी की खंडित हो चुकी हैं। आर्थिक विषमता नए प्रश्नों को कहानी के संवेदनशील पात्र के समक्ष प्रस्तुत कर रही है। प्रेम और प्रणय की भूमिका में

उतरनेवाले विविधरूपी पात्रों में स्वतंत्र वासनापूर्ति की तीव्र आकांक्षा विद्यमान है। कुंठाओं और दमित वासनाओ को व्यक्तिप्रधान कहानियों में विश्लेषित होने का पूरा अवसर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार दृष्टि बदली, मानव और जीवन को देखने के ढंग बदले तो कहानी का शिल्प भी बदला, पहले की अपेक्षा यथार्थता, जटिलता, संश्लिष्टता का प्रतिबिंब लिए हुए कहानियॉ लिखी जाने लगीं। स्वातत्र्योत्तर हिंदी कहानी के शिल्प में विविधता आ गई। साथ-साथ उसकी अभिव्यक्ति के रूपों में भी विशेषता आ गई।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-अभिव्यक्ति की विशेषताऐं – स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों का मानसिक धरातल यद्यपि सामान्य रूप से एक-सा रहा है, किंतु अभिव्यक्ति तथा प्रयोग की दृष्टि से उनकी एक सर्वथा स्वतंत्र और निजी पहचान है। 'कमलेश्वर', 'राजेंद्र यादव', 'फणीश्वरनाथ रेणु', 'हरिशंकर परसाई', 'भीष्म साहनी', 'उषा प्रियंवदा', 'मन्नू भंडारी', 'रघुवरी सहाय', 'श्रीकांत वर्मा', 'शैलेश मटियानी', 'दूधनाथ सिंह' तथा कितने ही अधिक कहानीकार ऐसे हैं, जिन्होंने अलग-अलग ढंग से जिंदगी की क्राइसिस को जिया है और अपने-अपने परिवेश में एक-दूसरे से बहुत अलग ढंग से अपनी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त भी किया है। जिनके विभिन्न आयाम हैं। इन आयामों से कहानी की आंतरिक अन्विति बनती है, जिसमे शिल्प, भाषा यथार्थ और सांकेतिकता सभी का सामंजस्य होता है।

१. **सांकेतिकता** – कहानी की आतरिक उपलब्धियों में साकेतिकता कहानी की सबसे बडी उपलब्धि है। इस अर्थ में नई कहानी पुरानी से अलग हो जाती है। यह नई-पुरानी की विभाजन रेखा है। नई में सांकेतिकता का विस्तार पहले से भिन्न स्तरों पर हुआ है। साकेतिकता का प्रयोग स्वतंत्रता से बहुत पूर्व प्रेमचद एवं प्रसाद ने किया था। पुरानी कहानी और आधुनिक कहानी की सांकेतिकता का भी स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। पुरानी कहानी मे इसका उपयोग कथा के प्रसाधन में हुआ करता था किंतु अब इसके द्वारा संप्लिष्ट जीवन परिवेश और ध्वस्त संकुल जीवन को दर्शाया जाता है। इस प्रकार यह अब साहित्य की स्वाभाविक एवं अनिवार्य स्वीकृति है। पहले की तरह आज की कहानी किसी आधारभूत विचार का केवल अत में संकेत नहीं करती, बल्कि स्थान-स्थान पर हमें इसके संकेत मिलते हैं।

कभी-कभी व्यक्ति, मन और परिवेश में जो विरोध है, वह दिखाना आवश्यक हो जाता है तब कहानीकार को सांकेतिकता का आधार लेना अनिवार्य हो जाता है। 'स्वातंत्र्योत्तर' हिंदी कहानी में पात्र और चरित्र-चित्रण', ग्रंथ में डॉ० रामप्रसाद का कथन इस संदर्भ में एक अलग विचार प्रस्तुत करता है, उनका कथन है, "सांकेतिकता वह दृष्टि है जो किसी विचार या भाव को इतिवृत्तात्मकता अथवा स्थूलता से मुक्त करके लाक्षणिकता अथवा सूक्ष्मता से व्यंजित करती है।"[११] आज का कहानीकार इतिवृत्तात्मक चित्रण प्रस्तुत नहीं करता और न ही बहुत घटनाओं

का प्रयोग करता है। ऐसी स्थिति में कहानीकार के लिए सांकेतिकता का उपयोग महत्त्वपूर्ण होता है। लेकिन यह संकेत दुरूह और जटिल न हो तो पाठकों की पकड में ही न आ पाए। कहानीकारों को हमेशा यह स्मरण रखना चाहिए कि सदैव ग्राह्य एव सरल संकेतो का ही प्रयोग हो, जिससे कि अर्थवत्ता कायम रह सके। विस्तृत भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए कहानीकारों द्वारा कई प्रकार के संकेत उपयोग में लाए जाते हैं। उदा० फणीश्वरनाथ रेणु की 'तीसरी कसम', रवींद्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', राजेंद्र यादव की 'प्रतीक्षा' आदि कहानियों में सांकेतिकता की अनुभूति की जा सकती है।

२. **प्रतीक योजना एवं बिंब विधान की सफलता** – प्रतीकों का प्रयोग साहित्य मे प्राचीन काल से ही चला आया है। हिंदी साहित्य में आदिकाल से अब तक इसका प्रयोग होता आ रहा है। हिंदी कहानी-साहित्य में अब तो प्रतीक-व्यंजना अपने स्वतत्र रूप में प्रचलित हो गई है। कहानी में अब संकेतों के साथ-साथ प्रतीक योजना भी अपने चरम विकास को पहुँची हुई दृष्टिगोचर होती है।

पुरानी कहानी तथा आज की कहानी में प्रयुक्त होने वाले प्रतीकों की स्पष्ट विभाजन-रेखा खींची जा सकती है। पुराना कहानीकार किसी स्थल विशेष पर हो, इसका आश्रय लेता था और उसका प्रतीक इतना सरल एवं स्पष्ट होता था कि वह स्वतः बोधगम्य होता था। किंतु अब सभ्यता और विज्ञान की उन्नति से हमारा जीवन जटिल से जटिलतर होता जा रहा है। नए कहानीकारों ने नवीन प्रतीको का उपयोग कर इस स्थिति को नई व्याख्या दी है। अपनी व्यक्तिगत संवेदनाओं को सामाजिक संवेदना में ढालने के लिए वह विशिष्ट अर्थों एवं प्रतीकों की खोज करता है। राजेंद्र यादव की कहानी 'तलवार पंचहजारी' प्राचीन कूर मान्यताओं का प्रतीक है, तो परसाई की 'त्रिशकु' में त्रिशंकु मध्यमवर्गीय जीवन का एक प्रतीक बनकर चित्रित हुआ है। रघुवीर सहाय की 'सेब', दूधनाथ सिंह की 'रीछ', अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक' तथा 'छिपकली' जैसी ऐसी ही कई प्रतीकात्मक कहानियाँ हैं, जिनकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न है।

आज का कहानीकार युग की मनोवैज्ञानिक स्थितियों की जटिलता को व्यक्त करने के लिए बिंबों के अर्थपूर्ण उपयोग पर अधिक बल देता है। बिंब वस्तुतः आधुनिक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम हो गया है। इसके जरिए वह युग की घटनाओं, स्थितियों, भावनाओं, संवेदनाओं और विचारों के जटिल चित्र उपस्थित करता है। बिंबों का अर्थपूर्ण प्रयोग करने वाले आधुनिक कहानीकारों में निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शेखर जोशी, मार्कंडेय, रामकुमार वर्मा, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती, दूधनाथ सिंह तथा ऐसे ही दूसरे कहानीकार भी हैं। शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार' में नदी की सूखी धार घटवार के अकेलेपन का बिंब है तथा पनचक्की की आवाज उसके सूने हृदय की निरर्थक धड़कन का नाट्यमय चित्र है। निर्मल वर्मा की कहानियों में बिंब

विधान बड़ा ही सजीव और सरस है। इस दृष्टि से उनकी 'परिंदे' कहानी विशेष उल्लेखनीय है। बिंब-विधान कहानी को अधिक सजीव और सरस बना देता है। नई कहानी में बिंबों और प्रतीकों के प्रयोग को इसलिए आवश्यक समझते हैं कि इनमे अनकहे को समझने की क्षमता है। लेकिन बिंब विधान भी कभी-कभी कहानी को समझने में बाधक बन जाता है।

नई कहानी : 'प्रकृति और पाठ' ग्रंथ में डॉ० सुरेंद्र के वक्तव्य से यह बात और स्पष्ट हो जाती है। उनका कथन है "बिंब प्रयोग नई कहानी में प्रेषण क्षमता को नई शक्ति देते हैं लेकिन इनके अपने खतरे भी हैं क्योकि कहानी के बिंदु वही नहीं होंगे जो कविता के होंगे। कविता के बिंब कहानी के गद्य की ठेठ सामर्थ्य के प्रति पाठक का विश्वास गिराते हैं, इसमें कहानी में यथार्थ की पकड जहाँ कमजोर पड़ती है वहॉ लेखकीय बौद्धिक निस्संगत भी टूटती है।"[१२] इसके गलत प्रयोग से कहानी जीवन से दूर भाग जाने का डर रहता है, और पाठक का कहानी साहित्य के प्रति विश्वास कम होने लगता है तथा कहानी की यथार्थ की पकड कमजोर हो जाती है।

३. **भाषाभिव्यक्ति की विशिष्टता** – स्वातंत्र्योत्तर कहानी ने अपने लिए भाषा में भी पर्याप्त परिवर्तन किया है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार ने व्यतीत कथा की भाषा को समकालीन युगबोध की अभिव्यक्ति में सक्षम पाया। उसी से भाषा का नया रूप गढा। सतही तौर पर उसकी भाषा सामान्य लगती है किंतु भीतर से वह अत्यंत गभीर होती है। इनकी भाषा को व्यावहारिक स्तर पर विश्लेषित करके परिवेशगत सक्रियता का प्रमाण सहज ही पाया जा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार ने जहॉ द्रुत गति से बदलती परिस्थितियों को देखा है, वहाँ दूसरी ओर उसने कहानी-कहानी भाषा के लिए युगीन संत्रास दरार, तनाव, व्यथा, विसंगति, बदलते रिश्तों, समस्याओं आदि पर प्रकाश डाला है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने अपनी भाषा में समयानुसार परिवर्तन एवं परिमार्जन भी किए हैं। उन्होंने नवीन प्रतीकों, संकेतों, बिंब-योजना, अभिव्यंजना शक्ति आदि का प्रयोग किया है, जिससे कहानी की संवेदनशीलता तथा उसकी सूक्ष्म अर्थवत्ता आदि में वृद्धि ही हुई है। 'कहानी : नई कहानी' ग्रंथ में डॉ० नामवर सिंह नई कहानी की भाषा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, "तमाम अलंकरण-आवरण का कूड़ा-करकट छोडकर भाषा इतनी स्वच्छ और निर्मल हो उठती है कि विषय-वस्तु और पाठक के बीच में भाषा का व्यवधान ही नहीं रह जाता। कहानी का तथ्य पूरी ताकत के साथ मन पर सीधा असर डालता है।"[१३] आज का कहानीकार विशिष्ट भाषा की खोज न करके सहज भाषा की खोज करता है। यह सहज भाषा उसकी अपनी भाषा है, समय की भाषा है और स्थिति की रचनात्मक पूर्णता के लिए सक्षम सिद्ध हुई है।

आज की कहानी जीवन के मर्म से संबद्ध है। इसलिए उसकी भाषा भी जीवन प्रवाह से संपृक्त होकर चल रही है। नए कहानीकारों ने जीवन के मर्म को भी अलग-अलग स्तर पर स्वीकारा है, और उसकी अभिव्यक्ति भी अलग-अलग स्तर पर ही हुई है। 'कहानी : नई कहानी' ग्रंथ में डॉ० नामवर सिंह इस सदर्भ में लिखते हैं, "नया कहानीकार जीवन की छोटी-सी-छोटी घटना में अर्थ के स्वर-उद्घाटित करता हुआ उसकी व्यक्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँचा देता है।"[१४] इस रूप में एक अर्थगत प्रयोग 'नई कहानी' संकेत के सहारे हुआ है। नई कहानी में प्रकृति चित्रण के माध्यम से अनुभूति की तीव्रता को बढ़ाया गया है। इन कहानियों में प्रकृति का च्रित्रण पात्रों की मानसिक स्थिति के अनुरूप हुआ है। नरेश मेहता की, 'निशा जी', शिवप्रसाद सिंह की 'सुबह के बादल तथा नन्हों' में भी प्रकृति के माध्यम से मानसिक घुटन की ओर संकेत किए गए हैं। भीष्म साहनी की, 'चीफ दावत', उषा प्रियवदा की 'वापसी' ऐसी अनेक कहानियाँ हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानी में वस्तु-चित्रण में नूतन अर्थेटिक के प्रयोग हुए हैं। 'चीफ की दावत' में फालतू सामान छिपाने के संदर्भ में माँ का जो उल्लेख आया है, उससे यह सकेत मिलता है कि सामान की तरह ही अब व्यक्ति की उपयोगिता-अनुपयोगिता पर सोचा जाता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी में प्रतीको, बिंबों के माध्यम के साथ-साथ स्थानीय लोकगीतों की भी अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। स्थानीय रंग कहानी को यथार्थ धरातल के समीप लाने के लिए सहायक सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में व्यतीत कहानी से काफी कुछ परिवर्तन हो गया है। उसने विभिन्न दिशाओं का अन्वेषण किया है। इसमें वस्तु में तो बदलाव आया है, शिल्प की दृष्टि से भी विभिन्न प्रयोग किए गए हैं। कहानी में यह परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप आया है। सामाजिक परिवर्तन साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन लानेवाला एक महत्त्वपूर्ण तत्व है।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी के आज तक के पूरे विकास में यही देखने को मिलता है कि अनुभूतियों और संवेदनाओं का क्षेत्र बहुत गहन और व्यापक हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी मे नए दृष्टिकोण एवं नई अनुभूतियों के संप्रेषण के लिए नए-शिल्प-रूपों को स्वीकृति दी गई है। इससे कहानी युगीन संचेतना से जुडी है, जिसमें नई भंगिमाएँ आई हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की कई महान उपलब्धियाँ भी हैं। साठ से पूर्व और साठ के बाद कहानी संबंधी अलग-अलग धारणाएँ रही हैं। उनके जीवन संदर्भ भी अलग-अलग हैं। दोनों में रोमानी जीवन बोध से मुक्ति का प्रयत्न है। साठ के पूर्व की कहानी नए-पुराने के संघर्षों से गुजरती गई तो साठ के बाद संघर्ष का स्वरूप वादों में बदलता गया।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी इस प्रकार दोनों के बदलाव को स्वीकारती गई। स्वातंत्र्योत्तर कहानी अपनी सूक्ष्म दृष्टि से समय की स्थिति को पहचानती गई, और पहचान को रचनात्मक विस्तार के लिए कलात्मक साँचे में डालने के लिए

प्रयत्नशील भी रही है। सन् १९६५ के पश्चात् यह प्रतिबद्ध दृष्टि बहुत स्पष्टता के साथ रेखांकित की जा सकती है। इस प्रकार हिंदी कहानी की प्रौढता और परिपक्वता को रेखांकित करते हुए उसमें निहित अनेक संभावनाओं के प्रति आस्थावान हुआ जा सकता है।

प्रत्येक युग में जीवन यथार्थ के प्रति लेखकों के दृष्टिकोण और उसकी स्वीकृति-अस्वीकृति में भिन्नता होती है, जो उन्हें युगीन कथा-चेतना से संपृक्त होते हुए भी एक दूसरे से अलग एवं विशिष्ट बनाती है। लेखक का जीवन और परिवेश बोध, उसकी दृष्टि आदि कहानी को युगबोध से जोड़ते हैं। जीवन के माध्यम से कहानी के व्यक्तिगत अनुभव एवं दृष्टिकोण होते हैं और इन सबकी पृष्ठभूमि में रहती है युगीन चेतना और लेखकीय मानसिकता। कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर हर कहानीकार एक-दूसरे से अलग है, उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है, जिसके आधार पर वह जीवन और जगत का प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुभव करता है, कहानी की विषयवस्तु चुनता है और इसे प्रभावशाली शिल्प में डालकर पाठकों तक पहुँचाने के साथ ही कथ्य को अपेक्षित अर्थवत्ता देता है। इस प्रकार दूरगामी संदर्भों की ओर ले जानेवाली आज की कहानी के यथार्थ-बोध में पर्याप्त वैविध्य का आभास मिलता है।

इस प्रकार स्वतंत्रता के उपरांत हिंदी कहानी ने अपने विकास की एक महत्त्वपूर्ण यात्रा अनेक उपलब्धियों के साथ तय की है। स्वतंत्रता के पूर्व की कहानियों की तुलना में बाद की कहानियों के अंतर्गत निश्चित ही यथार्थपरकता का भान अपने सही रूप में उभरा है और प्रेमचंद द्वारा अपने उत्तर काल में प्रभावित हुई दृष्टि मूल और मुख्य दृष्टि के रूप में विकसित हुई है। 'हिंदी कहानी की रचना प्रक्रिया' ग्रंथ में परमानंद श्रीवास्तव जी का दिया गया वक्तव्य इसी का प्रमाण देता है। प्रेमचंदोत्तर कहानी लेखकों के जीवन दर्शन एवं साहित्यिक मान्यताओं को गांधीजी की मानवीय नैतिकता, सत्यनिष्ठा, अहिंसा, अध्यात्म, बुद्ध की करुणा और व्यापक अर्थ में मानवता की आदर्श परकता को समान रूप से प्रभावित किया।"[१५] स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी इस परिवर्तित मानसिकता का ही एक नया जीवन बोध है। जो युग सापेक्षता को एक अनिवार्य शर्त मानकर आगे बढती रही है।

१. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में विष्णु प्रभाकर का स्थान – पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों में श्री विष्णु प्रभाकर जी का स्थान सर्वश्री अग्रणी रहा है। (१९३४-रचना आरंभ) स्वातंत्र्यपूर्व काल से चलती आ रही साहित्यिक प्रेरणा के साथ स्वातंत्र्योत्तर काल में उसमें परिवर्तित नये मूल्यों की स्थापना कर कई युगीन परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति और समाज का संबंध फिर से स्थापित करने में उनका योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। वे प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के उन साहित्य उन्नायकों में से है, जो लगभग पचास वर्षों में निरंतर सृजनशील रहे हैं। वर्षों के

साहित्यिक जीवन में उन्होंने हिंदी के निधि भंडार को अनुपम योगदान से समृद्ध किया है। विष्णु जी ने जब कलम पकडी थी तब प्रेमचंद और शरतचंद जैसे कथा शिल्पी ही उनके पथ प्रदर्शक थे। ज्यों-ज्यों पथ प्रशस्त होता गया, साहित्य की अन्य विधाएँ भी उनके रचना संसार में समाविष्ट होती गई और आज कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध, यात्रावृत्त, बाल-साहित्य आदि विधाओं में उनका प्रदेय लक्षित किया जा सकता है।

विष्णु प्रभाकर जी मूलतः अपने आपको कहानीकार ही अधिक मानते हैं। अध्ययन की सीमा की दृष्टि से यहाँ उनके कहानीकार के रूप का अध्ययन किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में नये कहानीकारों के साथ-साथ स्वतंत्रतापूर्व प्रतिष्ठित पुरानी-पीढी के कहानीकारों की कहानियों में भी युग-स्वर ध्वनित हुआ है, जैसे जैनेन्द्र की 'सबकी खबर', 'अविज्ञान', विनोद शंकर व्यास की 'दीपक', यशपाल की 'भूख के तीन दिन', 'कल्चर और इसान', विष्णु प्रभाकर की 'पिचका हुआ केला' और 'क्रांति', उग्र जी की 'लाईन पर', मन्मथनाथ गुप्त की 'लाईन पर' आदि इसका प्रतिनिधित्व करती हैं। व्यक्ति और समाज से संबंधित उनके कठिन प्रश्नो का उत्तर मानव व्यक्तित्व के विश्लेषण द्वारा ढूँढने का प्रयास ही इस युग-स्वर का ध्वनित सत्य है। इस सत्य की प्राप्ति ही स्वातंत्र्योत्तर कहानी का तलाश बिंदु है। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर कहानी में 'विष्णु प्रभाकर की कहानी' अपनी भी एक नई दृष्टि दे जाती है। एक सजग रचनाकार और जिम्मेदार व्यक्ति के नाते वे पलायन नहीं करते और अपने समस्त सामाजिक और रचनाधर्मी दायित्वों को पेश करते रहना ही जीवन की सार्थकता मानते हैं। 'विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य' ग्रंथ में यह कथन इसकी पुष्टि देता है, "यही मेरी राय में एक सामर्थ्यवान रचनाकार की पहचान है जो उन्हें और उनकी रचना दोनों को ही जीवन से संपृक्त रखती है।"[१६] इस दृष्टि से देखा जाए तो व्यक्ति अथवा साहित्यकार विष्णु प्रभाकर में कोई अंतर्विरोध नहीं है। उनकी समस्त साहित्य चेतना ही इसका प्रमाण दे देती है।

विष्णु प्रभाकर जी के समस्त साहित्य में व्यक्ति और समाज इस रूप में आए हैं कि दोनों की अलग पहचान करना कठिन है। उनके सृजन का मूल स्वर ही मनुष्य की पहचान और हर प्रकार के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का है। उनकी कहानियाँ वस्तुतः कहानी के स्वरूप में उस संधियुग की चेतना को व्यक्त करती हैं, जहाँ प्रेमचंद जी की घटनात्मकता, जैनेंद्र जी का मनोविज्ञान और नई कहानी की व्यक्ति चेतना का संघर्ष लेखक की रचना-प्रक्रिया को प्रभावित करता है। उनकी कहानियों में आधुनिक समस्याओं को समेटने की यथार्थ और संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। स्त्री-पुरुषों के नए नैतिक संबंधों की समस्या, व्यक्ति स्वतंत्रता की समस्या, राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक आदि बदलते परिप्रेक्ष्य में भ्रमित मानव की समस्यायें आदि आधुनिक जीवन के विविध आयामों को भी विष्णु

जी की कहानी चित्रित करती गई है। इस दृष्टि से उनकी साहित्य-चेतना आधुनिकता के विभिन्न कोणों को रूपायित करती गई है।

उन्होंने मानव जीवन को लिया है। वह मध्यवर्ग का यथार्थ जीवन है, जिसकी समस्याएँ, आचार-व्यवहार, भाव-विचार एवं विविध रूप अत्यत सशक्त ढंग से उनकी कहानियों में उभरे हैं। उनकी समस्त कहानियों में आस्था एवं संकल्प की अपूर्व जिजीविषा की कर्म एवं दायित्व की सजगता तथा मानव-मूल्य एवं मर्यादा की अभिनव जीवन-दृष्टि मिलती है। उन्होंने जीवन-संघर्ष का चित्रण किया है, उनकी तमाम अच्छाइयों, बुराइयों के साथ, पर उनका ध्यान सदैव मूल्यों के उत्कर्ष पर ही रहा है। इस प्रकार उनकी कहानियाँ एक विशिष्ट उपलब्धि बन गई हैं।

आज पुरानी पीढ़ी के लेखक भी जीवन और जगत की समस्याओं को सही दृष्टिकोण से देखने का प्रयास कर रहे हैं। यह सत्य है कि वे आपसी परंपरागत मान्यताओं और संस्कारों से सर्वथा मुक्त नहीं हो सके हैं, परंतु अपने को युगानुरूप प्रस्तुत कर देने में वे प्रयत्नशील अवश्य हैं। आज पुरानी पीढी का कहानीकार भी उतनी सक्षमता से विविध ज्वलंत प्रश्नों के समाधान को प्राप्त करने के लिए सक्षम पात्रों की सृष्टि करता दिखाई देता है। उतनी ही ताकत से पात्रों के चरित्रों में विशेष संवेदनशीलता भर देता है और उस संवेदना से मानवता की स्थापना भी करता है। इस दृष्टि से पुरानी पीढ़ी स्वातंत्र्योत्तर काल में एक परिवर्तित जीवन दृष्टि की ही द्योतक कही जा सकती है। विष्णु प्रभाकर भी इसी पीढी के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर कहे जा सकते हैं। ब्रजराज किशोर का कथन दृष्टव्य है, "साहित्यकार समसामयिक जीवन प्रवाह में अपनी रचना की गागर डुबोकर भरता है। वह काल और परिस्थिति विशेष तथा समसामयिक परिवेश संदर्भों से संपृक्त रहकर जीवन मूल्यों की ओर अग्रसर होता है।"[36] साहित्यकार द्वारा अपने चारों ओर बिखरी परिस्थितियों में प्रेरणाओं को ढूँढ निकालकर गहनता से भोगने और परखने की अद्भुत क्षमता होती है, जो किसी रचनाकार की सही अर्थों में आधुनिक बनाती है। साहित्यकार के निर्माण में दूसरा एक विधायक तत्व होता है– 'बुनियादी तत्व'। जो उसके लेखन की अभिव्यक्ति की मूल प्रेरणा होती है। अत्याचार, शोषण, अन्याय, अव्यवस्था के विरुद्ध विद्रोही बनकर साहित्यकार जब खड़ा होता है, तब 'बुनियादी तत्व' उनमें सर्जना के रूप में अभरता है। यह प्रेरणा परिवेश का पर्याय भी है। हर लेखक की रचना समसामयिक परिवेश को अपने विभिन्न स्तरों पर परिलक्षित करती है। इसलिए साहित्य रचना में दोनों का समान दायित्व रहता है। अतः साहित्य रचना में साहित्यकार का व्यक्तित्व और उसे प्रभावित करनेवाला परिवेश दोनों सम्मिलित रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विष्णु प्रभाकर जी का समस्त साहित्य इस तथ्य को रेखांकित करता है।

समाज के दलित, पीड़ित और उपेक्षित वर्ग से एकात्म भाव ही उनके साहित्य को सार्थकता, आयाम और दृष्टि प्रदान करता है। किसी भी साहित्यकार का जीवन, चिंतन और व्यवहार लेखन का लक्ष्य होता है। इससे मानवता की खोज और पुनर्स्थापन ही हो सकती है। यही गहन मानवीय संवेदना, संसक्ति और समाज सापेक्षता ही बृहत्तर जीवन-मूल्यों और गहनतर जीवन-सत्यों की खोज करके उनके परस्पर संबंध सूत्रों का उद्घाटन कर सकती है। कहना होगा कि विष्णु प्रभाकर इसी सामाजिक संचेतना के सशक्त साहित्यकार हैं। इसी से ही ये स्वस्थ जीवन निर्माण की आकांक्षा का बोध हमेशा कराते आए हैं। इतना ही नहीं, जीवन की कुरूपता में भी वे सौंदर्य और उपयोगिता को खोजते आए हैं। उनमें आदर्श के प्रति आकर्षण है, किंतु यह आदर्श, यथार्थ की भूमि पर स्थापित है। इस प्रकार जीवन और साहित्य दोनों मे विष्णु प्रभाकर समन्वय और संतुलन के पक्षधर दिखाई पडते हैं।

साहित्य सर्वकालीन और सर्वयुगीन होता है। जिसमें लेखक सहजता से निहित होता है। विष्णु प्रभाकर जी सहजता के अतिरिक्त गति, अनुभूति, आत्मविश्वास, आस्था और ईमानदारी को भी आवश्यक मानते हैं। यही सच्चे अर्थ में सफल लेखन की भी पहचान है। साहित्य में श्लील-अश्लील के प्रश्न पर भी उन्होंने विचार किया है। उनका अभिमत है, जहाँ सौदर्यानुभूति है, वहाँ अश्लीलता नहीं आ सकती। सौंदर्य और प्रेम कभी अश्लील नहीं हो सकते। अश्लील होता है उनका विकृत प्रदर्शन। अश्लीलता का संबंध वे देश-विदेश की संस्कृति से भी मानते हैं। उनके साहित्य में यह दृष्टि भी एक नया जीवनदर्शन का संकेत करती है।

संक्षेप में, यही विष्णु जी की साहित्य सबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताएँ हैं। निश्चित ही हिंदी साहित्य परंपरा में ये अपना स्थान रखती हैं। विष्णु जी की मान्यताएँ और साहित्य सिद्धांतों के विवेचन-विश्लेषण में एक बात साफ उभरकर सामने आती है, वह यह है कि उनकी स्वानुभूति और साहित्यिक चेतना की अपनी मौलिकता है। उनका सारा, साहित्य विष्णुमय है, उनमें उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के सर्वत्र दर्शन किए जा सकते हैं। वस्तुतः उनकी मान्यताओं के आलोक में उनके समूचे साहित्यिक व्यक्तित्व के विविध आयामों को देखना-परखना भी एक प्रीतिकर अनुभव की अनुभूति जगाता है।

विष्णु प्रभाकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व – विष्णु प्रभाकर ऐसे मसीजीवी साहित्यकार हैं, जिन्होंने पग-पग पर संघर्ष झेला और अपने मानव संवेदना को जीवंत बनाए रखा, उसे लेखनी के द्वारा कागज पर उतारा। आर्य समाज की विचारधारा, देश की स्वाधीनता की ललक, समाजोत्थान, विश्वमानवता उनकी विचारधारा के विभिन्न पड़ाव हैं।

२१ जून १६१२ को मुजफ्फरनगर के मीरनपुर ग्राम में एक सामान्य परिवार में जन्में विष्णु जी दाल-रोटी की जुगाड़ में लगी जमात के सदस्य मात्र नहीं रहे। अपनी अलग पहचान कराके साहित्य सर्जन में आ जुटे। उस समय उस परिवार में पढना समय गुजारने का शगल माना जाता था। फिर भी उन्होंने पजाब से बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करके हिन्दी लेखन क्षेत्र में अपना कदम रखा। विष्णु प्रभाकर जी आकाशवाणी दिल्ली केंद्र के भूतपूर्व ड्रामा–प्रोड्यूसर भी रह चुके हैं। साथ-साथ उन्होंने 'मानव-धर्म' (मातृभूमि अंक), 'ज्ञानोदय' (शांति अंक) के संपादन के रूप में भी काम किया है। उन्होंने १६३१ में अपनी पहली कहानी लिखी, जो १६३४ में चंद्रगुप्त विद्यालंकार के प्रोत्साहन से 'अलंकार' में छपी।[८] मीरनपुर गॉव और हिसार कस्बे का संस्कार कहीं-न-कहीं उनके भीतर है। उनकी सरलता, सात्विकता और अकृत्रिमता के पीछे यह संस्कार जीवन है और यही उन्हें संवेदनशील भारतीय लेखक बनाने में समर्थ है।

म० गाँधी, शरत्चंद चटर्जी तथा आर्य समाज की विचारधारा का प्रभाव आज भी उनकी साहित्य सर्जना पर दिखाई देती है। अपने पैतृक संस्कार से उन्होंने वैष्णव नम्रता पाई, इसका भी प्रभाव उनके साहित्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आर्य समाज ने उन्हें प्रश्नानुकूलता दी, जिसके कारण वह चीजों को ज्यों-का-त्यों नहीं स्वीकार सके। इन दोनो के साथ–साथ अपने साहित्य पर शरत्चंद चटर्जी के प्रभाव की भी चर्चा वे करते हैं। अपने साहित्य के निर्माण में इन तीनों की विधायक भूमिका का निर्वाह करते हुए वे लिखते हैं, "जहाँ आर्य समाज ने मुझे प्रचलित मूल्यों के आगे प्रश्नचिन्ह लगाना सिखाया, गॉधीजी ने अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा दी, वही शरत् ने मुझे तथाकथित पतितों में देवत्व खोजने की शक्ति भी दी। गाँधीजी की अहिंसा और शरत् की करुणा प्रेम के ही पर्यायवाची हैं।"[९]

इस प्रकार ज्यों-ज्यों विष्णु जी का पथ प्रशस्त होता गया साहित्य की अन्य विधाएँ भी उनके रचना-संसार में समाविष्ट होती गई। आज कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध, यात्रावृत्त, बाल साहित्य आदि विधाओं में वे सिद्धहस्त हैं। मानव मन की अतल गहराइयों में प्रवेश कर उसके द्वंद्व-संघर्ष, घात-प्रतिघात, आनंद-उत्साह तथा उत्थान-पतन को सहज रूप में वर्णित करना उनकी रचना-प्रक्रिया है। विष्णु प्रभाकर का साहित्य मानवीय प्रकृति से सीधा जुड़ा हुआ साहित्य है। इसी में उनके व्यक्तित्व को बड़ी आसानी से खोजा जा सकता है।

रचनात्मकता के प्रेरणास्रोत – विष्णु प्रभाकर जी के संपूर्ण साहित्य पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो एक बात निश्चित दिखाई देती है कि जीवन के आरंभिक दौर में उनके मानसिक संस्कारों पर आर्य समाज का प्रभाव था, उसने उन्हें मानवतावादी तथा आदर्शवादी दृष्टि प्रदान की। गांधीजी की विचारधारा का भी काफी गहरा

प्रभाव उन पर रहा है। साथ-साथ उन्होंने देश-विभाजन की विभीषिका को अपनी ऑखों से देखा, हिंदू-मुस्लिम दंगों की आग को देखा तथा आदमी की बर्बरता का सीधा साक्षात्कार किया। उनका समूचा साहित्य भारतीयता का ही साहित्य है, जो सभी प्रकार के अतिवादों से स्वयं को मुक्त करके मानव और उसके समाज के दुःख-दर्द, सुख-स्वप्नों के साथ मानवता की केंद्रीय धारा को अपने केंद्र में स्थापित करके चलता है।

विष्णु प्रभाकर जी अपने आप को कहानीकार ही अधिक मानते हैं। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है, "पूरी विनम्रता के साथ मेरी मान्यता रही है कि मैं जैसा भी हूँ अच्छा या बुरा, छोटा-बडा सबसे अधिक कहानीकार हैं।"[२०] फिर भी कहानी के साथ साहित्य को अन्य विधाओं में भी उनका कृतित्व उतना ही प्रभावपूर्ण दिखाई देता है। विष्णु प्रभाकर जी पुरानी पीढ़ी के कहानीकार हैं फिर भी स्वातंत्र्योत्तर काल में परिवर्तित नए मूल्यों की स्थापना करके कई युगीन परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति और समाज का संबंध फिर से स्थापित करने में उनका योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। इसलिए साहित्य की सभी विधाओं में उनका संक्षिप्त रूप से योगदान देखना उचित ही होगा।

कहानीकार के रूप में विष्णु प्रभाकर – पुरानी पीढी के अग्रणी लेखक श्री विष्णु प्रभाकर आज भी सक्रिय लेखक हैं। १६३४ से आज तक वे ३०० के आस-पास कहानियॉ लिख चुके हैं तथा उनके २४ कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

संग्रह का नाम	सन्
आदि और अत	१६४५
रहमान का बेटा	१६४७
जिंदगी के थपेडे	१६५२
धरती अब भी घूम रही है	१६५६
सफर के साथी	१६६०
खंडित पूजा	१६६०
सॉचे और कला	१६६२
मेरी तैंतीस कहानियॉ	१६६७
संघर्ष के बाद	१६६८
मेरी प्रिय कहानियाँ	१६७०
पुल टूटने से पहले	१६७७
मेरा वतन	१६८१
खिलौने	१६८१
मेरी लोकप्रिय कहानियाँ	१६८१
इक्यावन कहानियाँ	१६८३
मेरी कहानियॉ	१६८४

मेरी कथायात्रा	१९८५
एक और कुंती	१९८५
जिंदगी एक रिहर्सल	१९८६
प्रेम कहानी	१९८६
मेरी प्रिय कहानियाँ	१९८६
एक आसमान के नीचे	१९८६, १९९६
आखिर क्यों ?	१९९८
दस प्रतिनिधि कहानियॉ	१९९९

१९३४ से अब तक की उनके कहानीकार की लंबी यात्रा है, जिसमें उन्हें प्रेमचंद, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, जैनेंद्रकुमार, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, शिवदान सिंह चौहान आदि लेखकों का संपर्क मिला है तथा उन्हें हिंदी कहानी की विकास यात्रा के विभिन्न परिवर्तनों को देखने, समझने का अवसर मिला है। कहानी के क्षेत्र में विष्णु प्रभाकर जी के आगमन का समय लगभग वही है, जब प्रेमचंद अपने जीवन और रचनात्मकता के अंतिम दौर पर थे। जैनेंद्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय आदि कहानी के संसार में स्थापित हो चुके थे और तब उनकी पहली कहानी 'स्नेह' (मूल नाम 'स्नेह की ज्वाला') लाहौर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'अलंकार' के दिसंबर १९३४ के अंक में छपी। इसके पूर्व 'दिवाली के दिन' कहानी छद्म नाम से १९३१ में लाहौर के ही 'हिन्दी मिलाप' में छपी थी, लेकिन अब यह अप्राप्य है।

आधुनिक हिंदी कहानी में परिवर्तन के दो महत्त्वपूर्ण बिंदु है। -प्रथम १९३०-१९३६ के बीच, दूसरा १९६२-१९६५ के बीच जब-जब विभिन्न कथा-आंदोलनों के कहानी ने नए तेवर ग्रहण कर अपने को पूर्ववर्ती 'नई कहानी' से अलग स्थापित किया। विष्णु प्रभाकर जी के कहानीकार का रूप इन दो परिवर्तित बिंदुओ से गुजरता है। अनेक कहानीकार ऐसे हैं जो किसी भी आंदोलन में कभी भी संबद्ध न रहे, फिर भी उनकी कहानियॉ लोकप्रिय हुईं और उनका कहानी लेख कभी भी समय बाह्य (out dated) और सदर्भ च्युत नहीं हुआ। इन्हीं महत्वपूर्ण कथाकारों मे श्री विष्णु प्रभाकर जी को रखा जा सकता है जिन्होंने १९३७ में 'आश्रिता' से लेकर नवें दशक तक कहानी रचना की है।

विष्णु प्रभाकर जी के कहानी संसार का सर्वप्रथम सत्य यह है कि वे मानव जीवन के विविध पक्षों, रंगों, तनावों, संघर्षों तथा परिवर्तनों की कहानियाँ हैं। इनमें अधिकांश रूप से १९३० से लेकर आज तक का भारत समाया हुआ है। जिसमें हिंसा-अहिंसा, युद्ध-अकाल, स्वतंत्रता-परतंत्रता, सांप्रदायिक दंगे एवं एकता, समन्वय और बिखराव, भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता, संकल्प-विकल्प, प्रेम-घृणा, अनाचार और अत्याचार, व्यक्ति और समाज, नारी की त्रासदी और उदात्तता, पीढ़ियों का टकराव-भटकन, परंपरा और आधुनिकता, जीवन-मूल्य और जीवन-संघर्ष आदि विभिन्न जीवन प्रसंगों में गहरे पैठकर कहानी के सूत्रों को पकड़ा है, उनकी

कहानियों का मूल स्वर इसी कारण मानव एवं मानवता के कल्याण का है, उनकी विषमताओं के चित्रण के साथ उन्हें ऊपर उठाने का है। 'विष्णु प्रभाकर : प्रतिनिधि रचनाएँ' ग्रंथ में कमल किशोर गोयनका के विचार उनकी कहानियों के संदर्भ में एक नई दृष्टि दे जाते हैं, "वे मानव जीवन का यथार्थ चित्रण उसके आंतरिक संघर्ष एवं मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो का विश्लेषण तथा संवेदनाओं का मूर्तिकरण मानव के शाश्वत मूल्यों तथा उसके परिष्कार के लिए ही करते हैं।"[२१] उन्होंने मानव के प्रति सहानुभूति को भी बराबर बनाए रखा जिसकी प्रशंसा श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, जैनेंद्र जी ने भी की है।

विष्णु जी की कहानियों में जीवन के प्रति एक गहरी अंतर्दृष्टि है। अपनी कहानियों के संबंध में उनका यह आत्मकथन पूर्ण सही है, "मैं यथार्थ को स्वीकार करता हूँ। समाज-सापेक्ष होकर उससे बचा नहीं जा सकता। आदर्शों का बोझ मुझ पर है लेकिन रूढ़ियों की स्थापना या उनमें विश्वास करना आदर्श का पर्याय नहीं है। आदर्श मेरे लिए इतना ही है कि मैं जो कुछ चाहता हूँ उसको रूप दे सकता हूँ।"[२२] कुंठाएँ, वासनाजन्य कुंठाएँ, जीवन और कार्यकलाप को समझने में सहायक सिद्ध होती है। उनकी 'सच मैं सुदर हूँ' कहानी तो यशपाल की 'तुमने क्यों कहा था ? मैं सुंदर हूँ' या उपेन्द्रनाथ अश्क जी की 'बेबसी' से भिन्न है। मात्र इनकी दृष्टि एक है। विष्णु जी की मान्यता है कि मानव मूल में बर्बर होकर भी अनिवार्य रूप से कभी बुरा नहीं होता तो उसकी बर्बरता निश्चित ही रूपांतरित हो सकती है। यही उनकी कहानियों का आदर्श भी है और यथार्थ भी। 'नदी, नारी और निर्माण', 'ये दोनों', 'खंडित पूजा', 'डायन', 'नचिकेता', 'बच्चा माँ का था', 'जीवन दीप', 'अधूरी कहानी' आदि उनकी कई ऐसी कहानियॉ हैं, जिनमें उनकी सर्वथा सही आदर्शकृत दृष्टि रही है फिर भी वह कहीं पाठक पर भारी नहीं पड़ती।

विष्णु जी की कहानियों का कथ्य अत्यंत वैविध्यपूर्ण है। कहीं उनकी कहानियॉ व्यवस्था की भ्रष्टता को बेनकाब करती हैं यथा 'धरती अब भी घूम रही है', 'ठेका, 'सलीब' आदि; कहीं वे सामान्य व्यक्ति की आर्थिक, तंग-दस्ती का प्रामाणिक चित्रण करती है, यथा 'पुल टूटने से पहले' आदि; कहीं मनोवैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाती है, यथा 'नाग-फांस', 'कितना झूठ' आदि; कहीं बदलते मूल्यों को चिंता की दृष्टि से देखती है, यथा 'भटकन और भटकन', 'एक मौत समंदर किनारे', 'ढोलक पर थाप' आदि; कहीं भारत-पाक विभाजन की समस्या अथवा हिंदू-मुस्लिम समस्या को गहरे पैठकर देखती हैं, यथा 'मेरा बेटा', 'अधूरी कहानी', 'मेरा वतन' आदि; कहीं आत्मिक संबंधों पर पड़ते आर्थिक दबाओं का सशक्त चित्रण करती हैं, यथा 'राग-अनुराग', 'अंधेरे आंगनवाला मकान', 'खिलौने और बेटे' आदि; कहीं टूटते दांपत्य के बीच पल रहे बच्चे की यंत्रणा साक्षात् होती है, यथा 'एक अनचीन्हा इरादा' आदि कहीं प्रेम संबंधों की स्थितियों को चित्रित करती हैं, यथा 'एक और दुराचारिणी', 'राजम्मा', आदि; कहीं मानवीय संबंधों की अनाम

स्थितियों का इतना मार्मिक जायजा लिया गया है कि पात्र बहुत भीतर तक मानवीय हृदय को संस्पर्श करते हैं, यथा 'रहमान का बेटा' आदि। इन समस्त कहानियों के विस्तृत फलक पर विष्णु प्रभाकर जी ने जिंदगी को एक लेखकीय दृष्टि से चीन्हने का प्रयास किया है। 'मेरी प्रिय कहानियाँ, संग्रह में अपनी कहानियों के बारे में स्वयं विष्णु जी लिखते हैं,– "मेरी अधिकतर कहानियाँ मनुष्य की हैं, व्यक्ति की नहीं। मनुष्य में ही मेरी अधिकतर रुचि रही है। उसके जीवन में जो झूठा–सच और पाखंड मैंने देखा है– सही है, वही मेरी कहानियों में उभर आया है।"[२३] विष्णु प्रभाकर जी की दृष्टि मूलतः मानवतावादी है और मानव की शक्ति में उनका अटूट विश्वास भी है। इसी आस्था के बल पर वे मानव को स्वतंत्र चिंतन की ओर प्रवृत्त करते हैं। यही दृष्टि उनकी कहानियों में एक नया अर्थबोध लेकर भी चित्रित हुई है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों की भाषा अत्यंत सरल और सहज है, जिसमें प्रेमचंद की तरह जीवनधर्मी गंध है। इसलिए उनकी कहानी भाषा के माध्यम से स्थितियों और मनःस्थितियों के नए संयोजन और टकराहट से नया अर्थ पा लेती है। आदर्श के प्रति जो तन्मयता और आत्मीयता उनकी कहानियों मे मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। संप्रेषणीयता और साधना की सात्विकता आपकी कहानियों में मुखर है। जैनेंद्र जी ने आपके बारे में लिखा है, "विष्णु प्रभाकर जी में आदर्श का वाद मुझे नहीं प्रतीत हुआ, बल्कि आदर्श के प्रति हार्दिक तन्मयता की लगन है और यह तत्व हिंदी में विशेष नहीं मिलता।"[२४] प्रेमचंद जी ने हिंदी में यथार्थवादी कहानी की परंपरा की नींव डाली। विष्णु जी केवल प्रेमचद की इसी परंपरा की परिपाटी से नहीं चलते। उन्होंने उसमें केवल संवर्धन में सक्रिय योग ही नहीं दिया तो अपने लिए एक अलग राह बनाने की कोशिश की। तत्कालीन कहानी के संदर्भ में उनकी इस कोशिश का ऐतिहासिक महत्त्व बनता है। उन्होंने किसी भी अवधारणा को स्वानुभूति के निकष पर कसे बिना स्वीकार नहीं किया। इसलिए उनकी धारणाओं और लेखन में कोई अंतर नहीं आता, कोई दूरी नहीं आती। यहीं उनके साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि बन जाती है।

विष्णु प्रभाकर जी आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की प्रवाहमान धारा के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। वर्तमान युग की बहुआयामी विसंगतियों एवं विद्रूपताओं तथा विभिन्न स्तरों पर उनकी कलात्मक परिणतियों का चित्रण ही उनके कथा साहित्य का मूल विषय है। उनकी जीवन दृष्टि आधुनिक, वैज्ञानिक, अतिवादिता तथा प्राचीन रूढ़िवादिता के प्रति अंधश्रद्धा के बीच सेतु का निर्माण करती है। आज के विघटनशील समाज में यही जीवन दृष्टि संतुलित जीवन के लिए आधार प्रस्तुत करती है। इसलिए सुदीर्घ लेखन-यात्रा में विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए भी उनका साहित्य कभी संदर्भ-च्युत नहीं हुआ है। सदैव प्रासंगिक बने रहना ही कलाकार की सफलता का बहुत बड़ा रहस्य है।

२. **विष्णु प्रभाकर जी की औपन्यासिक दृष्टि** – विष्णु प्रभाकर जी के उपन्यासों की संख्या सीमित है।

निशिकांत	१९५५
तट के बधन	१९५५
स्वप्नमयी	१९५६
दर्पण का व्यक्ति	१९६८
कोई तो	१९८०
संकल्प	१९९३
अर्द्धनारीश्वर	१९९४

निशिकांत – विष्णु प्रभाकर जी के इस उपन्यास पर कथा गठन से लेकर चरित्र-चित्रण और शिल्प-शैली तक में शरत्‌चंद के उपन्यासों की स्पष्ट छाप है। लेकिन शरत् से प्रभावित होते हुए भी विष्णु जी समस्याओं का केवल पारिवारिक संदर्भों में ही नहीं, तो पूरे देश और समाज के परिप्रेक्ष्य में उठाया गया है। साथ ही उसमें देश और समाज की अनेक ऐसी समस्याओं से भी परिचित कराया है जो शरत् के उपन्यासों का विषय नहीं बन पाया। मोटेतौर पर कहना हो तो शरत् और प्रेमचंद के वर्ण्य विषयों का एक अच्छा-सा संगम 'निशिकांत' में देखने को मिलता है।

विष्णु जी मूलतः आधुनिकता में विश्वास करते हैं। यही आधुनिकता की दृष्टि उनमें 'निशिकांत' में भी देखने को मिलती है। निशिकांत के ये वाक्य द्रष्टव्य हैं, "नदी मुक्त है, तभी इसमें पवित्रता है। तालाब बंद है तभी वह सड़ता है। समय और काल में अतर है। नियम के प्रति विद्रोह अनियमितता नहीं। अनाचार पाप है, पर आचार को जाने बिना उसके नियमों का पालन करना अनाचार से भी बुरा है।"[२५] आधुनिकता के साथ-साथ 'निशिकांत' का दूसरा विशेष गुण है मानवता। उसका हर समझदार पात्र मानो मानवता के लिए ही संघर्ष कर रहा है और मानवीय रिश्तों की खातिर स्वयं को बलिदान कर रहा है। सांप्रदायिक दंगों में मारे गए साधन संपन्न और दूसरे साधनहीन लोगों की शवयात्रा के वर्णन में भी मानवीय दृष्टि स्पष्ट झलकती है।

हिंदू-मुस्लिम समस्या के साथ ही एक और बिकट समस्या है, छुआछूत या जाति-पाँति की, उसे भी 'निशिकांत' में कई स्थलों पर उठाया गया है। लेखक का सपना है कि सभी प्रेम-विवाह, जाति-पाँति या धर्म के बंधनों से निरपेक्ष रहकर किए जाएँ। इसी सपने को उन्होंने अपने नायक 'कांत' के माध्यम से संजोया है। विष्णु जी के पात्र परिस्थितियों के साथ संघर्ष करके जीतने का प्रयास करते हैं।

तट के बंधन – विष्णु जी का दूसरा उपन्यास वस्तुतः 'निशिकांत' का एक और संस्करण ही है। विष्णु प्रभाकर जी विषयों के विस्तार के साथ उनकी गहराइयों की थाह पाने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए उनके उपन्यासों में विषयों की आवृत्ति,

विवेचन और पुनर्विवेचन अधिक होते हुए भी उनका विकास अधिक होता दिखाई देता है। नारी जीवन संबंधित जो प्रश्न निशिकांत में प्रायः अछूते रह गये थे, उनको 'तट के बंधन' में अधिक स्पष्टता और तीखेपन के साथ उभारा गया है। 'निशिकांत' का समाजसेवी लेखक-नायक 'तट के बंधन' में 'गोपाल' के रूप में प्रकट हुआ है और उसकी प्रेम कहानी 'कमला' की जगह एक अन्य पीड़ित नायिका 'अनिला' से शुरू होकर 'अनिला' पर ही समाप्त होती है, यद्यपि वह उससे विवाह नहीं कर पाता।

इसी उपन्यास में दूसरी ओर कई ऐसी युवतियाँ हैं जो दहेज के कारण अनुकूल जीवनसाथी प्राप्त नहीं कर पातीं, और अगर कर भी लेती हैं तो सुखी जीवन नहीं बिता पातीं। इन पीडित नायिकाओं की समस्या भी गौण नहीं है। दहेज के कारण 'मालती' की बारात लौटने को हो जाती है और 'शीला' को उसका पति ही नहर में ढ़केल देता है। इसी तरह सरला की भी करुण कहानी है जो अपने निरीह पति की 'हत्या' के जुर्म में अभियुक्त बना दी जाती है।

विष्णु जी के अनुसार उनका सुधारवादी दृष्टिकोण उनके नारी पात्रों में भी मिलता है। यही सभी पीडित नारियाँ अंत में अपनी आंतरिक शक्ति के बल पर समाज को चुनौती देने को खडी हो जाती हैं और पूरे उपन्यास में एक गहरी मानवीय संवेदना जग जाती है।

स्वप्नमयी – विष्णु प्रभाकर जी की यह कृति वास्तव में एक नारी के घर के भीतर और बाहर के कार्य क्षेत्रों से उत्पन्न और संघर्ष को लेकर लिखी गई एक लम्बी कहानी ही कही जा सकती है, जो कई मायनों में छायावादी शैली की होते हुए भी आज की नारी की आंतरिक बेचैनी को रेखांकित कर पाई है। कृति के भीतर अनेक स्थलों पर लेखक वास्तविक स्थितियों के स्थान पर रहस्यमयता का वर्णन करता रहता है।, जिसमें लगता है विष्णु जी ने यह शैली तार्किकता की अपेक्षा केवल ललित निबंध जैसे मार्मिकता के लिए अपनाई है।

दर्पण का व्यक्ति – 'दर्पण का व्यक्ति' की शैली अलग प्रकार की है। पूरी कहानी केवल एक पत्र में समेट दी गई है, लेकिन यह पत्र कुछ विभिन्न चरित्रों पर टिप्पणी प्रस्तुत करता चलता है कि एक कहानी में कई कहानियाँ आ जुड़ती हैं और पूरा पत्र एक 'लघु उपन्यास' का आभास देने लगता है।

'दर्पण का व्यक्ति' की पूरी कहानी अंत में यह बताकर समाप्त हो जाती है कि दुनिया-भर में प्रशंसित और पुरस्कृत एक लेखक तक व्यक्तिगत जीवन में कितना अन्यायी हो सकता है और केवल अपनी विवाहिता के साथ ही नहीं बल्कि दूसरी स्त्रियों के प्रति भी अन्याय कर सकता है। इस उपन्यास में पुरुष प्रधान समाज में नारी की निम्नस्तर स्थिति, विधवा विवाह, सुहाग की विडंबना, विवाह विच्छेद आदि कई वर्तमान सामाजिक समस्याओं पर भी विचार किया गया है और विरोधाभासों को स्पष्ट किया गया है; यथा-पुरुष नारी के बिना रह ही नहीं सकता

लेकिन नारी विवश कर दी जाती है कि पुरुष के बिना रहे। इसलिए हमारे शास्त्रों में हिंदू विधवा को दु:ख की प्रतिमा मानकर भी स्वर्ग की देवी बना दिया है। बडे गौरव के साथ वे लोग कहते हैं– "हिंदू विधवा ने संसार के दु:ख का भार अपने सिर पर ले लिया है। उसने दु:ख को सुख बना डाला है।"[२५] इस प्रकार इस उपन्यास का मुख्य केन्द्र मध्यवर्गीय नारी ही है।

कोई तो – 'कोई तो' उपन्यास में यही संस्कारों की जड़ता और शक्ति की गतिशीलता का द्वंद्व भली-भॉति चित्रित हुआ है। विष्णु जी इस उपन्यास में पुरानी मान्यताओ की जड़ता को सही ढंग से तोड़ सके और एक वास्तविक यथार्थपरक दृष्टि अपना सके। यह उपन्यास मध्यवर्ग की यौन-नैतिकता का प्रश्न उठाता है। यह भी नारी प्रधान ही उपन्यास है। इसमे समाज और पुरुष से प्रताड़ित अनेक नारियों की व्यथा-कथा है और उसके माध्यम से पुरुष-समाज के कुरूप चेहरे पर से नकाब हटाया गया है। इस उपन्यास के मूल में मध्यवर्गीय नारी-कथा है किंतु लेखक ने उस कथा के इर्द-गिर्द अपने समकालीन सामाजिक सत्य के अनेक पहलुओं को बना दिया है। पुलिस, कचहरी, राजनीति, सामाजिक समस्याये, गाँव, महॅगाई, गरीबी, पंचायत, गन्ने की खरीद, कालेज का चरित्र, सेमीनार आदि न जाने कितने प्रसंग या सदर्भ कथा बनकर या बातचीत का अंग बनकर आए हैं और इस प्रकार लेखक इस उपन्यास के माध्यम से अपने समय की एक पूरी तस्वीर देना चाहता है। विष्णु प्रभाकर जी का उपन्यास 'कोई तो' सतत खोज है मूल्यों की, मूल्यों की संभावना की, विकल्प की। यह कोई तो वही हो सकता है जिनमे नए मूल्यों को खोजने का साहस हो, नए विचारों के प्रवर्तन की शक्ति हो। तभी वह समाज की गली-सडी मान्यताओं को चुनौती दे सकेगा और मध्यवर्ग की संस्कारगत मानसिकता से मुक्ति के सिलसिले में राजनीतिक तंत्र की क्रूरता का सामना ही नहीं कर सकेगा, व्यापक स्तरो पर संघर्ष और विद्रोह की भूमिकाओं को भी अंजाम दे सकेगा। इस पृष्ठभूमि में उपन्यास का जो मूल कथ्य उभरकर आता है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समाज की संरचना में एक ओर अर्थाभाव में पलनेवाला वर्ग है तो दूसरी ओर सुविधाभोगी यौन-विकृतियों में जीनेवाला उच्च्च वर्ग और इनके बीच नैतिक मूल्यो के थोथे दर्पवाला मध्यवर्ग है।

इस उपन्यास में मध्यवर्ग के नैतिक छद्‌म को नंगा कर दिखाने के अलावा यथार्थ के अन्य पहलुओं की तरफ भी लेखक की पैनी दृष्टि गई है। डकैती, बलात्कार तथा छात्रों के दिशाहीन उपक्रमों से भी समाज त्रस्त है। कुल मिलाकर सामाजिक उपन्यासों की कोटि में 'कोई तो' मील के पत्थर की तरह है जिसने निम्न वर्ग को परंपरागत दया का पात्र न बनाकर उसे अपने पैरों पर खड़ा कर दिया है। वहाँ कोई भी उसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आँक सकता है और मध्य वर्ग की झूठी नैतिकता के छद्‌म को पहचान सकता है। ब्राह्मणवाद, पुरोहितवाद या विप्रवाद की जड़ों को खोखला करने का यह प्रथम प्रयास है।

विष्णु प्रभाकर जी के गहन चितन-मनन एवं पर्यटन का यह फल है जिसके अंदर रचनाकार के सृजनात्मक व्यक्तित्व की गरिमा झाँकती दिखाई देती है।

संकल्प – कालजयी रचनाकार विष्णु प्रभाकर की इस अध्ययन कृति मे तीन लघु उपन्यास या तीन लंबी कहानियाँ संकलित हुई हैं, संस्कार, स्वप्न, संकल्प। ये तीनों उपन्यास अलग-अलग होते हुए भी एक बात की समानता रखते हैं– नारी मुक्ति का स्वप्न। इसलिए तीनों को एक जिल्द में समाविष्ट किया गया है।

संस्कार- हिंदू संस्कारों में पली बालिका वधू जो पति से निष्कासित होते हुए भी जीवन-भर उनके नाम की माला जपती रहती है और माँग में सिंदूर भरे 'करवा चौथ' का व्रत करती रहती है। यह तो उस हिंदू नारी की कहानी है जिसकी मज्जा में संस्कार कानखजूरे की तरह जड जमाकर बैठ जाते हैं, सब कुछ भाग्य पर छोड़कर जीवन को घसीटती रहती है। ऐसा नहीं कि संस्कारग्रस्त नारी के जीवन में तूफान नहीं आते : लेकिन उनसे संघर्ष करने की शक्ति तो संस्कार लील चुके होते हैं। इसलिए उसका जीवन व्यर्थता में ही समाप्त होता है।

स्वप्न – यह एक ऐसी मॉ की कहानी है जो नारी मुक्ति का स्वप्न तो देखती है पर अंत में अपनी सास के चक्रव्यूह में फॅस जाती है, इसलिए और भी फॅस जाती है क्योंकि वह प्रयोग करने में विश्वास करती है लेकिन स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए व्यक्ति को अपने ऊपर और भी अंकुश लगाना पड़ता है। इसका सकेत भी नायिका देवरानी के चरित्र में मिलता है। इस संकलन में वह 'स्वप्न' के नाम से संकलित है।

संकल्प – माता-पिता के अलग हो जाने के बाद बच्चे की क्या स्थिति हो जाती है इसका चित्रण इस लघु उपन्यास में है। इस तरह संस्कार, स्वप्न और संकल्प यानी नारी की उत्तरोत्तर विकास की मंजिले हैं।

नारी मुक्ति का स्वप्न साकार हो, जीवन के संघर्षों के तूफानों से जूझने की शक्ति या संचार हो ऐसी अदम्य इच्छा-शक्तिशाली नारी का सृजन हो जो मुक्ति की चाह में पुरुष बनने की कामना से अपने को बचा सके– यही इस औपन्यासिक कृति का संदेश है।

अर्द्धनारीश्वर – यह विष्णु प्रभाकर जी का अद्यतन उपन्यास है। जिसमें सपनों के उस समाज को आकार देने का प्रयास किया गया है, जहॉ स्त्री और पुरुष समान अधिकार और समान दायित्व के साथ एक स्वस्थ समाज के निर्माण में समान रूप से भागीदार हो सकेंगे।" विष्णु प्रभाकर ने अर्द्धनारीश्वर में नारी को अपने ही अन्तस् की अनेक पर्तों, कुंडली-चक्रों और मकड़जालों के साथ संघर्ष करते हुए नहीं चित्रित किया, वह अंततः जीवन के उस धरातल को पा लेती है जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों की स्वतंत्र सत्ता एक दूसरे में विसर्जन नहीं, सम्मिलन खोजती है।" इस उपन्यास में विष्णु जी ने नर-नारी के शाश्वत आकर्षण से उत्पन्न उनके वैवाहिक एवं विवाहोत्तर संबंधों को एक विराट-कर फलक के माध्यम से

प्रस्तुत किया है। इसमें विष्णु प्रभाकर जी ने जीवनभर के अध्ययन, चिंतन और लोक-निरीक्षण का सार समाहित किया है। इसमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है स्वयं कथा–स्रष्टा की सबल सवेदना और गहन मर्मभेदिनी दृष्टि जो सभी व्यक्तियों और स्थितियों का संतुलन, विवेचन कर जीवन का एक समग्र चित्र प्रस्तुत करती है।

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार विष्णु प्रभाकर मुख्य रूप से मध्यवर्गीय संस्कारों में पली-बढी नारी के चितेरे रहे हैं और इन्हीं संस्कारों के बीच उन्होंने उसे शक्ति भी दी है– समय की गति के साथ आगे बढने और समाज का सामना करने की शक्ति दी है। विष्णु प्रभाकर जी के लिए नारी चिंता का केंद्र भी रही है और चिंतन की धुरी भी। 'कोई तो' में उन्होंने नारी के साथ बलात्कार की समस्या को ही उठाया था किंतु ऐसा लगता है कि उसमें उनके लिए बहुत-कुछ अनकहा रह गया और समस्या का मूलग्राही समाधान प्रस्तुत नहीं किया जा सका। तभी तो उन्होंने 'अर्द्धनारीश्वर' में उसी 'थीम' को दुबारा उठाया और उसे और भी विस्तृत फलक पर परिपूर्णता और समग्रता के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है।

३. **नाटककार विष्णु प्रभाकर** – आधुनिक हिंदी नाटक के क्षेत्र में विष्णु प्रभाकर एक ऐसा नाम है जिनकी रचनाधर्मिता परंपरा में विच्छेद कर अपने लेखकीय लक्ष्य का संधान करती हुई निरंतर मानव-मूल्यों की स्थापना का सर्जनात्मक अभियान करती रही है। यही उनकी गहरी संपृक्तियुक्त आधुनिक-सांस्कृतिक दृष्टि सम्पन्नता उनके नाटकों को केवल प्रासंगिक ही नहीं बनाती तो सर्जनात्मक स्तर पर अनुकरणीय भी बनाती है। उनकी लगभग पच्चीस नाट्य कृतियाँ हैं जिसमें दस नाटक और और बारह एकाकी संग्रह तथा दो प्रेमचंद के उपन्यासों (गबन, गोदान) के नाट्य-रूपांतर हैं। इनमे विष्णु जी ने लगभग सात नाटक सामाजिक जीवन स्थितियों पर लिखे हैं और तीन ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओं के आधार पर इन सब में अन्तःसूत्र के रूप में विद्यमान भारतीयता की आंतरिकता की रक्षा का वैचारिक और संवेदनात्मक धरातल प्रस्तुत किया है। इसलिए उनके नाटकों में समय भित्ति से चलकर अवकाश स्थिति में जाने की पूरी क्षमता भी है। उनकी संवेदना का धरातल सामजस्य का ही अधिक होने के कारण वे मूल्यगर्भिता के तहत् जाने का प्रयास करते हैं। नए परिवर्तित समाज में बदलते हुए संबंधों को रचनात्मक रूप से रेखांकित करने के लिए सामयिक स्थितियों पर लिखे, उनके नाटक 'टगर', 'डॉक्टर', 'युगे-युगे क्रांति' और 'टूटते-परिवेश' को लिया जा सकता है। इन रचनाओं में भिन्न दृष्टिकोण से वर्तमान जीवन के प्रश्नों को उठाकर कलात्मक स्पर्श से व्यक्त किया गया है। इसका श्रेय निश्चित ही गाँधी जी की विचारधारा को जाता है। इन नाटकों में उन्होंने कर्तव्य-बोध, आत्मपीड़ा का गौरव, करुणा का प्रसाद, परंपरा की जड़ता का विरोध, भारतीयता की आंतरिकता, परिवर्तन का सहर्ष स्वीकार, पीढ़ीगत संघर्ष में नई पीढ़ी की पक्षधरता आदि

विचारणाओं को रेखांकित किया है। उनके चिंतन के ये विविध रूप उनकी रचनाओं में एक सामाजिक आधार पाते हैं।

'डॉक्टर' की रचना एक-एक ऐसी नारी के जीवन पर आधारित है जो पति द्वारा परित्यक्त कर दी गई है और अपने भाई के सहयोग से डॉक्टर बनती है। 'युगे-युगे क्रांति' निरंतर परिवर्तन और परिवर्तनशीलता की होती हुई जड़ता के संघर्ष पर लिखा गया नाटक है। इसमें लेखक ने प्रतिपादित किया है कि प्रत्येक पीढ़ी प्रचलित समाज व्यवस्था, नियम उपनियम को लांघकर कोई नया कदम उठाना चाहती है। यद्यपि इस इच्छा में उसकी व्यक्तिगत आशा-आकांक्षा छिपी होती है फिर भी किसी-न-किसी रूप में वह एक पूरे सामाजिक जीवन पर चोट करती है। विष्णु जी के अन्य नाटकों में 'टूटते परिवेश' उल्लेखनीय नाटक है। इसमें एक ओर नई पीढी की क्षमता का स्वीकार है तो दूसरी ओर सर्जनशील और अतिरिक्त स्वतंत्रता के बीच चुनाव का द्वंद्व भी है। विष्णु जी ने यह स्थापना की है लेकिन यह भी हमारा ही कर्तव्य है कि हम नए संबंधों की तर्कसंगत स्थापना करें। 'बंदिनी' नाटक में विष्णु के ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में 'गांधार की भिक्षुणी', 'सत्ता के आर पार' और 'नव प्रभात' आते हैं। 'गांधार की भिक्षुणी', के ऐतिहासिक कथा स्रोतों के प्रति लेखक स्वयं अनुमानित तथ्यों पंर आधारित है फिर भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से वे युद्ध और शांति, संघर्ष और मानवीय संबंध, राष्ट्रीयता की भावना आदि पर विचार करता है।

एकांकीकार के रूप में विष्णु जी की यात्रा रंगशिल्प की यात्रा से जुडी हुई है। १९५० के आस-पास रेडियो रूपक के रूप में नाटक की प्रस्तुति का बहुत बडा दायित्व विष्णु जी ने संभाला है। उनके प्रारंभिक एकांकियों में 'बह्म लोक', 'इन्सान', 'सूरज की किरणें', 'मैं भी मानव हूँ', 'पिकनिक', 'कुहासा और किरण', 'उसकी याद', 'नहीं नहीं नहीं', 'झाँसी की रानी', 'अर्द्धनारीश्वर', 'एक और एक माँ' आदि ऐसे एकांकी हैं जिनमें उनकी प्रारंभिक रचना क्षमता और उससे जुडी हुई विकासोन्मुख संभावनाओं का ज्ञान होता है। कहना न होगा, समकालीन जीवन का कोई भी संघर्ष बिंदु उनके एकांकियों से अछूता नहीं रहा है।

विष्णु प्रभाकर जी ने एक ओर जहाँ 'डॉक्टर', 'टूटते परिवेश', 'गांधार की भिक्षुणी' जैसे रंगमंचीय नाटकों की सर्जना की है, वहीं उन्होंने ध्वनि-नाटकों का विशद संसार भी हमारे सामने खड़ा किया है। दरारों के द्वीप में लोग 'जाति के द्वीप में बंद हैं। यह द्वीप नहीं दरारें हैं, हमारे समाज की, जिन्होंने बाँट रखा है, आदमी को आदमी से अलग किया हुआ है और लोग हैं कि बंद हैं उन दरारों के द्वीप में। 'साँप और सीढ़ी' में व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार और उसमें पिसते एक परिवार की कहानी है। 'उपचेतना का छल' एक श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक ध्वनि नाटक को नमूने के तौर पर रखा जा सकता है। 'एक औरत एक माँ' भी सामाजिक संदर्भों को छूते हुए मनोवैज्ञानिक नाटक है। विष्णु जी की नाटक-प्रतिभा का चमत्कार

उनके एक पात्रीय ध्वनि रूपकों में अधिक लगातार छोटा होते जाना, जीवन की दौड-धूप का विस्तार, साथ ही व्यवसाय से धूमायित दुनिया इस बात के लिए रचनाकार और पाठक को प्रेरित करती है कि वे अपने विचार-विस्तार को छोटा करें। किसी सत्य को जीवन के यथार्थ को उकेरने के लिए 'आप की कृपा है' कि लघु-कथाएँ अपनी प्रस्तुति में सहज ही बात कह जाती है। इसमें लगभग पैंतालिस लघु कहानियॉ हैं। व्यक्ति, समाज, देश, दुनिया, घर, पहचान, ईर्ष्या, मोहब्बत, किस्मत, तर्क, मणि, दोस्ती, बचपन, मन, भगवान, पुजारी, पाप, जाति, दान, शिव, शैतान ऐसे अनेक विषयों को लेखक ने छुआ है। जीवन के किसी भी क्षेत्र को, क्षेत्र के अंश को लेखक ने एक नई तरतीब देकर अपनी बात कही है। मनुष्य बुद्धिवादी है, वैज्ञानिक है, कलाकार है, किसान है, मजदूर है और क्या-क्या है पर सबके मूल में मनुष्य है। जो तथ्य इस लघुकथा संकलन के मूल में है। इसमें हवा, आसमान, भाषण, पेपर कटिंग आदि से खोजे गये लघुकथा के बिन्दु बाहर से अंदर की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार इन लघुकथाओं में लेखक के अनुभव का एक लंबा समय फैला है। इसी कारण कहीं तो देश के बटवारे की झलक है और कहीं काम की बात है। कहीं किस्मत खुली है और कहीं आँखों देखा झूठ सामने आता है। प्रस्तुति में सहज बोधगम्यता का सर्वत्र ध्यान रखा गया है। वस्तुतः यह जिंदगी कल्पना से ज्यादा खूबसूरत है। एक क्षण का अनुभव दस साल की शिक्षा के बराबर होता है। इन सभी रचनाओं में ये अनुभव रचे गए हैं। सोद्देश्यता की भूमिका में रची गई ये लघु कथाएँ अपने अंतस में कहानीपन लिए हुए हैं। इस दिशा में विष्णु जी की कहानियाँ उच्चतम जीवन मूल्यों के आदर्शों की कहानियाँ हैं जो यथार्थ की भित्ति पर चित्रित हैं। इस क्षेत्र में भी विष्णु प्रभाकर जी मानवीय संवेदना को महत्तम स्थान देते हुए मानव की ही वकालत करते दिखाई देते हैं। युग की अदालत में मनुष्य संबंधी उनकी पक्षधरता है।

४. **विष्णु प्रभाकर जी की यात्रा-साहित्य** – विष्णु प्रभाकर जी की साहित्यिक प्रवृत्ति एवं यायावर वृत्ति सहज ही एक-दूसरे की पूरक हैं। इनकी 'जमना गंगा की नैहर में' (१९६४), 'हँसते निर्झर दहकती भट्टी' (१९६६), 'अभियान और यात्राएँ' (१९६६), 'ज्योतिपुज हिमालय' (१९८२) आदि रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। जो हिन्दी के यात्रा-साहित्य में अपना उल्लेखनीय स्थान रखती हैं।

शहरी यात्राएँ हमारी भीतरी यात्राओं को समृद्ध पुष्ट करती हैं। अपने में झाँकने, स्वयं को ऑकने का अवसर देती हैं। जोखिमों और चुनौतियों के आगे हमें ला खड़ा करती हैं। हमें बनाती हैं। किसी भी स्थान या प्रदेश के यात्रा-वर्णन में लेखकीय व्यक्तित्व एवं स्वयं की रुचि-प्रकृति, दृष्टि की छाप ज़रूर छोड़ती है। 'ज्योतिपुंज हिमालय' इस अर्थ में मात्र भौगोलिक स्थान हिमालय की यात्रा नहीं रह जाती, विष्णु जी के अंत-जगत की यात्रा भी है। इस यात्रा-वृत्त में लेखक ने स्थान-स्थान पर चिंतन, कल्पना, अनुभूति से युक्त सुंदर कथन भी दिये हैं और

एक महत्वपूर्ण बात है कि लेखक ने इस यात्रा-वर्णन में अपने धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, सास्कृतिक, भौगोलिक विचार भी जगह-जगह प्रक्षेपित किए हैं। इसमें भारत के ज्योतिपुंज हिमालय के साथ ही विष्णु जी के भीतर के उस ज्योतिपुंज को भी हम देख पाते हैं जो अपने मानवीय आयामों में उदात्त और विराट है। विष्णु जी के अध्यात्म को स्वीकारा है, आस्था को नहीं। इसलिए जगह-जगह धार्मिक बाबाओं के प्रवचनों, अनुभवों के वृत्तांतों को गंगा, हिमालय आदि से जडे हुए धार्मिक विश्वास को विष्णु जी ने सजग आस्था के पक्ष से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार विष्णु जी का यात्रा साहित्य भी एक उदात्त मानवीय आस्था एवं विश्वास का ही द्योतक माना जाता है।

५. **बाल साहित्यकार के रूप में विष्णु प्रभाकर** – हिन्दी में बाल साहित्य को नई दिशा देकर उसे समृद्ध बनाने और बच्चों तक पहुँचाने में जिन लेखकों ने सफलता प्राप्त की है, उनमें श्री विष्णु प्रभाकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। विष्णु प्रभाकर जी ने इस विधा को आधुनिक जीवन-मूल्यों और परिवेश के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। छटें दशक से हिंदी बाल साहित्य-रचना में जो नई लहर आई, उसके सार्थकों में विष्णु प्रभाकर जी भी रहे हैं। इस लहर ने एक ओर लोककथाओं, परीकथाओं और राजा-रानी की कहानियों के खजाने पर जीने वाले लेखकों को उखाड़ फेंका और दूसरी और अपने साथ नव-बालसाहित्य चिंतनधारा को आश्रय दिया, इस कालखंड में जिसकी स्पष्ट माँग थी। बच्चों को आधुनिक भाव-बोध से जोड़ना और घिसी-पिटी परंपराओं, अंधविश्वास तथा जादू-लोक से निकालकर उन्हें नए जीवन मूल्यों से परिचित कराना और समाजवादी सामाजिक संरचना के योग्य नागरिक बनाना इस विचारधारा से प्रेरित होकर नए बालसाहित्य की रचना शुरू हुई। देश के परंपरागत तथा पौराणिक साहित्य में प्रतीकों के माध्यम से कथ्य को उजागर किया जाता तेजी से उभरता है। उनके एक पात्रीय ध्वनि रूपकों की संयोजना उनकी लेखकीय सिद्धहस्तता का प्रमाण है। 'सड़क' में सड़क के माध्यम से एक यातना मुखर हुई है। तो 'धुआँ' प्रेम-संबंधों तथा प्रेम-स्वरूप को पहचानने के बीच छाया हुआ धुआँ है। 'दरिंदा का परेश कानून का मजाक उड़ाता है। विष्णु प्रभाकर जी के ध्वनि-नाटकों और ध्वनि-रूपकों ने इसे एक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने में बड़ा योगदान दिया है। इस दृष्टि से एक सफल नाटककार के रूप में उनका योगदान हिंदी साहित्य को बहुत कुछ दे जाता है।

६. **जीवन साहित्य का चरमोत्कर्ष : 'आवारा मसीहा'** – हिंदी में जीवनियों का लिखा जाना आधुनिक काल में ही प्रारंभ हुआ है। इस दृष्टि से जीवन लेखन की दिशा में होने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयत्नों और उपलब्धियों में कहा जाए तो अमृतराय रचित, 'प्रेमचंद की जीवनी', 'निराला की साहित्य साधना (प्रथम खंड-१९६९) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जीवनी-लेखन की जिस परंपरा का सूत्रपात

इन दो रचनाओं से हुआ है उसकी अगली महत्त्वपूर्ण कडी है, विष्णु प्रभाकर रचित शरत्चंद की जीवनी 'आवारा मसीहा'।

विष्णु प्रभाकर जी के लिए 'आवारा मसीहा' जीवनी लिखना मानो एक चुनौती ही थी। उन्होंने लगातार चौदह साल तक विचार मंथन करके घटनाओं के लिए भ्रमण करके किसी नीति, तर्क या दर्शन के फेर में न पड़कर एक गोताखोर की तरह बगला साहित्य के अमर कथाशिल्पी शरत्चंद के जीवन सागर में डूब-डूब कर भ्रम किंवदंतियों, असत्य घटनाओं के जाल आदि को दूर करके 'आवारा मसीहा' रूपी रत्न बाहर निकाला है। जीवनी कला के मानदंडों को संभाल-कर अनेक घटनाओं का संतुलन और सामंजस्य करके बड़ी आस्था और लगन के साथ 'आवारा मसीहा' की रचना की है। इसमें विष्णु प्रभाकर जी ने जीवन के तीनों पदों में शरत् की मानसिक दशाओं तथा उनके संपर्क में आए हुए पात्रों का विवेचन किया है। 'दिशा हारा' में शरत्बाबू के शरारती बचपन से लेकर युवावस्था के आरंभ तक की कहानी है। 'दिशा की खोज' में शरत् के 'एक और स्वप्न भग' से लेकर दिशा की खोज में उनके व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन की परिस्थितियों का अंकन किया है। 'दिशांत' में जीवनीकार द्वारा शरत्चंद का एक साहित्यिक रूप में अर्थात् 'दिशा की प्रगति' का वर्णन है। इस प्रकार वैज्ञानिकता की दृष्टि से प्रभाकर जी ने शरत् के जीवन का बिखराव और भटकाव जीवन के पहले दो पदों में बताया है। 'दिशांत' में वे मसीहा बने हैं वैसे तो मिस्त्री पल्ली में जब से वे रहने लगे थे तब से उनमें मसीहा के आसार दिखाई दे रहे थे। इस खंड में उनके अवस्थानुसार सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आदि कार्य भी दिखाए गए हैं तथा साथ ही उनकी रचनाओं की चर्चा भी की है।

'आवारा मसीहा' में विष्णु प्रभाकर जी ने एक हद तक तटस्थता को बनाए रखा है। उन्होंने अपने निष्कर्षों को अपने 'शरत्' पर नहीं लादा। इस रूप में उन्होंने शरत् को शरत् के रूप में खोजने का पूरा प्रयत्न किया है। शरत् भी एक मानव है और उनमें मनुष्य की संभावित दुर्बलताएँ थीं। उनके जीवन में उन विरोधाभासों का होना स्वाभाविक था फिर भी वे संवेदनशील और अभिव्यक्ति सिद्ध थे इसलिए साहित्यकार भी थे। उनके सारे जीवन को इस संदर्भ में ही विष्णु जी ने देखा और आँका है। शरत् की कुंठा को उन्होंने छिपाया नहीं, कमियों को ठका नहीं। शरत् के जीवन के उन स्थलो को उन्होंने फिसलने नहीं दिया, जहाँ वे अपने संपूर्ण मानवीय तत्व के साथ मौजूद है। 'आवारा मसीहा' पढकर ऐसा लगता है प्रभाकर जी ने जीवनी के लिए कला को उतनी प्रमुखता नहीं दी जितनी आस्था को दी है परंतु यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्य से जिस कला का संबंध होता है वह काफी सीमा तक इस कृति में है। शरत्चंद जीवन भर साहित्य में मनुष्य और मनुष्यता को उजागर करते रहे हैं। 'आवारा मसीहा' की भूमिका में विष्णु जी

शरत्चंद जी की मनुष्यता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, "एक कृतिकार के लिए मानव का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है और सर्वहाराओं के बीच में रहते हुए वह (शरत्) यहीं करता रहा।"[२८] वास्तव में 'आवारा मसीहा' ऐसी कृति है जिसमें जीवनी संस्मरण, रेखाचित्र, कहानी, नाटक, यात्रा, साहित्य आदि अनेक विधाओं के दर्शन होते हैं। कुल मिलाकर 'आवारा मसीहा' एक सार्थक कृति है जिसे रचनाकार की आस्था और संवेदना ने प्रामाणिकता प्रदान की है।

७. **विष्णु प्रभाकर की लघु-कथाएँ** – विष्णु प्रभाकर जी की लघु-कथाएँ भी उतनी ही समृद्ध है, जितनी उनकी कहानियाँ हैं। 'आपकी कृपा है' में उनकी लघु-कथाएँ संकलित हुई है। समय के साथ। उनके सही अर्थ आज की रचना में स्पष्ट होने चाहिए, विष्णु प्रभाकर जी की इसी दलील को नव-बालसाहित्यकारों ने स्वीकारा। नव–बालसाहित्य की रचना के सिलसिले एक आवश्यकता और भी, बच्चों को झूठे कल्पना लोक से बचाना चाहिए, इसलिए परिकथाओं के कथ्य को नया आयाम देना जरूरी समझा गया। विष्णु प्रभाकर जी ने इस विषय में अपने स्पष्ट विचार प्रस्तुत किए है। उन्होंने स्पष्टता से परीकथाओं की विधा के प्रति स्वीकारोक्ति दी है, वहीं बच्चों के बदलते मनोविज्ञान के अनुरूप आधुनिक जीवन और विज्ञान की उपलब्धियों से बच्चों को जोड़ने का आग्रह भी है। वे बच्चों को उपदेश या नीति की बातें कहने की अपेक्षा बच्चों को तर्कशील, विवेकशील और अपने परिवेश को समझने योग्य बनाना उचित समझते हैं।

विष्णु जी ने बच्चों के लिए कथाएँ लिखी हैं, नाटक लिखें हैं और यात्रा कथाएँ भी लिखी हैं किंतु उन सभी की रचना के पीछे उनकी एक निश्चित दृष्टि रही है जो उनके रचनात्मक-बालसाहित्य को मौलिक धरातल प्रदान करती है। कहानियों में जहाँ उनके पात्र मनोरंजन कराते हैं, वहीं उनमें आधुनिक संसार के प्रति जिज्ञासा भी दिखाई देती है। आधुनिक कथा लेखन को लेकर जो वैचारिक-धरातल निर्मित हुआ है, विष्णु जी उसके प्रबल समर्थक हैं। राजारानी की कथाओं को छोड़कर बच्चों को आधुनिक जीवन-मूल्यों से परिचित कराया जाय, यह नव-बालसाहित्य रचनाकारों का स्वीकृत-मत है। बच्चों को सामंतवादी, जातिवादी संकीर्णताओं से बचाकर उन्हें आधुनिक जीवन, समाजवादी तथा समानता के आधार पर स्थापित प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रतिपादक के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। विष्णु जी ने इस आवश्यकता को बड़ी गंभीरता से अनुभव किया है। वे बालकों की कहानियों के लिए उतने ही समर्पित हैं, जितने बड़ों के साहित्य के प्रति। जीवनियों के क्षेत्र में उनकी 'कस्तूरबा गाँधी', 'सरदार वल्लभभाई पटेल', 'शरत्चंद' और 'बापू की बातें' बहुचर्चित पुस्तकें हैं। साहित्यकारों की जीवनियों में 'शरत्चंद' और 'रवींद्रनाथ टैगोर' की जीवनी उनके जीवन वृत्त के साथ साहित्यिक उपलब्धियों की जानकारी करा देती है। इस तरह ऐतिहासिक

चरित्रों में 'महाराणा प्रताप', 'दादू-अल-रशीद', और 'बाजी प्रभू देशपांडे' की जीवनी उचित प्रसंगों और नाट्यात्मक शैली के कारण बालप्रिय रही है।

बच्चों के नाटकों की दिशा में विष्णु जी का सर्वाधिक योगदान है। इस दिशा में विष्णु जी की मान्यता है कि नाटकों की सामग्री का रोचक और कल्पना प्रधान होना तो अनिवार्य है, पर उसी सीमा तक जिस सीमा तक बालक की अपनी कल्पनाशक्ति और व्यक्तित्व का विकास हो सके। विष्णु जी के कुछ बहुचर्चित बाल-नाटक हैं– 'हड़ताल', 'पुस्तक-कीट', 'ऐसे-ऐसे', 'बालवर्ष जिंदाबाद', 'पानी आ गया' आदि। हडताल में बच्चे अपनी माँगें मनवाने के लिए प्रजातांत्रिक तरीका अपनाते हैं। जैसे 'परीक्षा लेना बंद करो', 'स्कूल में समय पर पहुँचना जरूरी न हो' आदि। फिर पुलिस आती है, अत्याचार के खिलाफ, भूख-हडताल होती है और फिर समझौता होता है। इसमें बच्चों की हँसी भी आती है, साथ ही स्कूल की व्यवस्था और अपने कर्तव्य की जानकारी भी मिलती है। 'पुस्तक कीट' एक ऐसी लड़की की कहानी है जो पुस्तक का कीड़ा बन चुकी है। 'बालवर्ष जिंदाबाद' में बच्चों के अधिकारों का सवाल उठाया गया है। 'पानी भाग गया' में तालाब का पानी सूख जाता है। लोग महसूस करते हैं कि उनके बुरे कामों के कारण ही ऐसा हुआ है। दरअसल यदि हम अपने लिए नहीं बल्कि दूसरों के लिए काम करें तभी कल्याण हो सकता है जब लोग वैसा करने लगते तो सचमुच तालाब में पानी आ जाता है। नाटकों के साथ-साथ स्वतंत्र रूप से विकास पानेवाली हिंदी लघु कथा के शिल्प, अनुभव, भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से देखा जाए तो उनकी बालकों के लिए लिखी लघु कथाएँ भी उच्चतम जीवन-मूल्यों के आदर्शों की कथाएँ हैं, जो यथार्थ की भित्ति पर चित्रित हैं। इस प्रकार विष्णु जी ने बाल साहित्य को न केवल समृद्ध किया है बल्कि उसे दिशा-निर्देश भी दिया है। वह बच्चों के प्रिय नाटककार और कथाकार दोनों ही हैं।

अपने समूचे साहित्य से केवल मूल्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य नहीं रहा है पर जो कुछ उनको पुरस्करणीय लगा है, उसी को उन्होंने आगे बढ़ाया है। इस उपलब्धि के पीछे लेखक का सुधारवादी व्यक्तित्व है जो गांधी दर्शन और आर्यसमाजी सुधारवाद से मिलकर बना है। व्यक्ति अथवा साहित्यकार विष्णु प्रभाकर में कोई अंतर नहीं है।

इस तरह विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व के दो सशक्त पक्ष हैं– एक उनका बौद्धिक प्रशासकीय व्यक्तित्व और दूसरा मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण सृजनशील साहित्यकार का व्यक्तित्व। इस प्रकार संस्कारित रचनाकार का दायित्व भी दोहरा हो जाता है। एक स्तर पर वह सीधे संस्कार की वकालत न करके परिवर्तन के स्तरों को स्पर्श करता है, दूसरे स्तर पर वह अंधानुकरण से बचकर अपने सामयिक बोध के प्रति भी विश्लेषणात्मक रुख अपनाकर सही और गलत की पहचान करता है। विष्णु जी के साहित्य में इन दोनों स्तरों पर परस्परता बनाए रखते हुए एक

ऐसे लेखक से साक्षात्कार होता है जो परिवर्तन को, सामाजिक चुनौती को, संपूर्ण परिवेश को जागृत अवस्थाओं में लाने के लिए स्रष्टा की भूमिका का निर्वाह भी करता है।

"कलाकार का व्यक्तित्व, उसका परिचय, उसका विश्वास और उसकी प्रतिबद्धता सभी कुछ उसकी कला होती है।"[२९] 'प्रेमचंद की विरासत और अन्य निबंध' ग्रंथ में दी गई राजेंद्र यादव की इस राय से इन्कार नहीं किया जा सकता, किंतु जब किसी कलाकार के व्यक्तित्व की असाधारणता जाहिर होने लगती है, तब उसके असाधारण कृतित्व से अभिभूत वन में अपने आप उस कलाकार के अंतरंग व्यक्तित्व को जानने की जिज्ञासा पैदा हो जाती है। उसका समूचा व्यक्तित्व भले ही कला के माध्यम से हमारे सामने मौजूद हो फिर भी कलाकार के उस व्यक्तित्व के साथ-साथ एक दूसरा व्यक्तित्व खड़ा होने लगता है– कहानियाँ, उपन्यासों अथवा अन्य कला रूपों के माध्यम से उभारा हुआ, एक कल्पना बिंब। इस कला इमेज का संमोहन कितना सामाजिक और यथार्थपरक होता है, वही सच्चे व्यक्तित्व की पहचान हमें करनी चाहिए। इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य में विष्णु प्रभाकर जी का योगदान बहुत ऊँचे दर्जे का माना जाता है। इस शोध प्रबंध की अध्ययन सीमा के आधार पर यह जाना जाता है कि विष्णु प्रभाकर जी का कथाकार जब अपनी निजी-अनुभूतियों को एक कलाकार, एक स्रष्टा की हैसियत से प्रस्तुत करता है तब वह निर्माता की सीमा तक तटस्थ हो जाता है, जो एक श्रेष्ठ सृजनकार के लिए अनिवार्य शर्त है। पूरी क्षमता, आस्था और मानवता के साथ जीवन को भोगना, जीना और उससे तन-मन और प्राणों को पुष्ट करना और फिर उसी जीवन को एक निहायत तटस्थता के साथ, भोगे हुए यथार्थ के साथ सौंदर्यमयी दृष्टि से पाठक के सामने प्रस्तुत करना ही एक श्रेष्ठ साहित्यकार की प्रतिभा कही जा सकती है।

संदर्भ सूची

१ हिन्दी कहानी की शिल्प–विधि का विकास–डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. ५८–५९
२ हिदी कहानी का विकास–देवेश ठाकुर, पृ ६६
३ हिन्दी कहानी की शिल्प–विधि का विकास–डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ ३३५
४ आधुनिक हिंदी कहानी–गगा प्रसाद विमल, पृ. ८९
५ नई कहानी की भूमिका–कमलेश्वर, पृ १५३
६. नई कहानी की भूमिका–कमलेश्वर, पृ १५३
७ हिंदुस्थानी–भाग २७, १९६६, लेख अस्तित्ववाद और हिदी कहानी, डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ ३२–३३
८ स्वातत्र्योत्तर हिदी कहानी में सामाजिक परिवर्तन–भैरूलाल गर्ग, पृ ५१
९ नवमानवतावाद–धर्मवीर भारती–हिंदी साहित्य कोश प्रथम भाग, पृ. ४०५
१० युगबोध और हिदी नाटक–सरिता वसिष्ठ, पृ २६७
११. साठोत्तरी हिंदी कहानी मे पात्र और चरित्र–चित्रण, राम प्रसाद, पृ. ३९
१२. नई कहानी : प्रकृति और पाठ, डॉ० सुरेंद्र, पृ० ८१
१३. कहानी : नई कहानी – नामवर सिंह, पृ० ४७
१४ कहानी नई कहानी : नामवर सिंह, पृ० ३४
१५ हिंदी कहानी की रचना–प्रक्रिया–परमानंद श्रीवास्तव, पृ० २४२
१६. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य – स महीपसिंह, पृ० ५८
१७. संचेतना : विशेषाक ब्रजराज किशोर, पृ० १०९
१८ वीणा – जून १९८१, पृ० ३२
१९. विष्णु प्रभाकर . व्यक्ति और साहित्य – स. महीपसिह, पृ० २४
२० सघर्ष के बाद . मेरी कैफियत – विष्णु प्रभाकर १९६८, पृ० ६
२१. विष्णु प्रभाकर : प्रातिनिधिक रचनाएँ– कमल किशोर गोयनका, पृ० ११
२२ मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका, पृ० २
२३. मेरी प्रिय कहानियाँ : विष्णु प्रभाकर, पृ० ६
२४ वीणा – जून १९८१, पृ० २७
२५ निशिकांत : विष्णु प्रभाकर, पृ० १४६
२६ दर्पण का व्यक्ति : विष्णु प्रभाकर, पृ० ३२
२७. 'प्रकर'–अगस्त, १९९४ अंक ८, (संपा वि. सा विद्यालकार)
२८ आवारा मसीहा : विष्णु प्रभाकर, पृ० ४१२
२९. प्रेमचंद की विरासत और अन्य निबंध – राजेंद्र यादव, पृ० १७८

2

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का स्वरूप

विष्णु प्रभाकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

पृष्ठभूमि – कथा साहित्य के क्षेत्र में श्री विष्णु प्रभाकर जी का योगदान विशेष रहा है। विष्णु जी ने जब (सन् १६३०) लिखना आरंभ किया था तब आर्य समाज का प्रभाव था। एक ओर गाँधी जी भारत पर छा गये थे। इसलिए उनकी कहानियों पर आर्य समाज के सुधारवाद का प्रभाव रहा है। इसी के परिणाम स्वरूप देशभक्ति और उदात्त मानवता जो अहिंसा और प्रेम का प्रतिरूप है, उनके कथा-साहित्य में परिलक्षित होती है। भले ही उन्होंने समाजवाद को स्वीकार किया है पर उनका समाजवाद और कुछ नहीं; उदात्त मानवता की खोज का दूसरा नाम है। विष्णु जी पर आदर्शवाद और गाँधीजी का प्रभाव रहा है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में भोगे हुए यथार्थ की पृष्ठभूमि में उदात्त मानवता की खोज की है। 'मनुष्य' में उनकी गहरी आस्था रही है। विष्णु प्रभाकर जी का कथा-साहित्य उनके समय और परिवेश के प्रभाव को ही रेखांकित नहीं करता बल्कि उनकी आंतरिक व्यथा का भी साक्षी .है। प्रस्तुत अध्याय में विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के स्वरूप का विस्तार से विवेचन किया गया है।

१. **व्यक्ति-जीवन से संबंधित कहानियाँ** – स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जन-जीवन को औद्योगीकरण और विज्ञान ने पर्याप्त प्रभावित किया है। विज्ञान और यांत्रिकी ने समाज के सारे मापदंड ही बदल दिये हैं। यह परिवर्तन सामाजिक स्तर पर तो देखा ही गया है, साथ-साथ मानवीय संबंधों पर इसका गहरा असर दिखाई देता है। इसी के परिणामस्वरूप निरर्थकता, अजनबीपन, संत्रास, घुटन, मृत्यु-बोध और अनेक कुंठाएँ तथा विकृतियॉ जन्म ले रही हैं। इस प्रकार व्यक्ति और परिवेश का संघर्ष चेतन तथा अचेतन मानसिक स्तरों को जिस सीमा तक प्रभावित करता है, इसका प्रभाव आज की कहानी में प्रत्यक्ष है। इन सभी मानसिक स्तरों को यथार्थ संवेद्य बनाने का प्रयत्न विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में किया है। उदाहरण के तौर पर 'अंधेरी सुरंग', 'भटकन और भटकन', 'उस दिन', 'भोगा हुआ यथार्थ', 'मेरा बेटा', 'धरती का स्वर्ग', 'शरीर से परे' आदि कहानियों को देखा जा सकता है। इस अध्याय में विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के संदर्भ से मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर भी दृष्टिपात करेंगे।

अ. संत्रास, भय और मृत्यु–बोध की अभिव्यक्ति – यांत्रिकी ने आज मनुष्य को संत्रस्त बना दिया है। वह हर क्षण भय की अनुभूति करता है। यह भय और संत्रास उसके जीवन का अंग बन गया है। आज का मध्यवर्गीय समाज जिंदगी की विभीषिका को भोगते हुए संत्रास से अभिशप्त है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानी 'अंधेरी सुरंग' की कथावस्तु इस संत्रास को बड़ी ही सशक्तता से अभिव्यक्त करती है। कहानी की नायिका स्वयं एक अभिनेत्री है लेकिन अपनी इच्छा के अनुसार वह अपनी जिंदगी जी नहीं पाती। पति की इच्छा, परिवारों के सदस्यों की पैसे की भूख उसे खा जाती है। समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उसे झूठी डींगे हॉकनी पडती है और ये डींगे उसे अंत में अभिशप्त बना देती हैं।

यह संत्रास, भय और मृत्यु–बोध महानगरीय जीवन में सर्वत्र व्याप्त है। इन स्थितियों का कुछ कहानियों में बेहद ईमानदारी, तटस्थता और सच्चाई के साथ चित्रण हुआ है। अत्याधुनिक (मॉड) कही जाने वाली संस्कृति के 'जीवन-मूल्यों' के थोथेपन को 'भटकन और भटकन' तथा 'एक मौत समंदर किनारे' कहानियाँ बहुत अच्छी तरह चित्रित करती हैं। आज का व्यक्ति जिंदगी के इसी भय और संत्रास को भोग रहा है। वह स्वयं अपने से संघर्ष कर रहा है। आज समाज की प्रत्येक संस्था भीतर से खाली है। इस वातावरण से उत्पन्न भयावहता का चित्रण उनकी 'मेरा बेटा' 'अधूरी कहानी', 'मेरा वतन' में चित्रित हुआ है। भारत-पाक दोनों देशों की भौगोलिक सीमा रेखाएँ हृदयों के आपसी संबंधों के बँटवारे नहीं कर पाई। 'मेरा वतन' के पूरी बार-बार 'अपना लाहौर' ढूँढने वहीं जाते हैं और वहीं उन क्रूर दानवी सांप्रदायिक शक्तियों का शिकार हो जाते हैं।

आ. मानवीय संबंधों का विघटन – मानवीय संबंधों की ऊष्मा आधुनिक युग में आकर बहुत कम होती जा रही है। इसका भी चित्रण विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानी में किया है, जो गहरी छाप छोड देता है। 'राग और अनुराग' कहानी में बडे शहर मे रह रहे बहू-बेटे उनके एकांत क्षणों को अलग करवाते हैं। जीवन की विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश 'एक और दुराचारिणी', 'चाची अभाव' आदि कहानियों में प्रकट होता है। 'मार्ग में' कहानी की बुढिया अकाल में अपना सब कुछ खो चुकी है। स्वयं भी अकालजन्य भूख को झेल रही है और एक अपरिचित बच्ची को पाल रही है। 'भूख और कुलीनता' कहानी के सुधीर बाबू की माँ बंगाल के अकाल में एक शेर अनाज के लिए तड़पकर मर जाती है– मरते समय भी वह दूसरों की सहायता करती है। 'शेषकथा', 'मूड' कहानियाँ भी इसी प्रकार जीवन की विसंगतियों का ही चित्रण करती हैं।

अस्तित्व की दुर्दम्य आकांक्षा व्यक्ति के मृत्यु-बोध को आत्मबोध बना देती है। जिंदा रहने का आकर्षण इतना जबरदस्त है कि इंसान किसी भी हालत में जिंदगी से चिपककर रहना चाहता है। ऐसे समय किसी भी प्रकार की विकलांगता उसकी जीने की आकांक्षा को कुचल नहीं सकती। इस प्रक्रिया से

शायद यही एकमात्र तथ्य स्पष्ट होता है। 'कहानी की संवेदनशीलता : सिद्धांत और प्रयोग' ग्रंथ में डॉ० भगवानदास वर्मा का कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है– 'मनुष्य कटा हुआ होकर भी कटा हुआ नहीं है। वह अस्तित्व में होने के बाद उसे वह भोगता ही है और निरंतर अंतर-बाह्य द्वंद्वों का सामना करता हुआ आगे बढ़ता है। अपने या किसी और के बनाए हुए आवर्तों में फँसता है। फिर, उन्हें तोड़ता है, फिर फँसता है, यही उसकी नियति है।'[9] विष्णु प्रभाकर जी के 'मैं जिंदा रहूँगा' कहानी में प्राण एक विचित्र किंतु एक शक्तिशाली चरित्र है। वह राज नामक स्त्री को अपना लेता है। राज से कोई संतान नहीं होती। राज एक खोए बालक को अपना लेती है, वह उसे अपना पुत्र मान लेती है, किंतु जब बालक का असली बाप आता है तो प्राण सहर्ष बालक उसे लौटा देता है। इसी तरह एक दिन राज का असली पति भी आ जाता है। तो वह राज को भी उसके पति को लौटा देता है, पर जीवन के प्रति उसकी लालसा यथावत् बनी रहती है। प्राण ऐसा ही एक पात्र है। 'सबल' कहानी का मेजर सिंह– जो अपनी पत्नी को बेहद प्यार करता है। वह शराब भी इसलिए पीता है कि उसकी पत्नी उसके प्रति पूरी तरह संवेदनशील बनी रहे किंतु एक दुर्घटना में पत्नी की मृत्यु होने पर वह शराब पीना एकदम छोड़ देता है वह यही कहता है कि वह शादी करेगा और पुनः शराब पीना शुरू कर देगा पर वह इसी साध को लिए मर जाता है।

'माँ-बाप' कहानी में फातिमा से प्यार करनेवाले तीन हैं– वशीर उसका पति, अहमद जो फातिमा के पुत्र का पिता खुद को मानता है, वशीर की हत्या कर देता है और जेल चला जाता है। कालू मियाँ आकर फातिमा का हाथ माँगते हैं और गफूर के पिता होने का दावा करते हैं। 'एक और कुंती' कहानी की नायिका की अपने बेटों को पिता का नाम देने के लिए इसी प्रकार की छटपटाहट है। 'कैसी हो मेरी अम्मा' कहानी की नायिका भी अकेलेपन के एहसास से ग्रस्त है और उसे भूलने की कोशिश करती है। 'आश्रिता' की सोना भी उसी अकेलेपन को अत तक झेलती रहती है। जीवन जीने के लिए हर पात्र अपनी आंतरिक व्यथाओं को झेलने के लिए दूसरे के दुःख-दर्द से अपने को जोड़ लेना चाहता है, सचमुच जिंदगी एक कटी हुई कहानी है। धर्म और ईश्वर के प्रति विश्वास में भी आजादी के बाद के जनजीवन में, एक अस्पष्ट-सा परिवर्तन देखने को मिलता है। प्राचीन भारतीय मूल्यों और आधुनिक मूल्यों में एक व्यापक टकराहट दिखाई देने लगी है और इसी का परिणाम आज के मनुष्य को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है जिसमें उसे उसकी अभिलाषा बचाने का प्रयास कर रही है।

ई. बनावटीपन और हीन-ग्रंथि की अनुभूति का अहसास – आज के इस भौतिकता प्रधान वातावरण ने व्यक्ति को कृत्रिम, बनावटी व्यवहार करनेवाला बना दिया है। भौतिकता की दौड में कोई पीछे नहीं रहना चाहता, अतः साधन न होते हुए भी उनकी पूर्ति किसी भी तरह करना चाहता है अन्यथा वह सोचता है कि

दूसरे भी उसी के बारे मे ही सोंच लें। इस अभाव की पूर्ति न पाने पर वह मन में हीन भावना की अनुभूति भी करने लगता है। 'हमे गिरानेवाले' कहानी में निम्नवर्गीय जीवन की विवशताओं का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। समाज इतना क्रूर है कि गिरे हुओं को और गिराता है, इसका अहसास बिहारी को बाजार में होता है क्योंकि लोग उसकी अभावग्रस्तता का मजाक उड़ाते हैं। 'एक और दुराचारिणी' की नायिका जिंदगी के भागों में अभावों से जूझने के साथ ही पति और प्रेमी के बीच झूलती रहती है। वह पति के अत्याचारों से बेजार है पर उसे छोड़ भी नहीं पाती क्योंकि वह उसका पति है। 'सच ! मैं सुंदर हूँ !' कहानी की भाभी के विचार उसकी पुष्टि करते हैं, "नारी को क्या पति और देवता की ही आवश्यकता होती है ? वे पूजा के पात्र हो सकते हैं, लेकिन प्यार के नहीं। और नारी चाहती है प्यार, रस, उन्माद ! किसी का होने या किसी को अपना बनाने की साध !"[२] उसी प्रकार 'गृहस्थी' कहानी की वीणा स्वाभिमानी है पर अपने पति की आदतों से तंग आती है। पति समाजसेवा और देशसेवा में लीन है, किसी की परवाह नहीं करता। विष्णु प्रभाकर जी ने समाज की मनोवृत्तियों का गहराई से विश्लेषण किया है, 'पिचका हुआ केला और क्रांति' उनकी एक ऐसी कहानी है जो सर्वहारा वर्ग के दीन-दरिद्र बालकों के करुण रूप को उतनी ही सशक्तता तथा यथार्थता के साथ प्रस्तुत करती है जितनी विश्वसनीयता के साथ मध्यवर्गीय संस्कारों में पलनेवाले मि० सिंह के व्यक्तित्व को। अपने पुत्रों को जूतों से निर्दयतापूर्वक पीटनेवाली माता के हृदय के भावों को कहानीकार ने बड़ी ही जीवंत शैली में विश्लेषित किया है। 'इन्फिरियारिटी काम्पलेक्स' से आज हर मध्यवर्गीय व्यक्ति ग्रस्त है। उसमें इतनी हिम्मत नहीं की वह अपने को भी कुछ समझ सके। उसकी दृष्टि से हर दूसरे व्यक्ति से वह हीन है ऐसी अनुभूति करता है।

आधुनिक सभ्यता के नए परिवेश में नगरबोध का महत्त्व बढ़ता गया है। छोटे और बड़े नगरों में रहनेवालों के जीवन संबंधी दृष्टिकोण में बहुत बड़ा अंतर दिखाई देने लगा है। नगर में रहनेवाला व्यक्ति अधिकाधिक ग्राम और नगर के संधिस्थल पर खड़ा है। नगर में रहने वाला व्यक्ति अधिकाधिक स्वकेंद्रित और आत्मलीन हो गया है। समाज के कटे हुए अंश के रूप में नगरबोध से प्रभावित व्यक्ति की स्थिति विषम है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में आशंकाओं में जीनेवाली और उसके पाश में बँधकर पति देवता को असहाय कर देनेवाली नारी के हीनभावना-ग्रस्त व्यक्तित्व को भी नगर जीवन की इन सीमाओं में रखकर विश्लेषित किया है।

आज मध्यवर्गीय व्यक्ति के विचारों और व्यवहारों में मेल नहीं है। क्योंकि आज भी वह पारिवारिक मर्यादाओं और कुल प्रतिष्ठा की धारणाओं को छोड़ नहीं

सकता और आगे चलकर संकट में पड जाता है। 'कहानी की संवेदनशीलता-सिद्धांत और प्रयोग' ग्रंथ में डॉ० भगवानदास वर्मा का कथन बहुत कुछ स्पष्ट करता है कथन है– "हम कई बार बिना किसी कारण के अपने हीनता का अनुभव करते हैं और उस फर्जी हीनता को दूर करने के लिए कृत्रिम बड़प्पन को ओढ़ने की कोशिश करते हैं किंतु तब हमारी यह हास्यास्पद कोशिश बेकार हो जाती है और उसमें फिर एक विलक्षण व्यर्थता-बोध पैदा होता है और फिर इस चक्र से मुक्ति नहीं मिलती।"[३] 'नाग-फांस' कहानी का चंद्रसेन इसी मनोवृत्ति का पात्र है। अपने बेटे के विवाह में बढ़िया अंग्रेजी बाजे का ऑर्डर देते हैं। बड़ी-बड़ी मिठाइयाँ लाते हैं। बिरादरी में अपनी इज्जत बनाए रखने के लिए यह सब करना पड़ता है, ऐसी उनकी अपनी मान्यता है।

उ. यांत्रिकता और एकरसता का परिणाम – स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जन-जीवन भी यांत्रिकता से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। इससे वशीभूत हो आज का व्यक्ति यंत्रों का गुलाम बन गया है। वह आधुनिक जीवन में एक मशीन की भॉति चल रहा है। उसकी मानवीय भावनाएँ सूख-सी गई हैं। अपनी नियति को बनाने और बिगाडने का वह एक मात्र अधिकारी है किंतु उसका यह अभिमान मर गया है। आज स्वनिर्मित युग में वह स्वयं पराया है। उसके सामने ऐसी कोई दिशा नही है, जिधर मुड़कर उसे कुछ तसल्ली मिल सके उसके चारो ओर फैला मृत्युभय, संत्रास, अकेलापन और अजनबीयत का बोध उसे निगल रहा है। उसका 'वह-खुद' जो किसी भी बाहरी, भौतिक या आधि-भौतिक के दबावों में आने से इंकार कर देता है, वह खुद आज अपने साधनों का साध्य बन गया है। 'रायबहादुर की मौत' कहानी इसे अच्छी तरह उजागर करती है। रायबहादुर की मौत पर आँसू बहाने वाले सभी एक-दूसरे को झूठी तसल्ली देते रहते तो भी उसमें हमदर्दी कहॉ होती है क्योंकि आना सहानुभूति के लिए होता है और वह टेलीफोन द्वारा बड़ी सरलता से भेजी जा सकती है।"[४] 'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी में यह अजनबीपन और भी गहराई से व्यक्त किया गया है। एक स्त्री के शव को देखकर लोग आपस में केवल चर्चा करते है। 'एक मौत समंदर किनारे' कहानी भी इसी महानगरीय सभ्यता का झूठा पर्दाफाश करती है। जाबाला के पत्र का यह वाक्य देखो 'रोबॉट के यांत्रिक मन और व्यक्ति के सजीव मन में सामंजस्य कैसे हो यह मैं नहीं समझ पा रही। शायद महानगर में तो मन होता ही नहीं। मिजाज या मूड होता है।"[५] इस प्रकार आज का मनुष्य अपने एकरस जीवन से ऊब गया है। उसकी जिंदगी भी सपाट चेहरे की जिंदगी बन गई है।

ऊ. अजनबीपन और अपरिचय की स्थिति – आज का व्यक्ति अपने परिवेश से सर्वथा अपरिचित है। वह इस अजनबीयत और अपरिचय से भी त्रस्त है। यही कारण है कि वह सर्वत्र परिचय और पहचान की तलाश कर रहा है। यह अजनबीयत और अपरिचय की स्थिति व्यक्ति को त्रस्त कर देती है क्योंकि आज

जीवन में परायापन बहुत कुछ बढ़ गया है। अतः आज का व्यक्ति हर जगह अपनों की तलाश में है। 'एक अनचीन्हा इरादा' कहानी का पात्र इसी प्रकार की मानसिकता से त्रस्त दिखाई देता है। माँ-बाप के हर रोज के झगडे और उसी के कारण पूरे परिवार का विश्रृंखल होना लोगों को उसके और, परिवार की ओर देखने की दृष्टि, फिर उसकी त्रस्त-मनस्क स्थिति पूरी कहानी में चित्रित होती है। रोज-रोज की इन बातों से वह पूरी तरह ऊब चुका है। परिवार के बारे में उसके सपने जो वह देखता है, वह बिल्कुल चकनाचूर हो गए हैं। इन सारी बातों से वह अपने आप को बचाना चाहता है लेकिन अजीब बात है कि वह जितना बचाना चाहता है उतना ही उसमें फँसता जाता है।"[६] परिवेश से भी अपरिचित बनता जाता है। लेकिन आज की बात सोचते ही एक कंपकंपी-सी उसके अस्तित्व को झनझना देती है। वह अपने चारों ओर बिल्कुल नहीं देखता। दौड़ती हुई बसें, कारें, स्कूटर तेजी से आते-जाते मर्द-औरतें, बनी-बनी नौजवान लड़कियाँ, अकडते युवक कहीं भी तो कोई उसे आकर्षित नहीं करता। जैसे वह इस भीड़ मे अनजान छोड दिया गया हो। वह अकेलापन भी उसके लिए अनजाना है। कभी-कभी उसे चारों ओर फन उठाए साँप दिखाई देते हैं। फिर मछलियाँ ही मछलियाँ तैरती हुई निकल जाती हैं। फिर जैसे उसके कान के पास से होकर बहुत-सी चिडियाँ उड जाती हैं। साँप, मछली, चिडियाँ- यह भीड का एक भाग जिसके भीतर भय और यंत्रणा की परतें जमती रही हैं और उधर से घिसी आती हैं चिलचिलाती धूप और फिर सडकों पर भौंकते आवारा कुत्ते, आवारा गायें, लेकिन वह स्वय वैसे ही गुमनाम, वैसे ही मरा हुआ सब कुछ अस्वाभाविक-"[७] परिवेश में भी चारों तरफ भय ही समाया हुआ है।

ए. निराशा, व्यथा, विसंगति और रिक्तता बोध की अनुभूति – आधुनिक व्यक्ति निराशा, व्यथा, विसंगति, शून्यता, रिक्तताबोध आदि से घिरा हुआ है। विष्णु प्रभाकर जी ने आज के व्यक्ति की इन स्थितियों का चित्रण बड़े ही सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। 'कितने जेब कतरे' की साधना को भी निराशा ने घेर रखा है। साधना का कथन इसकी ओर संकेत करता है। 'वह जीवन में आई एक भयातुर अजनबीपन से बाहों की जकड में मिलनेवाले सुख कीं अंतरंग सघनता तक पहुँचनेवाली प्रक्रिया को.......... मैंने परिवार के पालन के लिए देह को दाँव पर लगाया था, अपने सुख के लिए नहीं। देह तो एक जिन्नस है, पर मन और मन के मूल्य........."[८] 'सलीब' कहानी के प्रमोद सक्सेना के मन में भी इसी तरह व्यर्थता का ही भाव है, मैं भीड़ में अकेला थोड़े ही हूँ और मैं माँगता कहाँ हूँ। मैं उनका काम करता हूँ, वे प्रसन्न होकर मुझे कुछ देते हैं।"[९] यह व्यर्थता ही उसे खा रही है। 'हिमालय की बेटी' की रेवती में पूरा आत्मसंघर्ष ही भरा है। श्रीधर उसके प्रेमी के पुत्र को अपना पुत्र मानकर चलता है, मात्र रेवती का प्रेमी कुशलानंद उसे और बेटे को छोडकर फौज में भर्ती हो जाता है। श्रीधर दो बार अपने प्राणों

की बाजी लगाकर बेटे की रक्षा करता है, मात्र उसका अंत उसी में हो जाता है। कुशलानंद फिर से रेवती के सामने शादी का प्रस्ताव रखता है तो वह उसे ठुकरा देती है। अपनी व्यथा को अपने आप सहती रहती है। ऐसे अनेक पात्र विष्णु जी की कहानियों में मिलते हैं।

ऐ. स्वातंत्र्यबोध की अभिव्यक्ति – व्यक्ति कभी किसी प्रकार की परतत्रता स्वीकार नहीं करना चाहता। वह सदैव स्वतंत्र रहना चाहता है। यह स्वतंत्रता दोनों तरह की होती है– शारीरिक और मानसिक। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत का हर नागरिक स्वतंत्र है, अतः वह अपनी भावनाओं, विचारों आदि पर भी किसी का बंधन नहीं स्वीकारता। विष्णु प्रभाकर जी ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को अपनी कहानियों का विषय बनाता है। 'अर्द्धनारीश्वर' कहानी की नायिका अपनी स्वतंत्र विचार वृत्ति से शादी का निर्णय लेती है। 'आश्रिता' कहानी की सोना विधवा है। अजित उसकी सहायता करते हैं तो लोगों को सहा नहीं जाता। समाज को वह स्पष्ट उत्तर देती है, "क्या किसी विधवा के प्रति जरा भी सहानुभूति दिखाना उससे विवाह करने के लिए होता है ? क्या प्रेम का अंत प्रेयसी की वासना में ही है ? दुनिया ने माना है– विवाह की इच्छा के बिना युवती कभी किसी के साथ रह नहीं सकती--"[१०] अजित के मन में दुनिया का भय है, मात्र सोना स्वतंत्रता से अपने जीवन संबंधी निर्णय लेना पसंद करती है। अस्तित्ववाद जीवनदर्शन के अनुसार मनुष्य अपने विषय में सोचने, समझने, जानने, निर्णय लेने और कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। स्वतंत्रता मनुष्य को मिलनी भी चाहिए, वह स्वतंत्र है किन्तु स्वतत्रता का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार व्यक्तिमन की विभिन्न प्रवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण कहानी में हुआ है।

२. परिवार जीवन से संबंधित कहानियाँ – स्वतंत्रता के बाद भारत वर्ष के आंतरिक स्वरूप के साथ उसके बाह्य स्वरूप में भी बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में इस बदलते हुए स्वरूप को ही अभिव्यंजित किया गया है। 'द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है, "आज की कहानी ने विस्तृत जीवन-परिवेश लिया है और उसके विविध पक्षों के उभरे-दबे कोनों को उजागर करने का प्रयास किया हैं।"[११] इसी में एक पक्ष है परिवार जीवन। स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, इसका बहुत बडा परिणाम सामाजिक जीवन पर हुआ है। समाज में परिवार का अनन्य साधारण महत्त्व है। समाज का निर्माण ही परिवारों से होता है। इसलिए दूसरे किसी समूह की अपेक्षा परिवार का प्रभाव सामाजिक जीवन पर किसी न किसी तरह होता ही रहता है और वह दूरगामी होता है। मनुष्य के जीवन की बुनियाद परिवार में ही रची जाती है। इसी पृष्ठभूमि पर विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में सामाजिक परिवर्तन के इस बाह्य पक्ष पर दृष्टिपात करना उचित होगा।

अ. परंपरागत मान्यताओं और नैतिक बोध का विघटन – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय युवक ने परंपरागत मान्यताओं और रूढ़ नैतिकता के प्रति विद्रोह करना शुरू किया। वह परंपरागत मान्यताओं के बंधन में जकडा नहीं रहना चाहता था। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही नए भारत में जीवनगत आस्था के दो स्पष्ट रूप दिखाई देने लगे थे। वह एक था जो पुराने आदर्शों, मूल्यों और रूढियों के साथ पूरी सच्चाई से जुड़ा हुआ था। दूसरा वर्ग सभ्यता के नए उपकरणों को स्वीकार करने के साथ-साथ समस्त प्राचीन रूढ़ियों और अंधःविश्वासों को समाप्त करके नए जीवन को अपनाने की बात करता था। लेकिन आज प्राचीन भारतीय मूल्यों और आधुनिक मूल्यों में एक व्यापक टकराहट दिखाई देने लगी है। जहॉ-जहॉ व्यावहारिकता की जगह हमारी परंपरा ने भावनिक आदर्शों का पल्ला पकडा है, आज वे सारे आदर्श हमारे लिए बेकार हैं। वैज्ञानिक प्रगति ने धर्म को बेकार सिद्ध कर दिया है। वर्ण-व्यवस्था एवं जाति-व्यवस्था भी आज के समाज में संभव नहीं हैं। आज जीवन-संबंधी दार्शनिक मान्यताएँ भी अव्यावहारिक सिद्ध हो चुकी हैं। अतः आज का व्यक्ति धर्म के प्रति अधिक आस्थावान दिखाई नहीं देता।

विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों द्वारा सुधारवादी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। उनकी कहानियाँ मानवता के आधार पर समाज को सामंजस्य में लाने का प्रयास करती हैं। 'डायन' कहानी अंधःविश्वास में डूबे समाज की मानवीय दृष्टि का खोखला और निर्मम रूप प्रस्तुत करती है। 'पतिव्रता' की सुमित्रा अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है और सेवापथ पर दिवंगत पति के अधूरे कार्यों को संपन्न कराने में अपना जीवन लगा देती है।

परिवार मानवीय संबंधों की एक महत्त्वपूर्ण इकाई भी है परंतु इसमें भी पारिवारिक कई मान्यताएँ आज खोखली सिद्ध हो गई हैं। आज हमें परिवार का रूप विघटित होता हुआ दृष्टिगत हो रहा है किंतु परिवारगत भावना, सेवा, श्रद्धा आदि तत्व वहॉ दृष्टिगत नहीं होते। इस दृष्टि से आज उस पर किसी प्रकार का नैतिक बंधन नहीं है। हर पल बदलती गई मान्यताओं, विचारधाराओं और मशीनी जिंदगी के कारण परिवार और समाज के संबंध में पर्याप्त परिवर्तन आया है। आज शिक्षा-प्रसार के साथ-साथ चिंतन तथा विचारों की दृष्टि से समाज के साथ व्यक्ति के महत्त्व को भी स्वीकृति मिलती जा रही है। इसी कारण सामाजिक दृष्टि से परिवार के सदस्यों के प्रति होनेवाला आत्मीयता का भाव घट जाने से तथा स्वार्थ-वृत्ति से संयुक्त परिवार विघटित होकर अनेक विभक्त परिवार के रूप में बिखर गया है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में टूटे हुए संयुक्त परिवार के कई सक्षम चित्र मिलते हैं। ये पारिवारिक सदस्यों के परस्पर संबंध को अच्छी तरह स्पष्ट करते हैं।

पारिवारिक संबंधों में सास-बहू का संबंध महत्त्व का है। सास-बहू का संघर्ष हमारे समाज में चलता ही रहा है। वास्तव में सास-बहू दोनों को भी माँ-बेटी

की तरह एक-दूसरे के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए, जिससे परिवार के सभी सदस्यों को शांति प्राप्त होती है। विष्णु जी ने 'संघर्ष के बाद' कहानी में इसको स्पष्ट किया है। पारिवारिक सदस्यों के परस्पर स्नेह-संबंध संयुक्त परिवार के संगठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इसके साथ परिवार के बिखरे रूप को अभिव्यक्ति दी है। 'दूसरा वर' कहानी मे एक ऐसे परिवार का चित्र प्रस्तुत किया गया है, जिसका जीवन रूढियों तथा सामंती संस्कारों से ग्रस्त है। संयुक्त परिवार में मध्यवर्गीय विधवा स्त्री को अपनी वैयक्तिक इच्छाओं और रुचियों का गला घोटना ही पडता है। आज हम किसी भी मांगलिक कार्य मे उसका सहयोग नहीं मानते। अपनी इच्छा के अनुसार फिर से शादी करना पसंद भी नहीं करते। लेकिन विष्णु जी सभी पारिवारिक संस्कारों को स्वीकार करते हैं। साथ-साथ उनमें आधुनिक दृष्टिकोण भी स्वीकार करते हैं। 'आश्रिता' की सोना, उन्होने इसी दृष्टिकोण से चित्रित की है। 'अधेरे आंगनवाला मकान' कहानी द्वारा उन्होंने टूटे हुए संयुक्त परिवार का चित्र प्रस्तुत किया है। आज सयुक्त परिवार प्रथा अपनी उपयोगिता खो चुकी है, उसके गठन में केवल दोष ही रह गए हैं, इसका विशुद्ध चित्र 'खिलौने और बेटे' में मिलता है।

ब. पारिवारिक विघटन और बदलते स्त्री-संबंधों का चित्रण – वर्तमान परपरागत मूल्यों के विघटन का ज्वलंत प्रतीक संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन है। यद्यपि यह स्थिति स्वतंत्रता से पूर्व ही उत्पन्न हो गई थी। उसमें स्वतंत्रता के बाद अधिक तीव्रता और व्यापकता आई है। संयुक्त परिवार प्रणाली भारतीय समाज और सस्कृति की रीढ रही है। सास्कृतिक उन्नयन के लिए उपेक्षित प्रेम, दया, सहानुभूति, सहयोग आदि उच्च कोटि की संवेदनाओं का विकास संयुक्त परिवार में ही होता माना जाता है कितु आधुनिकता और व्यक्तिवादिता के प्रसार तथा औद्योगीकरण के विकास के साथ-साथ उक्त संवेदनाएँ उदासीनता में परिवर्तित होने लगी हैं। परिणामस्वरूप सयुक्त परिवार या तो टूट-टूट कर व्यक्ति-परिवार इकाई परिवार में परिवर्तित होने लगे हैं अथवा फिर वे वैमनस्य, द्वेष और कलह के घर बनकर रह गये हैं। इसी संदर्भ में 'हिंदी उपन्यास और जीवन मूल्य' ग्रंथ में डॉ० मोहिनी शर्मा का वक्तव्य है, "स्वातंत्र्योत्तर भारत में बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण अथवा अर्थाभाव एव अर्थ-चेतना के परिणामस्वरूप पूर्व स्थापित पारिवारिक मूल्य लड़खडाने लगे है।"[१२] विस्तृत अर्थों में आज पारिवारिक विघटन, सदस्यों को एकता में बॉधने वाली स्थितियों और क्रियाओं का कमजोर हो जाना, टूट जाना या उसमें असामंजस्य की स्थिति दिखाई देती है।

पारिवारिक जीवन का और एक केंद्र बिंदु पति-पत्नी का पारस्पारिक संबंध है। दोनों में आपसी सद्भाव एवं सहयोग से परिवार का जीवन सुखी-सम्पन्न एवं स्वाभाविक बन सकता है। सबंध-विच्छेद की स्थिति में परिवार विश्रृंखल होने लगता है। इसे हर वैवाहिक संबंध पर आधारित मानते हैं। वस्तुतः पति-पत्नी की

सार्थकता परिवार के विकास में है अर्थात् नारी के मातृत्व विकास में है। आज पति-पत्नी के परंपरागत सबंधों में भी परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन अत्यंत सूक्ष्म एवं जटिल है। 'स्वातत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज-सापेक्ष अध्ययन' ग्रंथ मे डॉ० कीर्तिकेसर के विचार इसकी पुष्टि करते हैं, "संबंधों में असंबद्धता समा गई है। इस असंबद्धता की अभिव्यक्ति कहीं आवरण मे भी है और कहीं-कहीं केवल मानसिकता में भी है। परिवर्तन का मुख्य कारण अर्थतत्व है और सहवर्तीकारक मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों तथा सामाजिक विषमताएँ है।"[१३] विष्णु प्रभाकर जी की कहानी 'ठेका' में इसी मानसिकता का चित्रण है। उच्च-मध्य वर्ग में प्रेम और अभिसार साथ ही चलते है। पति पत्नी को एक तरह से अपने आर्थिक संकट मे इस्तेमाल ही करता है। इस कहानी का व्यंग्य उस पारपरिक मान्यता पर है जहॉ पति अपनी पत्नी का मालिक अथवा स्वामी होता है और वस्तु की तरह उसका क्रय-विक्रय कर सकता है। जो उसे व्यापारिक दॉव पर लगा सकता है किन्तु नारी अपनी इच्छा से पत्नीत्व की सीमा पार करे तो उसे सहन नहीं कर सकता। 'ठेका' कहानी मे पति की पत्नी सबंध में यही मान्यता है, 'पति है, स्त्री आखिर स्त्री है उसे ढील चाहे जितनी दो पर रस्सी अपने हाथ मे रखनी चाहिए।"[१४] वह पत्नी की सामाजिक स्वतंत्रता और अन्य पुरुषो के मध्य स्वतंत्र विचरण से क्षुब्ध है। संतोष जब अपने संबंधो के प्रभाव के बल पर एक बडे ठेके का स्वीकृति पत्र लाकर पति के हाथ में देती है तो वह उस पर न्योछावर-सा हो जाता है। उसके क्रोध, असतोष, अवसाद सबका समाधान हो जाता है। पति पत्नी के इस सबंध की स्थिति यह है कि वह जानता है कि सतोष बडी सामाजिक है। खूब मिलती-जुलती है। सरकारी विभागो के प्रमुख कर्मचारियों से उसकी रब्त-जब्त है। इसका प्रारम्भ उसी ने तो कराया था। पत्नी के सबंधों को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग में लाता है। इस प्रकार पति पत्नी दोनों की दृष्टि में बदलाव आया है।

आज विवाह सबधी दृष्टिकोण मे भी उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है। विवाह केवल हर व्यक्ति का अधिकार और निजी समस्या समझी जाने लगी है। मध्यवर्गीय और आर्थिक रूप से पिछडे परिवारो में यह समस्या काफी गंभीर है किंतु आर्थिक रूप से संपन्न शिक्षित परिवारों में इसके बारे में माता-पिता काफी उदार दिखाई देते हैं। वहाँ दो पीढियों के बीच समायोजन की मानसिकता दृष्टिगोचर होती है। दोनों में अव्यवस्थित न करना, और स्वयं मकान के बाहर रात काटकार 'सात घंटे लेट' जाने वाली गाडी से चले जाना बहुत भीतर तक कहानी के बहू-बेटे को ही नहीं पाठक को भी छूता है। यह स्थिति बहुत-सी अनकही मनः स्थितियों को खोलकर कहानी को अविस्मरणीय बना देती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में आधुनिकता का बुद्धि स्तर और मनोवैज्ञानिक पकड मुख्य रूप से निहित है। 'अंधेरे आँगन वाला मकान' कहानी में एक बहुत बड़ा जर्जर भवन है। इसमें थके-हारे वृद्ध-वृद्धा मकान की समस्त भयावहता से तदाकर हो गए हैं।

ऐसे में चढ़ती उम्र के माधव और दीप्ति को जो वहाँ अतिथि सत्कार मिलता है, वह ऊँचा और रुचिकर होने पर भी जिस प्रकार उनके गले नहीं उतरता, वह पाठकों में स्थिति के संत्रास को संप्रेषित करने के लिए पर्याप्त हैं।

बच्चे कितने भी बड़े क्यों न हो उनके सुख-दु:ख की चिंता माँ को हमेशा रहती है। बेटे के सुख में अपना सुख मानने वाली कई मध्यवर्गीय नारियों के चित्र विष्णु जी की कहानियों में मिलते हैं। 'फांसिल इंसान और' कहानी के विनोदशंकर स्वयं एक अभिनेता होने के नाते अपने बच्चों में भी इसी प्रकार के अच्छे गुणों को देखना चाहते हैं। हर एक पिता की यही कामना रहती है कि अपना बेटा अपने गुणों से, कर्तव्य से भविष्य उज्ज्वल करेगा। विनोदशंकर के अपने सारे मेडल और चित्रों की प्रदर्शनी के आयोजन के पीछे यही अच्छा भाव रहता है। लेकिन बच्चों और पिता के विचारों में अंतर आ जाने के कारण सब केवल 'फांसिल' मात्र रह जाता है। विष्णु जी की कई कहानियों में ऐसे परिवारों की चर्चा है जिसके सदस्य विदेशों में रहते हैं, शायद यह आधुनिकतम अभिजात वर्ग ही एक पहचान है। इस वर्ग में वे अनिवार्य रूप से मनोवैज्ञानिक तनाव और जटिलता की व्याख्या करते जाते हैं। ऐसा लगता है कि आधुनिक बुद्धिवाद बिना मनोवैज्ञानिक संदर्भों के उभर ही नहीं पाता है। 'भटकन और भटकन' में आधुनिक आध्यात्मिक साधना-केंद्रो की वास्तविकता को खोल कर रख दिया है। वहॉं मुक्ति के बहाने शरीर-भोग के अर्थार्थी जुटते हैं, नशा और गोलियाँ खाकर अथवा सेक्स के सहारे स्वर्गीय आनंद की साधना करते हैं। ऐसे ही साधना केंद्र से प्रत्यावर्तित सर्वजीत घाट-घाट का पानी पीकर एक दिन रेल के सफ़र में सांत्वना से मिलता है। ऐसा लगता है कि साधना-शिबिरों से दोनों को केवल भटकन ही उपलब्ध हुई है। ठीक एक ऐसी दुनिया है काले धनवाले पूँजीपतियों की, जिनकी दुनिया में लेखक अपनी एक पात्रा को भेजता है, जिसे पाठकों की सहानुभूति भरपूर रूप से प्राप्त होती है। तृप्ति के लिए भटकती इसकी मौत आधुनिक नारी की मौत हो जाती है। 'एक रात-एक शव', 'बे-माता' आदि कहानियों में ऐसे ही पारिवारिक चित्र मिलते हैं।

'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी का पारसनाथ मरणासन्न है। उसके पिछले पाप एक-एक करके सामने आ रहे हैं। उसने अपने सगे भाई निरंजन को संपत्ति के लोभ में नष्ट कर दिया था। इसी प्रकार पत्नी, पुत्री और परिजन के साथ किए पाप सब सामने एक-एक कर साकार होते हैं। एक पारसनाथ उन्हें स्वीकारता है, दूसरा अस्वीकार करता है और पाठक इस मनोकेस को रुचि के साथ देखता है। ऐसा लगता है कोई एबनॉर्मल पात्र मंच पर एकालाप में तन्मय हैं। उसकी ऊब और कुंठा में घुटा दोहरा व्यक्तित्व प्रतीत होता है। इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में आज के व्यक्ति की घुटन, व्यथा, भय, संत्रास और मृत्यु-बोध का विभिन्न स्तरों पर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

इ. अस्तित्व की रक्षा और जीने की उत्कट अभिलाषा – स्वातंत्र्योत्तर हर भारतीय अपने अस्तित्व के प्रति बडा चिंतित है। वह किसी तरह अपने को बचाए रखना चाहता है। संकटग्रस्त जीवन से यद्यपि वह दुःखी है तथापि वह जिदगी से जोंक की तरह चिपटा हुआ है, उसे छोडना नहीं चाहता। यह जिजीविषा विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियो मे विविध स्तरों पर चित्रित की है। जिंदगी की कई विसंगतियों को भोगता हुआ आधुनिक व्यक्ति जीवन के बहुस्तरीय संत्रास का अनुभव कर रहा है। वह दिशाहीन है, व्यक्तिहीन है और मानसिक दृष्टि से कुंठित भी है। जीवन के अभावात्मक स्वरूप को झेलता है, फिर भी वह जीना चाहता है, जीता चला जाता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के पात्रों के अंतस में छिड रहे निरंतर संघर्ष की अभिव्यक्ति या तो वे स्वयं करते हैं या पात्र करते हैं। मानव मूल्यों का विघटन, अपने अस्तित्व की संदिग्धता, आरोपित आदर्शवाद तथा अपने अचेतन की चेतना आदि ने विष्णु प्रभाकर जी के पात्रों को अधिक क्रांतिकारी बना दिया है। एक ओर उसका आक्रोश है तो दूसरी ओर वह उतना ही विवेकी और तर्कशील होता जा रहा है। 'शरीर से परे' कहानी की रश्मि आदि कुछ पात्र ऐसे हैं जो 'जो हैं सो हैं' को स्वीकार कर अपने मन के घात-प्रतिघात को स्वय नहीं समझने का प्रयास करते, बल्कि लेखक से 'अन्तर्वेदना' की चंद्रा को सौंदर्य की स्वाभाविक पूँजी से वंचित करते रहने के कारण विवाह की हाट में अपना मूल्य बढाने के लिए प्रयत्नशील रहना पडता है। विष्णु जी की यह कहानी आज के समाज का वास्तविक रूप हमारे सामने प्रस्तुत करती है। व्यक्ति-व्यक्ति के संबंध मे सबसे जटिल और अनिवार्य संबंध स्त्री-पुरुष का आपसी संबंध हैं। इस दृष्टि से पारिवारिक एकता को बनाए रखने के लिए वैवाहिक प्रश्नों का विचार करना भी आवश्यक हो जाता है। 'सच ! मैं सुंदर हूँ' कहानी की भाभी प्रकृति के साथ जीवन की विषमताओं को खोना चाहती है। पति प्रेम के लिए वह तडपती है लेकिन पति ने उसके जीवन को कभी एक लकीर से अधिक नहीं समझा। वे अपने में सिमट लीक पर चलते रहते हैं। इसलिए दोनों में अंतर आता है। इसी के कुपरिणामस्वरूप कहीं कोई युवती गिरती जाती है और कोई अपनी पति की सेवा में श्रद्धा के साथ आत्मोत्सर्ग करती है। 'एक ओर दुराचारिणी' की नायिका जिंदगी के अभावों से जूझने के साथ पति के अत्याचारों से बेजार है पर उसे छोड़ भी नहीं पाती।

मध्यवर्गीय समाज में अंतर्जातीय विवाह के परिणाम पूरे वैवाहिक जीवन को झकझोरते हैं। 'संघर्ष के बाद' की हेमा और निर्वाण दोनों भिन्न जातियों के होते हुए भी परस्पर विवाह कर लेते हैं। उन्होंने अपने को सबल एवं समर्थ समझकर समाज की खोखली मान्यताओं, अन्य परंपराओं और सडे-गले विचारों की अवहेलना कर अपना मार्ग चुन लिया है। फिर भी निर्वाण की माँ को यह ब्याह पसंद नहीं, दोनों को पारिवारिक कलह से मुकाबला करके घर छोड़ना पड़ता है।

उसका भी उन्होंने स्वीकार किया है। यहाँ 'संस्कृति और समाजशास्त्र' ग्रंथ से उद्यत डॉ० रांगेय राघव का यह कथन सब कुछ स्पष्ट करता है, "मेरे सामने तो स्त्री और पुरुष संबंधों का वह रूप आदर्श बनकर आता है, जब दोनों ही जीवन के प्रति जागरुक होकर परिवार को इस तरह चलाए जैसे दो बैल गाडी को चलाते हैं।"[१५]

पारिवारिक जीवन का प्रमुख आधारस्तभ दांपत्य जीवन है। आज नारी और पुरुष की आकांक्षाएँ अलग-अलग होने के कारण रूढ़ियों में भी भिन्नता होती है। पैसा और पद के अहंकार के कारण दोनों के जीवन स्तर में स्वाभाविक रूप से असमानता आ जाती है। इसी कारण मध्यवर्गीय पति-पत्नियों में टूटते हुए दांपत्य जीवन के कई चित्र मिलते हैं। विष्णु प्रभाकर जी की 'कैक्टस के फूल' की प्रेमा और गिरीश दोनों की मनोवृत्तियों में भेद होने के कारण सामंजस्य स्थापित नहीं होता। प्रसिद्धि के कोलाहल मे फँसकर गिरीश प्रेमा को किसी सामाजिक कार्य मे जाने नहीं देता। 'शरीर से परे' की रश्मि का पति संदेही प्रकृति का है। वह चाहता है कि रश्मि अन्य घरेलू पत्नियों की तरह रहे। प्रदीप जैसे साहित्यकार से वह प्यार करती है। उसके साहित्य में उसे रुचि है। उन दोनों का प्यार भी 'शरीर से परे' का है। रश्मि के पति से यह सहा नही जाता। 'राजम्मा' मे पत्नी की हँसी के कारण पति का घबराना और इसी कारण राजम्मा का पति के मित्र के तरफ आकर्षित होना दांपत्य संबंध की दरकन का एक बिलकुल नया कारण और एक नई जीवन स्थिति है। इस प्रकार परंपरा से विच्छिन्न होकर तथा सभी प्राचीन मानव-संबधों के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। यहाँ तक कि पिता-पुत्र, माँ-बेटी, पति-पत्नी या भाई-बहन जैसे निकटतम संबंधो में भी जैसे एक अजनबीपन समाया जा रहा है, एक दूसरे पास रहते हुए भी बहुत दूर कर देता है।

अ. पीढ़ी संघर्ष – स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक जीवन में हमें दो पीढियो मे संघर्ष दिखायी देता है। पुरानी पीढ़ी के लोग जो पुरानी मान्यताओं और विचारों के समर्थक हैं और नई पीढी के लोग इन पुरानी मान्यताओं को तोड़ना चाहते है, बदलना चाहते हैं। अतः इन दो पीढ़ियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। विष्णु प्रभाकर की 'खिलौने' कहानी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। बच्चे कितने ही बडे क्यों न हो, उनके सुख-दुःख की चिंता माँ को हमेशा रहती है। बेटे के सुख में अपना सुख मानने वाले कई मध्यवर्गीय पात्र विष्णु जी की कहानियों में आते हैं। 'फांसिल इन्सान और-' कहानी के विनोदशंकर स्वयं अभिनेता है। अपने बच्चों में भी उसी प्रकार के अच्छे गुणों को देखना चाहते हैं लेकिन बच्चों और पिता के विचारों में अंतर आ जाने के कारण सब केवल 'फांसिल' मात्र रह जाता है। आज नई पीढ़ी के व्यक्ति के लिए प्राचीन मूल्यों का उल्लंघन कोई विशिष्ट घटना नहीं है किन्तु पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति के जीवन में

वहीं घटना उथल-पुथल मचा देती है। पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी पर अपना अधिकार जमाएँ रखना चाहती है। वह इस नई पीढी को भी अपने ही आदर्शों पर चलते देखना चाहती है। आज एक परिवार की दो पुश्तो के पारिवारिक बोध में अतर आ गया है, जिसके कारण दो पुश्तो में मानसिक संघर्ष की तीव्रता दिन-ब-दिन अधिक तीव्र होती जा रही है।

आ. आधुनिक नारी का परिवर्तित जीवन चित्रण – स्वतंत्रता के बाद भारतीय नारी के जीवन में पर्याप्त परिवर्तन आया है। एक ओर जहॉ परिवार का परंपरागत स्वरूप टूट चुका है वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता के कारण नवयुवा स्त्रियों के स्वरूप में परिवर्तन आया है। विष्णु प्रभाकर जी ने नारी के इस बदलते परिवर्तनशील स्वरूप का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानी 'राखी' बदलते मूल्यों की कहानी है जो परिवर्तित भारतीय मूल्यो और बदलते हुए आधुनिक मूल्यों के समन्वय को चित्रित करती है। यहॉ इन दोनों मूल्यों में संघर्ष नहीं समन्वय है क्योंकि ये मूल्य शाश्वत मूल्यों के साथ जुड़े हुए हैं।

जो स्त्रियाँ आजीविका के साधन स्वयं जुटाती थीं, उनकी मानसिकता में धीरे-धीरे व्यापक परिवर्तन आया उन्होंने जीवन और चिंतन के स्तर पर पुरुषों के समान ही स्वयं को प्रस्तुत करने की कोशिश की। 'मैं नारी हूँ' कहानी की रंजना एक बार ठुकराए गये प्रेम को फिर से स्वीकार नहीं करना चाहती। डॉ० मुखर्जी को रंजना का सीधा उत्तर इसकी पुष्टि करता है, "नहीं, आप नहीं आ सकते। जिस रंजना को आप खोजने आये हैं, वह मर चुकी है, मैं नारी हूँ और नारी अब अपने आत्मसम्मान की रक्षा करना चाहती है।"[१६]

आज नारी स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। वह स्वयं अपना रास्ता तय करना चाहती है। परंपरागत वर्जनाओं से आधुनिक नारी जैसे-जैसे मुक्त हो रही है, नवीन समस्याओं का सामना कर रही है। आज नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज में है किंतु वह उसे प्राप्त नहीं कर पा रही है। अपने पूर्ण व्यक्तित्व की खोज में नारी कई बार ऐसे विविध बिंदुओं पर आकर रुक जाती है, जहॉ उसके लिए यह फैसला करना कठिन हो जाता है कि उसका मार्ग किस दिशा की ओर जाता है ? 'अंधेरी सुरंग' कहानी की शिल्पा स्वयं एक अभिनेत्री है लेकिन वह अंदर से बिल्कुल टूट चुकी है। उसके पति अंकित केवल पैसा कमाने का एक साधन के रूप में उसकी ओर देखते हैं। नयन जो उसका एक दोस्त है और उसी के कारण पति का उसके प्रति देखने का दृष्टिकोण भी स्वार्थ से भरा हुआ है। शिल्पा का कथन उसकी विचारधारा को स्पष्ट करता है, "मैं भीतर से बहुत टूट चुकी हूँ सबको मेरी अल्हड़ता, मेरी शेखियाँ, मेरी सफलता की नजर आती है, मैं क्या हूँ, मुझे क्या चाहिए--- मेरे भीतर के छिपे दर्द को कोई नहीं देख सकता। या देखना नहीं चाहता। जो मेरे अपने हैं वे ही मुझे निगल जाने को आतुर हैं। सबको मुझसे पैसा चाहिए। पैसा, पैसा,, पैसा बस यही शब्द गूँजता रहता है अब मस्तिष्क में।"[१७]

'कैसी हो मरीअम्मा' कहानी की मरीअम्मा अपने प्रियतम को उसी रूप में स्वीकारना चाहती है। पति-पुरुष के रूप में देखना नहीं चाहती। अभिजात्य वर्ग के तर्क भी इस प्रकार नारी जीवन के बदलते स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं। 'भटकन और भटकन' कहानी के सर्वजीत के लिए दिया हुआ सांत्वना का यह करारा उत्तर, "मर्द है, तो उसे औरत चाहिए ही, मर्द तेज-पूँज है, औरत उसके तेज को झेलने वाली ये दलीलें अब बासी हो चुकी है। तुम्हारे जैसे चटोरे मर्दों के लिए नारी केवल वेश्या है।"[१८]

आज युद्ध की विभीषिका, दिनों-दिन बढ़ती महँगाई और देश के विभाजन के साथ तब लडकियाँ नौकरी करने लगी, वे न केवल आर्थिक रूप से स्वावलंबिनी हुई, वरन् माता-पिता और छोटे भाई-बहनों की पालक बनी, तो घर में उनकी स्थिति अनायास बदल गई और बेरोजगार भाइयों के लिए कहीं-कहीं उनका व्यवहार वैसा ही अपेक्षापूर्ण हो गया, जैसा कभी पहले भाइयों का बहनों के प्रति था। न केवल यह बल्कि माता-पिता को भी उनके इस व्यवहार में कोई असंगति दिखाई नहीं देती। 'कितने जेब कतरे' कहानी की सुगंधा को अपने परिवार के लिए अपना शरीर बेचने तक नौबत आती है और वह अपने भयातुर अजनबीपन से मिलने वाली सुख की अंतरंग सघनता तक पहुँचने वाली प्रक्रिया को याद करती रहती है। 'हिंदी कथा साहित्य : विविध संदर्भ' ग्रंथ में डॉ० कृष्णा रैना का वक्तव्य इसकी पुष्टि करता है, "आज की कहानी का सीधा संबंध संसार की व्यावहारिक और वास्तविक ज़िंदगी से है। यही यथार्थ नारी को ऐसी भूमिका पर ला देता है जहाँ वह पति के मृत्यु के पश्चात् टूटती नहीं, अपने बहाव के साथ बहती है। वह बहाव न हो तो उसके मन में गॉठ पड़ जाती है।"[१६] वह अपनी स्वाभाविक विकृतियों को दबाना नहीं चाहती। वह इस दृष्टि से समाज का किसी प्रकार का बंधन नहीं स्वीकारती। नारी कठिनाईयाँ झेलती हैं, मानसिक संघर्ष और तनाव से गुजरती हैं परंतु अपने आप को किसी दया का पात्र नहीं मानती। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय विधवा को भी स्वाभिमानी, संस्कारक्षम चित्रित किया है। 'आश्रित' कहानी की सोना पति की मृत्यु के बाद छोटे भाई किशन का पालन-पोषण करती है लेकिन वह एक बार विधवा होने के नाते, वह अजीतकुमार से शादी नहीं करती। 'नचिकेता' की शांति एक स्वाभिमानी औरत है। वह विधवा है पर समाज में से किसी की मदद उसे स्वीकार नहीं है। वह मरणासन्न है पर किसी का सहारा नहीं चाहती। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में आधुनिक नारी के परिवर्तित स्वरूप पर विभिन्न कोणों से प्रकाश डाला है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि आज की स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहते हैं। यही कारण है कि आज विवाह जैसे परंपरागत बंधन

ढीले पड़ गए हैं। वह विवाह से पहले पिता की पुत्री, विवाह के बाद पति की पत्नी और उसके बाद पुत्रों की माँ इन रूपों में जिंदगी भर गुलाम बनकर रहती थी, पर आधुनिक नारी कानूनी रूप से और उससे ज्यादा आर्थिक रूप से स्वतंत्र है। उसकी आर्थिक स्वावलबिता ने उसे अपने लायक पुरुष चुनने एवं न चुनने की शक्ति दी है। यही कारण है कि परंपरागत विवाह संस्था नाकारा साबित होने लगी है। एक ओर पुरुष स्वतंत्र रूप से सेक्स जीवन की माँग कर रहा है तो दूसरी ओर स्त्री विवाह संस्था को अपने व्यक्तित्व-रक्षा के अनुसार मोडना-मरोड़ना चाहती है। इन दो मॉगों के आपसी तनाव पर आज स्त्री-पुरुष सबंधों के कई प्रश्न और उनके उत्तर दिये जा रहे हैं।

इ. बदलते प्रेम संबंधों का चित्रण – आज स्त्री-पुरुष संबंधों के साथ ही प्रेम संबंधों में भी पर्याप्त परिवर्तन आया है। आज प्रेम संबंध मात्र सौंदर्य और भावुकता के परिणामस्वरूप स्थापित नहीं होते। अब प्रेम का रूढ नैतिक मूल्यों से कोई सबंध नहीं रह गया है। प्रेम अब नितांत व्यक्तिगत अनुभव है। अब प्रेम संबंधों में भी स्वार्थ, वासना, उद्देश्य तथा अपने-अपने व्यक्तित्वों के परस्पर उन्मीलन की सफलता या असफलता लक्षित होती है। 'आश्रित' कहानी के अजीतकुमार का सोना के प्रति प्रेम उसकी निराश्रयता को मिटाकर सोना के साथ उसके भाई किशन के भार को भी सहज स्वीकार करता है। 'खंडित पूजा' के नीलम और वीणा दोनों का व्यक्तित्व भिन्न है, फिर भी वे प्रेम के अटूट बंधन दोनों को अपने कर्तव्यों से दूर नहीं होने देते। 'साँचे और कला' की दुलारी और बिरजु का प्रेम साँचा बनकर उसके हृदय में बंद है। 'शरीर से परे' की रश्मि पति होते हुए भी प्रदीप जैसे कलाकार से प्रेम करती है जो आदर्श की एकता का प्रतीक बनकर रह जाता है। प्रदीप की पत्नी नीरना भी इसे स्वीकारती है। उसका कथन है, "जहाँ आदर्श की एकता है वहॉ अद्वैत है। जहाँ अद्वैत भावना है वहॉ शरीर आ ही नहीं सकता। इस अर्थ में चाहो तो तुम असाधारण कह सकते हो। वरना पति-पत्नी इसमें आते ही नहीं।"[२०] इसी प्रकार आज प्रेम का शाश्वत रूप एक ओर दिखाई देता है तो दूसरी ओर वही प्रेम स्वार्थ से बढ़कर विकसित होता दिखाई देता है। विष्णु जी की कहानियों में प्रेम के दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। प्रेम में स्वार्थ से अभिप्राय उस सामाजिक परिवर्तन से हैं जिसमें नारी इतनी 'आधुनिक' और 'प्रगतिशील' बन गई है। कि उसे अफसरों, मंत्रियों एवं दूसरे अधिकार प्राप्त लोगों से प्रेम करने, नारीत्व बेचने और स्वार्थपूर्ति का साधन ही माना जाता है। 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबाला एक साथ तीन-तीन लोगों से प्रेम का व्यवहार करती है– एक है पत्रकार बागची, दूसरा शैलेंद्र राजनीतिज्ञ और तीसरा व्यापारी सेठ बाजोरिया। इनके साथ उसका मुक्त वासनात्मक व्यवहार चलता है।

'कितने जेब कतरे' की सुगंधा अपने बॉस के साथ प्रेम का अनिर्बंध व्यापार ही करती है जो कहीं उसके वासनात्मक प्रेम का घनिष्ठ रूप स्पष्ट करता

है। उद्देश्य से अभिप्राय उस नई चेतना से है जिसमें नारी और पुरुष दोनों प्रेम करने के पूर्व या एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होनो के पूर्व अपने जीवन के महती उद्देश्यों के संदर्भ में एक-दूसरे को सोचने लगे हैं।

ई. धर्म तथा बोध की अवधारणा – आज हम देखते हैं कि धर्म का जो महत्त्व पहले था वैसा अब नहीं है। धर्म की अवधारणा ही बिलकुल बदल चुकी है। विज्ञान के उदय से सबसे बड़ा परिवर्तन यही हुआ कि उस ईश्वर की सत्ता पर से मनुष्य का विश्वास उठ गया है जो पहले कभी उसके जीवन का केंद्र था। आज भारतीय समाज में धर्म की पृष्ठभूमि कुछ अलग धरातल पर टिकी है। 'हिंदी कहानी : दो दशक' ग्रंथ में डॉ० सुरेश धिंगडा का कथन है, "भारतीय समाज में जातिगत आधारों पर विशेष प्रकार का जो स्तरीकरण कार्य करता रहा है और जो एक सीमा तक अब भी क्रियाशील है, उसकी पृष्ठभूमि में धर्म कार्यरत रहा है।"[२१] विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में इसकी आंतरिकता को दिखाया है।

सृष्टि के रहस्य की अज्ञता, स्वरक्षा की भावना और भय तथा वर्ग-बद्ध समाज-रचना से निर्मित आर्थिक वैषम्य आदि अनेक कारणों से ईश्वर एव धर्म संबंधी कल्पनाओं का विकास होता गया है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियॉ भी इससे अलग नहीं है। 'वह रास्ता' कहानी के ज्योति प्रसाद जैसे नेता अपने को सरमायादारों का दुश्मन कहते हैं परंतु वे हिदू हैं। वे सरमायादारी धर्म की शर्त मानते हैं तो अमजद उसको हटाना चाहता है। उसका स्पष्ट मत है, "धर्म ने कभी रास्ता सुझाया होगा, कभी उसका सहारा लेकर जनता भयंकर से भयंकर खतरों को पार कर गई होगी, पर आज यही धर्म उनके पैरो में बेडी बनकर पडा है जो न आगे बढने देता है न पीछे हटंने देता है--![२२] हमारे पंडो-पुरोहितो, संतों-महंतों ने स्वार्थ साधन के लिए अनेक भ्रांत धारणाऍ समाज में प्रचलित की थीं और समाज ने भी उस पर ऑंखे मूॅदकर विश्वास किया था। समाज की अंधश्रद्धा से लाभ उठाने में धर्म के ठेकेदारो ने कोई कसर नहीं उठा रखी। मध्यवर्गीय समाज मे इसी प्रकार के अंधविश्वासों में आस्था दिखाई देती है। 'अब्दुल्ला' कहानी में अब्दुल्ला अंधविश्वास में आस्था रखता हुआ दिखाई देता है। उसको लगता है कि वह अपनी जवानी में दूसरों के बच्चों से बड़ा प्यार करता था और इसी कारण उसका कोई बच्चा आज जिंदा नहीं रहता। इसी अंधविश्वास से उसकी सभी क्रियाऍ परिचालित होती हैं। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में मध्यवर्गीय व्यक्ति निराशा और संकट के समय ईश्वर का आर्त भावना से केवल स्मरण ही नहीं करता तो मानसिक आत्मबल के आधार पर समस्याओं को सुलझाने के लिए कामयाब भी रहता है।

आज ईश्वरी सत्ता का महत्त्व कम होते ही सभी धार्मिक मूल्य एक-एक कर टूटने लगे। मनुष्य को संचालित करने वाली महती शक्ति 'आत्मा' पर से भी

लोगों का विश्वास उठ गया है। मनोविज्ञान ने मनुष्य को आत्मा के स्थान पर उसे आंतर्रात्मा या विवेक से परिचय कराया। अब मनुष्य किसी भी धार्मिक-मूल्य की अध स्वीकृति के स्थान पर उसे तर्क की कसौटी पर कसने लगा है। विष्णु प्रभाकर जी ने इसी तर्क को जाति, धर्म की विषमता प्यार के माध्यम से मनुष्यता मे बदलने के लिए प्रयोग में लाया है। 'सफर के साथी' कहानी में इसका चित्रण आता है। हिंदुओं के सरगना कस्बे के मशहूर वैद्य लाला सुंदरलाल और मुसलमानों के नेता महबूब कसाई थे। दोनों संप्रदायों में मजहब के लिए मरमिटने की तमन्ना थी। फिर भी लाला सुंदरलाल महबूब के बच्चे को बीमारी से बचाता है और अंत मे दोनो एक हो जाते हैं। विष्णु जी धर्म, जातिवाद को समाप्त करके सांप्रदायिक एकता लाना पसंद करते हैं। उनकी 'परिवर्तन' कहानी इसका प्रमाण है। निशिकांत और उसकी पत्नी अहिंदुओं से नफरत करते हैं। लेकिन गाडी में उनका बच्चा जब अहिंदु लडकी के पास जाता है तो वह लड़की उसे खिलाती है। बच्चा खेलते-खेलते ट्रेन से नीचे गिरता है तब वह स्वयं कूदकर उसको बचाती है। इस कहानी के माध्यम से विष्णु जी हमें धर्म, जातिवाद को भूलकर मानवतावाद की ओर ले जाना चाहते हैं। आज मानव ने स्वयं को धर्म, जाति, देश आदि संकीर्ण परिधियों से भी ऊपर अनुभव किया और परंपरागत सीमाओं को विच्छिन्न कर सार्वभौमिक स्तर पर अपने अस्तित्व के निर्माण का प्रयत्न भी किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी कहानी में धर्मगत, सामाजिक सहिष्णुता के कारणों की खोज भी मिलती है। विष्णु प्रभाकर जी की 'अधूरी कहानी' निष्कलंक मित्रता से इसे दूर करने का संकेत करती है।

धार्मिक जीवन में परिवर्तन की प्रेरणा का एक स्रोत पश्चिमी दर्शन है। मानववाद, विकासवाद, मार्क्सवाद और फ्राइड के मनोविज्ञान का प्रभाव आधुनिक भारत के जीवन-दर्शन पर विशेष रूप से दिखाई देता है। विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ मानव का मूल्य बढता गया और मानवेतर का मूल्य घटता गया। विज्ञान ने नैतिकता को ईश्वरपरक न मानकर मानव-सापेक्ष मान लिया, अतः ईश्वरीय सत्ता के प्रति आस्था मे परिवर्तन आ गया, ईश्वर की परिकल्पना भी बदल गई और नैतिकता की भावना धर्म या ईश्वर के भय से निकलकर मानव के अस्तित्व के साथ जुड गई। इस परिवर्तन की तीव्र प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज के धार्मिक जीवन में अनेक अंतर्विरोध प्रकट हुए। इसमें विष्णु प्रभाकर जैसे प्रगतिशील कहानी लेखकों ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान में भरपूर सहयोग दिया और कहानी के माध्यम से मानव को श्रेय और प्रेय माना। मानव जीवन के विभिन्न पक्षों में और एक पक्ष है उसका सामाजिक जीवन। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इस पक्ष की अभिव्यक्ति भी उतनी ही सक्षमता से होती है।

उ. सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति – भारतीय समाज जीवन में नव जागरण १९वीं शती में पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से आरंभ हुआ। २०वीं सदी

के आरंभ में इसके साथ आर्थिक शक्तियों का भी प्रभाव बढ़ने लगा और उसी से राष्ट्रवादी चेतना का उदय हुआ है। इसी काल में सामाजिक चेतना सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित करती रही। इस प्रकार आर्थिक विकास से समाज में वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई। स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक चेतना के विकास की प्रवृत्ति समाज से व्यक्ति की ओर होने लगी। इस व्यक्तिवादी चेतना का संबंध पश्चिमीकरण तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास के साथ भी जुड़ा हुआ है। इस व्यक्तिवादी विकास के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के संबंधों का स्वरूप भी बदलने लगा है। इसी पृष्ठभूमि पर हम विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का एक समाज सापेक्ष दृष्टि से भी अध्ययन कर सकते हैं।

ऊ. नगरीय परिवेश-जीवन दृष्टि – स्वातंत्र्योत्तर भारत में परिवर्तन का दौर अपेक्षाकृत नगरों में तेजी से आया है। आज शहर में रहे व्यक्ति की चेतना पर दोहरे-तिहरे दबाव हैं। इन दबाओं से तनाव उत्पन्न हुए हैं। नगर समाज जीवन के यंत्रीकरण ने संबंधों की रागात्मकता को संकुचित कर दिया है। अतः व्यक्ति का व्यक्ति से संबंध, व्यक्ति का परिवार के अन्य सदस्यों से संबंध विच्छिन्न होने लगा। पारिवारिक संबंधों में व्यक्तिवादी मानसिकता की स्वार्थी और आत्मलिप्त मनोवृत्ति प्रकट होने लगी। विष्णु प्रभाकर जी की कई कहानियों में इसके उदाहरण मिलते हैं। 'धरती अब भी घूम रही है', 'ठेका', 'सलीब' आदि व्यवस्था की भ्रष्टता को बेनकाब करती है, कहीं वे सामान्य व्यक्ति की आर्थिक तंग-दस्ती का प्रामाणिक चित्रण करती है। यथा 'फूल टूटने से पहले' कहीं मनोवैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाती है यथा 'नाग-फांस', 'कितना झूठ', 'मेरा बेटा', 'अधूरी कहानी', 'मेरा वतन' आदि कहीं भारतीय संबंधों पर पडते आर्थिक दबाओं का सशक्त चित्रण करती है यथा 'राग अनुराग', 'अंधेरे आंगन वाला मकान', 'खिलौने और बेटे' आदि में टूटते दांपत्य जीवन का चित्रण करती है। 'एक और दूराचारिणी', 'राजम्मा', 'रहमान का बेटा' के पात्र बहुत ही भीतर तक मानवीय हृदय को संस्पर्श करते हैं। 'रहमान का बेटा' का रहमान अपनी पुरानी पीढी से विद्रोह प्रकट करता है। कहानी की ये दोनों स्थितियाँ बहुत प्रभावित करती हैं। भले ही बेटा सगा न हो किन्तु रहमान उसे उससें भी बढ़कर प्रेम देता है और सलीम का उस स्थिति को जानते हुए भी एक नए इंकलाब की तलाश में घर छोड़ देता है। सभी कुछ बहुत सहज आकर्षण में बाँध जिंदगी का एक विशिष्ट अनुभव सामने रखता है। मानवीय संवेदनाएँ परिवेश के अनुसार बनती-बिगडती रहती है। परिवेश विशेष का जीवन, परिस्थितियाँ, क्रियाकलाप अपना अलग-अलग महत्त्व रखते हैं।

आज के भारतीय जीवन में एक घुटन है और उस घुटन के साथ एक संघर्ष है। यह संघर्ष व्यक्ति और परिवेश के मध्य सामाजिक स्तर पर चलता रहा।

वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखा जाए तो यह एक समाज और जीवन का संघर्ष होता है। व्यक्ति का यह परिस्थितिजन्य संघर्ष अपने व्यापक संदर्भ में अपनी पहचान पाता है। कहानी इन्हीं संदर्भों को व्यक्त करती है। आज ग्राम से उखड़ा हुआ और शहर में अजनबी बना व्यक्ति अपनी संक्रान्त मानसिकता के साथ जीता है। उसी मानसिकता का चित्रण विष्णु प्रभाकर जी की कहानियॉ करती हैं।

नगरों की अपेक्षा हमारे गाँव पिछडे रह गए। योजनाओं से जितना लाभ शहरों को हुआ, उतना गॉवों को नहीं हुआ। अतः औद्योगीकरण के कारण लोग गॉव के कठोर आर्थिक अभावों के अभिशप्त जीवन से मुक्ति पाने के लिए शहरों की ओर बड़ी मात्रा में आ जाते हैं। शहरीकरण की प्रक्रिया से शहरों में आये इन ग्रामीणों से नगरों की समस्याएँ बढ गई हैं। प्राकृतिक विभीषिका का कोपभाजक शहरो की अपेक्षा गाँवों को अधिक बनना पडता है। अकाल, बाढ आदि प्राकृतिक विपदाएँ भी गॉव के लोगों को अधिक तबाह करती है। यह भी ग्रामीण व्यक्ति की नियति की एक विडंबना है। विष्णु प्रभाकर जी कहानियों में बंगाल के अकाल की भयावह स्थितियॉ तथा भूख से पीडित विलखते आदमी का यथार्थपरक चित्रण हुआ है। 'धरोहर' मे मृणाल अपने क्रांतिकारी पति की निशानी अपने बेटे को पालती है पर बंगाल का अकाल उसे असहाय बना देता है और वह अपने बेटे को किसी दूसरे के भरोसे छोड देती है। 'मार्ग में' कहानी की बुढ़िया अकाल में अपना सब कुछ खो चुकी है। स्वयं भी अकालजन्य भूख को झेल रही है और एक अपरिचित बच्ची को पाल रही है। 'मुक्ति' में तो पूरा परिवार ही अकालजन्य भूख की आग में भस्म हो जाता है। एक शेर अनाज के लिए सुधीर बाबू की माँ तडपकर मर जाती है, इसका चित्रण 'भूख और कुलीनता' में आता है। 'एक माँ-एक देश' कहानी की मृणाल बेटे को बंगाल का देशबंधु बनाने का सपना देखा करती है, गरीबी के कारण कुछ काम मिल जायेगा इसी आशा से शहर में आ जाती है, वह भी सपना टूट जाता है। इसलिए अंत में बच्चे के उज्ज्वल भविष्य की चिंता के कारण वह बच्चे को एक अमीर प्रौढा के पास छोड़कर चली जाती है। मृणाल का कथन उसकी विवशता स्पष्ट करता है, "जानती हूँ दीदी, मिट्टी का खेल है सब मिट्टी का घर है, मिट्टी से ही अन्न उपजता है पर दीदी उस मिट्टी का सोना बनाकर जीना क्या हो सकेगा ?"[२३] इस प्रकार महानगर में व्यस्तता के कारण व्यक्ति संवेदनाशून्य होता जा रहा है। मानव नियति की विडंबना का एक अन्य धरातल सामाजिक, राजनीतिक संदर्भो से जुडा है।

आधुनिक नगरबोध के साथ काला रोजगार, रिश्वतखोरी और गुंडागर्दी भी आवश्यक रूप से जुड़ी हुई है। नगरीय समाज के जीवन में प्रशासनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार की त्रासदी तो मध्यवर्गीय जीवन का नित्यप्रति का अनुभव है। विष्णु प्रभाकर जी की 'आकाश की छाया में', 'पिचका हुआ केला और क्रांति', 'धरती अब भी घूम रही है', 'सलीब' आदि कई कहानियों में स्वार्थांधता, रिश्वतखोरी,

संकुचितता, अमानवीयता आदि के चित्र प्राप्त होते हैं। 'आकाश की छाया' में सरला को पूरी योग्यता होते हुए भी नौकरी नहीं मिलती। सरकारी संस्थाओं में चल रहा भाई-भतीजावाद उसके आडे आता है। भ्रष्ट राजनीति का प्रभाव, प्रशासन की स्वार्थपरता अफसरशाही का भ्रष्टाचार एवं आतंक, न्यायालयो मे असुरक्षा की भावना कसने के साथ इस देश के मध्यवर्गीय नागरिक की घुटन, कटुता और असुरक्षा को महसूस करने लगा है। राजनीतिक सत्ता के कानून व्यवस्था के भ्रष्टाचार को इतना बढावा दिया है कि ईमानदार व्यक्ति ही मिसफिट होकर नहीं रह गया अपितु श्रम, कर्म विचार और योग्यता के सांस्कृतिक मूल्यो का भी अवमूल्यन हो रहा है।

सच तो यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भ्रष्टाचार राज्य की व्यवस्था का एक खुला चरित्र बन गया है जिसमें न लेने वाले को डर है न देने वाले को कोई नैतिकता है। 'धरती अब भी घूम रही है' में रिश्वतखोरी के सभी संदर्भ पात्रों द्वारा अभिव्यक्त हुए हैं। रिश्वत लेने वाला, रिश्वत देने वाला और अफसरशाही का रिश्वतव्यूह और बीच में पिस रहा है पूँजीवादी मूल्यों के दबाव में विवश ईमानदार आदमी जो रिश्वत लेने-देने के दॉव-पेंच नहीं जानता और तुरंत जेल के सीखचो में पहुँच जाता है। उससे भी भयानक है नन्हीं पीढी का व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की सच्चाई से साक्षात्कार, दस वर्ष की बालिका नीना अपने मौसा से कई बार रिश्वत लेत-देते और उसके लाभ के बारे में सुनती है। मौसा कहते हैं– जज को रिश्वत देते तो छूट जाते। एक जज ने तीन हजार लेकर एक डाकू को छोड दिया था। एक आदमी जिसने एक औरत को मार डाला था उसे भी जज ने छोड दिया था। एक प्रोफेसर एक लडकीं का एम० ए० पास कर दिया था क्योंकि वह खूबसूरत थी। आठ वर्ष के कमल और दस वर्ष की नीना को अपने पिता को जेल से मुक्ति दिलाने का रास्ता मिल गया था। कमल के पास पचास रुपये थे और नीना अपनी नन्हीं सुंदरता, भ्रष्ट न्यायाधीश को पेश कर रही थी कि उसके पिता को जेल से छोड़ दिया जाए क्योंकि उनका बचपन अनाथ हो गया है। पूरी कहानी मे पैने व्यंग्य का लक्ष्य शासन की भ्रष्ट अफसरशाही व्यवस्था पर है।

इस प्रकार नगरीय परिवेश के बदलते स्वरूप को विभिन्न दृष्टियों से विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

ए. **कस्बाई परिवेश की मनोवृत्ति** – नगरबोध के मूल में कस्बाई मनोवृत्ति अवश्य पाई जाती है। इसका कारण यह है कि भारतीय नगरों में गाँवों और कस्बों में आए हुए लोग भी रहने लगे हैं लेकिन उनकी मानसिकता कस्बाई या ग्रामीण ही है। कहानियों में कस्बाई मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में की है। नगरीय परिवेश की भाँति स्वतंत्रता के पश्चात् कस्बाई परिवेश में भी पर्याप्त परिवर्तन लक्षित होता है। विष्णु प्रभाकर जी ने कस्बाई मनोवृत्ति की विभिन्न दशाओं को अपनी कहानियों का आधार बनाया है।

'मुरब्बी' कहानी के मुरब्बी की मनोवृत्ति के माध्यम से सांप्रदायिक सौहार्द की भावना का चित्रण किया है। मुरब्बी एक छोटे से गॉव में अपनी दुकान चलाया करता है। उनके मुस्लिम मित्र मुनव्वर ने मुरब्बी के पुत्र राधे से तीन सौ रुपये उधार लिए हैं। फसल खराब हो जाने के कारण वह रुपये चुका नहीं पाया। अब राधे नालिश करने जा रहा है तो मुरब्बी के मन में जैसे कुछ कचोट रहा है। मुनव्वर का कर्ज चुकाने को वे अपनी मृत पत्नी का गुलुबंद बेचना चाहते हैं। उनकी बहू प्रभा अपने पति को सौ रुपये देती है। मुरब्बी उसे मुनव्वर का नाम देकर बेटे के हाथ में थमा देते हैं। 'सफर का साथी' कहानी में यही मनोवृत्ति दिखाई देती है। किसी एक चबूतरे को लेकर हिंदू-मुसलमानों में संघर्ष छिड गया है। हिंदुओं के सरगना कस्बे के मशहूर वैद्य लाला सुंदरदास थे और मुसलमानों के नेता महबूब कसाई। दोनों संप्रदायों में मजहब के लिए मरमिटने की तमन्ना थी, तभी एक रात महबूब कसाई का एकलौता लडका रमजान बीमार हो जाता है। यह जानकर लाला के पास ही इस मर्ज की दवा है, महबूब पहले तो खामोश हो जाता है, बाद में पुत्र की ममता के वशीभूत हो वे लाला के पास जाकर रमजान के जीवन की भीख मॉगते हैं। लोगों के मना करने पर भी लाला सुदरलाल महबूब के घर जाकर रमजान का इलाज करते हैं। दो दिन बाद लाला के घर पर चबूतरे को कस्बे के करीब कुंजडों और मालिकों को सौंप देने का फैसला कर दिया जाता है। 'अधूरी कहानी' में एक कस्बे में हिंदू-मुसलमान मिल-जुलकर रहते हैं। ईद के दिन एक छोटे बालक अहमद को दूध नहीं मिलता तो उसका सहपाठी दिलीप अपने हिस्से का दूध दे देता है। वह भी सेवइयॉ लेकर सबसे पहले दिलीप के घर पहुँचता है। 'एक पुरानी कहानी' के डॉ० योगेश हिंदू होने के नाते मुसलमान की गली में जाना नहीं चाहते ? अनवर का बच्चा बीमार है। वह डॉ० को बुलाने आता है पर वे पहले मना करते हैं पर तभी तॉगे मे उनकी मुमताज और अनवर नाम के दो बच्चों के साथ मुलाकात हुई थी, तब मुमताज ने डॉक्टर को भाईजान कहा था। ये सारी बातें डॉ० योगेश को याद आती हैं। उसी मुमताज और अनवर का बेटा बीमार हो गया हो। इसलिए वे अनवर के बच्चे को देखने जाते हैं। उनमें से डॉक्टर जग जाता है। कहानी का वातावरण भी मुस्लिम परिवार के रीतिरिवाजों को चित्रित करता है।

'चाची' कहानी की चाची का चरित्र एक अलग मनोवृत्ति का दर्शन कराता है। बहुत दिनो से बहू-बेटे का खत नहीं आता। शायद तबीयत ठीक न होगी– चिंता उसके ....। में है। पर पडोसी का बेटा बहुत बीमार है। वह बार-बार चाची के पास आता है। चाची उसी बेटे के प्यार के कारण बार-बार रुक जाती है। पूरी कहानी में इसी एक मनोवृत्ति का दर्शन होता है।

'हमें गिराने वाले' 'तॉगेवाला' कहानियों में आर्थिक विपन्नता के कारण उपेक्षित जन जीवन जीने वाले मनोवृत्तियों के दर्शन होते हैं। अहमद तांगेवाला

बीमार बच्चे और परेशान पत्नी को छोड़कर तांगा लेकर निकलता है। लेकिन कोई भी हिदू उसके ताँगे में नहीं बैठता। दिनभर घूमने के बाद वह केवल दस आने ही कमा पाता है। घर लौटने पर दवा लाने हकीम के यहॉ दौड़ता है लेकिन दवा लेकर लौटने तक बहुत देर हो चुकी है। ठीक समय पर दवा न मिलने के कारण उसका बच्चा मर जाता है।

'रायबहादुर की मौत' कहानी के माध्यम से नगरबोध और कस्बाई मनोवृत्ति के बीच का संघर्ष चित्रित किया है। व्यक्ति की मृत्यु का झूठा अहसास और उससे जुडी झूठी सहानुभूति का तीखा व्यंग्य कहानी के कथ्य को उजागर करता है। इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी ने कस्बाई मनोवृत्ति की विभिन्न दशाओं को चित्रित किया है। कही पर कस्बाई वातावरण, कही पर पात्रो की मनोवृत्तियों के माध्यम से, कहीं जाति या स्थान की भावनाओ और विशेषताओं के माध्यम से तो कही नगरबोध और कस्बाई मनोवृत्ति के संघर्ष एव संपर्क द्वारा कस्बे के लोगो की मनोवृत्तियों का चित्रण किया है। आज नगर और कस्बे का एक वर्ग है। इसी वर्ग के बीच मानव एक विघटनशील इकाई के रूप में नई चेतना को लेकर आधुनिकता की ओर अग्रसर हुआ है। 'हिंदी कहानी' : अतरग पहचान, ग्रथ में रामदरश मिश्र का कथन है, "आधुनिकता केवल समयगत परिवर्तन नहीं है, वह एक मृत्यु भी है। आज के जीवन का आधुनिक होना केवल नई परिस्थितियो और वातावरण में नया होना नहीं वरन् अनिवार्य भाव से उन विश्वासो, मूल्यों और भावबोध को छोडता है जो सामतवाद या मध्यकाल की उपज थे और उस चेतना की स्वीकृति है जो विशालकाय की देन है।"[२४] इसी विश्वास के साथ कहा जाए तो विष्णु प्रभाकर जी की कहानियॉ नव परिवर्तित जीवन को नवीन भावबोध के साथ व्यक्त करती हैं जो स्वस्थ सामाजिक दर्शन की खोज भी करती हैं और उसके अनुरूप इतिहास निर्माण की चेष्टा भी। सामाजिक जीवन दर्शन का और एक महत्त्वपूर्ण छोर है, आंचलिक जीवन-जिसके साथ मानव की विभिन्न संवेदनाएॅ जुडी रहती हैं। विष्णु प्रभाकर जी ने इसी आंचलिक परिवेश को भी उतनी ही सक्षमता से चित्रित किया है।

ऐ. आंचलिक परिवेश दर्शन – आचलिक कहानियों की पृष्ठभूमि ग्रामांचल तक ही सीमित नहीं है व्यक्ति इसके साथ-साथ नगरों और कस्बों की सशक्त कहानियाँ भी लिखी जाती है। इन कहानियों में नागरी जीवन की संश्लिष्टता, भयावहता, नगरों में चल रहीं आर्थिक गुटबंदी, संकीर्ण स्वार्थों की कश्मकश, व्यक्ति की मानसिक समस्याएॅ, वर्ग विशेष की वृत्तियॉ आदि अनेक विषय आंचलिकता के रंग में प्रस्तुत किये जाते हैं। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में आंचलिकता के इन रंगों की विभिन्न छटाएँ देखने को मिलती हैं। 'मुहूर्त टल गया' कहानी में चाची और जगदीश के पारिवारिक स्नेहसंबंधों का चित्रण है। चाची का बेटा दिल्ली में पढ़ता है। बहुत दिनो से बीमार है। उसकी खबर की चिंता चाची

को लगी रहती है लेकिन जगदीश के बेटे की सख्त बीमारी के कारण बार-बार चाची बेटे को मिलने का मुहूर्त टाल देती है। 'अब्दुल्ला' कहानी के अब्दुल्ला के छोटे बच्चे उनके बाग के आम चुराकर ले जाते हैं। अब्दुल्ला बच्चो की टोली का नेता दीपू की शिकायत हेडमास्टर से करवाते हैं, लेकिन बहुत दिनों से दीपू स्कूल नहीं आ सका यह खबर उनको मिलती है, वे घर जाकर देखते हैं तो दीपू की बीमारी का पता चलता है तो अब्दुल्ला का दिल पिघल जाता है। कहानी का वातावरण आंचलिक है। अब्दुल्ला की भाषा भी पंजाबी ढंग की चित्रित है। 'वे दोनों' कहानी में विष्णु प्रभाकर जी ने मित्रों के पारस्पारिक प्रेम का चित्रण कर एक दूसरे की पारिवारिक स्नेह की कहानी कहीं हैं। हरि और रमण को नारायण के फांसी जाने का दुःख है फिर भी वे नारायण की बेटी माँ और पत्नी की सहायता करते हैं। 'डायन' कहानी नारी के प्रति अंधविश्वास के खोखले और निर्मम रूप को प्रस्तुत करती है। 'जीवन एक कहानी मे' क्रांत के माध्यम से मध्यवर्गीय लोगों की मानसिकता का चित्रण आता है। कहानी के क्रांत की आमदनी सिर्फ पचास रुपये है। उसके मन में बडी तमन्नाएँ हैं। दूसरे लोगों का सम्मान करना चाहिए इस प्रवृत्ति के कारण वह हमेशा तरह-तरह की किताबें खरीदता है ताकि लोग शिक्षित समझें। 'अंतर्वेदना' कहानी में चंद्रा निम्न-मध्यवर्गीय होते हुए भी पढी-लिखी है। लेकिन सौंदर्य की स्वाभाविक पूँजी से वंचित रहने के कारण विवाह के बाजार में अपना मूल्य बढाने के लिए उसे प्रयत्नशील रहना पडता है। भारतीय समाज में नारी विवाह समस्याओ का विश्लेषण प्रस्तुत कहानी द्वारा विष्णु जी ने किया है।

'सॉचे और कला' कहानी मिट्टी की विभिन्न तरह की मूर्तियाँ बनाकर बेचने वालों के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालती है। 'बच्चा मॉ का है' कहानी में चंदो भंगिन, उसका परिवार और बस्ती के लोगों की मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है। ग्रामीण जन-जीवन की अपेक्षा नागरी जीवन में पर्याप्त परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन के साथ व्यक्ति जीवन में भी अधिक संश्लिष्टता आई है। 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबला का जीवन इसी संश्लिष्टता को चित्रित करता है। "उसमें एक ऐसी हवस है कि जो सब कुछ को अपने में समेट लेना चाहती है, सब कुछ लेने के लिए और सब कुछ देने के लिए। किसी के अहम से टकरा जाना और किसी के लिए अपने को लुटा देना-दोनों का उसके लिए एक ही अर्थ है। वह मुक्त जीवन जीना चाहती है, पर शायद कहीं कुछ ऐसा है जिसकी तलाश में वह निरंतर बेचैन रहती है।"[२५] शैलेंद्र का यह कथन नारी जीवन की दृष्टि पर प्रकाश डालता है। नारी जीवन की संश्लिष्टता एक अलग रूप में 'नांग-फांस' कहानी में चित्रित होती है– इसमें एक ऐसी माता का चित्रण है जिसकी चौदह संतानें कुछ मर गये और कुछ भाग गये। वह प्रयत्न करती है कि पुत्र उसके पास

रहे परंतु वे उससे दूर भागने का प्रयत्न करते हैं। अंतिम पुत्र सुशील की बीमारी बढती जाती है। वह पढ़ने के लिए बाहर जाना चाहता है। ऐसी अवस्था में यह मॉ पुत्र को अपने से दूर नहीं करना चाहती। डॉ० उसकी अवस्था में कोई सुधार नहीं होता देखकर उनके घर में रहते हैं। यह देखकर आश्चर्यचकित होते है कि माँ रात को उठकर सारी दवाइयों की शीशियॉ फेंक देती है। मॉ का स्नेह पुत्र के लिए काल बन जाता है। डॉक्टर उसे डाँटते हैं और कहते हैं कि स्नेह नहीं यह मनुष्य का स्वार्थ है जो प्रतिक्षण मनुष्य की हत्या करता रहता है। संबंधों के बीच रहकर भी आज व्यक्ति अपने को अकेला पा रहा है। अजनबीपन की बू महानगर के वातावरण में स्थान-स्थान पर मिलती है। 'अंधेरे आगन वाला मकान' में भी माता-पिता की पीडा, वृद्धावस्था के एकाकीपन का दंश समाया हुआ है।

भ्रष्टाचार और घूसखोरी के साथ आज व्यक्ति का जीवन एक सच्ची वास्तविकता से जुड गया है। जिसके साथ जुडी है उसकी संकीर्ण स्वार्थों की कश्मकश। 'छोटा चोर बडा चोर' कहानी इसी कश्मकश का वास्तविक रूप स्पष्ट करती है। उच्च मध्यवर्ग बेकार, नौकरी की आशा के बल पर या जरूरतमंद मजबूर होकर रिश्वत देते हैं और यह वर्ग अपनी विलासिता के साधनों की पूर्ति के लिए इस वृत्ति को प्रश्रय देता है। यह स्थिति नीचे तक है। 'चिरंतन सत्य' कहानी के एस० पी० साहब भी जनतंत्रवादी लोगों के जीवन का झूठा समर्थन करते हैं। हम जो शाश्वत है वहीं चिरंतन सत्य है यह उसकी धारणा मात्र है, अपने बेटे को पुलिस में भरती हो जाने के लिए मना करते हैं लेकिन अंत में विरोधियो को कुचल देने के लिए बेटे को पुलिस में भिजवाते हैं। इस प्रकार आज का व्यक्ति अपनी भूख मिटाने के लिए नए-नए मुखौटे लगाकर जी रहा है। 'सत्य को जीने की राह' कहानी में संदीप खन्ना का आक्रोश यह प्रकट करता है जो अपनी बेटी के समान एक मित्र की बेटी को अत्याचार से नहीं बचा पाता। कल के बाद आने वाला कल व्यक्ति के भीतर सोए हुए राक्षस को इसी प्रकार जगाता ही रहेगा। कहानी इसी बोध की ओर संकेत करती है। नगरों में चल रही आर्थिक गुटबंदी का चित्रण 'मंजिल' कहानी में किया है। आजादी के बाद भी यह समस्या खत्म नहीं हुई। कहानी में बूढे का घोडे के साथ वार्तालाप इसी दुःख का अहसास करता है। "बहन ! अब तो हम किसी दल में नहीं जाएँगे। मास्टरनी ने जिस आजादी के लिए इतने कष्ट उठाए उसकी रक्षा करना भी तो हमारा फर्ज है। सो अब तो हम काम करेंगे और तुम जानो बहन ! काम तो चुनाव व पद के बिना ही हो सकता है।"[२६] आज मात्र सारी स्थितियाँ वैसी ही रही है यही वास्तविकता है।

विष्णु प्रभाकर जी ने आंचलिकता के विभिन्न आयामों को अपनी कहानियों में उभारा है। आंचलिक कहानी में भारतीयता की तलाश है। यह तलाश भी एक विशिष्ट स्तर पर संपन्न हुई है। स्तर की यही विशिष्टता 'दृष्टि' में संबद्ध

है, आस्था से है। यह दृष्टि ही भारत की सांस्कृतिक विरासत को खोजती है पर वर्तमान को नहीं भूलती, जो विलक्षण है। यह कहानी का बदलता परिप्रेक्ष्य है। विष्णु प्रभाकर जी ने कहानी के इस बदलते परिप्रेक्ष्य को उतनी ही सक्षमता से चित्रित किया है साथ-साथ व्यक्ति के आंतरिक और बाह्य पक्षों को लेकर हिंदी कहानी को मानव जीवन के विविध पक्षों के साथ जोड दिया है।

२. **राष्ट्र–जीवन से संबंधित कहानियाँ** – स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में अनेक समस्याएँ-राष्ट्र, समाज एवं व्यक्ति के समक्ष आई हैं। इन समस्याओं से संबद्ध पात्रों को हिंदी कहानियों में व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है। भारतीय समाज एवं शासन-व्यवस्था से संबंधित राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रश्नों के प्रकाश में हिदी कहानीकारों ने जीवन के तथ्यपूर्ण रूप को देखा है। विष्णु प्रभाकर जी ने भी कहानी को उतना ही एक सक्षम तेवर दिया है।

विष्णु प्रभाकर जी विभाजन से पूर्व पंजाब में पले और बड़े हुए। स्वभावतः उनकी इन कहानियो पर उस परिवेश का प्रभाव है। इसका रचना-काल प्रायः १९३० से १९५८ तक फैला हुआ है। विभाजन की त्रासदी को आधार बनाकर विष्णु प्रभाकर जी ने अनेक कहानियों की रचना की। देश विभाजन की घटना किसी भी देश के सांस्कृतिक, पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों पर प्रहार करने वाली घटना होती है और इसी कारण इस प्रकार की घटना का साहित्यिक महत्त्व निर्विवाद होता है। मूल्यगत परिवर्तन की ओर संवेदनशील साहित्यकार निरंतर आकृष्ट होता रहता है। स्वतंत्रता के बाद पचास वर्षों में जो परिवर्तित जीवन दृष्टि विकसित होती रही हैं उसमें विभाजन, विभाजनकालीन अमानवीयता आदि का अत्यधिक महत्त्व रहा है। केवल संस्कृति, सामाजिक और नैतिक मूल्यों में ही नहीं तो राजनीतिक विचारधाराओं पर भी इस घटना के प्रभाव ढूँढे जा सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद इस देश में दक्षिणपंथी विचारधारा का जनसंघ के रूप में परिवर्तन भी इसी घटना का परिणाम है।

भारतीय स्वतंत्रता से दो प्रमुख घटनाएँ घटी भारत विभाजन और साप्रदायिक झगड़े। दोनों घटनाएँ एक दूसरे से गहराई से जुडी थीं। क्योंकि सांप्रदायिक दंगों का कारण विभाजन और विभाजन का कारण सांप्रदायिक दंगे थे। विभाजन की वेदना से लाखों-करोडों व्यक्ति प्रभावित हुए, क्या हिंदू और क्या मुसलमान सभी को विभाजन की दुर्घटना से पीडित होना पडा। विभाजन से उत्पन्न लगभग सभी संवेदनाओं को विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों का आधार बनाया है। बदलती हुई परिस्थितियों के कारण मनुष्य की परिवर्तित मानसिकता तथा विभाजन के कारण विघटित मानवमूल्यों और फलस्वरूप मानव की निराशा, द्वंद्व और सुविधा के संवेदनात्मक चित्र इन कहानियों में अंकित हुए हैं। सांप्रदायिक दंगों के साथ-साथ शरणार्थी समस्या भी उत्पन्न हुई जिसके

कारण संबंधों और मूल्यों में भी विघटन की प्रक्रिया आरंभ हुई। विभाजन के प्रभाव से अपना वतन छोड़ने को विवश असहाय शरणार्थियों की व्यथा विभाजन से जुडी मनुष्य की क्रूर मानसिकता के उद्घाटन के साथ-साथ इन सब की जिम्मेदारी अवसरवादी राजनीति के प्रति आक्रोश का स्वर भी इन कहानियों में आ गया। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में स्वतंत्रता के पूर्व की राजनीति का चित्रण भी मिलता है। जिसमें लोगों में देशप्रेम तथा देशहित की भावना की ललक अधिक दिखाई देती है। विष्णु प्रभाकर जी का स्वतंत्रता के पूर्व की राजनीति का चित्रण विभाजन की मानसिकता को समझने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि बन गया है।

अ. देशप्रेम तथा देशहित की भावना की अनुभूति – विष्णु प्रभाकर जी मूलतः मानवीय संवेदना के कथाकार है। लंबे समय तक आर्य समाज से जुड़े रहने पर भी वे मानव की मूलभूत एकता के ही स्वप्न देखते रहे हैं। मनुष्य को धर्म के खाने में बॉटकर देखने वाली मानसिकता से मुक्त है। उनकी कहानी यात्रा सुधारवाद से प्रारम्भ होती है किंतु उनके सुधारवाद के मूल में देशप्रेम तथा देशहित की ही भावना है। भारतीय समाज में स्पष्ट रूप से उस वक्त दो वर्ग थे–पहला वर्ग देश को आजाद कराने के लिए अपना सब कुछ खोने को तैयार था तो दूसरा तत्कालीन सरकार का हिमायती था। विष्णु प्रभाकर की कहानियों का स्वर पहले वर्ग के लोगों का पक्षधर है और उन्होंने हृदय परिवर्तन द्वारा दूसरे वर्ग के लोगों के मन में देशप्रेम की भावना का उद्रेक कराया है।

'भाईसाहब कहानी में बड़े भाई शेखर, जो अंग्रेज सरकार के पक्षधर हैं अपने अनुज अखिल की देशप्रेम की भावनाओं में डूब जाते हैं और उसकी महत्ता स्वीकार करते है। कहानी को अखिल सांप्रदायिक वैमनस्य के कारण देश में होने वाले अत्याचार, विरोध, विभिन्नता से तंग आता है। राजनैतिक भ्रष्टाचार से उसे नफरत है। कहता है, "कैसे ये लोग अकर्मठ्य को कर्मठ मनुष्य के बराबर मानते हैं। साम्यवाद, समष्टिवाद और समाजवाद ये सब आवारा और आराम तलब आदमियों की दिमाग की उपज है।"[२७] 'द्वंद्व' कहानी में भी बड़ा भाई, भाभी और छोटा भाई है। छोटा भाई सेवा पथ पर है। बड़े भाई की हालत अच्छी नहीं है, तथापि वह अपने छोटे तथा अपनी पत्नी की भावनाओं का सम्मान करने के लिए अपने बूते से ज्यादा चंदा दे आता है। 'आत्मग्लानि' का शंकर अपने क्रांतिकारी साथियों के साथ धोखा करता है और सरकार को क्रांतिकारियों के बारे में सूचनाएँ देता है। इस कृत्य के लिए उसकी पत्नी उसे फटकारती है। इतना ही नहीं तो यहाँ तक तैयार हो जाती है, "मैं चरखा कातूँगी, कपड़े सीऊँगी। आप बच्चों को पढ़ाना या खेती करना। कितना अच्छा रहेगा।"[२८] इन शब्दों में शोभा की पीड़ा उभरती है, जो अपने देश से प्यार करने वाली हर औरत की पीड़ा है। अंत में शंकर को अपनी गलती का अहसास होता है और अपने कर्म के प्रति आत्मग्लानि में दबा

वह स्वयं को गिरफ्तार करा देता है। इस समाचार को सुनकर शोभा के उल्लास की सीमा नहीं रहती। 'बेटे की मौत' कहानी में बेटा क्रांतिकारी है जो अपने पिता केदारनाथ को सरकार परस्त समझता है। बेटा देश की आजादी के लिए बलिदान हो जाता है पर पिता केदारनाथ को दु:ख है कि उसका बेटा उसे ठीक नहीं समझ पाया, "वह समझता रहा मैं सरकार परस्त हूँ मैं उसे आजादी की जंग में नहीं जाने दूँगा उसने मुझे पापी समझा। मेरे बच्चो ! तुम्हारे उस महामानव ने मुझे देशद्रोही और गद्दार समझा।"[२९] इन शब्दों में सच्चे देशभक्ति की पीड़ा मुखरित हुई है। 'दीप जले घर-घर' में दो बेटे आजादी के आदोलन में भाग लेने के कारण जेल चले जाते हैं। उनके घर में मातम है। दीपावली के दिन भी उनके घर उदासी और अंधेरा है पर मुंशी अहमददीन दादा-दादी को झकझोर देता है, "आज तुम्हारे बच्चे आजादी जीतने गए हैं, क्या तुम नही चाहते कि वे राम की तरह जीत कर लौटे? आज तो तुम्हें खुशी से पागल हो जाना चाहिए। आज तमाम दुनिया की निगाहें तुम्हारें बच्चों पर हैं। दुश्मन भी कहते होंगे, धन्य हैं वे माये जिन्होंने ऐसे लाल जाए और तुम हो तुम।"[३०] मुंशीजी की बात सभी की समझ में आ जाती है और उस जैसे सभी परिवारों में दिवाली धूमधाम से मनती है।

उस कालखंड में क्रांति की लहर ने भी युवक-युवतियों की भावनाओं को प्रज्वलित कर दिया था, जिससे अनेक युवक-युवतियॉ आंदोलन में कुछ पडी 'हरिश पांडे', वे दोनों, 'क्रांतिकारी', 'अरुणोदय', 'आजादी', 'खंडित पूजा', 'बेटे की मौत' आदि ऐसी ही कहानियॉ हैं जिनका मूल कथ्य देश के लिए बलिदान होने की भावना से संबद्ध हैं। इन सभी कहानियों में विष्णु प्रभाकर जी ने तत्कालीन समाज में जी रहे लोगों की भावनाओं को चित्रित किया है। इन कहानियों में उदात्त एवं त्यागी चरित्र प्राप्त होते हैं। 'क्रांतिकारी', 'बेटे की मौत' कहानियों में उच्च ध्येय से प्रेरित युवकों के बलिदान, जनता एवं परिवार के लोगों के अपार त्याग एवं बलिदान को देखा जा सकता है। 'रहमान का बेटा' कहानी में जहाँ मुसलमानों के पिछडेपन के कारणों का अंकन है वही रहमान के बेटे सलीम का चरित्र देशप्रेम तथा प्रगतिवादी विचारों से ओतप्रोत है। वह अपने पिता का घर इसलिए छोड देता है कि उसके पीछे पुलिस पडी है। वह नहीं चाहता कि पुलिस उसके पिता को जो सरकारी नौकर है, तंग करें। 'गर्विता' कहानी की राधा के पति दिनेश को आजादी के लिए आंदोलन में भाग लेने के कारण फॉसी होती है तो राधा इसे अपना सौभाग्य मानती है। इस कोटि में आने वाली सभी कहानियों का मूलतंत्र 'वे दोनों' कहानी का यह वाक्य "जिन्हें प्राणों का मोह नहीं हैं वे वीर पुरुष हैं। वीर सदा आदर के पात्र हैं। इसी तरह के लोग देश के लिए बलिदान हो सकते हैं।"[३१] अगस्त क्रांति के सिलसिले में नारायण को फाँसी की सजा दी जाती है। नारायण के फाँसी जाने का दु:ख उसकी माँ के साथ हरि और रमण को होता है

तब सशस्त्र क्रांति पर विश्वास करने वाला रमण हरि को समझाता है, "वीरों की समाधि पर आयुधों का नहीं रक्त का अर्घ्य दिया जाता है। उसके लिए रोना उसके कार्य का तिरस्कार करना है।"[३२]

आ. समाज–सेवा की महत्ता का रेखांकन – विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में देशप्रेम के साथ-साथ समाजसेवा की महत्ता को भी रेखांकित किया है। 'क्रांतिकारी' कहानी का रामनाथ देशसेवा के लिए जीवन की सुख-सुविधाओं का परित्याग कर देता है। 'अरुणोदय' कहानी का निशिकांत सरकारी नौकरी से इस्तीफा देता है क्योंकि सरकारी नौकरी उसके लिए गुलामी का प्रतीक है। उसकी पत्नी रजनी भी उसे इस्तीफा देने के लिए प्रेरित करती है। नौकरी से त्यागपत्र देने पर उसके साथी भी गर्व का अनुभव करते हैं। 'खंडित पूजा' कहानी में सेवा भावना और प्रेम भावना का द्वंद्व है पर विजय सेवा और बलिदान भावना की ही होती है। 'नया राजा' एक आदर्शवादी कहानी है, जिसमें भ्रष्ट सेठ का बडा बेटा अपने पिता पर पिस्तौल तानकर कहता है, "पिताजी ! आपका शास्त्र कहता है जो अकेला खाता है, वह पापी होता है उसके सामने पापी भी निर्दोष होता है– मैं चाहता था आपको मार डालूँ परंतु आप राज्य के दुश्मन हैं, आपका निर्णय वहीं होगा"[३३] विष्णु जी के पात्रों में आंदोलन की भी भावना है। 'रहमान का बेटा', 'परिवर्तन', 'दीप जले ये घर' इन कहानियों में उदात्तता, आदर्शवादिता, सवेदनशीलता एवं भावात्मकता अधिक है।

३. विभाजनगत संवेदनाओं का चित्रण करने वाली कहानियाँ – विभाजन पर रचित उनकी कहानियाँ मूलतः सांप्रदायिक सद्भाव की ही कहानियॉ हैं। विभाजन के घटनाचक्र तथा पारस्परिक द्वेष एवं अविश्वास का चित्रण करते हुए भी इन कहानियों में मानवता के प्रति उनका विश्वास, उनकी जिजीविषा, मानवीय मूल्य एवं मर्यादाओं के प्रति उनकी आस्था झलकती है। तमाम अच्छाइयों, बुराइयों के साथ जीवन-संघर्ष का चित्रण करते हुए भी उनका ध्यान सदैव मूल्यों के उत्कर्ष पर रहा है। 'मुरब्बी' ऐसी ही कहानी है जो दोनों सांप्रदायों के पारस्परिक स्नेह और विश्वास को अभित्मार्क देती है। 'शमशू मिस्त्री' के शमशू मिस्त्री का चित्रण भी उनकी उदार मानवीय दृष्टि का परिचायक है। शमशू मिस्त्री को मिठाई बहुत पसंद है, बदन भी उसका लम्बा-चौड़ा है। बदन को देखकर उनको पिछले जन्म में वे अवश्य मथुरा के पड़े होंगे करके संबोधित करते हैं। इस पर शमशू मिस्त्री हँसकर जवाब देते हैं। उनका जवाब ही उनकी विचारधारा को स्पष्ट करता है, "हम मुसलमान हैं। अगले-पिछले जन्म का हमें कुछ पता नही पर इतना जरूर है कि मथुरा के पंडों की वही में अभी तक हमारे खानदान का नाम लिखा है। अभी दो तीन वर्ष पीछे तक पंडें मेरे पास आते थे। मैं उन्हें दच्छिना दिया करता था– लेकिन अब माहौल बदलने लगा है।"--- "अब तो मुल्क में हवा ही दूसरी चल पड़ी

है।"[३४] शमशू मिस्त्री के भतीजे भले ही पुरानी परंपरा से कट गये हों, मिस्त्री अभी भी कहीं-न-कहीं उससे जुडे हुए हैं। सांप्रदायिक सौहार्द्र की यही कहानी 'सफर का साथी' में भी दोहराई गई है। सांप्रदायिक तनातनी का दौर शुरू हो चुका है। इस माहौल में जब कहानी का "मैं" स्टेशन पहुँचता है, एक मौलाना ट्रेन पर चढने में उसकी मदद करते हैं। ट्रेन चलने के बाद एक मौलवी साहब मौलाना को समझाना प्रारंभ करते हैं," आप भूलते हैं "हिंदुस्तानी" न कोई कौम है न बन सकती है। इन्सानी बिरादरियॉ कभी कौमियत पर नहीं बना करती, उनकी बुनियाद मजहब पर हैं।"[३५] किंतु मौलाना का ध्यान इन दलीलों से ज्यादा परेशान मुसाफिरों की ओर हैं लेकिन आज आपसी समझ और सौहार्द्र की ऐसी कहानियाँ नफरत और अविश्वास के माहौल में घूमिल होती जा रही है। घृणा और द्वेष का जहर फैल रहा है इसके फैलने में रूढिवादी हिंदू दृष्टिकोण भी कम उत्तरदायी नहीं है। 'सफर का साथी' की तरह 'अधूरी कहानी' की कथा भी ट्रेन में चलती है जहॉ हिंदु-मुस्लिम, यात्री-विभाजन के प्रश्न को लेकर आपस में उलझ रहे हैं। विभाजनगत संवेदना की अभिव्यंजना का मूल आधार मानवीय करुणा और सहानुभूति रहा है।

नफरत के इस माहौल मे समाज के उस मेहनतकश वर्ग की ओर भी विष्णु प्रभाकर जी का ध्यान गया है, सांप्रदायिक दंगों ने जिसकी पूरी जीवन—प्रणाली को अस्त-व्यस्त कर दिया है। 'तागेवाला' कहानी सांप्रदायिक दंगों के बीच अस्तित्व के लिए जूझते अहमद तागेवाले की पीड़ा की मार्मिक गाथा है। मुसलमान होने के कारण उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं, इसलिए कोई हिंदू उसके तांगे में नहीं बैठता। यद्यपि वह सवारियों को विश्वास दिलाता है कि तांगेवाला पहले तांगेवाला है। दस आने कमाकर जब वह घर आता है तो पाता है कि उसके लड़के गफूर की हालत चिंताजनक है। वह सांप्रदायिक तनाव से भरे वातावरण में हकीम के पास जाता है। हकीम मुसलमान होते हुए भी उस पर ऐतबार नहीं करता और उससे दिन भर की कमाई दस आने लेकर उसे दवा दे देता है। वह दवा लेकर चलता है, तो उसे पुलिस धर दबोचती है। जब वह दवा लेकर घर पहुँचता है तो गफूर दुनिया छोड़ चुका होता है। विष्णु जी प्रस्तुत कहानी में निरिह मनुष्य की विवशता को संवेदना के धरातल पर अभिव्यक्ति तो देते है, किन्तु इस विवशता के सम्मुख वे उसे पराजित भी नहीं देखना चाहते। उनका विश्वास है कि इस शैतानियत से ही भलाई पैदा होगी और निर्मम व्यवस्था का अंत होगा जिसमें समाज का निम्नवर्ग शोषण और अन्याय सहन करने को विवश है।

'वह रास्ता' परिवेश के दबाव के सम्मुख झुक जाने वाले मनुष्य की विवशता की कहानी है। साथ-साथ यह कहानी हिंदू-मुस्लिम एकता के कारणों के संबंध में लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट करती है। धर्म इन्सान की अपनी कमाई नहीं, लेकिन पारस्पारिक संबंधों में वही दूरी और अविश्वास हिंदू समाज की अपनी

कमाई अवश्य है, जिसे उसने इतने दिन तक मुसलमानों से नफरत करके अर्जित किया है। मुसलमानों के छू जाने से हिंदुत्व के नष्ट हो जाने का भय स्वयं मुसलमानों के मन में इतना गहरा बैठा हुआ है कि निशिकांत जैसे लोग चाहकर भी उसे दूर नहीं कर पाते। अमजद की माँ किसी हालत में भी पानी पिलाने को तैयार नहीं होती। यह हिंदू समाज की मनोवृत्ति पर गहरा तमाचा है, लेकिन निशिकांत का भरोसा नहीं टूटता।

'अगम अथाह' भी इसी संवेदना को उजागर करती है। भारत-पाक विभाजन के समय सांप्रदायिक दंगों की जो आग भडक उठी उसने हिंद-मुसलमान दोनों को समान रूप से तबाह किया जहाँ मुसलमानों ने हिन्दुओं के घर जला डाले, उनकी स्त्रियों की अस्मत लूटी वहीं हिंदुओं ने भी मुसलमानों पर अत्याचार किए। इस कहानी में हिंदुओं के मुसलमानों पर अत्याचार या उनकी हिंसात्मक वृत्ति का चित्रण है। विभाजन के समय हिंदुओं ने एक ऐसे स्कूल में धावा बोला जिसमें हिंदुओं के भी कुछ बच्चे पढते थे। मुसलमान लड़कों के साथ-साथ एक हिंदू लड़का भी मारा गया। उसके माता-पिता वह भाग गया है जानते हुए भी यह लोग भ्रम में रहते हैं और उसे ढूँढने का व्यर्थ प्रयास करते है। शरणार्थी कैम्प का अफसर यद्यपि इस तथ्य को जानता है किंतु बता नहीं सकता, कैसी विडंबना है। इसी प्रकार 'देशद्रोही', 'पडोसी' जैसी कहानियों में उन्होंने सांप्रदायिकता के प्रभाव से उत्पन्न करुण परिस्थितियों के चित्रण के साथ परिवेश के दबाव से परिवर्तित होती मनुष्य की मानसिकता का भी चित्रण किया है।

परिवेश के दबाव ने 'हिंदू' शीर्षक कहानी के हिंदू की मानसिकता को भी परिवर्तित किया है जो पूर्वी बंगाल में मुसलमानों द्वारा हिंदुओं के नाम के संगठित प्रयास से उत्तेजित हो उठा है। हिंदुओं को मुसलमानों के विरुद्ध संगठित करने के उद्देश्य से वह गाँव-गॉव में घूम रहा है तभी तक खंडहर में असहाय पडी घायल मुस्लिम स्त्री की ओर उसका ध्यान जाता है। सोई हुई मानवीयता जाग उठती है और चाहकर भी वह अपनी आत्मा की आवाज को दबा नहीं पाता। 'आजादी' शीर्षक कहानी की स्वतंत्रता दिवस की पृष्ठभूमि भी इसी मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति देती है। देश स्वतंत्र हुआ है और उमंग से उमड रहा है लेकिन उल्लास के इस वातावरण में भी मनुष्य की क्रूर मानसिकता एक छोटे से बालक का पीछा कर रही है क्योंकि वह मुसलमान है और मुसलमान देश के दुश्मन हैं किशुन और उसकी भाभी अपने प्राणों के मूल्य पर उस बालक को बचाना चाहते हैं। शांति भाभी दृढ़ स्वर में कहती है, "मेरे पति ने देश की आजादी के लिए छाती पर गोली खाई थी। देश की आजादी के लिए मेरे स्वामी को जन्मदात्री ने अपने खून से धरती माता की माँग भरी थी। उसी आजादी के लिए मैं इस बालक की रक्षा अपने प्राण देकर ही नहीं बल्कि अपने स्वामी के बच्चे के प्राण देकर

करूँगी।"[35] हत्यारों को वापस लौटना पड़ता है। 'मेरा बेटा' कहानी मानव मन की कोमल भावनाओं के संघर्ष को रूपायित करती है। दादा अपने हिंदू बेटे रामप्रसाद को भूल नहीं पाते भले ही मुसलमान होने के कारण वे रामप्रसाद को स्वीकार नहीं पाते। जब रामप्रसाद जख्मी अवस्था में अस्पताल में आता है तो दादा के सीने में छिपा प्यार उमड पडता है।

'मेरा बेटा' की तरह 'एक पिता की संतान' जो इसी मान्यता को लेकर चलती है कि हिदू-मुस्लिम दोनों के पूर्वज एक ही थे। प्रश्न यह है कि तब वे अलग क्यों हुए अलगाव के कारणों की तलाश उन्हें आवश्यक लगती है। विभाजन के बाद शरणार्थी के रूप में सिख, हिंदू, सिंधी लाखों की संख्या में भारत आए। सरकारी सहायता के लिए संघर्ष तथा काफी परेशानियों के बाद धीरे-धीरे वे इस जमीं पर बस गये और यह महसूस होने लगा कि उस दर्दनाक हादसे से उनकी मुक्ति हो गई है परंतु यह वास्तविकता नहीं थी। न वे अपने वतन को भूल गये थे। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह संभव नहीं था। अक्सर वे अपने वतन की याद में छटपटाते रहते जो उधर गये उनकी भी यही स्थिति थी और जो इधर आए वे भी इसी स्थिति में जी रहे थे। उनकी इस मानसिकता को विष्णु प्रभाकर जी ने शब्द बद्ध करने का प्रयास किया है। 'मेरा वतन' अपनी जन्मभूमि से स्वाभाविक मोह और लगाव की उदात्तता का चित्रण करती है। कहानी का नायक मि० पुरी विभाजन से पूर्व लाहौर में वकालत करता था। विभाजन के बाद उसे अमृतसर आना पड़ा किंतु उसकी आत्मा लाहौर में भटकती थी। लाहौर में जहाँ उसका मकान था वहाँ का वातावरण मानों उसके अवचेतन में घुसकर बैठ गया। इस मानसिक दबाव में वह विभाजन के बाद भी अमृतसर से लाहौर जाने लगा। किसी के पूछने पर कहता था, "क्यों आता हूँ क्योंकि वह मेरा वतन है। मैं वहीं पैदा हुआ हूँ। वहॉ की मिट्टी में मेरा राज छिपा है। वहॉ की हवा में मेरी जीवन यात्रा को और एक बार एक मुसलमान पहचान लेता है और गोली मार देता है। मरते दम भी उनके मन में अपनी जन्मभूमि का लगाव बना रहता है। 'धरती का स्पर्श' कहानी में युद्ध के वातावरण को प्रस्तुत कर मकसूद और असगर जैसे पाकिस्तानियों के व्यक्तित्व को विश्लेषित किया है। असगर के रक्त में भारत के प्रति स्नेह के तत्व विद्यमान हैं।"[37] जिस भूमि में उसने बचपन के सुनहरे दिन गुजारे उस पर अत्याचार करने को वह प्रस्तुत नहीं हो पाता उसे पकड़ने को जो उसी गाँव का चौधरी आगे बढ़ता है तब उसकी भावधारा फूट पड़ती है। चौधरी उसका परिचय पाकर धर्मसंकट में फँस जाता है। अपने ही गाँव में पले असगर को कैसे वह पकड़वा दे और जब वह पाकिस्तान का जासूस है तो कैसे छोड़ दे। असगर के व्यक्तित्व में वह दम है कि समस्या को इन शब्दों में सुलझा दे--" मैं जानता हूँ ताऊ, उसके अंजाम के लिए तैयार हूँ। मुझे खुशी है कि मैं अपने गाँव की ओर

आया। आओ मकसूद अब कोई डर नहीं है। हम अपने वतन में हैं।"[५] विभाजन ने मनुष्य के जीवन और उसके अंतर्हृदय में कैसी-कैसी समस्याएँ उत्पन्न की, भावनाओं के क्षेत्र में कैसे-कैसे तूफान उठ खडे किए और किस तरह उसको तोडा, इसका उदाहरण है 'मैं जिंदा रहूँगा' कहानी। प्रस्तुत कहानी में प्राण के चरित्र के माध्यम से विष्णु प्रभाकर जी ने मानवीय धर्म के निर्वाह से प्राप्त उस सुख को संकेतित किया है जो मनुष्य को उदात्त धरातल पर पहुँचाकर उसकी आत्मा को सही अर्थों से संतुष्टि प्रदान करता है। इस प्रकार विभाजन की संवेदना का एक अलग कथा-संसार है। विभाजन भारतीय संदर्भ में एक ऐसी घटना रहा जिसने व्यक्ति को हर स्तर पर प्रभावित किया और न चाहते हुए भी व्यक्ति को यह पीडा झेलनी पड़ी।

विभाजन की विषयवस्तु पर रचित विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि इन सभी कहानियों का स्वर मानवतावादी तथा विभाजन से उत्पन्न सांप्रदायिक दंगों की आग में झुलसे जा रहे मनुष्य को बचाने की है। इन कहानियों का एक और सशक्त पक्ष यह है कि जहाँ उनमें एक ओर अपनी मिट्टी और वतन से भरपूर प्यार है, वहाँ सीमा के आर-पार के लोगों में विभाजन के बाद भी हिंदू-मुस्लिम के अहसास से अलग रिश्तों में वहीं आत्मीयता, संबंधों में वहीं उष्मा मिलती है। पारस्परिक वैमनस्य, सांप्रदायिक विद्वेष और तत्कालीन वातावरण के वहशीपन की छाया इन कहानियों मे नहीं है। मानवीय संवेदना को उद्वेलित करने वाली यह कहानियॉ हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान पाने की अधिकारिणी हैं।

४. भारतीय संस्कृति तथा इतिहास से संबंधित कहानियाँ – स्वतंत्रता के बाद देश के सांस्कृतिक नव-निर्माण की आवश्यकताओं ने हमारे साहित्यकारों को अपने देश अतीत, इतिहास की ओर देखने और अतीत के पृष्ठों से कथा और पात्र ग्रहण कर कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया है। आज सांस्कृतिक नव-निर्माण की अनेक समस्याएँ हैं, जो हमें सोचने के लिए विवश कर रही हैं– जिनमें प्रमुख है कि क्या हम भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से अपने को काटकर पाश्चात्यों के प्रभाव में अपनी भावी संस्कृति का निर्माण करेंगे ? या मूल रूप से भारतीय संस्कृति की परंपरा में या भारतीय और पाश्चात्य दोनों के समन्वित रूप में अपनी भावी संस्कृति का निर्माण करेंगे ? इन प्रश्नों को सामने रखकर स्वतंत्रता के बाद ऐतिहासिक कहानीकारों ने अपने ऐतिहासिक कथा का आधार बनाया है। इसी पृष्ठभूमि पर विष्णु प्रभाकर जी की इन कहानियों का विश्लेषण किया जा सकता है।

किसी जाति अथवा राष्ट्र के अतीतकाल को सन्निकट लाने में ऐतिहासिक कहानियाँ बड़ा काम करती हैं। साहि.य जहाँ एक ओर यथार्थ स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करता है वहाँ दूसरी ओर संघर्ष की स्थितियों को नष्ट करने की प्रेरणा भी देता है। ऐतिहासिक, पौराणिक तथा दोनो प्रकार की कहानियों द्वारा ऐतिहासिक

सत्य के निर्वाह के साथ युगीन यथार्थ का भौतिक दृष्टिकोण से किया गया अध्ययन अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनमें तत्कालीन जीवन की अच्छाई-बुराई का संघर्ष दिखाते हुए उन अच्छाइयों के उभार से परिचित कराया गया जो हमारी संस्कृति के तत्व बने हैं। साथ-साथ यह रचनाएँ वर्तमान समाज में प्राप्त भिन्न वैचारिक धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करती हैं तथा समाज को समझने का ठोस आधार भी प्रस्तुत करती है।

अ. ऐतिहासिक और पौराणिक पृष्ठभूमि पर रचित विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का स्वरूप – ऐतिहासिक और पौराणिक पृष्ठभूमि पर रचित विष्णु प्रभाकर जी की अधिक कहानियाँ नहीं हैं फिर भी उनका अपना विशेष महत्त्व है। इन कहानियों मे अतीत जीवन के वर्ग-संघर्ष का चित्रण, भारतीय समाज-व्यवस्था, उसकी नैतिकता, आदर्श जीवन-मूल्य मर्यादा, आचार-विचार, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के गौरव तत्वों, धर्म और संस्कृति की युगानुरूप परिवर्तनशीलता आदि के चित्रण से ऐतिहासिक द्वंद्व की प्रक्रिया में आज के समझने-परखने की दृष्टि प्रदान की है, इतिहास के उन पात्रों को अपनी कथा का आलंबन बनाया है जो हमारे मन में चेतना उत्पन्न करते हैं। 'जीवन-दीप' में मध्यकालीन कथावस्तु के आधार पर आधुनिक युग की समस्याओं को स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण के आधार पर देखने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत कहानी में कलिंग देश के राजकुमार के अदम्य साहस, गहन प्रणय तथा वीरता, हृदय की पूर्णाहुति का वर्णन किया गया है। जो मानवता को जागृत करने का संदेश देता है। कलिंग देश का राजकुमार संघमित्रा से प्यार करता है जिसे संघमित्रा के भाई अशोक द्वारा स्वीकारा नहीं जाता। कलिंगकुमार को अशोक ने बंदी बनाया है, संघमित्रा उसे छुडवाने के लिए अपने भाई के पास प्यार की भीख माँगती है। शत्रु के सामने कलिंगकुमार को झुकना पंसद नहीं है। संघमित्रा की सहायता से प्राणों की भीख माँगना भी उसे पसंद नहीं है। उसके अपने जीवन-मूल्य हैं जिनको वह प्रेम से भी बढकर मान कर चलता है इसलिए उनकी पूर्ति के लिए शत्रु के हाथों मरने से पहले स्वयं अपने सीने में खंजर तानकर प्राण त्यागना पंसद करता है। उसके साथ संघमित्रा भी अपने प्राणों की आहुति देना चाहती है तो वह उसे रोकता है। कलिंगकुमार का यह कथन उसकी नैतिकता और आदर्श जीवन मूल्यों की मर्यादाओं की ओर संकेत करता है, "देवी, संघमित्रा ! मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ– अपने जीवन से बढकर प्रेम करता हूँ। तुमसे भी अधिक अपने देश को प्रेम करता हूँ। पर मनुष्य तो आज सोया हुआ है। उसे जगाने के लिए अभी और बलिदान की जरूरत है। यदि तुमने मुझे प्रेम किया है, तो समझ लो तुम्हारा प्रियतम कलिंग के रक्त-यज्ञ में अपने रक्त की पूर्णाहुति देकर उसे संपूर्ण करना चाहता है।"[३९] यह कहानी एक ओर एक व्यक्ति से संबंधित होते हुए भी युग जीवन की अभिव्यंजना

है तो दूसरी ओर ऐतिहासिक होते हुए भी उसमें आधुनिक युग की समस्याओं का आलोचनात्मक सर्वेक्षण है।

'मणि, कलंक और राजनीति', 'स्वर्ग और मर्त्य' इन दो कहानियो की पृष्ठभूमि पौराणिक है फिर भी इनमें चित्रित समस्याएँ आज के आधुनातन मानव मन की समस्याओं का ही चित्रण करती है, जो एक युग और काल की है। कृष्ण और सत्यभामा का विवाह कराने में सत्यभामा के पिता सत्यजीत का यही उद्देश्य था कि अंधक और वृष्णि वीर, जो दोनों अलग-अलग जातियों के हैं, उनमें आपसी वैर है उस वैर को हमेशा के लिए मिटाना चाहिए। अब तक ये दोनों जातियाँ एक दूसरे से लड़ती रहीं। इसी में कृष्ण और प्रसेन में संघर्ष छिड़ जाता है और कृष्ण द्वारा प्रसेन की हत्या की जाती है। तो सत्यजीत उस मणि पर कृष्ण का ही अधिकार दिखाकर उनके विवाह में वह मणि कृष्ण को देना चाहते हैं ताकि सघर्ष अपने आप मिट जाए। लेकिन सघर्ष समाप्त होता ही नहीं। प्रस्तुत कहानी एक प्रकार से वर्ग-संघर्ष का ही चित्रण करती है। कृष्ण मणि को स्वीकार नहीं करते। सत्यभामा का वाम्द्धा शतधन्वा जो उनमें से एक जाति का प्रतिनिधित्व करता था। उसके मन में सत्यजीत के प्रति क्रोध की भावना जग जाती है जो सोए हुए सत्यजीत पर वार करके उसकी हत्या करा देता है। कृष्ण अपने श्वसुर की हत्या का बदला लेता है और शतधन्वा का वध कर देता है। पहले शतधन्वा कृष्ण को देखकर भागने की कोशिश करता है तो मणि को अक्रूर के पास फेंककर चला जाता है। मणि के कारण यादवों में कलह न हो इसलिए अक्रूर उस मणि को लेकर तीर्थयात्रा करने निकलते हैं। लेकिन संघर्ष यहाँ भी समाप्त नहीं होता, मणि चुराने का आरोप कृष्ण पर आता है वहीं से फिर से एक बार यादव कुलवंश में संघर्ष छिड़ जाता है। बलराम का भी कृष्ण के प्रति जो विश्वास था वह कुछ अंश में खंडित हो जाता है। सभी यादवों द्वारा कृष्ण पर मणि चुराने का आरोप लगाया जाता है। इस प्रकार अतीत जीवन में वर्ग-संघर्ष में जो एक आंतरिक खलन होता था उसकी ओर कृष्ण का कथन संकेत करता है, "यह क्या है ! भैया भी मुझे इतना तुच्छ समझते हैं ? लेकिन नहीं वह भैया है तो क्या हुआ? है तो यादव ही। धन, शक्ति, रूप और ऐश्वर्य ने इन यादवों को उन्मत कर दिया है। मैं क्या करूँ ? जो होता है वह हो।"[४०]

'स्वर्ग और मर्त्य' कहानी की कथावस्तु का संदर्भ भी पौराणिक है। विष्णु प्रभाकर जी ने इस कहानी द्वारा प्रेम और विवाह के माध्यम से सामाजिक नियम, बंधन और उसके मर्यादाओं की चर्चा की है। इन मर्यादाओं के बंधन में मनुष्य को रहना चाहिए जो इन बंधनों को तोड़ने का प्रयास करता है, उसका पतन निश्चित होता है, इस तथ्य की ओर संकेत किया है। देवराज इंद्र को कुछ काल के लिए स्वर्ग से निष्कासित किया जाता है। उसी के स्थान पर धरती के राजा नहुष का इंद्र के पद पर आसीन किया जाता है। इंद्र पद के साथ-साथ इंद्राणी की प्राप्ति

की इच्छा राजा के मन में जग जाती है। इंद्राणी इसे स्वीकार नहीं करती। अधिकार और ऐश्वर्य के मोह के कारण राजा नहुष अपने ही कर्तव्य और मर्यादाओं को भूल जाते हैं। वे ऋषियों द्वारा अपनी पालकी ढोने का प्रस्ताव रखते हैं। उनको भी अपमानित करते हैं। इसलिए स्वर्ग में रहकर उनका भी पतन होता है। मात्र जब वे धरती पर थे तब उन्हीं मर्यादाओं में रहकर भी उनका जीवन ऊँचा था। इंद्राणी के कथन द्वारा सामाजिक नियमों का पालन, बंधनों का स्वीकार व्यक्ति विकास के लिए किस प्रकार आवश्यक बन जाता है। इसकी ओर संकेत करता है-- "पतन स्वर्ग से भी होता है। धरती का मानव तो ऊपर उठता है और इसलिए मैं कहती हूँ कि उनके पास सीमा है, नियम है, बंधन है और मर्यादा भी है।"[४१]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में विष्णु प्रभाकर जी ने आधुनिक युग की समस्याओं का विश्लेषण किया है। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी है। वे मनुष्य जाति के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं कि जब तक मनुष्य संकीर्णताओं से ऊपर नही उठेगा तब तक उसका विकास संभव नहीं है। मध्ययुग में जातिवाद, सांप्रदायिकता, आपसी भेद-भाव, प्रांतीयता आदि अनेक ऐसे तत्व थे जो भारतीय समाज एव राष्ट्रीय एकता के लिए घातक थे। विष्णु जी ने हारी हुई और निराशाग्रसित मनुष्य जाति को आशा का एक नवीन संदेश दिया है, उसका यह भी कारण है। इस प्रकार ऐतिहासिक कहानियो के माध्यम से ऐतिहासिक यथार्थ का निर्वाह करते हुए वर्ग-संघर्ष, उच्चवर्ग की स्वार्थप्रियता एव विलासिता, धर्म का प्रभाव एवं शोषितो के विद्रोह आदि की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संस्कृति और इतिहास में विशेष अंतर नहीं होता। वस्तुतः संस्कृति इतिहासयुगीन संस्कारों की परिचायक होती है। मनुष्य ने धर्म का विकास किया, दर्शन शास्त्र के रूप में उसका चितन किया, साथ-साथ साहित्य, संगीत, कलाओं का सृजन किया और सामूहिक जीवन को हितकर बनाने के लिए प्रथाओं एवं संस्थाओं को भी विकसित किया उन सब का समावेश संस्कृति में किया गया है। इस दृष्टि से विविध युगीन संस्कृतियों पर आधारित हिंदी कहानी अपनी अकारगत सीमा में विद्यमान रहकर अतीत जीवन का सम्यक चित्रण करने में समर्थ हुई है। विष्णु प्रभाकर जी भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं, इसलिए सभी सांस्कृतिक तत्वों का भी उनकी कहानियों में चित्रण होता जा रहा है। 'राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा' कहानी में राजनर्तकी की जीवन कथा के माध्यम से उन प्रभावों, संस्कारों का पर्दाफाश किया है। जो व्यक्ति ने अपने स्वार्थ के लिए प्रथाओं को भ्रष्ट रूप में स्वीकारा है जिसका शिकार बनी है राजनर्तकी तारा। राजनर्तकी तारा न्यायालय के कठघरे में रहकर अपना लिखित बयान पढती है-- उसी से इस कहानी की कथावस्तु चलती है। राजनर्तकी और वीरगढ़ के राजकुमार द्वारा राजनर्तकी के

जीवन का रहस्य खुल जाता है– वह राजमाता की बेटी थी और आज जो राजकुमार कहे जा रहे हैं वह पहले एक क्लर्क का बेटा था– वंश के चलने के लिए बेटा ही चाहिए– इसलिए राजमाता के द्वारा क्लर्क से खरीदा जाता है। राजमाता बेटी का त्याग कर देती है। वह बेटी आगे जाकर वैश्या बन जाती है। राजमाता के कारण उसको अपने जीवन की कीमत चुकानी पडती है। अंत में जब वह राजमाता से मिलना चाहती है, माँ के प्यार के लिए तरसती है पर राजमाता से उसका स्वीकार नहीं किया जाता उसी में राजमाता का अंत हो जाता है। मात्र नर्तकी राजमाता की मृत्यु के लिए अपने आप को जिम्मेदार मानती हैं। 'एक और कुंती' कहानी में नारी जीवन के एक ऐसे ही पहलू का चित्रण किया है। कहानी की नायिका 'मैं' बलात्कारीन औरत है। हत्यारे उसके पति की भी हत्या कर देते हैं तब वह लेखक से अपनी व्यथा बताती है। नूर नाम का एक मुसलमान युवक वह अपनी जमीन जायदाद बचाने के लिए मुसलमान बन जाता है– वह उसकी सहायता करता है। अंत में वह भी मारा जाता है। फिर दूसरा फारुखी, उसकी सहायता करता है– वह भी उसे छोडकर चला जाता है। नारी निकेतन में रहनेवाली कहानी की नायिका प्रतिभा के जीवन प्रवास यात्रा की कथा है। नारी निकेतन में अंत में अकेली बच्चे के साथ फिर से हिंदू स्त्री बनकर रह जाती है। पूरी कहानी एक प्रतीक रूप में कुंती की व्यथा के समान प्रतिभा की व्यथा बनकर रह जाती है। नारी के सांस्कृतिक जीवन की दासता के कई चित्र विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में मिलते हैं।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी के कहानी साहित्य का फलक अत्यंत विस्तृत और व्यापक है जो साहित्य के क्षेत्र में अपनी एक जीवनदृष्टि छोड़ता जाता है।

संदर्भ सूची

१. कहानी की सवेदनशीलता : सिद्धात और प्रयोग – डॉ० भगवानदास वर्मा, पृ० २४२
२ सच ! मैं सुन्दर हूँ (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० १६
३ कहानी की सवेदनशीलता : सिद्धात और प्रयोग . डॉ० भगवानदास वर्मा, पृ० २४
४. रायबहादुर की मौत (इक्यावन कहानियाँ), पृ० १२४
५ एकमौत समंदर किनारे : (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३७७
६ एक अनचीन्हा इरादा (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४०१
७ एक अनचीन्हा इरादा : (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४००
८ कितने जेब कतरे . (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४१६
६ सलीब (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३५६
१० आश्रिता : (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २७
११ द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १६२
१२. हिंदी उपन्यास और जीवनमूल्य . डॉ० मोहिनी शर्मा, पृ० १०७
१३ स्वातत्र्योत्तर हिंदी कहानी का समाज – सापेक्ष अध्ययन · डॉ० कीर्तिकेय, पृ० १११
१४ धरती अब भी घूम रही है : (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ७१
१५. सस्कृति और समाजशास्त्र . रागेय राघव, गोविद शर्मा, भाग २, पृ० १७७
१६ मैं नारी हूँ (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४१२
१७ अधेरी सुरग (एक आसमान के नीचे), पृ० २४
१८ भटकन और भटकन . (एक आसमान के नीचे), पृ० ८१
१६ हिंदी कथा– साहित्य · विविध संदर्भ – डॉ० कृष्णा रैना, पृ० ३७
२० शरीर से परे · (मेरी प्रिय कहानियाँ), पृ० ८३
२१ हिंदी कहानी दो दशक – डॉ० सुरेश धींगडा, पृ० २६
२२ वह रास्ता (जिंदगी के थपेडे), पृ० १५३
२३ एक माँ–एक देश · (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ७२
२४. हिंदी कहानी अतरग पहचान . डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ६४
२५ एक मौत समदर किनारे . (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३६६
२६ मजिल · (एक और कुती), पृ० ८६
२७ भाई साहब (रहमान का बेटा), पृ० ६
२८ द्वद्व (रहमान का बेटा), पृ० १४५
२६. बेटे की मौत (रहमान का बेटा), पृ० ४८
३०. दीप जले घर–घर : (रहमान का बेटा), पृ० ५६
३१ वे दोनों (रहमान का बेटा), पृ० ३६
३२ वे दोनो · (रहमान का बेटा), पृ० ४४
३३ नया राजा . (रहमान का बेटा), पृ० २००
३४. शमशू मिस्त्री (मेरा वतन), पृ० ७६
३५ सफर के साथी · (सफर के साथी), पृ० १२२
३६ आजादी (मेरा वतन), पृ० १२२
३७. मेरा वतन (मेरा वतन), पृ० १४
३८. धरती का स्पर्श (मेरा वतन), पृ० १५
३६. जीवन दीप : (सघर्ष के बाद), पृ० १५४
४०. मणि, कलक और राजनीति : (खंडित पूजा), पृ० ८८
४१ स्वर्ग और मर्त्य : (साँचे और कला), पृ० ३

❖❖❖

3

विष्णु प्रभाकर की कहानियों में यथार्थ के विविध आयाम

पृष्ठभूमि – हिंदी कहानियों में समाज की यथार्थ स्थिति वर्णित है। इनमें समाज के विभिन्न पहलुओं के विश्लेषण के साथ प्राचीन समाज एव वर्तमान समाज का तुलनात्मक अध्ययन भी देखने को मिलता है। इस दृष्टि से कहानी में जिन नए संदर्भ स्तरो का सर्वतोंमुखी विकास परिलक्षित होता है इसके मूल में यथार्थ का आग्रह ही है। यथार्थ के अधिक अनुभवगम्य और संवेदन स्तरों की उद्भावना करती हुई आधुनिक कहानी यथार्थ के संश्लिष्ट संबंधों का उद्घाटन भी करती है। व्यक्ति को एक सामाजिक संदर्भ मे चित्रित करने की चेतना भी इस यथार्थ के मूल में है। कहानियों में यही सवेदना एक नए यथार्थबोध की उपलब्धि है जो अततः एक संश्लिष्ट एकना की ओर बढती है। ई० सन् १६३६ के बाद की कहानियों में 'समाजवादी' तथा 'व्यक्तिवादी' दो स्वतंत्र धाराओं में यथार्थ की प्रस्तुति हुई है। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद की कहानियों मे इन दो धाराओं के समन्वित रूप ने बडी सीमा तक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के बाद पुरानी पीढी के कथाकार भी अपनी कहानियों के माध्यम से बदलते जीवन यथार्थ को अभिव्यक्ति देने तथा अपने कृतित्व मे नए दृष्टिकोण लाने का प्रयास कर रहे है। इनमें मध्यवर्गीय जीवन के रहस्यपूर्ण कोणों को ऑकने और कहानी को एक नया मोड देने का प्रयास करते हुए आगे बढ रहे हैं। इतना ही नहीं तो वे युगीन सत्य को अनुभव की प्रामाणिकता के साथ अभिव्यजित कर रहे हैं। यह यथार्थ का नये आयामों में प्रस्तुतीकरण है। पुरानी पीढी के प्रतिनिधि कहानीकार विष्णु प्रभाकर भी यथार्थ की इसी भित्ति से जुडे हुए एक प्रातिनिधिक कहानीकार कहे जा सकते हैं। यथार्थ के प्रस्तुतीकरण की उनकी अपनी दृष्टि है। वे समस्या का यथार्थ चित्रण नैतिक सहानुभूति से प्रेरित होकर करते हैं। प्रस्तुत अध्याय में उनके इस यथार्थ दृष्टि को विभिन्न आयामों में देखा गया है।

विष्णु जी के समस्त साहित्य के केन्द्र में नारी रही है। उनके लिए नारी चिंता का केंद्र भी है और चिंतन की धुरी भी। यथार्थ के विभिन्न आयामों मे हमें उनकी नारी संबंधित विभिन्न मान्यताआ को देखना आवश्यक होगा।

१. **पारिवारिक जीवन** – परिवार समाज में व्याप्त सामाजिक संबंधों का प्रतीक है। समाज मे परिवार का अनन्य साधारण महत्व है। समाज का निर्माण ही परिवारो से होता है। इसलिए दूसरे किसी समूह की अपेक्षा परिवार का प्रभाव सामाजिक जीवन पर किसी न किसी तरह होता ही रहता है और वह दूरगामी होता है। परिवार के भीतर के संबंधों पर युक्त समाज के आर्थिक, कानूनी, नैतिक तथा धार्मिक संबंधों की गहरी छाप होती है। वास्तव में हर सामाजिक संरचना मे एक प्रकार का परिवार होता है, जो केवल उसकी विशेषता होती है। परिवार की इस परिकल्पना के पीछे कही-न-कही नारी ही आधार रही है। विष्णु प्रभाकर जी ने कहानियो में पारिवारिक जीवन के कई महत्त्वपूर्ण बिन्दुओ को चित्रित किया है।

मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन – स्वातत्र्योत्तर काल में मध्यवर्ग साहित्य की संवेदना का केंद्र बिंदु रहा है। सन् ६० के बाद मध्यवर्गीय जीवन का स्वरूप बदल चुका था। उसके बदले हुए जीवन की अभिव्यक्ति पूरी यथार्थता के साथ साहित्य में चित्रित हुई है। व्यक्ति-परिवार-समाज एक दूसरे से परस्पर संबद्ध इकाइयॉ हैं। इस समाज के परिवार के साथ उसकी मान्यताऍ बनती है। इसका प्रतिबिंब साहित्य मे परिलक्षित होता है। स्वातत्र्योत्तर काल में मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन में जो बदलाव आया है वह पूरे सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से अपना महत्त्व रखता है। विष्णु प्रभाकर जी ने इस बदलते हुए सामाजिक परिवर्तनो की स्वीकृति अपनी कहानियो मे दी है।

पारिवारिक विघटन – आज संयुक्त परिवार के विघटन के साथ-साथ परपरागत नैतिक आदर्श भी टूट रहे है। शिक्षित होने के कारण उनमें ही आज जीवन-यथार्थ की सबसे अधिक और स्पष्ट प्रतिक्रिया घटित हो रही है जिससे यह वर्ग संस्कारो, विश्वासों, मर्यादाओ और जीवन-मूल्यों की एक भयकर संस्कृति से गुजर रहा है। परंपरागत भारतीय मूल्य और बदलते हुए आधुनिक मूल्यों मे टकराहट दिखाई देती है। विष्णु प्रभाकर जी इन मूल्यो में समन्वय को चित्रित करते हैं। ये मूल्य शाश्वत मूल्यो के साथ जुडे हुए हैं। 'राखी' कहानी बदलते मूल्यो की कहानी है। कहानी की नीरजा अपने भाई के मित्र विश्वनाथ से प्यार करती है। विश्वनाथ भी इस प्यार को जानता है। दोनों एक दूसरे से विवाह करना चाहते हैं कितु उनके जीवन की एक घटना सारे भविष्य के सपनों को एक तिनके की तरह बिखरा देती है। राखी के दिन नीरजा अपने भाई नरेश को राखी बॉध रही है। अचानक विश्वनाथ के मुँह से निकल जाता है 'काश, कि मेरी भी अपनी एक बहन होती।' विश्वनाथ के ये शब्द मॉ सुन लेती है और नीरजा से विश्वनाथ को राखी बॉधने का आग्रह करती है। अनिच्छा से बॅधी गई राखी दोनो के बीच प्रणय को भातृप्रेम मे बदल देती है। विष्णु प्रभाकर आदर्शों और भारतीय मूल्यों के प्रति आस्थावान

होते हए भी प्रतिक्रियावादी नहीं हैं। विवाह के संबंध में उनका दृष्टिकोण इस कहानी में व्यावहारिक रहा है।

तनावपूर्ण मानसिकता – आज मध्यवर्गीय व्यक्ति परिवार के प्रति भी भावनात्मक विघटन की क्रूर मानसिकता से घिरा हुआ है। वैवाहिक जीवन मे भावनात्मक तथा वैवाहिक असामंजस्य के कारण तनावपूर्ण मानसिकता मे जीवन व्यतीत करने वाले कई पात्र विष्णु जी की कहानियों में मिलते हैं। 'निशिकांत का स्वप्न' कहानी का निशिकांत भी एक ऐसा ही परिस्थिति के साथ संघर्ष करने वाला पात्र है। साहित्यिक होते हुए भी उसे समाज में कोई ऊँचा पद नहीं मिलता मात्र वह तनावपूर्ण मानसिकता में जीता है। उसका मानसिक विकास अपनी श्रेणी के लोगो से बहुत आगे बढा हुआ है। इसलिए नौकरी से इस्तीफा देकर देश-भ्रमण करने के, स्थान-स्थान पर व्याख्यान देकर वास्तविक जीवन को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहता है। 'अधेरी सुरंग' कहानी की शिल्पा और उसके पति का संघर्ष भी वैवाहिक जीवन की असामंजस्य की क्रूर मानसिकता का ही चित्रण करता है। पति और उसके केवल पैसों की चाहत से संबंध है जो वैवाहिक जीवन में सुख और शांति की खोज करना चाहती है। अंत मे उसके हाथ मे केवल उसकी मृत्यु आती है। 'शेषकथा', 'मूड' भी ऐसी ही जीवन की विसंगतियो का चित्रण करने वाली कहानियाँ हैं। 'सच ! मैं सुन्दर हूँ' कहानी की भाभी प्रकृति के साथ जीवन की विषमताओं को खोजना चाहती है, पति प्रेम की उसकी तडपन और पति के जीवन को कभी एक लकीर से अधिक न समझना आदि कारण दोनों को अपने में सिमटे लीक पर चलने देते हैं। इसलिए दोनों में अंतर आता है। भाभी के विचार इसकी पुष्टि करते हैं, "नारी को क्या पति और देवता की ही आवश्यकता होती है ? वे पूजा के पात्र हो सकते हैं लेकिन प्यार के नहीं। और नारी चाहती है प्यार, रस, उन्माद ! किसी का होने या किसी को अपना बनाने की साथ ! यही साथ नारी को सधवा बनाती है अन्यथा वह चिरविधवा है ?"[१]

परिवार में नारी के विभिन्न रूप – संबंध (परिवार और परिवारोत्तर), अर्थ, विचार और परिवेश इन चार आधारों पर परिवार में नारी रूपों की कल्पना की जाती है। भारतीय समाज जीवन का ढॉचा ही इन रूपों पर आधारित है। विष्णु जी की कहानियों में चित्रित नारी भी भारतीय समाज जीवन के इस ढॉचे को सामने रखकर चित्रित की गई है। परिवार में नारी की अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण आधार संबंध होते हैं। यह संबंधों की एक व्यापक संस्था है। नारी के रूपों को सबंधों के धरातल पर ही अधिक महत्ता मिलती है। आज भी नारी के लिए पारिवारिक संबंध मूलाधार हैं। नारी के विविध रूपों में प्राचीन और नवीन मूल्यों, परंपरागत और परिवर्तित संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं प्रवृत्ति के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है जिससे नारी के विविध रूपों में विकास, विघटन और बंदलाव के बिंदु परिलक्षित होते हैं। इसी पार्श्वभूमि पर विष्णु जी की कहानियों में चित्रित नारी की परिवार की दृष्टि से भूमिकाओं को देखना महत्त्रपूर्ण हो जाता है।

विवाह-पूर्व पारिवारिक जीवन में नारी संघर्ष – सामान्यतः नारी विवाह से पूव पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाती है जिसमें कभी स्वच्छंदता, कभी प्रतिबंध और कभी अनिवार्यता के भाव निहित रहते हैं। इसमें संघर्ष का धरातल तब अधिक तीव्र होता है जब उसे न चाहते हुए भी जिम्मेदारियों को वहन करना पडता है। 'कितने जेबकतरे' कहानी की सपना पिता की मृत्यु के बाद पारिवारिक जिम्मेदारियों को पूरी तरह उठाती है। भाई को गरम कोट खरीदने के लिए पैसे, बहन को पुस्तक खरीदने के लिए और माँ को घर खर्च चलाने के लिए पैसों का निपटारा करना या इन्हीं लोगों के लिए उनकी माँगे पूरी करने के लिए अपनी मर्जी के खिलाफ अपने बॉस के साथ उसे संबंध रखने पडते हैं। इसके विरुद्ध एक खीज एक उकताहट-सी उसी के मन में है। फिर भी यह सब न सहते हुए भी उसे उसका स्वीकार करना पड़ता है। उसकी कसम इन शब्दों में व्यक्त होती है, "वे सब एक के बाद एक बोले जा रहे थे, कमरे की उस उदास रोशनी सपना होकर भी वहाँ नहीं थी। उसके अंतर में भी उस क्षण वैसी ही उदास रोशनी थी जिसमें अनेक चेहरे, गड्डमड्ड हो गए थे उस क्षण। अनेक आवाजें एक दूसरे को काटती हुई गूँज उठी थीं, अंधेरे मे काफी हाउस की असंख्य आवाजों की तरह जिनमें बस घुटता हुआ नाद होता है, अर्थ नहीं होता है।"[२]

विवाह-पूर्व नारी का मानसिक संघर्ष– स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी के विवाह-पूर्व प्रेम-संबंध वैयक्तिक एवं सामाजिक धरातल पर अधिक निर्भर हुए हैं जिसमें कुंठा, तनाव, द्वंद्व, भटकाव और शोषण की स्थितियाँ अधिक मुखर होकर सामने आई हैं। इसमें एक ओर पारिवारिक, सामाजिक कारण है तो दूसरी ओर वैयक्तिक कारण भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबाला ऐसी ही नारी है जो मुक्त जीवन को ही सही जिदगी मानकर चलती है फिर भी भटकाव की, शोषण की स्थिति में अत में मृत्यु को ही स्वीकार करती है। प्रस्तुत कहानी का यह वक्तव्य उसके अंदर की कुंठाओ को व्यक्त करता है। महानगरीय जीवन की सभ्यता और संस्कृति की गहराई को जाबाला के माध्यम से विष्णु जी स्पष्ट करते हैं, "सब कुछ लेने के लिए और सब कुछ देने के लिए किसी के अहं से टकरा जाना और किसी के लिए अपने को लुटा-देना-दोनों का उसके लिए एक ही अर्थ है।"[३]

विवाह-पूर्व प्रेम संबंध-अतीत और वर्तमान का द्वंद्व – प्यार का चरम उत्कर्ष आस्था और विश्वास में है। जब आस्था और विश्वास की प्रबल अनुभूति होती है तब मनुष्य सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हो जाता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी में नारी के विवाह-पूर्व प्रेम के ऐसे रूप भी हैं जिसमें उसने त्याग एवं बलिदान करके अपनी जिंदगी अतीत की स्मृतियों में व्यतीत की हैं और वह अपनी जिंदगी में किसी दूसरे व्यक्ति से नहीं जुड़ पाई है। 'कैसी हो मरी अम्मा' कहानी की मरी अम्मा भी ऐसी ही एक नारी है। जिंदगी में अभावों के सिवा किसी को स्वीकार

भी अंत तक नहीं कर सकती। विवाह के बाद भी वह अपने प्रेमी से ही जुड चुकी है यही शक पति-पत्नी में दूरी पैदा करता रहा और वह उसे चुपचाप सहती रही। वह अपने सत् को सत् ही रहने देगी। पति पुरुष नहीं बनने देगी इसी दृढता से अंदर की आवाज को प्रतिरोध करती रहती है।

विवाह पूर्व प्रेम संबंध : अतीत और वर्तमान का द्वंद्व – विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में अतीत और वर्तमान के द्वंद्व मे जीवन जीनेवाली नारी का भी चित्रण मिलता है। 'खंडित पूजा' कहानी की नायिका वीणा जो नीलम बाबू से प्यार करती थी। नीलम बाबू ने देश सेवा में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत करना चाहा था। इसलिए वे वीणा के प्रेम को स्वीकार नहीं कर सके। अंत में नीलम बाबू पुलिस की गोलाबारी में शहीद होते हैं तो वीणा उन्हीं को बचाने का प्रयास करती है, मात्र सब खंडित रहता है। वीणा अवरुद्ध कंठ से उसके मुख का रक्त पोछती रहती है और अतीत और वर्तमान की स्मृतियों में अपने आप को खो देती है। इस तरह विवाह-पूर्व नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को विष्णु प्रभाकर जी ने अत्यत गहराई के साथ चित्रित किया है। विवाह नारी जीवन का एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन बिंदु माना जाता है। इस बिंदु पर आकर नारी की समस्त भूमिकायें एक समस्त सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति के साथ जुड जाती हैं। नारी-जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विष्णु जी ने अपनी लेखनी चलाई है। विवाह के बाद नारी का एक महत्त्वपूर्ण रूप होता है 'पत्नी रूप' जो परिवार का एक महत्त्वपूर्ण आधार माना जाता है। पत्नी रूप को निभाते समय नारी को विभिन्न भूमिकाओं से चलना पडता है जो उसकी सामाजिक अभिव्यक्ति होती है। विष्णु जी ने नारी के इन रूपों को बडी सजगता से चित्रित किया है।

१. **परंपरागत नारी का चित्रण** – विष्णु प्रभाकर जी की नारी परंपरागत निष्ठा से अपने पति के साथ चलती दिखाई देती है। मात्र कहीं वह परिस्थितियों से मुँह मोडकर अपने कर्तव्य से दूर नहीं भागती। जो परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने के लिए सदैव तत्पर है। 'बँटवारा' कहानी की नंदा बेटे को डॉक्टरी पढाने के लिए भिजवाना चाहती है। पैसों की चिंता होते हुए भी अपना जीने का एकमात्र सहारा दुकान गिरवी रखकर बेटे को डॉक्टरी पढ़ाने भेजती है। विष्णु जी ने विधवा नारी में भी उतनी ही निष्ठा दिखाई है। उसे स्वाभिमानी और संस्कारक्षम रूप से चित्रित किया है। 'आश्रिता' कहानी की सोना पति की मृत्यु के बाद छोटे भाई किशन का पालन पोषण करती है।

अ. आक्रोश एवं विद्रोह करने वाली नारी – विष्णु जी की नारी परंपरा रूप में पति के साथ अपना कर्तव्य एक ओर निभाती हुई दिखाई देती है मात्र पति द्वारा दी गई यातनाओं को केवल चुपचाप सहती नहीं तो उसके विरुद्ध विद्रोह करके खड़ी हो जाती है या अंदर-ही-अंदर घुटती रहती है। मात्र उसकी परिणति पुरुष के आगे समर्पण की है। 'कैक्टस के फूल' की प्रेमा और गिरीश दोनों की

मनोवृत्तियो मे भेद है। दोनों में सामजस्य प्रस्थापित नही होता। प्रसिद्धि के कोलाहल मे फंसकर गिरीश प्रेमा को किसी सामाजिक कार्य मे जाने नहीं देता। प्रेमा की घुटन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया है। 'गृहस्थी' कहानी की वीणा स्वाभिमानी है पर अपने पति की आदतो से तंग है। पति समाजसेवा और देश सेवा मे लीन है, उसकी परवाह नही करता। वीणा घर छोडकर जाने का निर्णय भी कर लेती है पर जैसे ही उसे पता चलता है कि पति तो उसे घर का पर्याय मानते है तो वीणा को अपनी भूल का अहसास होता है। यहाँ नारी का पति के आगे समर्पण का भाव ही सिद्ध करता है। 'मैं नारी हूँ' कहानी की रजना पति के अत्याचारो से तग आ जाने के कारण नारी निकेतन मे रहकर एम० ए० तक की पढाई पूरी करती हे। अत मे पति उसे फिर मिलने के लिए आते है तो वह साफ इंकार कर देती हं।'' नही आप नही आ सकते ? जिस रजना को आप खोजने आये है वह मर चुकी है, मै नारी हूँ और नारी अब अपने आत्मसम्मान की रक्षा करना जानती है।''[५]

आ. संबंधो के त्रिकोण (पति, पत्नी और प्रेमिका) में उभरे विविध रूप – आज की नारी घर से बाहर जाने के कारण उसके व्यक्तित्व को सबधों के धरातल पर एक नया मोड मिला है। आज नारी के समक्ष पत्नी और प्रेमिका की दोहरी भूमिका है। विवाह के बाद पति ओर विवाह से पूर्व प्रेमी से सबध होने के कारण सघर्ष का धरातल उभरा है। जहॉ पहले वह पुरुष का किसी और नारी से सबध होने पर ईर्ष्या भाव का शिकार होती थी वहॉ आज उसने स्वयं भी दोहरी भूमिका को निभाना प्रारभ कर दिया है। नारी की इस नई मन स्थिति को भी विष्णु प्रभाकर चित्रित करते है। 'तिरछी पगडडियॉ' कहानी की शतरूपा को इसी दृष्टिकोण से चित्रित किया है। किशोर जैसे सपादक के साथ वह काम करती है। किशोर उसका प्रेमी है फिर भी वह पति होने का अधिकार सुशील जैसे लेखक को भी देना नही चाहती है जो उससे प्यार करता है। उसकी तिलमिलाहट सुशील को चुनौती देती है लेकिन वह उसको स्वीकार नही करता तो वह घृणा करती है और न उसे चाहते हुए भी किशोर के साथ चली जाती है। उसका यह कथन ही उसकी मनःस्थिति के एक नए कोण पर प्रकाश डालता है। ''नारी प्रशंसा की भूखी है, निंदा भी वह सह सकती है परंतु पुरुष की उदासीनता घृणा से भर देती है।''[६]

इ. विवाह के बाद का नारी जीवन – स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात नारी का ऐसा रूप भी मिलता है जहॉ उसे प्रेमिका और पत्नी दोनों की भूमिका का निर्वाह करना पडता है। समाज की दृष्टि से किसी एक को स्वीकार उसे करना पडता है मात्र वह दोनों रूपों को एक साथ स्वीकारती है। उसमे वह द्वद्व तथा तनाव का स्वीकार होती है। 'एक और दुराचारिणी' की नायिका जिंदगी के अभावों से जूझने के साथ ही पति और प्रेमी के बीच झूलती रहती है। वह पति के अत्याचारो से बेजार है पर उसे छोड भी नहीं पाती और तनाव में ही जीवन गुजारती हैं।

ई. विवाह के बाद पत्नी और प्रेमिका की भूमिका में निर्द्वंद्व रूप से संबंध –

जिस प्रकार पत्नी और प्रेमिका की भूमिका को नारी द्वंद्व एवं तनाव से स्वीकारती आई है उसी तरह बडी कुशलता से वह दोनों संबंधों को निभानेवाली नारी भी विष्णु जी ने चित्रित है। 'एक और कुंती' की नायिका पॉच पुरुषों के साथ इस भूमिका को निभाती है। 'माँ-बाप' कहानी की फातिमा भी इसी दृष्टिकोण से चित्रित है। कहानी में फातिमा से प्यार करनेवाले तीन हैं, एक बशीर उसका पति, अहमद जो फातिमा के बेटे को खुद अपना नाम देना चाहता है, बशीर की हत्या कर जेल चला जाता है, तीसरे कलूमियॉ फातिमा का हाथ मॉगकर गफूर के पिता होने का दावा करते हैं। फातिमा का तीनो के साथ का व्यवहार बडी कुशलता से विष्णु जी चित्रित करते हैं।

उ. विवाह के बाद पति या प्रेमी में से एक का परित्याग करनेवाली नारी –

विष्णु जी की 'सखी' कहानी की नीरजा ऐसी ही नारी है। नीरजा अपने ही भाई मित्र विश्वनाथ से प्यार करती है। विश्वनाथ भी इस प्यार को जानता है लेकिन अनिच्छा से उसका भाई के रूप में स्वीकार उसके सारे सपनों को ही तोड़ देता है। विवाह के बाद भी एक दूसरे के प्रति आत्मीयता दोनों में रहती है, मात्र अंत में नीरजा को विश्वनाथ को भाई के रूप में स्वीकार कर प्रेमी का परित्याग करना पड़ता है।

ऊ. पति की शंकालु दृष्टि से पत्नी में द्वंद्व – विवाह के बाद पत्नी के प्रति पति की शंकालु दृष्टि भी द्वंद्व का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। यह शंकालु दृष्टि भी पति-पत्नी के बीच तनाव उत्पन्न करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यह स्थिति अधिक उभरकर सामने आई है। इसमें पति का शंकालु रूप ही प्रमुख रहा है जिसमें पत्नी को तनाव एवं द्वंद्व अधिक झेलना पडता है। विष्णु जी की 'शरीर से परे' की रश्मि इसी द्वंद्व को झेलती है। प्रदीप जैसे साहित्यकार के साथ उसका प्रेम 'शरीर से परे' का है। वह उसके साहित्य से प्रेम करती है, उसे मिलती है। रश्मि के पति उसकी ओर शंकालु दृष्टि से देखते हैं तो उनमें बार-बार झगड़े हो जाते हैं। 'राजम्मा' कहानी में राजम्मा का पति के मित्र के साथ हॅसी से वार्तालाप यह कारण भी राजम्मा की जिंदगी में तनाव की स्थिति उत्पन्न करने का एक नया ही कारण है जो पूरी कहानी में राजम्मा के मन में एक विषम उकताहट-सी छोड़ देता है। इसका सशक्त चित्रण विष्णु जी की कहानियों में हुआ है।

ए. विवाहोपरांत पर-पुरुष से प्रेम-संबंध – विष्णु जी की 'ठेका' कहानी में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार आज के अर्थ पर आधारित समाज में एक सीमा तक पति-प्रेम भी चल सकता है। पति की इच्छा से दूसरों से संपर्क भी स्थापित किया जा सकता है। आर्थिक तनाव एवं दबाव की स्थिति में पति-पत्नी के सम्मुख इतना मजबूर है कि वह किसी अन्य पुरुष से संपर्क रखती है अथवा वह इस व्यवस्था का इस कदर शिकार हो गई है कि अर्थ प्राप्ति के लिए वह कुछ

भी करने को तैयार है। इसके अलावा और भी कारण है, जैसे पति या परिवार की यातनाऍ, दुःख, यौन-असंतुष्टता आदि। विष्णु जी की 'बच्चा मॉ का था' कहानी की बदो भंगिन परिवार की यातनाओं के कारण ही बड़े सेठ के हविश का शिकार बनती है।

ऐ. स्वच्छंद, स्पर्धामय, भोगवादी नारी रूप – स्वतंत्रता प्राप्ति की बदलती परिस्थितियों में पत्नी का परंपरागत स्वरूप भी बदला है। पत्नी ने जीवन में स्वच्छंद दृष्टिकोण को अपनाया है, पति के व्यक्तित्व के साथ स्पर्धा भी की है और उसकी उपेक्षा भी। इसके साथ कहीं-कहीं उसकी वृत्ति स्वच्छंद रूप से भोगवादी रही है। विष्णु जी ने 'अंधेरी सुरंग' की नायिका को इसी दृष्टि से चित्रित किया है। शिल्पा ने जीवन मे स्वच्छंद दृष्टिकोण को अपनाया है इसलिए उसकी वृत्ति भोगवादी रही है। उसके पति अपनी एक फिल्म के लिए पूँजी इकट्ठा करने के लिए एक मित्र परवेज के साथ संबंध रखने के लिए कहते हैं तो शिल्पा पति के मित्र परवेज की अपेक्षा वह अपना मित्र अयन से प्रेम करना पसंद करती है। उसका यह कथन उसकी स्वच्छंद वृत्ति को स्पष्ट करता है, "मैंने तुम्हें अपना बनाया है पर गुलामी की शर्त पर नहीं। एक-दूसरे के होते हुए भी हमारी अपनी-अपनी जरूरतें हैं, अपनी-अपनी जिंदगी है और उसे हम किसी भी तरह जी सकते हैं।"[७]

माता रूप – नारी का पत्नी रूप के पश्चात् दूसरा रूप माता का होता है जो स्वाभाविक और प्राकृतिक है। उसे उसके व्यक्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता के पश्चात् भी नारी माता रूप में विभिन्न आयामों में उभरी है। विष्णु जी ने नारी के माता रूप को भी बडी सशक्तता के साथ चित्रित किया है उदा०

अ. वात्सल्यमय रूप – भारतीय समाज में स्त्री के मातृत्व को परिवार में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मातृत्व उसकी चरम उपलब्धि मानी जाती है। विष्णु जी की 'अभाव' कहानी की नायिका मातृत्व से वंचित है। नायिका को यही दर्द जलाता है। वह अपने मन की कसक को पडोसिन की बच्ची के साथ प्यार लुटाने में पूर्ण करती है। पार्टी में जब बच्ची खिलौने तोड देती है तो वह अपने को कृतार्थ समझती है, "न जाने कब से रखे थे ! न कोई छूता था, न खेलता था। देखते-देखते आँखें थक गई थीं। आज बेटी ने उसी थकान को दूर किया"[८] वात्सल्य से भरा हुआ एक अलग माँ का रूप ही विष्णु जी ने चिचित्र किया है।

आ. विवश तथा उपेक्षित माँ – विष्णु जी की कहानियों में नारी का यह रूप भी बड़ी सशक्तता से चित्रित किया गया है। 'नाग-फाँस' कहानी की माँ विवश है क्योंकि एक बेटा भी उसके पास नहीं रहता। इसलिए बेटे की बीमारी में वह डॉक्टर द्वारा दी गई दवा की शीशी रात के अंधेरे में चुपके से उड़े देती है ताकि बेटा ठीक होने के बाद उससे दूर न हो जाए। यही चिंता उसे बार-बार सताती

है। वह विवशता से ही इस तरह का बर्ताव करती है। 'एक औरत एक माँ' कहानी की चैना की पत्नी बेटे रामसुख को छोडकर किसी मर्द के साथ भाग तो जाती है मात्र रामसुख और मर्द में ठेके के कारण सघर्ष छिड जाता है तो वह बेटे के लिए विवश हो जाती है। उसकी विवशता उसके कथन में मुडती है। मर्द से कहती है, "यह ठीक है मैंने बुरेखा किया है मैं तेरी हूँ, इस वक्त भी तेरी हूँ लेकिन इसका मतलब नहीं हो जाता तू मेरे बेटे के मुँह का बोस छीन ले।"[१] वह बेटे के लिए अपनी जान तक दे देती है। 'अंधेरे आँगनवाला मकान' कहानी के माँ की चिता कुछ और ही है। चार-चार बेटे होकर भी बुढापे में उसका कोई सहारा नहीं बन सका। सब विदेश में जाकर रहने लगे हैं। 'खिलौने और बेटे' की माँ बेटे की भविष्य की चिता करती है। उसका बेटा सुनील माँ-बाप के द्वारा आयोजित मधुपिता के साथ शादी को नकारता है और रूस में जाकर स्तावना नाग की रूसी लड़की से शादी करता है। इस प्रकार विष्णु जी की कहानियों में माँ के रूप में नारी की विवशता के कई अलग-अलग चित्र देखने को मिलते हैं।

क. प्राचीन मूल्यों के प्रति संघर्षरत माँ – नई पुरानी पीढी का संघर्ष सदैव चलता है। नई पीढी प्राचीन मूल्यों का विरोध करती है और पुरानी पीढी उन्ही मूल्यो की मर्यादाओं को स्थापित करने की कोशिश करती है। माता-पिता का पुत्र-पुत्री या बहू की इच्छाओं के बीच बाधा बनना इसी रूप को उभरता है। 'सघर्ष के बाद' की हेमा और निर्वाण दोनों भिन्न जातियो के होते हुए भी परस्पर विवाह कर लेते हैं। निर्वाण की माँ इसे पसद नहीं करती। वह अपनी बहू को घर मे रखना पराद नहीं करती। अत मे परिवार में संघर्ष छिड जाता है। 'खिलौने और बेटे' कहानी की माँ को भी इसी समस्या के कारण सघर्ष करते चित्रित किया गया है।

विष्णु जी की कहानियो मे नारी माता रूप मे अनेक कोणों से उभरी है। लेकिन माँ रूप में भी वह परपरागत रही है क्योकि नवीन परिस्थितियों मे नारी के माँ रूप पर सीधा प्रभाव नहीं पडा है। उनकी कहानियो मे नारी वात्सल्यमय रूप मे ही अधिक चित्रित की गई है। अत यह कहा जा सकता है कि नारी माँ के रूप मे कम ही बदली है।

३. बहन रूप – स्वतत्रता प्राप्ति के बाद नारी के परम्परागत पारिवारिक रूपों मे बहन का भी चित्रण हुआ है लेकिन बहुत कम मात्रा मे। विष्णु जी की कहानियो मे चित्रित बहन का रूप भी ममत्व में ही अधिक उभरता है। 'आश्रिता' की सोना स्वयं विधवा होते हुए भी विरासत मे मिली पिता की जमीन लेकर छोटा भाई किशुन का पालन-पोषण करती है। 'कितने जेबकतरे' की सपना पिता की मृत्यु के बाद स्वयं नौकरी करके छोटे भाई सुधीर, सुगधा और साधना की सभी जिम्मेदारियों को उठाती है। परिवार की चिंता उसे दिन-रात सताती रहती है। विष्णु जी की कहानियो मे बहन रूप में नारी अधिक चित्रित नही हुई है।

वैचारिक चेतना की अभिव्यक्ति – परिवार में नारी की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। जिस तरह आज नारी परपरागत रूप मे परिवार को चलाती आई है उसी तरह दूसरी ओर शिक्षा प्रसार के परिणाम के कारण स्वतंत्रता के बाद नारी की वैचारिक चेतना भी बदलती नजर आती है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग तो हुई है, साथ-साथ वह अपने जीवन में नए सबंधों के उभरने से परिवार मे बौद्धिकता और भावुकता दोनों से जूझती नजर आ रही है। विष्णु जी की कहानियो मे नारी का यह रूप भी देखने को मिलता है। बिब-प्रतिबिंब' की ईरा पर पाश्चात्य विचारधारा का गहरा प्रभाव है। रमणीक द्वारा प्रेम को एक बार ठुकराए जाने पर भी प्रेम के बारे में उसके मन में परपरागत धारणाओ से अलग विचारधारा है। प्रेम सौंदर्य, धन की उपेक्षा नही करता। प्रेम में स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द्र, कर्तव्य का भी कोई मूल्य होता है। इसलिए उसी प्रेम के साथ जुडी हुई वासना और आसक्ति का हमें दास नहीं बनना चाहिए। 'द्वंद्व' कहानी में सुजाता का पाप-सबंधी विवेचन भी एक विचार हमारे सामने रखता है। भूख की यह विडंबना है कि इसके कारण जन-जन एक दूसरे को खाते हैं, जो आत्मविश्वास को भी तोड रही है और मनुष्यता को मारे जा रही है। विष्णु जी सुजाता के इन विचारो के माध्यम से दया, परोपकार, मनुष्यता को ही दुनिया की विडंबना को मिटाने का एक पर्याय मानना चाहिए, यह एक विचार सामने आता है जो एक ओर उसकी बौद्धिकता को प्रकट करता है, साथ ही उसकी भावुकता में उसे जीवन मे मात्र 'द्वंद्व' करना पडता है। विष्णु जी अपनी कहानियों में इसकी स्वाभाविकता को चित्रित करते हैं। विचार ही मनुष्य की भावना और व्यक्तित्व को नियत्रित करते हैं। यह विचार जितने स्पष्ट होते है उतना ही व्यक्तित्व में भी स्पष्टता और उलझाव कम होता है। विष्णु जी की कहानियो द्वारा विचार और भावना के द्वद्व में नारी के रूपों की यही स्थिति सामने आई है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियो मे चित्रित पारिवारिक यथार्थ चित्रण को देखते हुए एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि उन्होंने परिवारो के चित्रण में नारी की विभिन्न भूमिकाओं को तो चित्रित किया है, साथ-साथ काल के अनुरूप बदलती हुई नारी की इन भूमिकाओ को पारिवारिक जीवन की सपूर्ण भूमिका की पार्श्वभूमि पर चित्रित किया है। इस दृष्टि से व्यक्ति-परिवार-समाज इन तीनों के मध्य नारी को केंद्र मानकर उसकी स्वाभाविकता को आँका है। विष्णु जी यहाँ केवल उसके जीवन से संबंधित समस्याओ, पारिवारिक संबध, सामाजिक स्थिति आदि का निरूपण कर रुकते नही तो उसके स्वाभिमान, प्रतिशोध, चरमस्नेह-शीलता, मातृत्व, ममत्व, शील, सदाचार, मर्यादा और महत्ता आदि जैसे गुणों को भी यथार्थता के साथ प्रस्तुत करते हैं। भारत में नारी उत्थान और जागरण की भावना, जो बीसवीं शती से आई है इसके कई चित्र उनकी कहानियो में मिलते हैं। यहाँ उनकी कहानियों के बारे में और एक बात का स्वीकार करना

होगा कि उन्होंने नारी को परम्परा से मुक्ति दिलाकर उसे उसके सामाजिक और भौतिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है जो उनके मार्क्सवादी चिंतन का ही प्रभाव है जो आगे जाकर सुधार आंदोलन, चेतना जागरण का एक महत्त्वपूर्ण प्रतिफलन बन गया है। विष्णु जी इस आंदोलन के साथ शुरू से जुड़े थे। स्वाभाविक है उसका प्रभाव उन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। तात्पर्य, नारी शिक्षा, नारी-स्वाधीनता, नारी समानता, नारी की आर्थिक निर्भरता और नारी का उपभोग्या न बनना आदि कई आयामो में नारी की स्थिति को परिवर्तित करने के प्रयास किए जा रहे है। विष्णु जी की कहानियॉ इसका सही-सही समर्थन करती नजर आती हैं।

२. **सामाजिक जीवन का चित्रण –** परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। जीवन और मूल्य दोनों इसकी प्रभाव व्याप्ति के क्षेत्र हैं। मनुष्य के पारस्पारिक संबंध, क्रिया-व्यापार, सोचने के तौर-तरीकों, मान्यताओं, रीति-नीतियों का प्रत्यक्ष संबंध जीवन की एक विशिष्ट प्रणाली से होता है, यह जीवन प्रणाली कुछ विशिष्ट सिद्धांतों पर आधारित होती है, जिन्हें जीवन मूल्य कहा जाता है। सामाजिक चेतना इन मूल्यों को प्रामाणिक अभिव्यक्ति देती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इसके बदलते परिदृश्यों को गहरी संपृक्ति के साथ चित्रित किया है।

अ. परिवार और समाज के संबंध – भारत की स्वतत्रता के पश्चात् सामाजिक क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, इसका बहुत बड़ा परिणाम समाज के सामाजिक जीवन पर हुआ है। हर पल बदलती नई मान्यताओं, विचारधाराओं और मशीनी जिंदगी के कारण परिवार और समाज के संबंध में पर्याप्त परिवर्तन आया है। आज शिक्षा प्रसार के साथ चिंतन तथा विचारों की दृष्टि से समय के साथ व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकृति मिलती जा रही है। खास तौर पर मध्यवर्गीय परिवारों पर इसका परिणाम अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। विष्णु प्रभाकर जी की 'दूसरा वर' कहानी एक ऐसे संयुक्त परिवार का चित्र प्रस्तुत करती है जिसका जीवन रूढ़ियों तथा सामंती सस्कारों से ग्रस्त है। विष्णु जी की दृष्टि एक ओर पारिवारिक संस्कारों को तो स्वीकारती है मात्र दूसरी ओर आधुनिकता को भी अपनाती है। 'अंधेरे आंगन वाला मकान' कहानी ऐसे ही एक टूटे हुए संयुक्त परिवार का चित्र प्रस्तुत करती है। आधुनिक युग में आकर परिवारों में मानवीय संबंधों की उष्मा कम होती जा रही है रोजी-रोटी की तलाश में संतान का मॉ-बाप से अलग होकर नगर-महानगर में जाकर वहीं का हो रहना जैसी स्थितियॉ आधुनिक जीवन स्थिति का अंग बन गई है। आज परिवार और समाज के संबंधों में और एक बात महत्त्वपूर्ण मानी जाती है कि विज्ञान, शिक्षा और स्वतंत्रता ने व्यक्ति की मानसिकता को नई चेतना प्रदान की है। मानवीय संबंधों का तनाव और विघटन उसी का परिणाम है। विष्णु जी की विचार दृष्टि मात्र इस तनावपूर्ण और विघटनकारी सामाजिक मानसिकता में आत्मीयता को ढूँढती नजर आती है, 'मुहूर्त टल गया है', की चाची का बेटा बार-बार बीमार रहता है। चाची उसे देखने के

लिए जाना चाहती है लेकिन बेटे समान पड़ोसी जगदीश के बेटे की चिंता उसे सताती है और वह बार-बार रुक जाती है। मानवीय संबंधों में भले ही एक और तनाव है मात्र इन संबधों में उतनी ही गहरी आत्मीयता की संपृक्ति है, उनकी कहानियों द्वारा यही आत्मीयता के चित्र मिलते हैं।

महानगरीय जीवन स्थिति में सामाजिक मानसिकता के संदर्भ में युवा चेतना का प्रभाव भी बढ़ता नजर आता है। युवा वर्ग भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की वर्ग विषमता के विरुद्ध उठ खडा हुआ है। 'नया राजा' कहानी में एक भ्रष्ट शेठ का बडा बेटा अपने पिता पर पिस्तौल तानता है। जो स्वयं अपने पिता के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए उठ खडा होता है। ग्रामीण और नागरी संस्कारों के बीच तालमेल पैदा करने के लिए सघर्ष करते हुए व्यक्ति के बडे सच्चे चित्र विष्णु जी अंकित करते है। 'पिचका हुआ केला और क्राति' में महानगरीय जीवन की एक अलग मानसिकता का चित्रण आता है। एक बडे परिवार के बच्चे के हाथ का केला गिरकर मिट्‌टी में मिल जाता है और रास्ते पर चला जाने वाला एक भिखारी का बच्चा उसे उठाकर खाने का प्रयास करता है। इस दृश्य को देखकर निम्नवर्ग की विवशता पर बडे जोर-जोर से हॅसकर बातें होती है। विष्णु जी की यह कहानी शहर की सडांध मानसिकता पर जोर-दार व्यंग्य कसती है।

ब. ग्रामीण परिवार जीवन और सामाजिक दृष्टि– स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण समाज के जीवन में अधिक कृत्रिमता आने लगी है। भारतीय ग्रामीण परिवेश में जितनी विविधता है उतनी ही जटिलता भी पर्याप्त है और इसी से जुडी है ग्राम चेतना। आज ग्राम से उखडे हुए शहर में अजनबी बने पात्र इसी संक्रात मानसिकता में चित्रित हुए है। विष्णु जी की कहानियों में चित्रित पात्र गाँवों और कस्बों की सामान्य जनता के विशिष्ट अनुभवों को उभारते है। उनकी यह मानसिकता स्वातंत्र्योत्तर कहानी को नवीन बोध देती है।

ग्रामीण समाज के जीवन में परिवर्तन वर्ग-संघर्ष के रूप में प्रकट हो रहा है। भूमिहीन किसान, मजदूर आदि जो शताब्दियों से जमींदार, साहुकार और पंड़ों-पुरोहितों द्वारा शोषित हुए हैं, उच्च्य वर्ग का तीव्र विरोध कर रहे हैं। यह वर्ग अपने अधिकारों का फैसला स्वयं करने के लिए तत्पर हो गया है। हिन्दी कहानियों में आर्थिक और राजनैतिक तत्वों के दबाव से ग्रामीण जीवन में हो रहे परिवर्तन का चित्रण हुआ है। देहात के अन्य पेशेवर भी समाजव्यवस्था में परिवर्तन आ जाने पर मजदूर बनने को विवश हो गए। एक-एक कर सभी पेशेवरों को शहर का रास्ता पकड़ना पड़ा और वहाॅ जाकर मजदूर बनना पडा। धंधे बैठ गए और आर्थिक परवशता की संभावनाएॅ बढती गई और उच्च्य वर्ग की अधीनता इन्हें स्वीकार करनी पडी फलतः जीवन में दुःख, दैन्य, दारिद्रय, अभाव और घुटन छा गई। विष्णु प्रभाकर की 'साँचे और कला' कहानी में कलाकार के जीवन की असफलता और घुटन का चित्र प्राप्त होता है।

क. ग्राम्य जीवन की संवेदनाओं का चित्रण– ग्रामीण जीवन मे आधुनिकता के सक्रमण से जो विद्रुप प्रकट हुआ है वह अनेक कहानियों मे चित्रित हुआ है। आधुनिकता अनेक स्तरों पर ग्राम्य जीवन के संदर्भ में अभिव्यंजित हुई है। 'नई पौध' कहानी म स्वातत्र्योत्तर विषम स्थितियो का विक्षोभकारी रूप चित्रित हुआ है। 'नई पौध' का कोई भविष्य नहीं दिखता। स्वप्न में नही, सत्य रूप से लोग दारिद्रय की विवशताओं से हारकर अपनी संततियो की हत्या कर रहे है। साक्षात नरक भोग की गरीबी तथा संत्रास से उबकर एक श्रावणियता स्वप्न में अपने तीन बच्चो की हत्या कर लिखित बयान देता है कि, "जानबुझकर मैने अपने बच्चो की हत्या की है। मैं नही चाहता कि मेरी संताने मरगिल्ले पिल्लो की तरह मौत के आने तक ची-चीं करती रहे।"[१०] ग्रामीण जीवन का परिवर्तन केवल बाहरी है भीतर आज भी गॉव रूढियों एवं अंधः विश्वासों की सडाध से भरा है। आज भी भूत-प्रेत, ओझा उतने ही विश्वसनीय है जितने की पहले थे। किसी भी उभरते-संवरते व्यक्ति पर यौन सबध का पाप खडा करके उसे अपमानित और लाछित किया जा सकता है किन्तु व्यक्ति जिस प्रकार शहर में केवल एक पुर्जा मात्र है वैसी ही स्थिति उसकी गॉव मे भी बनती जा रही है। 'डायन' कहानी अध विश्वास में डूबे समाज की अमानवीय दृष्टि का खोखला और निर्मम रूप प्रस्तुत करती है। समाज अकारण ही एक वृद्धा को डायन मान लेता है और उसके प्रति क्रूरताभरी उपेक्षा बरतता है।

स्वतत्रता परिवर्ती ग्रामीण भारत का साधारण व्यक्ति आज अपनी वैयक्तिक स्थिति समझने लगा। अकेलापन उसकी अनिवार्य नियति बनती जा रही है, गॉव घर के संयुक्त परिवारो मे रहकर भी वह अकेला पडता जा रहा है। अपनी वैयक्तिक इच्छा-आकांक्षाओ का गला घोट कर रहना भी पसद करता है। वैवाहिक जीवन में आने वाले तनाव, सघर्ष भी एक और कारण है। विवाह के बाद पत्नी के अलावा किसी दूसरी नारी के प्रति आकर्षण यह भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। 'अपरिचित' कहानी का निशिकात ऐसा ही पति है। उसका विवाह शीला से होता है लेकिन कमला के प्रेम मे वह फसता जाता है। सामाजिक कुप्रथाएँ भी वैवाहिक प्रश्न को जटिल बना देती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियो मे इस प्रकार गॉव की समग्र संवेदनाओ के नव परिवर्तित स्वरूप को उजागर किया है। यह परिवर्तन केवल बाह्य नही है तो जीवनमूल्य, विचारधाराएँ, दृष्टिकोण और जीवनानुभव है जो कि बहुत कुछ आंतरिकता से संबंध रखते है। इस दृष्टि से विष्णु जी की कहानियॉ उल्लेखनीय है, जिनमे ग्राम्य जीवन के आधुनिक संदर्भो को उभारने का प्रयास हुआ है।

आज का वर्तमान ग्रामीण परिवेश अपने यथार्थ की विभिन्न भंगिमाओं मे भौतिकता के नए तकाजों, नए-पुराने संबंधों के बीच पडी दरारों, समता-विषमता की लबी दूरियो, प्राचीन-नवीन मूल्यों के तनावो, अन्त-बाह्य जीवनगत अभावों एव

अन्य संगतियो विसगतियों के बीच समाहित किए हुए है। अत. यथार्थ के इन बहुआयामी स्वरो को अनेक उचित सदर्भो के परिप्रेक्ष्य में समझना है।

ख. सामाजिक विसंगतियों का चित्रण— समाज एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमे विभिन्न भाव-भावनाओं के विकल्प होते है। इसी समाज में जहॉ एक ओर प्रेम, सौहार्द, ममता, आदर्श, सदाचार, स्वच्छ मानसिकता, सुखी दांपत्य, सहयोग, सौख्य, बंधुत्व का अस्तित्व होता है, वही दूसरी ओर विकृति, कुठा, सत्रास, भय, विलासता वृत्ति, भ्रष्टाचार, स्वार्थाधता, दुराचार, वेश्यावृत्ति, रूढ़िवादिता, भाई-भतीजावाद, तलाक, बेमेल विवाह जैसी समस्याएं भी उत्पन्न होती रहती है। इस प्रकार विसगतियो के कारण समाज के विकास को सुचारू रूप से चलाने मे कई परेशानियॉं आ जाती है। आज दिन प्रतिदिन मानव की बढ़ रही इच्छाओ के पूर्ण न होने पर कुंठाओं का अद्भूत होना स्वाभाविक है। इसी स्वभाविकता के कारण कुंठित व्यक्ति के मानस से जो विचार व्यक्त होते है वे निराशावादी ही होते है और सामाजिक व्यवस्थाएँ चरमराकर टूटने लगती हैं। कुठित व्यक्ति की सोचने समझने की शक्ति में हास हो जाता है।

आज भारतीय समाज मे पाश्चात्य सभ्यता का अधानुकरण भी एक बहुत बडी समस्या बन गई है। लोग अपने रीति-रिवाजो, पहराओ, चाल-चलन आदि को भूलकर विदेशियो का अनुकरण कर रहे है। पाश्चात्य सभ्यता से न केवल हमारे विचारो मे आमूल परिवर्तन हुआ है, तो इससे हमारी आर्थिक स्थिति भी नाजुक बनती जा रही है। आज का मानवमन भी इसी कारण तग आ गया है। परिमाणस्वरूप समाज मे यथार्थता का लोप होता जा रहा है और उसी के साथ कृत्रिमता उभरकर सामने आ रही है। प्रत्येक व्यक्ति का कृत्रिमता के प्रति बढता आकर्षण सामाजिक जीवन को भ्रष्टता की ओर ले जा रहा है। 'आधुनिक हिन्दी कहानी मे नारी की भूमिकाएँ' ग्रंथ मे डॉ० सुशीला मित्तल का कथन इस सत्य की पुष्टि करता है, "आज एक विशिष्ट वर्ग में पत्नी के लिए पति के प्रति निष्ठा की बात उतनी आवश्यक और महत्त्वपूर्ण नहीं रह गई है जितनी अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की तृप्ति का प्रश्न।"[११] इस प्रश्न के साथ और भी कई प्रश्न हैं। जिनसे आज के समाज का पूरा ढॉचा ही बदल गया है। एक काल ऐसा था उस समय समाज का वर्गीकरण ही वर्ण्य व्यवस्था के आधार पर हुआ करता था फिर भी लोगों में आपसी स्नेह की भावना थी, परन्तु आज इसी समाज-व्यवस्था का चित्र कुछ और ही दिखाई देता है। आज एक-दूसरे में वैभनस्य की भावना प्रबल होती जा रही है। छुआ छुत की समस्या एक छूत की बीमारी का रूप धारण करती जा रही। आधुनिक हिन्दी कहानीकारो ने इन सारी समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया है। विष्णु प्रभाकर जी ने स्वतत्रतापूर्व काल से लेकर आज तक की पूरी सामाजिक व्यवस्था को अनुभवित तो किया है, साथ इसकी बढती हुई स्वाभाविक व्यापक परिधि को अपनी कहानियों द्वारा सक्षमता से प्रस्तुत किया है।

अ. वर्ग संघर्ष और वर्गचेतना– समाज विकास के इतिहास में प्रारम्भ से ही धन को जीवन का महत्त्वपूर्ण विधायक तत्व स्वीकार किया गया है। अतः समाज में समृद्धि का मानदंड धन ही निर्धारित करता है। हर युग में मानव जीवन का मूल आधार धन ही रहा है। इसी वित्त प्रधान व्यवस्था ने समाज में अनेक विषमताओ को जन्म दिया है। जिससे परस्पर विषमता और संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होती है। आज जातिगत विषमता समाज में अनेक समस्याओं की जड है। समाज में जातिभेद एक रूढि के रूप में स्थापित हो गया है। धार्मिक प्रभुता और अंधविश्वास, विकृत रूढिवाद तथा जाति के नियंत्रण में इसके कई चित्र मिलते हैं। 'आजादी' कहानी एक वस्तुस्थिति का तीखा अहसास कराती है कि जब तक हमारे समाज में जातिगत या सांप्रदायिक या वैवाहिक संकीर्णता विद्‌यमान है तब तक हमारी स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। 'काफिर' में सांप्रदायिक वैमनस्य के वातावरण के बीच मानवीय एकता के सूत्र खोजने की कोशिश की है। कहानी का अब्दुल गणेश को बेटे से बढकर मानता था। लेकिन जब काफिर समझकर गणेश की हत्या होती है तो वह रो पड़ता है। "गणेश ! मैं क्या करूँ ? मैं मुसलमान हूँ– लेकिन लेकिन आदमी, आदमी का फर्ज-इन्सानी--!"[१२] हिन्दू मुस्लिम संघर्ष में यही एकता का सूत्र खोजा गया है। 'घायल की गति' कहानी के दो घायल सिपाही एक दूसरे की सहायता कर अंत में एक दूसरे की जान बचाते हैं। अंत में दोनों को एक दूसरे की बरबादी का अहसास हो जाता है। दोनों में फिर से मानवता जग जाती है। कहते है, "हमारा यह वतन सदा घायलों से भरा रहें। सदा उसके जख्म हरे रहें। जिससे इन्सान, इन्सान बन सकें, इन्सान-इन्सान का दर्द समझ सके। नहीं तो, नहीं तो-- ।"[१३] इस प्रकार विष्णु जी ने जातियता की संकीर्णता में इन्सानियत खोजने का प्रयास किया है।

ब. सुधार आंदोलनों का परिणाम– उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में भारतीय समाज सुधारकों का ध्यान समाज व्यवस्था की ओर गया संकीर्ण जातीयता पर आधारित समाज पाश्चात्य जीवन से प्रभाव ग्रहण कर वे सुधार के लिए जागरुक हुए। विष्णु प्रभाकर जी जैसे साहित्यकारों ने भी समाज में विघटित वर्ण-व्यवस्था के यथार्थ स्वरूप को व्यक्त करते हुए उसमें सुधार लाने का प्रयास किया। बीसवीं शती में अनेक समाज सुधार आंदोलनों के परिणामस्वरूप जातिव्यवस्था खंडित होने लगी। बीसवीं शती का प्रारंभिक काल नवीन और प्राचीन मूल्यों के द्वंद्व एवं टकराव का युग था। इस समय जहाँ सामाजिक सुधार-आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर थे तो दूसरी ओर पुरातन मूल्यों एवं मान्यताओं को अपने मूल्य रूप में पुनः स्थापित करने के प्रयत्न भी बराबर होते रहे किंतु अधिकांश लोग नवीनता की ओर ही उन्मुख हुए जिससे जातिव्यवस्था की कट्‌टरता समाप्त नहीं हुई। समाज में निम्न और कमजोर वर्ग के लोगों का शोषण भी एक विकृति है। इससे न केवल परस्पर भाई-चारे की भावना को धक्का लगा है बल्कि असमानता भी

उत्पन्न हुई है। विष्णु प्रभाकर जी की 'तांगेवाला' कहानी तांगेवाला के अभावग्रस्त जीवन का चित्रण प्रस्तुत करती है। 'बच्चा माँ का था' कहानी में समाज में फैले पाखंड का विश्लेषण किया है। चंदो भंगिन एक सेठ की हाविंश का शिकार होती है। उसका बच्चा बीमार होता है तो वह सेठ के घर पहुँचती है क्योंकि वह जानती है कि बच्चा सेठ का था पर उसे चारो ओर से प्रतारणा मिलती है। उनके पात्रों में वर्ग संघर्ष के प्रति तीव्र आक्रोश प्रकट होता दिखाई देता है।

परिस्थितियों के आधार– वर्ग-संघर्ष के मूल में परिस्थितियाँ भी मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करती दिखाई देती हैं। जिससे जीवन में अंतर्विरोध और विसंगतियो में फॅसे चरित्र विशिष्ट रूप धारण तो कर लेते हैं, उनका व्यवहार और विचार भी उनके व्यक्तित्व मे उलझाव पैदा कर देता है। विष्णु जी की नारियों में कई ऐसे चरित्र मिलते हैं। 'कितने जेबकतरे' की सपना की तंगी हालत को देखकर उसकी सहेली प्रतिमा उसे सारी समस्याओ के अंत के लिए किसी पैसे वाले व्यक्ति से प्रेम करने की सलाह देती है। सपना उलझन में फॅसी है अंत में मजबूरी में, न चाहकर भी एक मेडिकल अफसर डॉ० प्रदीप खन्ना से प्यार करने लगती है। यह प्यार दरअसल प्यार नहीं पैसे का कारण था और पैसे रोटी की जुगाड के लिए थे न कि विलासिता के लिए।

'बेमाता' की उजली एक ऐसी नारी है जो सब कुछ सहकर भी खुश रहती है। उसके पति बात-बात में गालियॉ देते हैं, हमेशा नशे में धुत होकर पत्नी को गालियाँ बकते हैं जिससे उसके दोनों बेटे अपने बीबी-बच्चों के साथ अलग रहने लगते हैं। उजली को अपने बच्चों के बिछुड़ने का दु:ख तो होता है, पर उसे वह व्यक्त नहीं होने देती है। अपने पुराने काम खिलौने बनाने में जुट जाती है। इस प्रकार नारी का जीवन परिस्थितियों के कारण जटिल, करुण, दारुण एवं कष्टमय बन जाता है।

अ. धर्म संकीर्णता के साथ जुड़ी विरूपता– हिन्दू और मुसलमान या हिन्दू और सिख होना धर्म संकीर्णता की समस्या के मूल में नहीं है। मूल में है मानव-स्वभाव की विरूपता। मूल रूप में समस्या जो प्रश्न उठाती है वह यंही है कि आखिर मनुष्य लडता क्यों है ? क्या मात्र धर्म के नाम पर या धर्म को बहाना बनाकर ? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास विष्णु जी की कहानियाँ करती हैं। उनका संबंध दंगों से नहीं तो युग-युग से चली आई कथाओं से है जिन्होंने आदमी को आदमी के पास लाने की कोशिश करने के बजाए उसे निरंतर दूर करने की कोशिश की। 'आखिर क्यों ?' इस कहानी में शंकर इस बात को लेकर परेशान है और इसलिए वह उसको मारने आने वाले हत्यारे को अपने व्यवहार से सोचने को विवश कर देता है। 'अधूरी कहानी' का मासूम अहमद हिंदू मुसलमान के बीच के फासले को नहीं देख पाता। ईद के दिन वह अपने मित्र दिलीप को सिवैया दे आता है लेकिन दिलीप के बड़े भाई को यह बात पसंद नहीं आती, मात्र अहमद

को अपने दोस्त की हमदर्दी पर नाज है। 'मरब्बी' कहानी में भी वही दोस्ती दो निर्मल ह्रदय बूढ़ों के बीच फलती-फूलती है। 'इतनी सी बात' कहानी की घटना यही साबित करती है कि मजहब बदल जाने के बाद रिश्तें नहीं बदलते। बस में डाकुओं द्वारा डॉ० विनीता शर्मा के पति उसे अस्पताल मे अपना खून देकर उसकी जान बचाते हैं। 'इतनी सी बात' की घटना में इस बात का प्रमाण अवश्य है कि स्थापित स्वार्थों की गुंजल से निकलने का भी रास्ता है। असलम जावेद को यदि अपना मजहब याद आ जाता तो विनीता की सहायता कैसे कर पाता। उसे तो याद आया बस इन्सानी रिश्ता।

'सफर के साथी' कहानी भी इसी इन्सानी रिश्ते की बुनियाद पर खडी हुई है। 'आज होली है' यह कहानी भी यही प्रमाणित करती है कि इन्सानी रिश्ते सब समस्याओं से ऊपर हैं। कहानी के नगेन का यह विधान इसका प्रमाण देता है, ''हमारे अंतर में जो शाश्वत हिंसक पशु छिपा बैठा है, उसे नष्ट करने की जरा भी चिंता नहीं करते, न चिंता करते है आर्थिक-सामाजिक विषमता को दूर करने की। बस, कभी हिंदू-मुसलमान-सिख कभी ब्राह्मण-अछूत न जाने कितने और कैसे-कैसे मुखौटे लगाकर उस हिंसक पशु को पुचकारते रहे हैं.......।''[१४] मतमतातर और राजनीति से बचकर यदि हम सोचने लगते है तो सच्ची इन्सानियत का रास्ता नजर आता है। उनकी कहानियॉ इसी रास्ते को खोजने का प्रयास करती हैं और उनके पात्र धर्म और जातिवाद की शृखलाएँ तोडकर मानवता की रक्षा करने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं।

आ. सामाजिक विसंगतियों और आदर्श मूल्यों के मध्य फँसा व्यक्ति– आज व्यक्ति के मानसिक संघर्ष, असमर्थता, उत्पीड़न, निरीहता तथा घुटन का अंकन भी विष्णु प्रभाकर जी की कहानियो में मिलता है। 'समझौता' कहानी के अनिरुद्ध ने सभी सामाजिक नियमों को ठुकराकर वेश्या की बेटी से शादी की है। वह पुराने जीवन मूल्यो के खिलाफ है फिर भी जब कर्म के ठेके के सकट मे फॅस जाता है तो सौदे के रूप में अपनी पत्नी की बात करता है और फिर सामाजिक परिस्थिति के साथ असमर्थता से समझौता करना पसंद करता है।

इ. सामाजिक जीवन की विसंगतियों में जूझती नारी– उन्नीसवीं और बीसवीं शती के मोड पर पहुँचकर भारतीय नारी नई दिशाओं में नई राहो पर चली। उसका खोया हुआ आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगा। अब वह स्वावलंबन, स्वार्जन और स्वविकास की ओर उन्मुख है। आज पुरुष और स्त्री के पारस्परिक संबंध और सहयोग ही समाज को प्रगति की दिशा में अग्रसर करते हैं। विवाह समाज की एक अनिवार्यता है, समस्या नहीं किंतु आज की विषम परिस्थितियों ने इस अनिवार्यता को भी एक समस्या का रूप दे दिया है। इसके साथ दहेज प्रथा के कुत्सित रूप ने अनमेल विवाह, बाल-विवाह, बहु-विवाह आदि विवाह के विकृत रूप समाज में प्रचलित किए। इन वैवाहिक विकृतियों ने सामाजिक संगठन को

जर्जर तथा कमजोर बनाया, जिससे नारी वर्ग को इन विकृतियों का सबसे अधिक शिकार बनना पडा। इतना ही नहीं, वैवाहिक असंगतियों से समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियॉ उत्पन्न होने लगी। दहेज की समस्या के साथ उसका सौंदर्य भी समस्या बन जाता है। 'अन्तर्वेदना' कहानी की चंद्रा निम्नमध्यवर्गीय होते हुए भी पढ़ी लिखी है। सुशिक्षित, सुचरित्र है लेकिन सौंदर्य की स्वाभाविक पूँजी से वंचित है, इसलिए विवाह के बाजार में अपना मूल्य बढ़ाने के लिए इसे प्रयत्नशील रहना पडता है। विष्णु जी की यह कहानी आज के समाज का वास्तविक रूप हमारे सामने प्रस्तुत करती है। 'युगातर' कहानी की नायिका दहेज समस्या पर हल सुलझाती है। नायिका स्वयं माँ-बाप से कहती है कि दहेज लेने वाले के साथ शादी नहीं करूँगी।

इ. **वेश्यावृत्ति की समस्या–** अनमेल विवाह से उत्पन्न आधुनिक समाज से वेश्यावृत्ति भी एक समस्या के रूप में दृष्टिगोचर हुई है। किसी भी समस्या का उद्भूत होना, किसी कारण से होता है। यदि नारी की वेश्यावृत्ति का मूल कारण उसका अनमेल विवाह माना जाये तो इसमें कोई बुराई नहीं है। अनमेल विवाह से नारी की काम विषयक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर इस वृत्ति को बढावा मिला। परिस्थिति ही नारी को वेश्या बनाती है। इस गंभीर समस्या की ओर विष्णु जी का ध्यान गया है। 'नफरत केवल नफरत' की गुलाब मजबूरी से वेश्या बनी जो एक अच्छे घर की लड़की थी। अब वह चाहकर भी इस जीवन से बाहर नहीं आ सकती। यही इसका दर्द है। वस्तु के आधार पर कीमत ऑकी जायेगी जैसी वस्तु होगी वैसी कीमत वेश्यालयों में नारी वस्तु का रूप धारण कर लेती है। पूरी कहानी में उसकी व्यथा छाई हुई है। वह चाहकर भी बाहर नहीं आ सकती उसकी व्यथा उसका जीवन सत्य बन जाता है। विष्णु जी ने 'आकाश की छाया में' कहानी में सरला के माध्यम से नारी जीवन की इसी स्थिति का जीता जागता चित्रण प्रस्तुत किया है। 'धरती अब भी घूम रही है' में जब नीना और कमल न्यायाधीश के पास आ जाते हैं तो दोनों उसकी धनलोलुपता और जवान लड़कियों को अपनी वासनापूर्ति के लिए उपयोग करने की ओर व्यंग्यभरी वाणी से संकेत करते हैं। यौन-भूख की तृप्ति हर स्त्री-पुरुष के लिए प्राकृतिक एवं अपरिहार्य है। हर मनुष्य में यौन-भूख प्रचुर मात्रा में होती है परंतु सामाजिक मान्यताओं, मर्यादाओं और नियंत्रण के कारण व्यक्ति उसका दमन करने का प्रयास करता है। हमारे यहाँ सेक्स को सामाजिक वर्जना माना गया है। इसी से उत्पन्न अवैध संबंध भी समाज में एक विकृति है। 'शतरूपा की मौत', 'अंधेरी सुरंग', 'भटकन और भटकन' जैसी कहानियों में विष्णु प्रभाकर जी ने इसकी वर्जना को स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है। 'एक मौत समंदर किनारे' में भारतीय कुबेरपतियों के कारोबारी तरीकों में व्याप्त यह स्वच्छंद कामप्रवृत्ति लेखकीय सोच से तिरस्कृत होती है। कहानी की जाबाला का कथन है, "शायद महानगर में तो मन होता ही

नहीं मिजाज या मूड होता है जो विशेष परिस्थितियों से कंडिशंड होता है।"[५५] जाबाला का यह कथन महानगरीय सभ्यता पर अत्यंत तीव्र व्यंग्य कसता है।

उ. विघटनकारी शक्तियों का प्रभाव– नारी जीवन से संबंधित इन समस्याओं के साथ आज कई और भी समस्याएँ जुड़ी हुई हैं जिनका संबंध समाज की विघटनकारी शक्तियों के साथ जुड़ा हुआ है। आज का व्यक्ति स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अपनी रूचि प्रकट नहीं करता, भले ही वे कितनी भी सुंदर और उत्तम क्यों न हो ? विदेशी वस्तुओं से उसे विशेष लगाव है। इसका मुख्य कारण उनकी विकृत मनोवृत्ति है। आधुनिक समाज मे अकेलापन और अजनबीपन हमारे जीवन पर बुरी तरह से हावी हुआ है। विष्णु जी की कहानियाँ इस प्रकार की जीवन पद्धति को नकारती है। 'भटकन और भटकन' में हिप्पी-संस्कृति के जीवन मूल्यों को केवल नकारा ही नहीं गया, खुलकर चुनौती दी गई है। 'ढोलक पर थाप' अभिजात वर्ग की जिंदगी के तौर-तरीकों पर व्यंग्य करती हुई उस भारतीय अफसरशाही से परिचित कराती है जो कला, संस्कृति और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे 'महान' मानती है जिस पर विदेशी पसंद की मुहर हो चाहे वह ड्राइगरूम की सजावट हो या संगीत आदि की रुचियाँ-जो लोग 'स्टेट्स' में जाकर नए सिरे से भारत की खोज करते हैं। इन स्थितियों का सशक्त चित्रण 'ढोलक पर थाप' कहानी में हुआ है। इस प्रकार आधुनिक समाज में अनेक प्रकार की विकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

ऊ. भ्रष्ट स्वार्थांध वृत्ति का चित्रण– सामाजिक चेतना को प्रभावित करने में आर्थिक तत्वों का बडा महत्त्व है। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में इस आर्थिक तत्वों का महत्त्व बढता गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की जो स्वप्निल कल्पनाएँ थी वे यथार्थ में कभी साकार नहीं हुई। आज भारतीय जनजीवन में यह भ्रष्ट स्वार्थांध वृत्ति इस हद तक फैल चुकी है आज मंत्रियों और सरकारी अफसरो से लेकर छोटे-छोटे मजदूरों तक सभी पैसे के आगे समर्पण करने को बाध्य दिखाई देते हैं। आज देशभर में सरकारी दफ्तरों की यही स्थिति है, सर्वत्र एक निष्क्रियता छाई हुई है, चाय, गीत-गज़ल, पत्र-गज़ल, पत्र-पत्रिकाओ का पठन पाठन में ही दफ्तरी बाबुओं का दिन बीतता है। कामकाज केवल रिश्वत के सहारे चलता है। इस वर्ग की इसी भ्रष्ट मनोवृत्ति ने निर्धन–निरीह जनता की दशा और भी दयनीय बना दी है। आज अधिकारियों में भ्रष्टाचार की प्रकृति बढ़ रही है। धनलिप्सा सिर्फ बडे अधिकारियों को भ्रष्ट करती है, वरन् उसके छोटे-छोटे पुर्जे भी भ्रष्ट होते जाते हैं। शासन-सूत्र तो इन अफसरों के हाथ में हैं ऊँचे-ऊँचे अफसर से लेकर चपरासी तक को रिश्वत देनी पड़ती तब जाकर कहीं कोई काम हो पाता है।

विष्णु प्रभाकर जी की 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी में नीना और कमल के पिता को छोटी-मोटी चोरी के इन्जाम में रिश्वत न देने की वजह से जेल की सजा भुगतनी पड़ती है। कहानी के अंत में जजसाहब रिश्वत देकर अपनी बेटी

को सरकार के सांस्कृतिक विभाग में डिप्युटी डायरेक्टर और बेटे को इन्कमटैक्स ऑफिसर के पद पर नियुक्ति करवा देते हैं। बच्चों की मासूमियत के द्वारा समाज की भ्रष्ट व्यवस्था इस देश की खरीदी हुई न्यायव्यवस्था पर करारा तमाचा मारते हैं। रिश्वतखोर न्यायाधीशों की कुरूप और घृणास्पद मनोवृत्ति का चित्र इस कहानी में अंकित किया है। सत्य की विजय और न्याय का प्रण लेने वाले न्यायाधीशों के नैतिक मूल्यस्खलन का व्यंग्यात्मक रूप इस कहानी में अभिव्यंजित हैं। धन के प्रलोभन में अपराधवृत्ति को संरक्षण देने वाले निर्णायक मंडल का नैतिक पतन इस सीमा तक हो चुका है कि, "एक जज ने तीन हजार रुपये लेकर एक डाकू को छोड़ दिया था। एक आदमी जिसने एक औरत को मार डाला था, उसे भी जज ने छोड दिया था पाँच हजार लिये थे।"[16] धन और स्त्री के प्रलोभन में भटकती इस न्यायप्रणाली की विसंगतियों को देखकर भोला-भाला बालपन असमंजस में पड जाता है। यह कहानी मात्र भ्रष्टाचार को चित्रित नहीं करती, उसके होने की गहराई में भी जाती है। इस प्रकार रिश्वत ने समाज के नैतिक मूल्यों को कम कर दिया है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में जाने पर हर स्थान पर रिश्वत का ही बोलबाला देखने को मिलता है। आज विवेक और आचरण में जो गिरावट आई है उसका प्रमुख कारण समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार ही है।

ए. **दफ्तरों में व्याप्त ओछी राजनीति–** दफ्तरों में व्याप्त ओछी राजनीति एक-दूसरे से आगे बढ जाने की ईर्ष्यापूर्ण प्रतिद्वंद्विता कर्मचारियों के बीच अत्यंत विडंबनापूर्ण वातावरण बनाए रखती है। एक-दूसरे गुट को नीचा दिखाते रहने का प्रयास करते रहना ही उनके जीवन के तात्कालिक उद्देश्यों में से एक हो जाता है। विष्णु जी के पात्र मात्र भ्रष्ट शासनव्यवस्था का हिस्सा बनकर रहना पसंद नहीं करते, तो इन सारी परिस्थितियों को परिवर्तित करने की माँग करते हैं। 'अरुणोदय' कहानी का निशिकांत सरकारी नौकरी से इसलिए इस्तीफा देता है कि कर्मचारियों की साहब से चापलूसी और दूसरी ओर अफसर द्वारा की गई भर्त्सना उसे पसंद नहीं आती तो उसी कहानी का दूसरा पात्र हरिश्चंद्र बडे अफसर के अत्याचार को सहने में ही धन्यता मानता है। उसका कथन इस बात की पुष्टि करता है, "बाबू निशिकांत, बड़े दफ्तर के बाबू बड़े हैं। वे हमारे अन्नदाता हैं, हमारे भाग्य के निर्णायक हैं, कलम क्षणभर में हमारी उन्नति को अवनती में पलट सकती है। वे चाहे तो तुम्हें सीनियर बना दें, चाहे तो उस्मान को। सीनियर होते ही नया ग्रेड मिलता है, वेतन बढ़ता है। ऐसी अवस्था में कौन मूर्ख होगा जो उनका विरोध करके अपने उज्वल भविष्य का नाश करेगा।"[17] दफ्तर में कहानी भी सरकारी दफ्तरों में व्याप्त ओंछी राजनीति तथा कर्मचारियों की परस्पर उठ-पटक को सामने लाती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में चित्रित भ्रष्टाचार के प्रश्न को मूल्य-स्तर पर चित्रित किया है। 'सलीब' कहानी के प्रमोद सक्सेना की रिश्वत लेने की स्वीकारोक्ति उन्हें बलि का बकरा बना देती है। उनके प्रार्थना पत्र का यह

वाक्य, "मैं आप से एक निवेदन करता हूँ कि यदि मुझे दडित किया गया तो लोगो को सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा नही मिलेगी और आज देश के नेता चाहते हैं कि इस नवनिर्माण के लिए कटिबद्ध होकर सत्य के मार्ग पर चले।"[५] विष्णु प्रभाकर जी की 'सलीब' कहानी के सक्सेना अपनी तरफ से आवाज उठाने का प्रयास करते हैं।

ऐ. सिफारिश की तिकड़म– आज योग्य व्यक्ति, सिफारिश और रिश्वत क्षमता के अभाव मे बेकारो की लबी पक्तियो मे ही खडा अपना जीवन बिता रहा है। भ्रष्टाचार के कारण योग्यता और अयोग्यता के मानदड ही बदल गए है। आज योग्यता की कसौटी पर वही व्यक्ति खरे उतरते है जिनके सपर्क सूत्र सचिवालयो, मत्रालयो अथवा उच्च अधिकारियो तक परिव्याप्त हैं। विष्णु प्रभाकर जी की 'आकाश की छाया मे' तथा 'नचिकेता' आदि रचनाएँ जनसाधारण के इसी आक्रोश एव पीडा का प्रामाणिक सशक्त ब्यौरा प्रस्तुत करती हैं। 'आकाश की छाया मे' की सरला का आर्थिक अभावो एव भ्रष्ट वातावरण मे जूझते-जूझते टूटते विवश हो पति से शरीर का सौदा करने की आज्ञा मॉगना समस्त विघटनकारी मूल्य व्यवस्था पर ही प्रखर व्यग्य है।

भारतीय समाज मे ये विकृतियॉ प्राचीन काल से व्याप्त हैं परन्तु आज के मनुष्य की स्थिति एक यत्र के समान है उसका वास्तविक स्वरूप डगमगा गया है क्योकि युवा-पीढी ने धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था प्रकट की है। इस सदर्भ मे 'हिन्दी कहानी दो दशक' ग्रथ मे डॉ० सुरेश धीगडा द्वारा दिया गया वक्तव्य बहुत कुछ स्पष्ट करता है, "आधुनिक उद्योगो और सभ्यता तथा सस्कृति मिश्रण के व्यक्ति को अपने प्राचीन रूप मे नही रहने दिया है। उसका निरतर विघटन भी हुआ है और उसने नया रूप भी पाया है।'[६] इस प्रकार आज समाज मे अनेक प्रकार की विकृतियॉ, कुठाएँ, निर्बलताएँ व्याप्त हैं, जिनमे न केवल समाज की व्यवस्था डगमाई है बल्कि समाज को हर तरह से खोखला करके रख दिया है।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी ने समाज के सभी पहलुओ को अपनी कहानियो मे चित्रित किया है। उनकी कहानियो के बारे मे एक बात विशेष उल्लेखनीय मानी जा सकती है कि उन्होने सपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक समस्याओ के परिवेश मे मानव-जीवन की ही व्याख्या की है। राष्ट्रीय भावना को सबल बनाने के लिए साप्रदायिक एकता, आर्थिक, राजनैतिक समानता और एकरूपता लाने का ही आह्वान किया है। भावुकता और काल्पनिकता मे भी वास्तविकता की सूक्ष्मता ही उनकी कहानियो की आत्मा कही जा सकती है।

३. आर्थिक चेतना– सामाजिक विकास के मूल मे पहले अर्थ, फिर सत्ता काम करती थी। किन्तु अब अर्थ और राजनीति, दोनो ही क्रियाशील है। समाज के प्रत्येक पहलू पर आर्थिक स्थिति का प्रभाव हुए बिना नहीं रहता। राजनीति के विचारो का आधार तथा सामाजिक समन्वयो का मूल सूत्र अर्थ ही है। युगीन दर्शन

एवं धर्म कल्पनाएँ भी मूलतः आर्थिक आधार पर ही निर्मित हैं। अर्थ केंद्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढाव का कारण अर्थ ही होता है। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति से निश्चित किया जाता है। इस तरह आज अर्थ व्यक्ति तथा समाज के विकास का मेरूदड बन गया है। आज अर्थ प्राप्ति के लिए हर प्रकार का संघर्ष जायजा हो गया है। दूसरी ओर दार्शनिक मान्यताओं ने वर्ग सघर्ष की स्थितियों के लिए भूमि तैयार की है।

अ. आर्थिक संकट के साथ जुड़ी सामाजिक मानसिकता– आज का आर्थिक संकट पति-पत्नी, भाई-बहन तथा अन्य पारिवारिक संबंधों, सामाजिक दृष्टिकोणों, सामाजिक दायित्व बोध की अनेक समस्यायें उत्पन्न कर स्वार्थ, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अहं-कुठा, आत्मनिष्ठा, व्यक्तिवादिता आदि अनेक प्रश्नों को जन्म दे रहा है। समाज का मध्यवर्ग ही इसमें अधिक पिसता जाता है। आज इस वर्ग के सम्मुख अनेक प्रश्न हैं जिनका कोई उत्तर नहीं हैं। उनके जीवन मे एक द्वंद्व व्याप्त है। नवीन मानदंडो के प्रति आस्था, पुराने रीतिरिवाज तथा परंपराओं को अनुकूल बनाने का असफल प्रयास, इच्छा तथा योग्यता के उपरांत भी उच्च्य आकांक्षाओं की अपूर्ति उसके जीवन की विडंबना है। विष्णु जी की कहानियों में इसके कई विडंबनापूर्ण चित्र मिलते हैं।

अर्थ प्रभावित नैतिकता समस्त मानव-मूल्यों का विस्मरण कर केवल अर्थप्राप्ति में ही संलग्न हो गई है। व्यक्ति की व्यावसायिक वृत्ति ने समस्त सबध सूत्रों को एक झटके में तोडकर मात्र अर्थ को ही प्रधान मूल्य घोषित कर दिया है। उसके समस्त आचार-विचार ध्वस्त होते गए। धन पाते ही पीढियों से निर्धनता के अभिशाप से ग्रस्त परिवार समस्त मान्यताएँ विस्मृत कर धनार्जन को ही प्रमुख मान बैठा। विष्णु प्रभाकर जी की 'ठेका' कहानी का पति अपनी पत्नी को बॉस के साथ पार्टी को जाने के लिए नहीं रोकता। अंत में पत्नी से ठेका पाने की स्वीकृति उसे हर्षोल्हासित कर देती है और सारी बातों को वह सहजता से स्वीकारता है। इस तरह 'ठेका' कहानी के रोशन और संतोष अधिक धन के आकांक्षी होने के कारण नैतिक मूल्यों को कुचल देने में हिचकते नहीं। इस प्रकार आर्थिक संकट ने परिवारगत संबंधों में परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। पति के स्वामित्व के परंपरागत मूल्य भी आज कहीं खंड़ित होते नजर आते हैं। आज सभी संबंधों की पृष्ठभूमि में आर्थिक प्रभुत्व की भावना प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है। अतः पति-पत्नी में से जो भी इस दृष्टि से प्रभावशाली होता है उसी के मूल्यों को मान्यता प्राप्त होती है और परिवार में उसी का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। विष्णु जी की 'ठेका' की नायिका इसी दृष्टि से चित्रित की गई है।

आ. विलासी वर्ग के झूठे पाखंड का चित्रण– विष्णु प्रभाकर जी की 'छोटा चोर-बड़ा चोर' कहानी समाज के फैले पाखंड को प्रस्तुत करती है। समाज का विलासप्रिय वर्ग आज इसी पाखंड का शिकार बन बैठा है। बेकार, नौकरी की

आशा के बल पर या जरूरतमद मजबूर होकर रिश्वत देते है और यह वर्ग अपनी विलासिता के साधनो की पूर्ति के लिए इस वृत्ति को प्रश्रय देता है। यह स्थिति नीचे तक है। 'पिचका हुआ केला और क्राति' कहानी मे भी ऐसे ही भ्रष्ट नेता का चित्रण मिलता है जो रिश्वतखोरी, स्वार्थांधता, सकुचितता आदि को उजागर करता है। लोगो की अधश्रद्धा को स्वार्थ-साधन की दृष्टि से काम मे लाने मे यह नेता मग्न लगते हैं। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद भी आज भी समाज का नेतृत्व इसी वर्ग के हाथ मे ही है। गद्दी पर बैठने के लिए लोगो मे आपसी सघर्ष है जो आज मानव को कहॉ-से-कहॉ पहुँचा रहा है। यही आज के जीवन का वास्तविक और चिरतन सत्य बन गया है।" 'चिरतन सत्य' कहानी मे एस पी साहब अपने बेटे को पुलिस मे भर्ती हो जाने के लिए पहले मना करते हैं क्योकि बेटा जो सत्य के मार्ग को स्वीकार करने जा रहा है उससे उनकी सारी भ्रष्ट व्यवस्था को बेनकाब कर देने का डर उनके मन मे हैं। उनकी स्वार्थ वृत्ति बढती ही जाती है और वे अपने बेटे को अपने स्वार्थ के लिए अत मे पुलिस मे भिजवाते हैं। उनका यह कथन उनकी इस वृत्ति की पुष्टि करता है, "गद्दी पर बैठने के लिए ये जनतत्रवादी लोग कितना लडते हैं, पर यही नहीं जानते कि शासन करने वाले हम है। हम जो उन्हे अपने इशारे पर नचाते हैं। हम जो शक्ति है। हम जो शाश्वत है चिरतन सत्य है।"[२०] इस प्रकार स्थिति के कुचक्र का हमारे वर्तमान समाज पर सीधा प्रभाव पडा है। इस प्रभाव ने ही भाई-बहन, यारी-दोस्ती, रिश्तेदारी और समाज के अन्य व्यक्तियो के साथ भी एक दरार का कार्य किया है।

इ. प्रदर्शन की प्रवृत्ति– अर्थाभाव की विभीषिकाओं से सत्रस्त मध्यवर्गीय कुठित, पीडित, दिशाहीन तथा विवश होता जा रहा है। अर्थाभाव को छिपाकर वह आत्मप्रतिष्ठा की सुरक्षा के लिए बाह्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति तथा उच्च जीवन स्तर की लालसा से उत्पन्न मानसिक सघर्ष का सवेदनशील चित्रण उनकी कहानियो मे मिलता है। यह वर्ग जितना बाह्य रूप से आधुनिकता को अपनाना चाहता है उतना ही आतरिक रूप से रूढिग्रस्तता को भी अपनाता है। इसलिए परपराओ के चगुल मे फॅसकर ही हमेशा अपने आप को प्रस्तुत करता है। विष्णु जी के 'नाग-फास' कहानी के लाला चद्रसेन इस दृष्टि से चित्रित किया गया पात्र है। अर्थाभाव की चिता से ग्रस्त होकर भी बिरादरी मे अपनी इज्जत बनाए रखने के लिए अपने बेटे के विवाह मे बढिया अग्रेजी बाजे का ऑर्डर देते हैं। बडी मिठाइयॉ लाते हैं। उनकी दिखावे की प्रवृत्ति उसी परिवार मे सघर्ष का कारण बन जाती है।

मध्यवर्ग जीवन स्थिति का और एक यथार्थ है जो इस विषैले, अनैतिकता से भरे, भ्रष्टाचार और स्वार्थ से घिरे हुए वातावरण में अपने आप को समा नहीं पाता वह वहॉ से दूर निकल भागने का प्रयास करता है पर बाहरी वातावरण मे भी उसे मुँह की खाने पडती है। 'दफ्तर मे', 'अरुणोदय', 'काफिर', 'स्यापा मुका' आदि रचनाओं से इस तथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है।

ई. ग्रामीण जीवन के साथ जुड़ी आर्थिक चेतना– अर्थाधारित जीवन दृष्टि ने शोषण को जन्म दिया है। यह सत्य है कि आर्थिक विपन्नता किसी-न-किसी धरातल पर शोषक और शोषित में वर्ग अवश्य खडा कर देती है। इसके अतिरिक्त समाज में जाति-व्यवस्था के आधार पर भी निम्न वर्ग में हरिजन और शूद्रों को सम्मिलित किया गया। इस वर्ग को समाज के अन्य वर्गों द्वारा कभी भी किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं दी गई। शहरों और गाँवों में मजदूरों की स्थिति भी इस प्रकार की रही। 'नई कहानी' ग्रंथ में डॉ० मीरा सीकरी का यह कथन इस बात का समर्थन करता है, "शहरों के मजदूरों को 'फैक्टरी ॲक्ट' के पास हो जाने से सुविधाएँ मिली-लाभ तो हुआ ही, साथ ही उनमें जागरण की लहर आई और वे अपने अधिकारों और शक्ति के प्रति जागरुक हो गए।"[२१] मात्र देहातों में आज इनकी स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया है। इस वर्ग ने समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा पाने का प्रयास किया परंतु अर्थाभाव के कारण वे वहॉ तक पहुँच नहीं सके। इसलिए जीवन की सत्यता को सर्वोपरि मानकर वे जीते रहें। हिंदी कहानी में इस वर्ग के आर्थिक संबंधों के साथ जुड़े सामाजिक संबंधों का निरूपण भी यथार्थ रूप में प्रकट होता है।

आर्थिक स्थिति से उत्पन्न दौर्बल्य के कारण इन्हें हमेशा उच्च्च वर्ग के आतंक के साथ जूझना पड़ा। समाज में उच्च्च वर्ग ने सदैव उनकी मजबूरी का अनुचित लाभ ही उठाया है। इतना तक नहीं कि इनकी औरतों तक को अपनी निजी संपत्ति मानकर उससे अपनी वासनाओं की तृप्ति भी करवाई। विष्णु जी की कहानियों में इसके कई सशक्त चित्र मिलते हैं।

उ. ग्रामीण वर्ग के अर्थ संबंध– ग्रामीण वर्ग के अर्थ संबंधों की प्रस्तुति एक अलग धरातल पर होती है। नौकरी या व्यवसाय के कारण मिलने वाली संपत्ति भी बहुत कम होने के कारण परिवार का खर्चा भी यह वर्ग अच्छी तरह से नहीं चला सकता। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इसके कुछ उदाहरण मिलते हैं। 'बँटवारा' कहानी के रामप्रसाद को पैतृक संपत्ति के रूप में मिली हुई दुकान उसकी आर्थिक स्थिति का एक आवश्यक साधन बन जाती है। 'आश्रिता' की सोना को पिता के मृत्यु के बाद पिता का घर और कुछ जमीन मिलती है, जिसके आधार पर वह भाई की शिक्षा और घर का खर्चा एक साथ चलाती है।

ऊ. अर्थाभाव से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण– अर्थ के अभाव के कारण कई अशांत चित्र भी विष्णु जी की कहानियों में मिलते हैं। 'रहमान का बेटा' कहानी का रहमान उठते-बैठते घर में अभाव के दर्शन हो जाने के कारण हमेशा अशांत रहता है। इतना ही नहीं तो धनाभाव के कारण मन की एक ऐसी विचित्र स्थिति हो जाती है कि कभी-कभी अपमान, विवशता को भी सहना पड़ता है। 'हिमालय की बेटी' कहानी की रेवती को भी इसी समस्या ने घेर लिया है। पति के दोनों पाँवं कट जाने के कारण वह उनका ठीक इलाज भी नहीं करा पाती। पति तो

दुर्बल बन गया है। उसकी दुर्बलता की चिंता के कारण रेवती हमेशा घर में अशांति ही महसूस करती है। उसका यह कथन उसकी विवशता स्पष्ट कर देता है।, "पर्वत की बेटी श्रम से नहीं डरती पर आज के युग में पैसा श्रम से मिलता है। तो वह क्या करे ? कहाँ से लाए पैसा ?"[२२]

"लैंपपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी अभावग्रस्त लोगों के जीवन की क्रूर कथा ही चित्रित करती है। एक बाप अपनी जवान पुत्री का पालन-पोषण करने में असमर्थ है। इसलिए एक दिन वह अपनी जवान पुत्री को दरिद्रों के हाथ बेच देता है। अंत में दरिद्रों के हाथों ही उसकी मृत्यु होती है। एक लाचार पिता का कथन ही इस परिवार की कारुणिक स्थिति पर प्रकाश डालता है, कहता है, "बरसों से मैंने भूख से बिलबिलाते अपने परिवार की रक्षा के लिए ट्रक-ड्रायवर के हाथ बेच दिया था, उन्हीं रुपयों से तो यह सामान ले जा रहा हूँ। कितना उपकार कर गई बेचारी। मरना तो इसे था ही। हम सबको मरना था, पर मरकर भी बेचारी हमें बचा गई।"[२३] 'एक माँ एक देश' कहानी की मृणाल भी एक ऐसी माँ है जो धनाभाव के कारण एक छोटा-सा सपना भी पूरा नहीं कर सकती। धनाभाव के कारण उसका बेटे को बंगाल का दूसरा देश-बंधु कराने का सपना अधूरा ही रह जाता है। इसी प्रकार आर्थिक स्थिति की विवशता से छटपटाना कुंठाग्रस्त महत्वाकांक्षी जीवन जो अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार और स्वार्थ से टूटता जाने लगा है। आर्थिक स्रोत सीमित होने की वजह से मध्यवर्गीय व्यक्ति हमेशा संघर्षरत रहता है। अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए कभी वह खूब मेहनत करता है तो कभी भ्रष्टाचार की शरण लेता है। मँहगाई के कारण वह हमेशा चिंतित रहता है। जहाँ एक ओर उंसका शोषण होता है वहाँ भी वह निम्न वर्ग का शोषण करने से नहीं डरता जीवन के इस आर्थिक पक्ष को दृष्टिकोण में रखते हुए विष्णु प्रभाकर जी ने कई कहानियाँ लिखी है, जिनमें बेरोजगारी की यातनाओं, नौकरी देने बहाने किये जाने वाले रोजगार इंटरव्यू का नाटक, भाई-भतीजावाद आदि यथार्थ स्थितियों को लेकर नई पीढी की कुंठा निराशा एवं घुटन को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थता के साथ चित्रित किया गया है।

अर्थ केंद्रित समाज के जन-जीवन में उतार-चढ़ाव के कई कारण नजर आते हैं। उनमें एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि आर्थिक तनाव एवं दबाव पति-पत्नी के जीवन में कभी दरार भी बन जाता है। आर्थिक तनाव की स्थिति ने आज पति के स्वामित्व के परंपरागत मूल्य को खंडित कर दिया है। आज सभी संबंधों की पृष्ठभूमि में आर्थिक प्रभुत्व की भावना प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है। अतः पति-पत्नी में से जो भी इस दृष्टि से प्रभावशाली होता है उसी के मूल्यों को मान्यता प्राप्त होती है और परिवार में उसी का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। आज पत्नी पति के सम्मुख इतनी मजबूर है कि वह किसी अन्य पुरुष से संपर्क रखती है अथवा इस व्यवस्था का इस कदर शिकार हो गई है कि अर्थ प्राप्ति के लिए

वह कुछ भी करने को तैयार है। 'राखी' कहानी की नायिका नीरजा संगीतकार है वह कला की साधना में इस तरह डूब जाती है कि अपने पति विनोद के प्रति वह अनुराग भी नहीं रख पाती। दोनों में अंतर आ जाता है। इस तरह परिणामस्वरूप एक ओर तो व्यक्ति जीवन में मूल्य आत्मनिष्ठ होते जाते हैं और दूसरी ओर संबंधों की निरपेक्षता भी बढ़ती जाती है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में इन संबंधों को बहुत निकट और नए दृष्टिकोण से देखा है। 'ठेका' कहानी के ठेकेदार के वक्तव्य के माध्यम से समाज की बदलती और कहीं विकृति की ओर बढ़ती मानसिकता का ही एक सच्चा दर्शन उस वर्ग और व्यक्ति को प्रतीकीकृत करता जाता है, "यह जनतंत्र का युग है-- इसमें बंदरियाँ मदारी को नचाने लगी है– विवाह भी एक ठेका है– नारी अब पुरुष की दासी नहीं हो सकती ।"[२४]

ए. **शिक्षित बेरोजगारी की समस्या–** शिक्षित बेरोजगारी भी समकालीन जीवन का एक प्रकार से अर्थाभाव का ही एक श्राप है। विष्णु जी ने इस समस्या को बडे विस्तार से और उसके सूक्ष्मतम संदर्भो को 'आकाश की छाया में' कहानी में चित्रित किया है। वर्तमान जीवन की बहुत बडी विसंगति देश में फैली शिक्षित बेरोजगारी है। बेरोजगारी का एक पक्ष यह भी है कि उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार नहीं मिलता है। किसी पद के लिए प्रत्याशी की योग्यता, शिक्षा और प्रतिभा को न देखकर सिफारिश की शक्ति को देखा जाता है। 'आकाश की छाया में' कहानी की सरला की भी यही समस्या है, पति की बीमारी में वह शिक्षित होकर भी नौकरी की तलाश में भटकती फिरती है।

ऐ. **निरंतर बढ़ती महंगाई के परिणाम**–आज जिस गति से वस्तुओं के दाम बढ़ने से महँगाई बढती है उस गति से वेतन में वृद्धि नहीं होती। किसी न किस वस्तु पर सरकारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष 'टैक्स' लग जाने से रुपये जैसे आते है वैसे ही चले जाते है। इसलिए निरंतर बढती हुई महँगाई से मध्यवर्गीय व्यक्ति बहुत चिंतित रहता है। इसमें यदि अकाल, महायुद्ध जैसी आपत्तियाॅ आ जाए तो इनकी स्थिति और भी भयंकर हो जाती है। इन स्थितियों का सर्वाधिक प्रभाव ग्रामीण समाज पर अधिक पडता है। विष्णु जी की कहानियों में गॉवों में फैली गरीबी और भूखमरी अकाल, सुखा और बाढ़ की स्थितियों में यह अपने पेशाविक रूप में सामने आती है। जीवन के समस्त श्रेष्ठ मूल्यों को भूख का सत्य लील कर इंसानियत को हैवानियत में बदल देता है। 'भूख और कुलीनता' कहानी के सुधीरबाबू की माँ की हालत बहुत गंभीर है। मॉ का ठीक इलाज भी नहीं हो पाता। गॉव में अकाल के कारण अनाज की कमी है। बंगाल के अकाल की भयावह स्थिति और उसके परिणामों को कहानी में चित्रित किया है। एक सेर अनाज के लिए यह मॉ तडपकर मर जाती है। 'मुक्ति' कहानी में ऐसे परिवार का चित्रण आया है जो पूरा परिवार ही अकालजन्य भूख की आग में भस्म हो जाता है। 'एक माँ एक देश' की मृणाल भीं इसी विभिषिका से त्रस्त है। इस प्रकार आपत्तियों में फंसे गॉव के मध्यवर्गीय

जीवन की विवशताओं का चित्रण विष्णु जी अपनी कहानियों में करते जाते हैं। 'मृणाल' के कथन के माध्यम से इस वर्ग की वास्तविकता हमारे सामने नजर आती है। वह अपनी दीदी से कहती है, "जानती हूँ दीदी, मिट्टी का खेल है सब। मिट्टी का घर है, मिट्टी से ही अन्न उपजता है पर दीदी क्या उस मिट्टी का सोना बनकर जीना हो सकेगा।"[२५] 'मार्ग में' कहानी की बुढ़िया अकाल में अपना सब कुछ खो चुकी है। स्वयं भी अकालजन्य भूख को झेल रही है और एक अपरिचित बच्ची को पाल रही है। इस प्रकार विष्णु जी की कहानियों में इन विभीषिकाओं की संवेदनात्मक स्तर पर प्रस्तुती हुई है।

ओ. बेकारी की समस्या– बेकार आदमी की उपस्थिति आज भारत के जिस परिवार में है, वहाँ संबंधों एवं आत्मीयता की श्रृखलाएं तेजी से टूटती जा रही हैं। इस संदर्भ में 'विमर्श' में डॉ० मदनगोपाल गुप्त का कथन इसके विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करता है, "इन परिस्थितियों में विक्षोभ और पीड़ा के कारण मध्यवर्गीय परिवार का आदमी विद्रोह की उस भूमि पर पहुंचने की कोशिश कर रहा है, जहाँ उसकी चेतना अपने ही परिजनों को पहचानने में इंकार कर देती है।"[२६] इन परिस्थितियों का परिणाम गाँवों पर अधिक दिखाई देता है। एक तरफ धनाभाव और दूसरी तरफ बेकारी या निर्धनता के कारण गांवों में अशांति दिखाई देती है। आज परिवारों में बेकार आदमी की उपस्थिति के कारण संबंधों एवं आत्मीयता ही टूटती जा रही है। इस प्रकार आर्थिक विवशता में फंसा आदमी छोटे से छोटा निर्णय भी नहीं ले सकता। विष्णु जी कहानियों में इसकी ओर यथार्थ परक दृष्टि से देख गये हैं। 'गृहस्थी' कहानी का हेमेंद्र सुशिक्षित है लेकिन बेकारी के कारण घर पर निकम्मा बैठा है। पूरी कहानी बेकार आदमी की जिंदगी हमारे सामने खड़ी करती है। इच्छाओं की अपूर्णता एवं आकांक्षाओं के अनुकूल अवसर की अप्राप्ति के कारण निराशा, कुंठा एवं घुटन निर्माण करती है। जीवन से निराश होकर पतनोन्मुखी विचारों को स्वीकार करके मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने, परिवार के तथा समाज के जीवन में विकृति पैदा करता है और अनेकानेक समस्याएँ निर्माण कर देता है। महंगाई और रोजी-रोटी की खोज में किए गए विकट प्रयास और उससे उत्पन्न कुंठाएँ भी गाँव के लोगों की मानसिकता को पूरी तरह बदल देती हैं। इस प्रकार वर्तमान-सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों के संदर्भ में परखने का सफल प्रयास विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में हुआ है।

औ. निम्नवर्गीय जीवन की विवशताओं का चित्रण– समाज में अत्यंत निम्न स्तरीय जीवन जीने वाले मदारी, भिखारी, तांगेवाले वर्ग की गरीबी, उनकी अन्य आर्थिक समस्याओं पर भी विष्णु प्रभाकर जी का ध्यान गया है। 'तांगेवाला' कहानी का अहमद दिनभर की कमाई केवल तीन रूपये पाता है। बच्चे की बीमारी में पैसों के अभाव के कारण इलाज भी नहीं करवा पाता। उन तीन रुपयों से ही वह ब्च्चे की दवाइयाँ खरीदकर घर पहुँचता है तो देखता है बच्चा मर गया है।

वक्त पर दवा न मिलने के करण उसको अपने बच्चे को भी खोना पड़ता है। भिखारी' कहानी में 'भिखारी जीवन की विवशताओं का अच्छा खासा' सा वर्णन आता है। 'जीवन एक कहानी' में आर्थिक शोषण के कारण निम्नवर्गीय व्यक्ति जीवन की जर्जर स्थिति का परिचय मिलता है। 'हमें गिराने वाले' कहानी में इसी वर्ग की विवशताओं का हृदयस्पर्शी चित्रण आता है। समाज इतना क्रूर है कि वह गिरे हुए लोगो को और गिराता है, इसका अहसास बिहारी को बाजार में होता है क्योंकि उसकी अभावग्रस्तता का लोग मजाक उड़ाते हैं।

अं. जीवन मूल्यों का टूटना— आज व्यक्ति हर दृष्टि से असहाय है और उसकी असहाय, अनास्था का कारण अर्थ-संकट में है। भौतिक मूल्य अर्थ से संबंधित है और ये मूल्य नैतिक मूल्यों को तोड़ रहे हैं— व्यक्ति के टूटने का एक बडा कारण आर्थिक स्थिति ही है। एक ओर व्यक्ति का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने की लालसा तो दूसरी ओर सीमित आर्थिक स्थिति की विवशता से झटपटाता कुंठाग्रस्त महत्वाकांक्षी जीवन जो अनैतिकता और भ्रष्टाचार, स्वार्थ आदि से टूटता जाने लगा है।

यही धन की बढती आकांक्षा धनलोभ में परिवर्तित होती है और धन के लोभ से मनुष्य किस तरह पशुता और नीचता तक पहुँच जाता है, इसका अनुभव समाज में हमें अनेक बार हो जाता है। विष्णु जी की कहानियाँ ऐसे वास्तववादी अनुभवों पर आधारित हैं। 'सलीब' कहानी मे मनुष्य जीवन के उस पहलू का चित्रण हुआ है, जो एक विशिष्ट भावुक मूल्य चेतना को स्पर्श करता है। इस कहानी मे एक रेल्वे कर्मचारी की व्यथा का विवेचन किया गया है। पत्नी दीप्ति उसे समझाती है कि आज सच्चाई पर चलने से कुछ नहीं मिलता। घर के आठ प्राणियों का परिवार केवल वेतन पर नहीं चल सकता। सत्य मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अधिक पीड़ा भुगतनी पडती है। उसे दोषी भी माना जाता है लेकिन प्रमोद सक्सेना ईमानदारी से रेल्वे की सेवा करता रहता है। सत्य मार्ग पर चलने की सजा सचमुच उसे मिलती है और उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। लोगों की नीति आज के बदलते मूल्यों के पतन और उसकी बढ़ती समाज स्वीकृति को स्पष्ट करती है, "देखो, इस सनकी को ईमानदार बनने चला था, नौकरी भी खो बैठा। क्या यह नहीं जानता था कि जो भी सत्य के मार्ग पर चलता है वह दुख भोगता है और जो असत्य का मार्ग अपनाता है वह सुखी होता है।"[२७] इस प्रकार समाज की सुख-दुःख की कल्पना केवल अर्थ के साथ जुड जाने के कारण वह अधिकाधिक वायवीय बनती जा रही है। इस कहानी में एक ओर सत्य के लिए सब कुछ खो देने की दृढ़ता का उद्‌घाटन भी है। आज निरपराध व्यक्ति को दंडित किया जाता है। आम आदमी सत्य की राह छोड़कर असत्य को अपनाता हुआ नजर आता है। सत्य पर असत्य की विजय होती है फिर भी प्रमोद सक्सेना अपने परिवार की परवाह न करते हुए सत्य के मार्ग पर दृढ़ रहता है। मानवता के शाश्वत आदर्शों का विनाश उसे मंजूर नहीं। वह सत्य की मूल्य चेतना की रक्षा करता है।

अः यौन शोषण और आर्थिक दबाव– आज निर्धनता अभिशाप बनकर समाज के निम्नवर्ग के साथ जुडी है। इस अभिशाप को मिटाने के लिए व्यक्ति नीच से नीच कर्म करने पर उतारू हो जाता है। देश के सभी राज्यों में जहाँ नारियों को पुरुषों के समान अधिकार तथा जीविकोपार्जन के समग्र साधन उपलब्ध है वहाँ आज भी वेश्या व्यवसाय का उन्मूलन नहीं हो सकता है। वेश्यावृत्ति का प्रमुख कारण आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक गतिरोध, भौतिकवादी संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों का पतन है। आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने नारी को वेश्यावृत्ति करने के लिए विवश किया है। आज इस वर्ग की नारी सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक आदि मूल्यों को तिलांजली देकर केवल अर्थप्राप्ति में ही संलग्न है। विष्णु जी की 'नफरत' केवल नफरत' कहानी में इसी संवेदना की अभिव्यक्ति है। गुलाब एक मजदूर की पत्नी थी। मजबूरी के कारण वह इस व्यवसाय में आती है इसकी व्यथा में भी टीस भरी हुई है," मैं एक दिन इसी बात पर पिटी थी और आज इसी बात पर शाबाशी मिलती है। इसी बात पर होड बदी जाती है।"[२८] उसके मन में भी इन सारी परिस्थितियों से बाहर आने के लिए नफरत की आग भड़क उठती है, फिर भी बेबस होकर उसे उसी परिस्थिति को ही स्वीकार करना पड़ता है। इस प्रकार यौन शोषण और आर्थिक दबाव शरीर विक्रय के साथ अर्थाभाव की विवशता के कारण संबंध रखता है। महानगरीय जीवन में इस वृत्ति का एक और कुरूप पहलू उभरकर सामने आया है। कम आय वाली मध्यवर्गीय कुलीन लड़कियाँ बेहत्तर जीवन की तलाश की झूठी लालसा में फंसकर जीवन स्तर की इस स्पर्धा में वे स्वयं अनैतिक स्तरों की तलाश करने लगती है। जिसकी कमजोरी का समाज द्वारा लाभ उठाया जाता है।

क. अर्थ से प्रभावित मानवीय संबंध– आज के सामाजिक जीवन का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि आज हमारे सभी सामाजिक संबंधो और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थ-तंत्र हावी हो गया है। 'समकालीन कहानी-युगबोध का संदर्भ' ग्रंथ में डॉ० पुष्पपाल सिंह द्वारा दिया गया वक्तव्य इस बात को स्पष्ट करता है, "आत्मीय रिश्तों की पहचान और परख तथा उन संबंधों के निर्वाह में अर्थ-प्रधान दृष्टि प्रमुख हो जाने से आज संबंध निभाए नहीं ढोए जाते हैं।"[२९] विष्णु प्रभाकर जी ने कहानियों में इन संबंधों को अलग-अलग धरातल पर प्रस्तुत किया है। 'कितने जेबकतरे' की सपना इच्छा न होते हुए भी घर की आर्थिक तंगदस्ती के कारण एक मेडिकल अफसर डॉ० प्रदीप खन्ना से प्रेम करने लगती है। 'अंधेरी सुरंग' की शिल्पा माँ को क्लब में पार्टी के लिए पैसा पति की फिल्म के लिए पैसा जमा करने की इच्छा से अपने जीवन में तंग आती है। कभी-कभी मन और आत्मा इन संबंधों को जीने के लिए ललकते हैं किंतु आर्थिक विवशताएँ उनको रोक देती है। दूर-दराज के संबंधों यथा बुआ, चाची, मौसी, मामा आदि के साथ ही यह स्थिति नहीं है अपितु अत्यंत निकट के पति-पत्नी बहन-भाई, माँ-बाप आदि के

संबंधों में भी अर्थ का यह विष घर कुंडली मारे बैठा है। विष्णु जी की कहानियों में इन संबंधों के बीच आई आर्थिक विवशताओं को बहुत सशक्त रूप में निरूपित किया है।

तात्पर्य, विष्णु जी ने मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक स्थिति को बारीकी से समझा है और कहानियों में उतनी गहराई के साथ उसे चित्रित किया है। प्रेमचंद जी के समकालीन कहानीकारों ने विधवा या परिवत्यक्ता स्त्री को सुधारवादी दृष्टिकोण से चिचित्र किया है मात्र विष्णुजी का दृष्टिकोण यहाँ तक सीमित न रहकर वे उसके स्वावलंबन की मांग भी करते हैं। उनके पात्रों में एक अपूर्व जिजीविषा है और सब से बडी बात यह है कि उनमें एक ऐसा प्रगतिशील दृष्टिकोण उभरता है जो उन्हें जीवन से जूझने की एक नई प्रेरणा भी देता है, विषमताओं से ऊपर उठने का आत्मविश्वास निर्माण करता है। वे समस्याओं का विश्लेषण नैतिक सहानुभूति से प्रेरित होकर करते हैं। सामाजिक संदर्भों को उन्होने संवेदना के स्तर पर चित्रित किया है जिनमें भावुकता और काल्पनिकता को वास्तविकता के धरातल पर प्रस्तुति मिल जाती है।

४. धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन दृष्टिकोण– नागरी संस्कृति की अपेक्षा ग्रामीण संस्कृति में धर्म की जडे अधिक मजबूत होती हैं। ग्रामीण संस्कृति में भी आज यही धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया में है। विज्ञान और शिक्षा तथा परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के कारण ग्रामीणों के दृष्टिकोणों एवं मनोभावों में परिवर्तन हो रहा है। धर्म का सामाजिकता में पर्यवसान हो रहा है। सामाजिकता में धर्म के पर्यवसान ने नए-नए प्रश्नों को उत्पन्न किया है। विष्णु...जी की कहानियों में मानव धर्म की ही प्रतिष्ठा का स्वर प्रस्फुटित हुआ है। ईश्वरीय आस्थाओं का केंन्द्र देवी देवताओं के साथ-साथ मानव भी हुआ है। एक ओर कर्म और करुणा से देव बन गए हैं तो दूसरी ओर कुछ अंश में आज का मध्यवर्गीय व्यक्ति जातियता पर विश्वास करता दिखाई देता है। 'वह रास्ता' कहानी के ज्योतिप्रसाद जैसे नेता अपने को सरमायादारों का दुश्मन कहते हैं, परन्तु वे हिन्दू हैं। वे सरमायादारी धर्म की शर्त मानते हैं तो अहमद उसको हटाना चाहता है। उसका स्पष्ट मत है, 'धर्म ने कभी रास्ता सुझाया होगा। कभी उसका सहारा लेकर जनता भयंकर से भयंकर खतरों को पार कर गई होगी, पर आज वही धर्म उनके पैरो में बेडी बनकर पड़ा है जो न आगे बढ़ने देता है न पीछे हटने देता है।''[३०] मध्यवर्गीय जीवन का और एक दृष्टिकोण यहाँ चित्रित होता है कि यह व्यक्ति एक ओर प्राचीनता के मोह में फँसा हुआ नजर आता है। तो दूसरी ओर नवीन शिक्षा और पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से आधुनिकता का आग्रही है। और एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि वह ईश्वर में भी प्रबल आस्था रखता है। जिससे वह मानसिक व्यभिचार का पाप-पुण्य की दृष्टि से विचार करता है। 'आत्मग्लानि' का शंकर बंदी का सपना देखता है। अपनी स्त्री, बच्चों को पालने के लिए वह अपने समान मनुष्यों की

स्त्रियों और बच्चों को भूख से तड़प-तड़प कर मरने को विवश करता है। यह सब कुछ करके अपने हाथ झाड़ देता है क्योकि वह मानता है ! जो सब होता है, पूर्व-जन्मों के पापों का परिणाम है।

विष्णु प्रभाकर जी के पात्रों में अंधविश्वास के कारण दबकर रहने की प्रवृत्ति बहुत कम मात्रा में मिलती है। इसमें और भी एक बात सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि धर्म, जातिवाद को समाप्त करके वे सांप्रदायिक एकता लाना पंसद करते हैं। उनका 'परिवर्तन' इसका प्रमाण देती है। निशिकांत और उसकी पत्नी हिन्दूओं से नफरत करते हैं। लेकिन गाडी में उनका बच्चा जब अहिन्दू लड़की के पास जाता है तो वह लड़की उसे खिलाती है। बच्चा खेलते-खेलते ट्रेने से नीचे गिरता है तब वह स्वयं कूदकर उसको बचाती है। प्रस्तुत कहानी धर्म, जातिवाद से बढ़कर मानवतावाद का ही समर्थन करती है।

अ. धार्मिक आस्थाओं का विघटन— आज गाँव का धार्मिक मन भौतिकता ग्रस्त होकर नवीनता और प्राचीनता के द्वंद्व में फँस गया है। अशिक्षा, अज्ञान, अंधः विश्वास एवं रूढ़िवादी परंपराएँ उसे अपनी ओर खींच रही हैं तो वैज्ञानिकता ने उसे अपनी ओर आकृष्ट किया है। अतः गाँव में धार्मिक आस्थाओं का कहीं विघटन हुआ है तो कहीं नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही हैं। 'बिंब-प्रतिबिंब' की ईशा रमणीक द्वारा प्रेम को ठुकराए जाने पर भी उसके बारे में परंपरागत धारणाओ से अलग विचार करती है। वह कहती है, "जिसे तुम वासना कहकर दिन रात कोसा करते हो उसके बिना भी क्या प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द या कर्तव्य का कोई मूल्य है ? वासना और आसक्ति सब जरूरी है। केवल बात इतनी है कि हमें किसी का दास नहीं बन जाना है।"[२४] "द्वंद्व' कहानी के रोमेन और सुजाता भूख की समस्या के कारण अकाल पीड़ित जनता के संदर्भ में पाप का विवेचन करती है। रोमेन सुजाता से सवाल करता है, "भगवान सब कुछ देख रहे हैं, वह सब कुछ जानते हैं। अनंत धन आज भी देश में भरा पड़ा है तो यह विडंबना क्यों है ? क्यों यह भूख जन-जन को खाए जा रही है ? क्यों यह आत्मविश्वास ढ़ीला पड़ता जा रहा है ? क्यों मनुष्यता लोप हो गई है ?"[३५] सुजाता का उत्तर मनुष्यता की ओर संकेत करता है, "उसी की परख करने के लिए भगवान यह अन्याय दुनिया में पैदा करते हैं। विष्णु जी ने धर्म, रूढ़ि, अंधःविश्वास से निर्मित समाज पर होने वाले अत्याचार का विरोध किया है। तथा उसकी यथार्थताओं का पर्दाफाश करके सत्य को उद्घाटित करने का एक सफल प्रयास भी किया है। उन्होंने यथार्थ के बढ़ते आग्रह के साथ परंपरा द्वारा अनुमोदित सिद्धान्त को परंपरा के नाम पर स्वीकारा, नहीं है।

आ. संस्कृति-बुनियादी परंपराओं का आधार— आज भारतीय समाज एवं संस्कृति अर्थात् संपूर्ण जन-जीवन तीव्र संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। सामाजिक मान्यताएँ बदल रही हैं और इन बदलती हुई मान्यताओ में परंपराएँ टिकी हुई हैं।

इसका मूल एव सच्चा स्वरूप हमें ग्राम्य-जीवन में मिलता है। इसकी मान्यताओं के साथ समाज का रूप भी बदल रहा है। मात्र समाज की बुनियादी परपराओं को अपना परपरागत रूप ही प्राप्त होता है। ग्राम्य जीवन की बुनियादी गहराइयो के आधार को जानकर भारत के बहुविध रूप एव उसकी आंतरिकता एकता को समझा जा सकता है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत होती है। ग्रामीण कलाएँ पर्व, त्यौहार, संस्कार, रूढियॉ, प्रथाएँ, रीति-रिवाज से संस्कृति बनती है। विष्णुजी की कहानियों मे सस्कृति का दर्शन निश्चित रूप से मिलता है। 'सांचे और कला' कहानी मे मूर्ति बनाने वाले कारीगरो की कला, उनका जीवन आदि का वर्णन ग्रामीण समाज जीवन का तानाबाना प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता परवर्ती ग्रामीण परिवेश नवीन सदर्भो को लेकर परिवर्तन की ओर गतिशील दिखाई देता है। ग्राम्य जीवन का यही प्रामाणिक यथार्थ है। यथार्थ के नए संदर्भों को अभिव्यक्त करने मे विष्णु जी की प्रतिभा अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर आगे बढ रही है। जिसका आधार उनकी वास्तविक जीवन दृष्टि को चित्रित करता है।

भारतीय सस्कृति को तीन दृष्टियो से देखा जाता है। एक तो परंपरावादियों की संकीर्ण सांप्रदायिक दृष्टि, दूसरी इसके प्रतिवाद स्वरूप आधुनिकतावादियो की दृष्टि तीसरी दृष्टि, ऐतिहासिक समन्वय की है जो प्राचीन तथा नवीन को ऐतिहासिक दृष्टि से समन्वित करके भारत के विभिन्न समुदायो तथा धर्मो के योग से सस्कृति के स्वरूप का अनुभव करता है। जितना यह धार्मिकता मे विश्वास करता है उतना ही वह राजनैतिक चेतना के कारण देश के नव-निर्माण की प्रबल इच्छा भी रखता हुआ दिखाई देता है। विष्णु प्रभाकर जी अपनी कहानियों मे इसकी आंतरिकता को स्पष्ट और स्वाभाविक रूप से चित्रित करते हैं।

उ. जातीय संकुचितता का विरोध– समाज में जाति, धर्म के नाम पर अंध विश्वासों के कारण भेद की जडे जमाई जाती हैं। विष्णु प्रभाकर जी ने 'अधूरी कहानी' मे इस तथ्य को उद्घाटित किया है। मुस्लिमों के हाथ का खाना खाने से ईमान बिगडता जाता है यही गलत धारणा आज भी कम नहीं है। विष्णु जी की प्रगतिवादी दृष्टि इसी जातीय सकुचितता का विरोध करती दिखाई देती है। 'वह रास्ता' कहानी हिन्दू-मुस्लिम कटुता के कारणों के संबंध में लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट करती है। धर्म इंसान की अपनी कमाई नहीं लेकिन पारस्परिक सबंधों में वह दूरी और अविश्वास हिन्दू समाज की अपनी कमाई अवश्य है जिसे उसने इतने दिन तक मुसलमानों से नफरत करके अर्जित किया है। मुसलमानो के छू जाने से हिन्दूत्व के नष्ट होने का भय स्वयं मुसलमानों के मन में इतना गहरा बैठा हुआ है कि निशिकांत जैसे लोग चाहकर भी उसे दूर नहीं कर पाते। अमजद की पत्नी उसे किसी हालत में पानी पिलाने को तैयार नहीं होती। हिन्दू समाज की मनोवृत्ति पर यह गहरा तमाचा है लेकिन निशिकात का भरोसा नहीं टूटता

कि "आज न सही फिर किसी दिन उन्हें मुझे अपने हाथ से अपने घड़े का पानी पिलाना ही होगा ....उसके बिना न उनका भला होगा न मेरा।"[31] निशिकांत प्यासा चला जाता है लेकिन सकीना को इसका अफसोस नहीं।".....वह प्यार मोहब्बत के रंग को गहरा ही करेगी, इतना गहरा कि तब उसे कोई धो न सकेगा।"[32]

'मेरा बेटा' कहानी में लेखक ने धर्म-भेद की निस्सारता को ही रेखांकित किया हैं। खून जमा देने वाली सर्दी में दोनों संप्रदाय वहशियों की तरह आपस में लड़े जा रहे हैं। डॉ० हसन और डॉ० शर्मा जब अस्पताल में कानपुर के रामप्रसाद को जीवनदान देकर लौटते हैं, उन्हें पता चलता है कि यह रामप्रसाद हसन के पिता का बडा भाई है। यह जानकर की रामप्रसाद को मुसलमानों ने मारा, हसन के दादा अत्यंत व्याकुल हो उठते हैं।" मैं उसके पास जाऊँगा, आखिर वह मेरा बेटा हैं, कोई गैर नहीं, मै मुसलमान हूँ और वह हिन्दू, वह मुझसे, मेरे बच्चों से नफरत करता है,. ....पर वह भी मेरा बच्चा है। ..... मैं उससे पूछूँगा, मैं मुसलमान हो गया तो क्या हुआ हमारा बाप... ..बेटे का नाता तो नहीं टूट सकता, आखिर उसकी रगों में अब भी मेरा खून बहता है।....."[33] 'आजादी' कहानी स्वतंत्रता के बाद भी मनुष्य की बदली मानसिकता का चित्रण करती है। उल्लास के वातावरण में भी मनुष्य की क्रूर मानसिकता एक छोटे से बालक को विदा कर रही है क्योकि वह मुसलमान है और मुसलमान देश के दुश्मन हैं। किशुन और उसकी भाभी अपने प्राणों के मूल्य पर उस बालक को बचाना चाहते हैं। विष्णु प्रभाकर जी मानव की जिस मुलभूत एकता का स्वप्न देखते रहे हैं, ये कहानियॉ इसी की परिचायक है। इसी प्रकार तमाम अच्छाइयों, बुराइयों के साथ जीवन संघर्ष का चित्रण करते हुए भी उनका ध्यान सदैव मूल्यों के उत्कर्ष पर ही रहा है।

उन्होंने यथार्थ के बढते आग्रह के साथ परंपरा द्वारा अनुमोदित सिद्धान्त को मात्र परंपरा के नाम पर स्वीकार नही किया। उसे तर्क, बुद्धि एवं वास्तविकता की कसौटी पर कसकर अपनाया है। आज मध्यवर्गीय व्यक्ति वैयक्तिकता के कारण प्रवृत्ति मूलक बनता जा रहा है लेकिन विष्णु जी इसमे नए दृष्टिकोण से मानवीय एकता के सूत्र को खोजते दिखाई देते हैं। भौतिक सुधार की भावना से धर्म, रूढ़ि और अंधविश्वासों को वे उसके अंतः विरोधों के साथ स्पष्ट करते हैं। आज भौतिक यथार्थ के परिचय के कारण वर्गीय संघर्ष की तीव्रता बढ रही है। सडे-गले विश्वास टूट रहे हैं। विष्णु जी के इस दिशा में किए गए प्रयास कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उनकी कहानियाँ इसी विचार वृत्ति का प्रतिफलन हैं।

ऊ. आस्तिकता के संदर्भ में धर्म की अवधारणा– आज धार्मिक सदर्भ में ग्राम्य जीवन में आस्तिकता का अर्थ धार्मिक आस्था से है। गाँव के सामाजिक जीवन पर धर्म के संबंध में मान्यता बन गई है। 'अब्दुल्ला' कहानी में अब्दुल्ला अध:विश्वास में आस्था रखता हुआ दिखाई देता है। उसे लगता हैं कि वह अपनी जवानी में

बच्चों से बडा प्रेम करता था और इसी कारण उसका कोई बच्चा आज जीवित नहीं रहता। इसी अंधविश्वास से उसकी सभी कियाएँ परिचालित होती हैं। पाप-पुण्य की भ्रांत कल्पनाओं को लेकर मनुष्य पशु बनता है। 'निशिकांत' कहानी इसी दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। इसी वैज्ञानिक दृष्टि के मूल में एकसूत्रता का तत्व है। विष्णु जी की कहानियों में संस्कृति की यही एक सूत्रता चित्रित होती नजर आती है।

५. राजनैतिक दृष्टिकोण– समाज के हर वर्ग में राजनैतिक चेतना ओतप्रोत नजर आती है। इसमें प्रायः मध्यवर्गीय देश के नव-निर्माण की प्रबल आकांक्षा उसको देश के क्रातिकारी आंदोलनों में बडे उत्साह और गौरव से भाग लेने के लिए उद्‌युत करती है। स्वतंत्रतापूर्व काल में यह चेतना तो क्रांति की भावना से प्रेरित होकर प्रकट होती थी। स्वातंत्र्योत्तर काल मे यही क्रांति समाज में अलग-अलग रूपों में सक्रीय बनती नजर आती है। विष्णु जी की कहानियों में दोनों काल की क्रांति के रूप नजर आते हैं।

अ. स्वतंत्रतापूर्व काल की राजनैतिक चेतना : क्रांति का सूत्रपात– स्वतंत्रतापूर्व काल की राजनैतिक चेतना के मूल में स्वातंत्र्यप्राप्ति यही एक मात्र चेतना सभी युवकों में कार्यरत थी। १९४२ की क्राति में इसी चेतना का ही सूत्रपात था। स्वतंत्रतापूर्व काल में यह चेतना मध्यवर्गीय युवकों में अधिक प्रबल और पर्याप्त थी। विष्णु जी की कहानियों में इस क्रांति में अपना सक्रिय सहयोग देने वाले युवको के चित्र मिलते हैं। इसी कालखण्ड में महात्मा गांधी के विचारों और राष्ट्रीय आंदोलनों ने जनता में राजनीतिक जागृति ला दी थी और शिक्षित होने के कारण मध्यवर्ग ने महात्मा गाधी के अहिंसा और सत्याग्रह को अच्छी तरह समझा था। गाधी जी की अहिंसा और सत्याग्रह की प्रेरणा ही युवको की चेतना बन गई। यह चेतना उद्रेक, आंतक, राष्ट्रहित और कल्याण की कामना से प्रेरित थी। विष्णु जी की कई कहानियॉ इसी उद्रेक के अदर छिपे हुए राष्ट्रहित की भावना को प्रकट करती हैं। 'भाईसाहब' कहानी का अखिल सांप्रदायिक वैमनस्य के कारण देश में होने वाले अत्याचार, विरोध विभिन्नता से तंग आता है। राजनैतिक भ्रष्टाचार के प्रति उसके मन में आक्रोश है। 'मुक्ता' कहानी का कमल भी ऐसा ही एक पात्र है जो फॉसी पर चढते-चढते देश की ही सोचता है। फॉसी पर चढ़ने से पहले उसकी पत्नी उसे मिलने आती है तो वह उसे कहता है, "तुम्हें जीना है अपने लिए, अपने देश के लिए और सबसे बढ़कर देश की इस धरोहर के लिए।"[३६] 'निशिकांत का स्वप्न' कहानी में निशिकांत जैसे साहित्यिक में भी क्रांति की भावना चित्रित की है। 'हरिश पांडे' कहानी के पांडे जी सजा हो जाने के बाद बीमार पत्नी को छोडकर चला जाता है। जाते वक्त पत्नी को समझाता है, 'हम इस देश की आजादी के लिए लड रहे है और आजादी के लिए कोई भी कष्ट कोई भी कुरबानी ज्यादा नहीं है।"[३७]

इसी कालखण्ड में युवकों की भांति युवतियाँ भी राजनीतिक चेतना से प्रेरित थी। 'मुक्ता' कहानी की मुक्ता अपने छोटे बच्चे को अपनी सहेली के पास छोडकर आजादी की लडाई के लिए निकल पड़ती है। 'सुनो, ओ मॉ' की नंदा सोशल सर्विस लीग की मंत्रिणी है। समाज की दुर्दशा, कटुता, निरकुशता पर बोलते-बोलते उसके नेत्र चमक उठते हैं। वह केवल व्याख्यान देने वाली ही नही वो एक अनाथ बच्ची को गोद में लेती है, उसका पालन पोषण करती है। उसका कथन ही उसकी चेतना को स्पष्ट करता है, "जहॉ मनुष्य अपने हाथों से मनुष्य का गला घोट रहा है। जहॉ मॉ बच्चे को, बाप बेटे को, पुत्र माता-पिता को, पति-पत्नी को, भाई-भाई को एक-एक दाने के लिए तड़प-तडपकर मरने को विवश कर रहा है। जहॉ पीडा, वेदना, व्यथा सब इकट्ठी होकर जीवन और मानवता को आत्महत्या करने के लिए मजबूर कर रही है। जहॉ अन्न के गोदाम भरे पड़े हैं और मनुष्य भूखा मर रहा है। वहॉ जाकर हम, हम जो जगन्माता है, जगदबा है, उन चोर गोदामो वाले उन ऐशोआराम की मॉगों मे बहने वाले मनुष्यो के सामने जाकर उनके कृत्यो का भंडाफोड करे तो क्या वे लज्जित न होगे, तो क्या वे हमारी तरह अपने भाईयो को बचाने को तैयार न हो जाएंगे ?"[३८] 'गर्विता' कहानी की रजनी' सदाचार लीग की मंत्रिणी बनकर समाजकार्य के लिए स्त्रियों को जुटाने का काम करती है। 'द्वद्व' कहानी की सुजाता भूख की समस्या के कारण अकाल पीडित जनता की सहायता करने के लिए अपना पूरा जीवन लगा देती है। इस प्रकार स्वतत्रतापूर्व काल मे राजनीति मे प्रवेश करने वाले अपना कार्य समाजसेवा से आरम्भ करते हैं। विष्णु जी ने देश प्रेम के साथ समाजसेवा की महत्ता को भी रेखांकित किया है। 'क्रातिकारी' कहानी का रामनाथ देशसेवा के लिए जीवन की सुख-सुविधाओं का परित्याग कर देता है। 'अरुणोदय' कहानी का निशिकांत सरकारी नौकरी से इस्तीफा देता है क्योकि सरकारी नौकरी उसके लिए गुलामी का प्रतीक है। 'खंडित पूजा' कहानी मे सेवाभावना और प्रेमभावना का द्वद्व है पर अत में विजय सेवा और बलिदान भावना की ही होती है। इस प्रकार जीवनमूल्यों के प्रति निष्ठा, मानवता, कार्यनिष्ठा आदि उच्च-गुणो का निर्माण करके साम्यवादी समाजव्यवस्था की ओर विष्णु जी संकेत करते है।

आ. क्रांति से प्रेरित राजनैतिक चेतना— स्वतत्रता के बाद मध्यवर्ग ही राजनैतिक क्रांति का सूत्रधार बन गया। सशक्त क्रांति से ही देश की पराधीनता की बेडी कटी जा सकती है, इस विचार में विश्वास रखने के कारण अनेक मध्यवर्गीय युवको ने क्रांति में हिस्सा लिया। सशक्त क्रांति मे अपना सक्रिय सहयोग देने वाले युवको के चरित्र विष्णु जी ने अपनी कहानियो मे चित्रित किए हैं। 'वे दोनो' कहानी का नारायण जिसे अगस्त आंदोलन में रेल की पटरी उखाडने के अपराध मे फॉसी पर लटकाया जाता है, उसके साथी हरि और रमण भी क्राति का ही बौद्धिक समर्थन करते हुए नजर आते हैं। नारायण का फॉसी पर जाने का दुख उसकी मॉ के साथ

हरि और रमण को भी होता है। स्वतंत्रता पूर्व काल मे ये मध्यवर्गीय युवक शुद्ध राजनैतिक भावना से क्रांतिकारी दलों में सम्मिलित हुए थे। इसलिए राजनीति की ओर भी वे विधायक दृष्टिकोण से ही देखते हैं। मध्यवर्गीय चेतना को जागृत करने उनमे नई चेतना का निर्माण करने एवं बदलते स्वरूप को चित्रित करने में विष्णु प्रभाकर जी की कहानियो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

उ. **स्वतंत्रता के बाद बदलती राजनैतिक चेतना–** स्वातत्र्योत्तर कालखण्ड में राजनैतिक चेतना का बदलता हुआ चित्र ही नजर आता है। नागरी जीवन और ग्राम्य जीवन की राजनैतिक चेतना में बहुत बडा अंतर है। ग्रामों की राजनैतिक चेतना को देखने के लिए हमारा स्वाधीनता सग्राम ही एक बडा उदाहरण है जिसमें गांव और शहरवालो ने कंधे-से-कंधा मिलाकर स्वतंत्रता की लडाई लडी जिससे ग्रामीण जनता की राजनैतिक साझेदारी का अच्छा विवरण हमें प्राप्त होता है। इस सर्वोतोमुखी जागरण काल में गांव और समस्याओं से जूझ रहे किसान, मजदूर निम्नवर्गीय व्यक्ति, उनकी जिंदगी में अभावों के ढेर, यातनाओं के संकट आदि की सवेदनाओं के स्तर पर अभिव्यक्ति मिलती है। 'सुराज' कहानी यह प्रमाणित करती है कि निम्नवर्ग के लिए स्वराज्य एक दु:खस्वप्न से अधिक कुछ नहीं है। मजदूरों की विकट अर्थिक समस्याएँ, वर्ग-सघर्ष की भावनाएँ, कुठाएँ आदि के पीछे प्रमुख रूप से राजनीति ही थी। इसलिए 'सुराज' कहानी मे विष्णु जी राजनीति पर खुलकर व्यग्य कसते है। साहू जैसे लोग आजादी मिलने से पहले भी सुखी थे और बाद में भी क्योंकि पैसों के बल पर वे आपके साधनों पर अपना अधिकार बनाए रहते है जबकि झगडू मिश्र जैसे शोषित भले ही वे स्वतंत्रता सेनानी रहे हो, जीवन के दु:खदर्द को सहने पर विवश हैं क्योंकि उनका किसी भी साधन पर अधिकार नहीं है। सामाजिक विषमता का आरम्भ मानव की संचय करने की वृत्ति से ही माना जा सकता है। मनुष्य ने जब से व्यक्तिगत रूप में वस्तुसंचय करना आरम्भ किया, अपने लिए औरों का प्रश्रय लेना आरम्भ किया तभी से वर्ग-संघर्ष का आरम्भ हुआ। 'सुराज' का सॉझा देकर वह हमेशा स्वार्थ साधन में लगा रहा है। देश के प्रति उसकी भक्ति स्वार्थ से निर्मित ही रही है। इसके प्रति अब विद्रोह वृत्ति विभिन्न कार्य-कारणों का प्रतिफलन है।

ऊ. **पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध आक्रोश–** भौतिकवादी दृष्टि ने नागरीकरण की बढ़ती गति, शिक्षा, नवीन शासन पद्धति विभिन्न राजनैतिक दलों की क्रियाशीलता के कारण गाँवों में नए रिश्तों नई बिरादरी को जन्म दिया। स्वतंत्रतापूर्व काल में गाँवों का चित्र बिल्कुल अलग था। गॉवों में युवकों में क्रांति की भावना प्रबल थी। स्वतंत्रता के बाद इस चेतना में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ.....। असंतोष और आक्रोश प्रकट करने क लिए युवकों द्वारा आंदलनों का माध्यम अपनाया गया। 'आत्मग्लानि' के जगदीश में असंतोष, खेद उभरकर आता है, उसके कथन से यह आक्रोश प्रकट होता है, ''देश का धन बाहर भेजने वाले पूँजीपति' विदेशी शक्तियों के प्रचारक,

राजनीतिज्ञ और सारी ब्रिटिश मशीनरी को चलाने वाले सरकारी नौकर ये सब भी तो देश के दुश्मन हैं। ये सब तो अपने स्वार्थ के लिए गुलामी की जंजीरे मजबूत करते रहते है। "[३९] स्वतंत्रता के बाद पूंजीवादी व्यवस्था ने राजनीति को भ्रष्ट और निकम्मा बना दिया है। इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों मे राजनीति की गहराई के साथ उसकी परिवर्तित मानसिकता का चित्रण अधिक स्पष्ट होता है।

ए. **प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था का विघटन–** राजनीतिक दृष्टि से स्वातत्र्योत्तर काल एक ऐसी पीढी का काल है जिसने गांधीजी के नेतृत्व में देश की स्वाधीनता के लिए ही नहीं, अपने शोषण के विरुद्ध भी संघर्ष किया था। स्वाधीनता के बाद प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सभी संपन्न और प्रतिष्ठित जीवन बिताएँगे, इसी विश्वास को ही तोड़ दिया गया और जो योजनाएं जनता के हित में बनाई गई, वे संपन्न वर्ग की अधिकतम संपन्नता का ही साधन बन गई। इन स्थितियों का स्वातत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में गहन अध्ययन हुआ है। साधारण जनता की नीति और विद्वानों की नीति में अतर होता है इसी अंतर को समझे बगैर स्वातंत्र्योत्तर काल में आर्थिक नीतियों को कियान्वित किया गया। जो योजनाएँ बनाई गई, वह भी दूरगामी भविष्य पर निर्भर थी। इसके साथ और एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी थी कि भारत की राजनीति में प्रांतीयता और जातीयता की अभिवृद्धि बढती गई। इन स्थितियों पर लेखकों ने भिन्न-भिन्न कोणों से अपने विचार व्यक्त किए है। विष्णु जी की 'सलीब' कहानी इस प्रजातात्रिक प्रशासनिक व्यवस्था के पहलुओं को अलग-अलग दृष्टिकोण से चित्रित करती है। स्वतंत्रता के बाद लोक प्रशासन जनता से अलग होकर अपने आप को जनता का शासक समझाता आ रहा है। विष्णु जी कहानियों में इस प्रशासनिक व्यवस्था की प्रस्तुति मिलती है।

आज के समसामायिक परिवेश में राजनीति के भ्रष्ट, स्वार्थलोलुप और घिनौने स्वरूप ने पूरी प्रशासनिक व्यवस्था को बुरी तरह ध्वस्त कर दिया है। भाई-भतीजावाद, घुसखोरी, षडयंत्र, राजनीति के दबाव आदि के कारण नौकरशाही भी बुरी तरह सड़ चुकी है। और प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था का तेजी से विघटन हो रहा है। सामान्य आदमी और उसके कल्याण की योजनाएँ दप्तरों में बंद हैं, जिसे चाहकर भी खोलना एक जानलेवा मानसिक यंत्रणा से गुजरना है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में यथार्थता के प्रति एक जागरुकता का भाव दृष्टिगत होता है। साथ-साथ उन्होंने मानव को अंतर-बाह्य आंदोलित करने वाले प्रश्नों से पैदा हुई धारणाओं के परिवर्तन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। आज की जिंदगी के संपूर्ण रूप में उसके समस्त फैलाव और वैविध्य के साथ रेखांकित करने का प्रयास, जहाँ तक अन्तर्विरोधों और विसंगतियों से ग्रस्त समाज और राजनीति का प्रश्न है, उनकी रचनाओं में गहराई के साथ चित्रित होता दिखाई देता है। तात्पर्य, विष्णु जी की कहानियों में यथार्थ के विभिन्न आयामों को समस्त मानव जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि मिली है जो सदैव मानवहीत और मानवकल्याण की ही कामना करती नजर आती है।

संदर्भ सूची

१ सच ! मैं सुन्दर हूँ – (मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० १६

२ कितने जेब कतरे – (मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० ४१६

३ एक मौत समदर किनारे – (मेरी तैंतीस कहानियां) पृ० ३६६

४ कैसी हो मरिअम्मा– (मेरी प्रेम कहानियाँ) पृ० १४४

५ मै नारी हूँ – (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ४१२

६. तिरछी पगडडियाँ (एक और कुंती) पृ० ६३

७ अधेरी सुरंग– (एक आसमान के नीचे) पृ० ६

८ अभाव – (धरती अब भी घूम रही है) पृ० १२६

९ एक औरत एक माँ – (एक और कुती) पृ० ७९

१० नई पौध – (सघर्ष के बाद) पृ० ४६

११ आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ – सुशीला मित्तल, पृ० १८६

१२ काफिर –(मेरा वतन) पृ० १६५

१३ घायल की गति – (मेरा वतन) पृ० १३२

१४ आज होली है – (आखिर क्यों) पृ०१०९

१५ एक मौत समदर किनारे – (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ३७७

१६ धरत अब भी घूम रही है – (इक्यावन कहानियाँ) पृ० २६६

१७ अरुणोदय – (रहमान का बेटा) पृ० १६६

१८ सलीब–पुल टूटने से पहले) पृ० १५८

१९ हिन्दी कहानी – दो दशक – सुरेश धीगडा पृ० ६२

२० चिरतन सत्य – (एक और कुती) पृ० ६५

२१ नई कहानी – मीरा सीकरी पृ० २६

२२ हिमालय की बेटी – (धरती अब भी धूम रही है) पृ० १४७

२३ लैंपपोष्ट के नीचे एक लाश– (मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० १२६

२४ ठेका – (धरती अब भी घूम रही है) पृ० ७०

२५. एक माँ एक देश– (खंडित पूजा) पृ० ५७

२६ विमर्श – स० मदन गोपाल गुप्त, पृ० ५५

२७. सलीब (पूल टूटने से पहले) पृ०१५८

२८. नफरत केवल नफरत – (मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० १०८

२९ समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ – पुष्पपाल सिह, पृ० १२५

३० वह रास्ता– (जिदगी क थपेडे) पृ० १५३

३१. वह रास्ता– (जिदगी क थपेडे) पृ० ११५

३२ मेरा बेटा (मेरा वतन) पृ० ७३

३३. बिब – प्रतिबिंब–मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० ६२

३४ दवद्व – (रहमान का बेटा) पृ० १४५

३५. दवंद्व – (रहमान का बेटा) पृ० १४६

३६. मुक्ता – (रहमान का बेटा) पृ० १७

३७. हरिश पांडे – (रहमान का बेटा) पृ० ६०

३८. सुनो, ओ माँ – (रहमान का बेटा) पृ० १५९–१६०

३९. आत्मग्लानि – (रहमान का बेटा) पृ०६६

❖❖❖

4

विष्णु प्रभाकर की कहानियों में संघर्ष

पृष्ठभूमि – स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में समाज के स्थान पर दायित्व का महत्त्व बढ रहा है। समाज निरपेक्ष और स्वतंत्रचेता व्यक्ति ने समाज के परंपरागत मूल्यों, मान्यताओं और सामाजिक बंधनों के प्रति विद्रोह किया है, रूढियों को नकारा है। सामाजिक रूढियाँ, परंपराएं, मान्यताएं जब वैयक्तिक रुचि, आकांक्षा के आडे आती है तो इनके स्वीकार-अस्वीकार के मध्य व्यक्ति संघर्षरत रहता है और उसका अंतस् ऊहापोह, छटपटाहट, तनाव, मनोद्वंद्व में फँस जाता है। 'हिंदी उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' ग्रंथ में डॉ एम व्यकंटेश्वर संघर्ष की इन बाह्य सीमाओं का निर्धारण स्पष्ट करते हुए लिखते है, "कुछ परिस्थितियों मे संघर्ष के कारक अपने सामर्थ्य पर भी निर्भर रहते हैं। बाह्य वातावरण उसके निषेध, प्रतिबध, सामाजिक मान्यता एवं मूल्य अर्थात सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएं भी मनुष्य की मूल इच्छाओं के सीधे विरोध में खडी दिखती हैं।"[१] इस पृष्ठभूमि पर संघर्ष की ओर देखा जाए तो व्यक्ति समाज से, परिवार से, अन्य व्यक्ति से, धर्म से, आर्थिक-राजनैतिक व्यवस्था में उसके अपने अंतस् के विचारों, भावनाओं में किसी रूप में संघर्ष गतिमान रहता है। प्रस्तुत अध्याय में व्यक्ति और समाज के संदर्भ में विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में चित्रित वैयक्तिक संघर्ष, अंतःसंघर्ष, समाज की रूढियों परंपराओं के अस्वीकार में व्यक्ति का संघर्ष सामाजिक–आर्थिक-राजनैतिक तंत्र और अव्यस्था में व्यक्ति की टूटन या संघर्षरत स्थिति को विभिन्न कोणों मे आंकने का प्रयास किया है।

नए-पुराने मूल्यो का संघर्ष, मूल्य-विघटन आर्थिक अभावों में जूझता मध्य वर्ग, प्रेम-विवाह की असफलता मे टूटते हुए व्यक्ति का मनोद्वद्व, राजनीतिक सत्ता के लिए नेताओं का भ्रष्ट रूप, भाई-भतीजावाद, प्रवृत्ति से जन-जीवन का संघर्ष, सामाजिक धार्मिक परिवेश और समाज-व्यवस्था के प्रति व्यक्ति के संघर्ष, विद्रोह की प्रासंगिकता, सार्थकता, असार्थकता आदि तथ्य उभरे हैं। समाज और व्यक्ति के संघर्ष को रेखांकित करते हुए कुछ विचारणीय तथ्य भी उभरकर सामने आए हैं। प्रथमतः व्यक्ति अपने परिवेश और 'घर-बाहर' दोनों की समस्याओ से जूझता हुआ मानसिक स्तर पर अधिक टूट रहा है। अतः बाहरी परिस्थितियो के संघर्ष की अपेक्षा व्यक्ति आतरिक संघर्ष मे अधिक ग्रसित है। उसके अतिरिक्त

पुरुष वर्ग की अपेक्षा नारी अधिक ग्रसित है। वह अधिक विद्रोहिणी और संघर्षरत दिखाई देती है। समाज की रूढियो, परंपराओं, बंधनों और नैतिक मान्यताओं को तोड़ने में वह अधिक सजग और संघर्षरत हो गई है। आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में मानव की इच्छाए, आशा-आकांक्षाएं, अपेक्षाएँ बढने लगी हैं पर जब व्यक्ति की लक्ष्यपूर्ति में परंपरागत समाज व्यवस्था और परंपरागत मूल्य बाधक बनने लगे तो वह विद्रोही, संघर्षरत बन गया, और अपने लक्ष्य-पूर्ति के लिए संघर्ष करने लगा, परंपरागत रूढ़ियों को त्यागकर नव-चिंतन और नवीन मूल्यों को अपनाने लगा। इस प्रक्रिया में व्यक्ति के लिए समाज की जीर्ण-शीर्ण रूढियों, परंपराओं, नैतिक बंधनों से संघर्ष अपरिहार्य बन गया। स्वातंत्र्योत्तर काल में तो संघर्ष की व्यापकता और भी बढ गई है। इस व्यापकता को समझ लेने के लिए पहले संघर्ष का स्वरूप समझ लेना आवश्यक है।

संघर्ष का स्वरूप– प्राकृतिक परिवर्तनों से मनुष्य का जीवन प्रभावित होता है। मनुष्य अपनी शक्ति और युक्ति का प्रयोग कर उसके विरुद्ध संघर्ष भी करता है। तात्पर्य, मनुष्य की अनेक आवश्यकताएं होती है मात्र इन अनंत आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन अत्यंत सीमित होते हैं। अतएवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधन अत्यत सीमित होते हैं। अतएवं आवश्यकता की पूर्ति के लिए होड़ लगती है इससे प्रतिद्वंदिता प्रारंभ होती है। संघर्ष या द्वंद्व उसी स्थिति में उत्पन्न होता है जब दो परस्पर विरोधी इच्छाए एक साथ सामने आती हैं जब कि उनमें से केवल एक ही की पूर्ति संभव है। संघर्ष की मूल भूमिका के साथ मनुष्य की अस्तित्व की रक्षा का हेतु प्रधान है। अस्तित्व की रक्षा के हेतु रूप में समाज का विकास हुआ और सामाजिक विकास की सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए संगठनों और व्यवस्थाओं का विकास हुआ। सामाजिक विकास के मूल में आरंभ से अर्थ, फिर सत्ता और अब अर्थ और राजनीति दोनों क्रियाशील है; आज जो मानव जीवन की विकास प्रक्रिया में संघर्ष के प्रेरक तत्व बनकर कार्य करते हैं।

संघर्ष की इस प्रक्रिया में बींसवीं शती के उत्तरार्द्ध के भारतीय समाज के भौतिक जीवन पर विज्ञान और तकनीकी का भी काफी मात्रा में प्रभाव रहा है। अत व्यक्ति और समाज के वैचारिक एवं भावात्मक जगत् में क्रांतिकारी उथल-पुथल शुरू हो गई। जिसके परिणामस्वरूप जीवन-दर्शन और जीवन-मूल्यों में परिवर्तन की, तोड़-फोड़ की पीड़ा व्यक्ति और समाज को काफी मात्रा में सहनी पडी। यही पीड़ा व्यक्ति और समाज, व्यक्ति और परिवार, व्यक्ति और व्यक्ति, वर्गों और समाज, वर्ण और वर्णों के संबंधों के बीच संघर्ष के रूप में प्रकट होने लगी। सामाजिक-पारिवारिक संबंधों में भी गहन और व्यापक सांस्कृतिक विघटन प्राप्त हुआ। इसी संघर्ष ने व्यक्ति और समाज के आवरण तथा व्यवहार को भी प्रभावित किया जिससे सामाजिक दृष्टि से साहित्यकार प्रभावित हुए।

साहित्य में संघर्ष की अवधारणा – मनुष्य का अस्तित्व यदि उसका साध्य है तो बेहतर संभावनाओं की खोज मनुष्य का संघर्ष है। संघर्ष का प्रतिफलन ही विकास होता है। साहित्य एक ऐसा साधन है जिसका उद्देश्य मनुष्य के भाव और विचार का विकास करता है। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध मे मानव और मानवेत्तर संबंधों की अवधारणा में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। विज्ञान की उन्नति से मानव मूल्यों को बढ़ावा मिला। विज्ञान ने मनुष्य की संवेदना-नैतिक बोध को ईश्वर सापेक्ष से मानव सापेक्ष बनाया। धर्म सामाजिक जीवन का नियामक रहा। सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष आक्रोश और व्यग्य के रूप में अभिव्यक्त हुआ। धार्मिक दर्शन की व्याख्या तथा विश्लेषण भी जीवन के यथार्थ के संदर्भ में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हुआ। स्वातंत्र्योत्तर काल में सघर्ष की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए 'हिंदी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वंद्व' ग्रंथ में डॉ मंजुला गुप्ता द्वारा दिया गया वक्तव्य इस बात की पुष्टि करता है," स्वातंत्र्योत्तर काल नव-चितन, आशा-निराशा, सफलता-विफलता, वैयक्तिक तनाव, घुटन, संत्रास, वर्ग संघर्ष, नए-पुराने आदर्शों और सिद्धांतो के द्वंद्व में जूझता हुआ व्यक्ति गतिमान है। परिणामतः समाज के प्रति व्यक्ति का द्वंद्व प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष रूप में धर्म-रीति-रिवाज, परंपरा-संस्कार आदि संबधित मूल्यों में भी प्रतिफलित हुआ है।"[२] इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर काल की परिवर्तित मानसिकता ने व्यक्ति के समूचे दृष्टिकोण को ही एक नई चेतना दी है।

बींसवी शती का प्रारंभिक समय सामाजिक जीवन की दृष्टि से क्रांतिकारी रहा। इस समय सुधार-संस्थाओं का युग था। समाज में बढ़ रही कुरीतियाँ तथा सामाजिक पारिवारिक बुराइयों एवं तद्जन्य मानसिक संघर्षों, जमींदारों के अत्याचार, कृषकों के शोषण और विद्रोह, जात-पात की समस्याओं, धार्मिक पाखंडों आदि ने सुधार आंदोलनों को बढावा दिया। राजनीति और समाज-सुधार को समरूप किया गया। गांधीजी ने समसामयिक राजनीति, धर्म एवं समाज को समन्वित रूप दिया। अहिंसा एवं सत्याग्रह को लेकर मानवीय शक्ति को नवीन परिवेश दिया। इसी कालखंड में कहानीकारो ने मनोवैज्ञानिक स्थितियों और सदर्भो को भी अधिक पारदर्शी रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मार्क्स और फ्राइड ने मानव जीवन में अर्थ और काम की महत्ता को बढ़ावा देने के साथ-साथ उसे व्याख्यायित करके समाज, व्यक्ति, साहित्य और संस्कृति को नवीन दृष्टिकोण दिया। इस प्रकार कहानी के रचनाकार भी इसी कालखंड में जीवन के यथार्थ पर केंद्रित होने लगे। दूसरे शब्दों में आस्था का रूप परिवर्तित हुआ। आधुनिक सामाजिक व्यथा का केंद्र मनुष्य जीवन की शक्ति, सीमाएं हैं ईश्वर नहीं। ईश्वर मात्र उसका साधन है। साधन इस रूप में कि जीवन की आशा-निराशा में, अकेलेपन में मनुष्य का अवलंब भी न्यूनाधिक रूप में बना हुआ है।

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर काल में साहित्य में संघर्ष के विभिन्न कोण नजर आते हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग की मनोवैज्ञानिक प्रगति, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक हलचलों को कहानी ने अधिक स्पंदित प्रतिबंधित किया है।

संघर्ष के प्रकार – व्यक्ति के बहिर्गत और अंतर्गत में निरंतर संघर्ष गतिमान रहता है। मनुष्य के जो बाहर है, वह पार्थिव है, पदार्थिक है और जो भीतर है, वह मानसिक है, वैचारिक है। इसके साथ ही व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्य के बीच अर्थात् उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं में भी संघर्ष होता रहता है। संघर्ष के मुख्यतः दो रूप हैं--

१. आंतरिक संघर्ष

२. बाह्य संघर्ष

१. अंतः संघर्ष का स्वरूप – व्यक्ति बाह्य जगत् अर्थात् भौतिक जगत् के प्रभाव से तो संघर्षरत हो ही उठता है, परंतु वह अपने मस्तिष्क में उठ रही विरोधी भावनाओं के मंथन से भी सघर्षरत हो उठता है जिसे अंतःसंघर्ष या मानसिक संघर्ष कहा जाता है। मानव-मन अनेक विचारों, भावनाओं, इच्छाओं का भंडार होता है जिनमें किसी वस्तु को पाने और न पाने में विवशता की स्थिति पर छटपटाहट होती रहती है। अत· मनुष्य का मन बाह्य नियंत्रणों और इच्छाओं के मध्य संघर्ष-स्थल बना रहता है। इसी कारण मानव जीवन मानसिक संघर्षग्रस्त हो जाता है। अंत·संघर्ष के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए 'हिंदी उपन्यासों में व्यक्तित्व विश्लेषण' ग्रंथ में डॉ राजेन्द्रप्रसाद शर्मा लिखते हैं, "किसी निश्चित मार्ग अथवा कार्यपद्धति को अपनाकर अपने उद्देश्य को पूरा करने में उसे उलझन होती है तथा वह निरंतर उद्विग्न रहता है। अपने सही कर्तव्य पथ का बोध प्राप्त करने में अंतःसंघर्ष के कारण जब व्यक्ति असमर्थ हो जाता है तब उसके व्यक्तित्व में सघर्ष और विरोध की मात्रा बढ जाती है।"[३] तात्पर्य, इसका मूल कारण व्यक्ति का अहं, इच्छाए, आकांक्षाएं महत्वाकांक्षाएं और उसकी निजी स्वतंत्रता किसी न किसी रूप मे आडे आती रहती हैं, जिसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क में विफलता से अतःसंघर्ष पनपने लगता है।

अत· संघर्ष मे व्यक्ति की अंत प्रेरणा के साथ-साथ बाह्य परिस्थितियाँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस संदर्भ में 'मानविकी पारिभाषिक कोश' में दिया हुआ डॉ० पद्मा अग्रवाल का कथन है, "अंतः द्वंद्व परिवार यौन और संस्कृति से संबंधित होता है। पारिवारिक अंतःद्वंद्वों का कारण बाल्यावस्था में असुरक्षा, परित्याग, कठोर व्यवहार, दूसरे भाई-बहनों का जन्म तथा अत्यधिक निर्भरता होते हैं। यौन सम्बन्धी द्वन्द्ववों के कारण अविवाहित रहना, वैधव्य, परित्याग, समाज द्वारा अस्वीकृत यौन-संबंध और सांस्कृतिक अंतःद्वंद्वों के कारण धार्मिक हटवादिता, अंधःविश्वास, जातीयता, अत्यधिक प्रतिस्पर्धा होते हैं। फ्राइड

ने कामसंबंधी द्वंद्व के विध्वंसात्मक प्रभाव पर विशेषतः ध्यान आकर्षित किया है।"[४] व्यक्ति चाहता कुछ है और होता कुछ और है, वह सोचता कुछ है, पर व्यवहार में करनी कुछ और होती है। उसकी धारणा कुछ भिन्न होती है पर कथनी कुछ और ही। इसीलिए व्यक्ति का अंतस् संघर्षरत रहता है। सफल कहानीकार व्यक्तित्व की प्रेरक मूल प्रवृत्तियों, गतिविधि को स्वाभाविक चित्रण द्वारा कलात्मक स्वरूप प्रदान करता है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में अंतःसंघर्ष के इन रूपों को भलीभाँति संवेगों और उसकी मूल प्रकृति की केंद्रीय प्रेरणात्मक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है।

बाह्य संघर्ष की स्थितियाँ– बाह्य संघर्ष से अभिप्राय है जब व्यक्ति अपने बाह्य जगत् के प्रभाव में संघर्षरत हो उठे, पदार्थिक व पार्थिव स्थितियों की विपरितता में टकराए, विद्रोह करे और संघर्ष करे। सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति को समय और परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में सामाजिक व्यवस्थाओं और संस्थाओं से अपने अस्तित्व के स्थायित्व के लिए संघर्ष करना पड़ता है, तो कभी पारिवारिक संस्थाओं से, तो कभी आर्थिक व्यवस्था से भी उसे जूझना पड़ता है। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में बाह्य संघर्ष की परिसीमा से व्यक्ति की वैयक्तिक स्वातंत्र्य की सीमा को ही ध्वस्त कर दिया है।

आजादी के बाद जो टूटन आई है उसका केंद्र बिदु व्यक्ति है। व्यक्ति और समाज का अटूट संबंध है इसीलिए स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यक्ति स्वतंत्रता की बात करते समय हमें इस बात को भूलना नहीं है कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य की कामना ने सामाजिक बंधनों को जितना अधिक उन्मुक्त किया है, उतना ही व्यक्ति एकाकी होता गया है। व्यक्ति चाहे दलित और शोषित हो उसका जीवन एकाकीपन के कारण असहाय और अजनबी हो गया है। आजादी के बाद आए बदलाव की यही सही तस्वीर है। उसके साथ राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के बजाय नकारने के विरुद्ध आक्रोश है, ऐसा आक्रोश जिसमें बीती कुंठा के स्थान पर संघर्ष-चेतना है, संघर्षशीलता एवं क्रांतिकारिता है। इसकी स्वाभाविकता को स्पष्ट करते हुए हिंदी कहानी : सामाजिक संदर्भ' ग्रंथ में डॉ० अश्वघोष द्वारा दिया गया वक्तव्य बहुत कुछ स्पष्ट करता है, "समाज में रूढियों और संस्थाओं में संघर्ष बढ़े किंतु रूढ़ि व संस्थागत सघर्षो एव व्यक्तिवादिता ने समस्त समाज को छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट दिया है। सामाजिक नियंत्रण क्षीण हो गया। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में निराशा, कुंठा, असुरक्षा, असंतोष, मृत्युभय, मानसिक तनाव, अंधविश्वास एवं दायित्वहीनता जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियों ने व्यक्ति को समाज से ही नहीं अपितु अपने आप से विलग कर दिया।"[५]

दूसरी ओर इसी सत्य को भी हमें स्वीकारना चाहिए कि राजनीतिक स्वार्थों के कारण नैतिक मूल्य भी ध्वस्त हो जाते हैं, परिणामतः विश्वबंधुत्व,

मानवगौरव, स्वातंत्र्य तथा समानता आदि उदात्त मूल्यों के स्थान पर अविश्वास, अनास्था, कुंठाएँ और हीनता के स्वर फूटने लगते हैं। मानवीय नैतिक मूल्यो की गरिमा अर्थहीन होती जा रही है। राजनैतिक अस्त-व्यस्तता ने उखडे हुए वर्ग को भयाक्रात तो किया ही उसकी परंपरा, उसका सामाजिक ढॉचा, सबंधों की आस्था और परिवार की नीव को भी हिलाकर रख दिया।

भौतिकवादी जीवन दर्शन, भौतिक सभ्यता के प्रसार व विकास के कारण अर्थ का जीवन में प्राधान्य हो गया। आर्थिक द्वंद्व, संबंधों को भी मुख्य रूप से प्रभावित करने लगे। आज के व्यक्ति का सुख, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं महात्त्वाकांक्षाओं का आधार भी 'अर्थ' हो गया। अतः जीवन-मूल्य भी इसी धुरी पर सीमित होने लगे है। भौतिक जगत् की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए तो अर्थ-प्रेरित मूल्य ही काम करते हैं कितु सपन्नता या भौतिक सीमा की उपलब्धि के बाद जब व्यक्ति मानवीय स्तर पर सोचता है तो इनकी व्यर्थता का बोध अंत में संघर्ष का प्रेरक बनता है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों मे संघर्ष के ये दोनो रूप अत्यंत विशद रूप में व्याप्त हैं।

अतः सघर्ष का चित्रण – व्यक्ति का द्वंद्व-सघर्ष स्वय से व व्यक्ति का व्यक्ति से है। जब व्यक्ति के अहं पर स्वयं की विचारधारा से या अन्य व्यक्ति से आघात पहुँचता है तो वह विद्रोही, द्वंद्वी हो उठता है। सामान्यत· द्वंद्व चार परिस्थितियो मे उत्पन्न हो सकता है।

१ मनुष्य के भौतिक वातावरण की सुविधा-असुविधा।
२ मनुष्य की जन्मजात या शारीरिक क्रियाएँ।
३. मनुष्य की मनोवैज्ञानिक गठन की क्लिष्टता।
४. मनुष्य का सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण।

संघर्ष इनमें से एक या एक से अधिक कारणो के सयोग से उत्पन्न हो जाता है। सामान्यत. संघर्ष की स्थिति प्रेरक का भी कार्य करती है क्योंकि सघर्ष उत्पन्न करने वाली एक स्थिति को दबाने के लिए व्यक्ति को सक्रिय करना पडता है। फ्राइड के अनुसार जीवन, जन्म से मृत्यु पर्यन्त सघर्ष का प्रतिफलन है।

अंतः संघर्ष का स्वरूप– स्वातत्र्योत्तर काल के बाद नव-युग का आरंभ हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। यह परिवर्तन व्यक्ति के बाह्य जीवन-संबंधी दृष्टिकोणों के साथ-साथ उसके अतस् में भी परिवर्तन का स्वीकार व्यक्ति द्वारा किया गया। ईश्वरीय सत्ता व्यक्ति जीवन का जो एक केंद्र थी स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति उसी ईश्वरीय सत्ता के प्रति अनास्थामय होकर और परहित की भावना छोडकर व्यक्ति अपने 'स्व' में तल्लीन हो गया तो उसके जीवन के प्रति अधिक सजग हो गया। इसीलिए वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रबल इच्छा उसने अपने जीवन में अपना ली ताकि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाज की

उपेक्षा कर व्यक्तिगत दृष्टिकोण को स्थापित कर सके। इस प्रकार व्यक्ति का यह संघर्ष उसके अचेतन तक उतरता है। व्यक्तित्व के निर्माण कार्य में या अहं के विघटन का भी कारण कभी-कभी बनता है। फ्राइड के अनुसार व्यक्ति का अवचेतन मन ही अत्यंत प्रमुख और शक्तिशाली होता है। इस मन के अनेक स्तर होते हैं,जैसे ईगो, सुपर युगो और इंड। तीनों में या तीनों में से किन्हीं दो में परस्पर संघर्ष व्यक्ति के अंदर संघर्ष की रचना करता है। विष्णु जी की कहानियों में पात्रों की मनःस्थिति में अनेक अवसरों पर इस तरह के अंतःसंघर्ष को चित्रित किया गया है।

अ. नारी के अचेतन मन में व्याप्त उद्दाम प्रणयावेग और चेतन में प्रकटतः दृष्टिगोचर होने वाले जागृत विवेक के बीच भीषण संघर्ष—

अचेतन में प्रेम और काम के मध्य एक विचित्र संघर्ष हमेशा चलता रहता है जिसकी अतृप्ति जीवन में कुठा, निराशा, विसंगति को जन्म देती है। अतृप्ति से प्राप्ति की कामना ही व्यक्ति को तीव्र विद्रोह, आक्रोश और संघर्ष के लिए उद्बेलित कर देती है। जो नैतिक-अनैतिकता के बंधनों को भी तोड देती है। 'ठेका' कहानी की संतोष के मन में उठी कामेच्छा की अतृप्ति ही उसके मन में अपनी सहेली स्यामा के प्रति बदले की आगे को कुंठा बनकर जगा देती है। यह कुठा ही उसे अंत में बॉस के प्रति आकर्षित होने के लिए मजबूर करा देती है। 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबाला का उद्दाम प्रणयावेग ही उसके ऐश्वर्य एवं विलासिता का एक साधन है। यही उसके जीवन का मतलब है, जो आगे जाकर अपनी अतृप्ति के लिए अलग-अलग पुरूषों के साथ संबंध प्रस्थापित करने के लिए उसका अचेनत उसे मजबूर बनाता है। जिसमें वह अपना विवेक भी खो बैठती है। चेतन, अचेतन का सघर्ष ही उसके अदर उभरता है। अचेतन में इसी वासना और विवेक के मध्य हो रहे संघर्ष का चित्रण इसमें मिलता है। उसके यह विचार इस बात की पुष्टि करते है—"जिंदगी सुख की तलाश मे भटकती है और मौत सत्य की। सुकरात ने आखिर इस सत्य की तलाश के लिए तो जहर का प्याला पिया था।" हर व्यक्ति को अपनी जिंदगी और अपनी राह चुनने का अधिकार है। लेकिन एक बार ही वह ऐसा कर सकता है फिर तो वह अपने को दोहराता रहता है।"[६] इस प्रकार जाबाला की मनःस्थिति अंत में अचेतन के अंतःसघर्ष के कारण बिखर जाती है। ऐसी ही कुछ स्थिति 'कितने जेबकतरे' कहानी की सुगंधा की भी है। उसकी कुंठा उसके बेचैनी का कारण है। परिवार की चिंता, बचैनी उसे इच्छा न होते हुए भी अनचाही कामवृत्ति के पास ले जाती है। वह बार-बार इससे अपने आप को बचाने का मार्ग निकालती है मात्र मजदूरी उसके सारे मार्गों को रोक देती है। जो उसके जीवन में बार-बार आक्रोश बनकर फिर से उसके व्यक्तित्व को असंतुलित बना देते हैं। उसी टीस पर वह बार-बार विवेक से नियंत्रण पाना चाहती है, और मन का व्यापार क्या है ? दिन-रात छलते

हैं हम एक-दूसरे को। मैंने परिवार के पालन के लिए देह को दॉव पर लगाया था, अपने सुख के लिए नहीं। देह तो एक जिन्स है पर मन और मन के मूल्य"[9] इस प्रकार कभी सुगंधा की बुद्धि भावना पर तो कभी उसकी भावना बुद्धि पर हावी हो जाती है। यह सघर्ष और परिवर्तन क्षणों में होने लगते हैं।

आ. आत्मपीड़ा और आत्महीनता में संघर्ष– जिस प्रकार अहं की भावना मानव के व्यक्तित्व को कुठित कर देती है उसी प्रकार उसके मन में उत्पन्न होने वाली हीन भावना भी उसके व्यक्तित्व को कुठित करने वाली एक विशिष्ट वृत्ति ही रहती है। आर्थिक अभाव, सौदर्याभाव, प्रेम में अतृप्ति से उत्पन्न हीन-भावना व्यक्तित्व विकास मे बाधक बनकर मानव के जीवन को निराशापूर्ण बना देती है। आत्महीनता के कारण व्यक्ति अतर्मुखी हो जाता है, स्वयं को प्रत्येक स्थिति से काटकर रखने का प्रयास करता है और अपने प्रति दूसरों के व्यवहार को विश्लेषित कर अंतःसघर्ष में छटपटाता रहता है। 'हमे गिरानेवाले' कहानी का बिहारी अपनी आत्महीनता के आस-पास जीवन सबधी निष्कर्षों की एक दुनिया बसा लेता है, जिसमे आत्मपीडा और आत्महीनता के अतिरिक्त कुछ भी वरेण्य नहीं है। आर्थिक अभाव बिहारी की आत्मपीडा का मुख्य कारण है जो बार-बार उसे व्यथित करती है। यही व्यथा आत्महीनता के रूप में निराशा बनकर उसके जीवन मे छाई है। बाजार मे उसके साथ होने वाला व्यवहार उसे अधिक आत्महीन बनाता है इसके विरूद्ध उठाया गया उसका विद्रोही स्वर पराजित होकर दब जाता है। इड और इगो से द्वद्वात्मक संघर्ष मे फॅसा यह पात्र है। उसका सघर्ष क्रोध में प्रकट होता है," योग ? योग क्यों नहीं है ? क्या हम आदमी नही है? क्या हमारे जी नही है–?" भय से उत्पन्न आत्मपीडा भी व्यक्ति को आक्रात बनाती है। यही भय और स्वप्न के साथ आक्रात स्थिति 'सॉझ के साएँ' कहानी के 'मै' की है। सौदर्य के प्रति अलग धारणा उसके द्वद्व का कारण है। उसे लगता है सौंदर्य ही स्त्री का सही रूप है इसी धारणा के कारण उसे पत्नी बोझ लगती है। पत्नी के साथ उसका किया जाने वाला व्यवहार दोनों में दुरूहता पैदा करता है। पत्नी का मायके चले जाना, फिर वापिस आना आदि घटनाएँ उसके मानसिक सायोजन में बाधा उत्पन्न करती है। इसके व्यक्तित्व में इड और इगो का सघर्ष है। इड से प्रभावित वासनातिरेक स्वभाव के कारण पत्नी से दैहिक संबध प्रस्थापित करने के लिए 'मैं' का मन राजी नही है। उसका इगो उसे रोकता है। आदर्श और व्यवहार का संतुलन बिखर जाता है और अपने जीवन-मूल्यों को उसके लिए असंभव हो जाता है। 'जज का फैसला' कहानी के पात्र की भी यही समस्या है। रेल दुर्घटना मे पत्नी की कुरूपता उसके द्वारा बर्दाश्त नहीं की जाती। पत्नी की सुंदरता उसका अहं है। यह अह ही हार जाता है। तो इड और इगो के संघर्ष में पति अपने व्यक्तित्व का संतुलन खो देता है। उसके जीवित रहने के अधिकार को नकारा जाता है। फ्राइड के अनुसार इड विवेक शून्य है इसका सबंध वासनात्मक प्रवृत्तियों से है।

इ. व्यवहार व आंतरिक भावना में सामंजस्य न होने के कारण संघर्ष–

व्यक्ति की अहं भावना और व्यवहार में 'प्रतिशोध कारक का काम करता है। इसकी तीव्रता बढ जाने से संघर्ष उत्पन्न होता है। अनेकानेक स्थितियाँ ऐसी होती है, जब किसी भ्रम के कारण मन में संघर्ष रहता है। इसमें न तो व्यक्ति स्थिति को पूरी तरह समझ पाता है, और न अपनी बात दूसरे को ठीक तरह से कह पाता है, तो ऐसी अजीबो-गरीब स्थिति में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। भ्रम के कारण स्थिति तो स्पष्ट नहीं हो पाती, पर मन-मस्तिष्क में विचार-मंथन चलता रहता है, जो संघर्ष निर्माण करता है। भ्रम भी एक आंतरिक भावना है– 'एक माँ एक देश' कहानी के मृणाल के मन में भूख की समस्या भ्रम बनकर उसी के सामने खडी हो जाती है। शहर में तो सब कुछ ठीक है यही आंतरिक भावना उसके सघर्ष का कारण है। शहर में आते वक्त एक भद्र पुरुष द्वारा अपनी वासना की भूख मिटाने के लिए उसके साथ किया गया व्यवहार उसके मन में उठने वाले विभिन्न सवालों के रूप में इसी अह को कुचल देता है, महानगरीय जीवन की कुरूप वास्तविकता को सामने लाता है तब उसका आंतरिक द्वद्व इन शब्दों में उमडता है। "हाय रे! मानव के रूप मे कैसे शैतान यहाँ बसते हैं। खून चूस-चूसकर लाल हुए दानव अब हमारा एकमात्र संबल भी फूसलाकर छीन लेना चाहते है। इसीलिए तो भूख इन्होंने गांव-गाव मे फैला रखी है इसीलिए तो मछली पकडने के लिए कांटे की तरह आशा की डोर हिलाते रहते हैं। 'नाग-फास' कहानी में अपने से बेटों के दूर हो जाने के कारण माँ की चिंता का कारण बन जाता है। इसीलिए डॉक्टर द्वारा दी गई दवा वह बेटे तक पहुचने नही देती। चोरी चुपके उसके दवा की शीशीयाँ उडेंल देने का कार्य उसका व्यवहार और उसकी आतरिक भावना मे उसे संघर्षमय बनाता है, जो एक तरह से भावना से प्रतिशोध बनकर मनुष्यता की हत्या करता रहता है।

"मैं नारी हूँ" कहानी की नायिका रंजना का द्वद्व भी कुछ इसी प्रकार का है। वह एक कर्मठ नारी है। सभी पारिवारिक, सामाजिक बधनो को त्याग कर वह अपनी इच्छा से जीना चाहती है। पति द्वारा उसकी स्वीकृति न मिलने पर वह घर को त्याग देती है पर मन के अदर कस्मकसाती कोमल भावनाओ को वह दबा नही पाती। नारी निकेतन में प्राचार्या बनकर रहने पर भी अपने अह पर अकुश नही लगा पाती। अंत तक विश्वास और अस्थिरता के अभाव मे उत्पन्न होने वाले संघर्ष मे जीती है। व्यवहार और आंतरिक भावना में असामंजस्य के कारण उसका व्यक्तित्व खंडित हो जाता है। उसके मन में उठने वाली भावनाएं इसकी पुष्टि करती है, "किसे कहते थे मन-प्राण से प्यार? रंजना शरीर है या चेतन मन ? शरीर की पवित्रता अर्थ रखती है या मन की ? मन की सहस्त्रों मीलों की दूरी से जब दो शरीर मिलते हैं तो क्या वह 'मिलन' होता है ?"[१०] इस प्रकार अनुभूतियों के कुछ

धरातल ऐसे पावन होते हैं जब आत्मीयता के लीन क्षणों में मनुष्य उन्हें मोल जरूर देता है, परंतु बाद में उन्हें सहन नहीं कर पाता।

ई. आत्म-विश्लेषण द्वारा संघर्ष का प्रकटीकरण – मनुष्य के जीवन में यह चेतना विपरीत प्रेरणाओं से अनुप्राणित है। जो असामान्य स्थिति में संघर्ष के प्रेरक के रूप में काम करती है। विष्णु जी की 'मैं जिंदा रहूँगा' कहानी का प्राण इसी दृष्टिकोण से चित्रित किया है। विभाजन के समय एक असहाय अवस्था में मिली 'राज' नामक स्त्री और अनाथ बच्चे द्वारा मिला परिवार सुख दोनों को उनके असली परिवार मिल जाने से व्यावहारिक रूपों में त्याग लेना यह घटनाएं प्राण को असहाय बनाकर छोड देती हैं। अंत में यही असामान्य स्थिति उसका संघर्ष बनकर रह जाती है। 'शरीर से परे' की रश्मि और प्रदीप में जो प्यार है वह शरीर से परे का है परंतु पति का विरोध और शंकालु वृत्ति 'शरीर के परे' की स्वतत्रता को जकड कर रख देती है। रश्मि की अंतःचेतना शरीर से परे की स्वतंत्रता की मांग करती है। यह असामान्य स्थिति उसके और पति के बीच अंत तक संघर्ष का कारण बनकर रह जाती है। अंत में उसकी यह अतःचेतना दर्द में उभरती है, 'देख सुन सब सकते हैं पर समझने के लिए जो हृदय चाहिए वह हर एक के पास नहीं होता। पर सारा दोषारोपण उन्ही पर कैसे करूँ? मुझे स्वीकार करना होगा कि उन्होंने मुझे अपने बच्चे की मा तो बनाया, पर कभी विलास की सामग्री नही माना। घर की स्वामिनी बनाकर जैसे उन्होंने छुट्टी ले ली। विश्वास की इतनी निधि उन्होंने मुझे दी, पर नारी को क्या केवल यहीं विश्वास चाहिए ?''[११] 'आश्रिता' कहानी में चित्रित अंत संघर्ष सोना के चरित्र की विशेषता है। समाज की असहाय दृष्टि को नकारने वाली सोना उसकी निर्भयता से सहायता करने वाले अजित के साथ पुनर्विवाह करने के लिए विरोध करती है। आर्थिक विवशता उसे दूसरे किसी गॉव जाकर अन्य पुरुष के साथ विवाह करने के लिए मजबूर कर देती है। अंत में फिर एक बार उस वैधव्य की स्थिति का स्वीकार कर फिर से उसे संघर्षरत जीवन व्यतीत करना पडता है। अजीत के मन मे उठने वाली प्रेम की लकीर का मन द्वारा स्वीकार न करना बल्कि दूसरी ओर उसी प्रेम को हृदय में उठने वाली ममता के रूप में स्वीकार करना, दोनो बातों को लेकर उसे अंतःसंघर्ष को स्वीकारना पडता है। इस असामान्य स्थिति में आत्म-विश्लेषण द्वारा इसका कोई हल उपलब्ध नहीं होता। वास्तव में यही आत्मसंघर्ष सोना के जीवन का एक पक्ष बनकर रह जाता है।

'गृहस्थी' की वीणा के चरित्र में आर्थिक तंगी से उत्पन्न तल्खी ही पूरी तरह व्याप्त हैं। पति का परिवार की तरफ ध्यान न देना ऊपर मजबूरन सारी स्थितियों को चुपचाप सहते जाना। यही वास्तव एक करुण सत्य बनकर वीणा के जीवन में संघर्ष की एक नई चेतना बनकर रह जाता है। 'दूसरा वर' कहानी की नायिका एक बार विधवा हो तो गई है दुबारा घर बसाने की उसकी इच्छा

को नकारा जाता है तब वह स्वयं समाज के सभी झूठे नीति-नियमों को ठुकराने के लिए अपने आपको बदलने के लिए असमर्थ मानती है। अपने आप को बदलने की उसकी इच्छा है मात्र अपनी इच्छा को वह नीति-नियमों के संघर्ष में स्वीकार्य नहीं मानती तब उसकी यह इच्छा ही संघर्ष का कारण बन जाती है। उसके विचारों में तल्खी नजर आती है, "कमजोरी और बेबसी के कारण जो आदमी दूसरों पर जुल्म नहीं कर सकता, वही अपने आप पर करता है इसी को आत्म प्रतारणा, आत्म-निंदा और आत्म-हत्या कहते हैं।"[१२] 'कैसी हो मरिअम्मा' की मरिअम्मा पति द्वारा गंवार औरत समझकर त्याग देने पर भी किसी भी हालत में अपने बेटे को बड़ा करने का उसका सपना ही उसके दृष्टिकोण और उनके जीवन का वास्तव इन दोनों के मध्य संघर्ष का कारण बन जाता है। वह पति के छल के दुःख को प्यार के घोल में चुपचाप सह लेती है। इस दर्द को वह छिपा नहीं सकती, जो पूरी तरह उसके अचेतन में समा है, यही दर्द यादों के रूप में बार-बार उमड आता है, "आज की यांत्रिक दुनिया में प्रेम जैसे आता है वैसे ही चला भी जाता है। क्या सचमुच प्यार है या आसक्ति या करुणा है या निरा स्वार्थ जो छद्म ओढ़कर आता है ? प्यार की भूखी नारी इसी शब्दजाल में फँस जाती है। शब्दों के माध्यम से ही तो पैबस्त होता है वह मन-प्राण में।"[१३]

'अंधेरी सुरंग' की शिल्पा का अदर से टूटने का कारण भी कुछ ऐसा ही है। एक कुशल अभिनेत्री का व्यक्तित्व उसके टूटने में दब जाता है। पति द्वारा बार-बार की गई पैसों की मांग, चाहे जिस मार्ग से प्राप्त पैसों की बढ़ती लालच, माँ की क्लब पार्टी के लिए बार-बार की जाने वाली पैसों की बढ़ती मांगें, आदि की पूर्ति में उसकी पूरी अंतःचेतना नष्ट हो जाती है। इसके अलावा भी व्यक्ति को सच्चे प्यार के रूप में और किसी की आवश्यकता हो सकती है यह भी मानो वह भूल गई, उसी की मांग की पूर्ति के लिए अंत तक उसे संघर्षरत जीवन स्वीकारना होता है। इन्हीं शब्दों में उमड़ा उसका दर्द बहुत कुछ स्पष्ट करता है, "मैं क्या कहूँ? मुझे क्या चाहिए– मेरे भीतर के छिपे दर्द को कोई नहीं देखता-या देखना नहीं चाहते। जो मेरे अपने हैं वे ही मुझे निगल जाने को आतुर हैं।[१४]

'धरती का स्पर्श' कहानी के चौधरी का द्वंद्व एक अलग संवेदना से निर्मित हैं अपने मित्र का बेटा जासूस बनकर आया है यह संवेदना ही उन्हें उनकी पूर्व स्मृतियों में ले चलती है जिसे वह चाहते हैं। आज मुझे असगर को किस रूप में स्वीकृति देनी है– जासूस के या अपने बेटे समान जो अपना है वह हम जो नहीं चाहते उसका चौधरी की संवेदना इसका निर्णय नहीं कर सकती। असगर आज भी उनका अपना है। यही धारणा उनके अचेतन में है, मात्र इसका असगर द्वारा खंडन कर लेने से संघर्ष की तीव्रता बढ़ती जाती है। चौधरी के मन का द्वंद्व इन शब्दों में प्रकट होता है।, "समझ में नहीं आया कि यह कैसा जादू है। यह सचमुच असगर है। लतीफ का बेटा। लतीफ जो मेरा जिगरी दोस्त था, मेरा पड़ोसी था

इसको मैंने अपनी गोद में खिलाया है। यह रामसिंह के साथ खेल-खेलकर बड़ा हुआ है, और रामसिंह भी आज मोर्चे पर है और यह तो मोर्चे पर ही है। लेकिन यह कैसा मोर्चा! यह तो दुश्मन का जासूस है यह तो दुश्मन है और कुछ नहीं, केवल दुश्मन।"[१५] विष्णु जी ने चौधरी के अंतःसंघर्ष को बड़ी कुशलता से चित्रित किया है।

'अपना-अपना सुख' कहानी में मंगल का चरित्र अपने पूरे आवेग-संवेग के साथ उसके जीवन संघर्ष को चित्रित करता है। कहानी में मंगल का संघर्ष नितांत वैयक्तिक है। अपने बच्चों की निगरानी के लिए बार-बार शादियाँ करके भी पत्नी सुख नहीं पाता तो अंत में अपने ही हाथों अपने बच्चों को गला घोंटकर मार देने से जेल की सजा भुगतना और दूसरी ओर अपनी मालिक की बेटी के प्रति उसकी सहानुभूति का अंत तक बने रहना। इन दोनों परस्पर विरुद्ध क्रियाओं से उत्पन्न संघर्ष मंगल को अंत में अपनी आत्मश्लाधा को प्रकट करने के लिए मजबूर करा देता है। उसकी भीरूता ही उसको अंदर ही अंदर मथती नजर आती है। उसको अपने किए पर पछतावा तो होता है मात्र विवेक से निर्णय लेने में असफल बन जाता है। 'एक और कुंती' कहानी की नायिका का संघर्ष भी उसकी विफलता का ही कारण है। दंगों में अपना सब कुछ एक बार खो जाने के बाद उसे मजबूरन अलग-अलग पुरुषों का साथ तो लेना पड़ता है पर हर बार बनी रही उसकी मजबूरी संघर्ष के रूप में उसकी नियति बन जाती है। इस नियति के मध्य उसकी जीने की लालसा अंत तक टीस बनकर रह जाती है। इससे उत्पन्न शिथिलता ही उसे बडे असमंजस में डाल देती है। "कैसा है यह अनोखा रिश्ता सपनों से जुडा और आँख खुली तो हाय एक विराट शून्य...फिर भी भरोसा मुझे है और वह मेरे अंदर से आया है बिना किसी के दखल के। जिस घोर यंत्रणा और संत्रास रचनाओं में इन सारी परिस्थितियों को सुलझते हुए परिवार और व्यक्तियों के चित्र मिलते हैं, फिर भी इनके संघर्ष में राजनैतिक चेतना ही प्रबल रूप में दिखाई देती है। यही समाज की गतिशीलता का द्योतक है।

'मुक्ता' कहानी का कमल फाँसी पर चढते-चढते देश की सोचता है। फाँसी पर चढ़ने से पहले पत्नी उसे मिलने आती है तो वह उसे कहता है, "तुम्हें जीना है अपने लिए, अपने देश के लिए और सबसे बढ़कर देश की इस धरोहर के लिए।"[१७] इस प्रकार उस कालखंड में क्रांति की भावना से प्रेरित होने के कारण युवकों को जीवन के साथ भी संघर्ष करना पड़ा। 'निशिकांत का स्वप्न' कहानी का निशिकांत एक साहित्यकार होते हुए भी समाज में उसे कोई ऊँचा पद नहीं मिलता। वह नौकरी का इस्तीफा देकर देशभ्रमण करता है, स्थान-स्थान जाकर व्याख्यान देता है। वहाँ भी उसे संघर्ष करना पड़ता है। 'हरिश पाण्डे' कहानी का पांडेजी सजा होने के बाद बीमार पत्नी को छोड़कर चला जाता है। पत्नी को समझाता है, "ईश्वर जिसे चाहते हैं और जो स्वयं अच्छा है वह काम मुझे करना

ही चाहिए। हम देश की आजादी के लिए लड रहे हैं और आजादी के लिए कोई भी कष्ट, कोई भी कुर्बानी ज्यादा नहीं है।''[१९] युवकों के समान युवतियाँ भी उस समय उतनी ही भावना से जीवन में संघर्ष झेल चुकी थी। 'मुक्ता' कहानी की मुक्ता का पति के फाँसी पर चढ़ जाने के बाद अपने बच्चे को सहेली के पास छोडकर आजादी की लड़ाई में निकलना या 'सुनो, ओ माँ' की नंदा का अपना पूरा जीवन ही 'सोशल सर्विस लीग' में लगा देना आदि घटनाएँ उनके संघर्ष के बहुत बड़े कारण हैं।

आ. राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और मध्यवर्ग– असहयोग आन्दोलन ने पूरे देश को झकझोर दिया था : व्यापारी वर्ग, जमींदार और विदेशी शिक्षा प्राप्त कर्मचारी वर्ग इस आंदोलन के विरुद्ध था। दूसरी ओर मध्यवर्ग मे एक ही परिवार में दो विरोधी मत पनपने लगे थे। एक पक्ष सरकारी नौकरी के कारण राष्ट्रीय आंदोलन विरोधी था और दूसरा अग्रेंजों के पक्ष में था। यह विरोध ही मध्यवर्ग के जीवन में मुख्य संघर्ष का कारण बना रहा।

'सुराज' कहानी इसे अच्छी तरह से स्पष्ट करती है। 'साहू' आजादी के पहले और बाद में अपने सभी सुख-साधनों पर अधिकार पा सकता है मात्र झगडू मिश्र जैसा स्वतंत्रता सेनानी जीवन के दु:ख दर्द को सहने पर विवश है क्योंकि उनका किसी भी साधन पर अधिकार नहीं है। 'भाईसाहब' कहानी का बडा भाई शेखर अग्रेज सरकार का पक्षधर है, तो छोटा भाई अखिल देशप्रेम की भावनाओ में डूबकर घरबार छोड देता है। पराधीनता के समय इन परस्पर दो विरोधी मतों का लाभ उठाया गया। विरोधी शासकों द्वारा भारतीय जनता में बराबर फूट डालने का प्रयास किया गया। कहीं धर्म, कहीं जाति तो कहीं प्रदेश के नाम पर उनकी नीति सफल होती रही। इसका परिणाम भी समाज जीवन पर होता रहा जो आगे जाकर आपसी, संबधों, भाई-चारों में भी संघर्ष का कारण बना। 'एक पुरानी कहानी' का पठान इसका शिकार बन गया है। अपने मरणासन्न बच्चे को बचाने के लिए वह एक हिंदू डाक्टर के पास चला जाता है तो डाक्टर आने के लिए इन्कार कर देता है ताकि उसके मन में सांप्रदायिकता का डर है। 'तांगेवाला' कहानी का अहमद दिल्ली की उन्हीं सडकों पर जहाँ हिन्दू बस्ती से तांगा लेकर निकलता है लेकिन कोई उसके तांगे में नहीं बैठता क्योंकि जाने वाले सभी हिंदू हैं जो मुसलमान के तांगे में बैठने से डरते हैं। दिनभर की उसकी कमाई चौवन्नी है, जिसमें उसे परिवार चलाना पड़ता है। 'वे दोनो' कहानी में तो सशक्त क्रांति में विश्वास करने वाले वर्ग की एक आंतरिक व्यथा उभरी है जो दूसरा वर्ग इस व्यथा को और भी गहरा करके छोड़ देता है। यह वर्ग व्यवस्था का ही नहीं उसके द्वारा की गई सुविधाओं का भी गुलाम हो चुका है और यह वैभव-विलास उसके अस्तित्व की अनिवार्यता बन चुकी है। 'वे दोनो' कहानी के नारायण को १९४२ की क्रांति में रेल की पटरी उखाड़ने के जुर्म में फांसी को स्वीकारना पड़ता है। उसके

इस संघर्ष में उसकी मां, पत्नी और उसके दो मित्र हरि और रमण को भी शरीक होना पड़ता है लेकिन वही सरकार बर्मा की लड़ाई में मारे गए चौधरी साहब के बेटे को विक्टोरिया क्रास देने जा रही है। नारायण के इस कथन द्वारा विष्णु जी ने मध्यवर्ग की वास्तविक जीवन सच्चाई को व्यक्त किया है।" गुलामी की जड़ उखाडने के लिए प्राण देने वाला वीर और अपने मालिक के टुकडों के लिए जान देने वाला गुलाम महान कैसे है?" इस तरह विष्णु जी ने समाज की घटनाओ-दुर्घटनाओं, संघर्ष और हलचल भरे राजनैतिक जीवन को विविध रूपों में कहानियों में चित्रित किया है।

इ. स्वतंत्रता : देश का विभाजन– स्वतत्रता पूर्व का सामाजिक जीवन संक्रमण स्थिति में था। सामाजिक जीवन में संबंधों और मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन हो रहा था देश का विभाजन भी इसी परिवर्तन का ही एक अंग था। यह परिवर्तन अनेक समस्याओं एवं अंतर्विरोधों के रूप में प्रकट हुआ। व्यक्ति के धार्मिक, सास्कृतिक जीवन पर विभाजन का विघटनकारी प्रभाव पड़ा।

'सच! मैं सुंदर हूँ' कहानी में देवर और भाभी दो महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। इन पात्रों की मनोवैज्ञानिकता ध्यान देने योग्य है। भाभी के अचेतन में एक और इगो और सुपरईगों के मध्य अंतःसंघर्ष चलता है। उसके अचेतन में देवर के प्रति प्रेम है। इस प्रेम के पीछे उसका 'इड' काम करता है। पति से उसे वह प्रेम नहीं मिलता जिसकी वह चेतन स्तर पर मांग करती है। इसीलिए उसकी यह भावना सुपरइगों में बदल जाती है। वह पति के कार्यों पर विद्रोह कर उठती है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व ढूँढने लगती है। एक व्यक्ति और समाज की धारणा के बीच चलने वाला यह संघर्ष उसे अंतर्मुख बना देता है। इस प्रकार भाभी का यह संघर्ष आधुनिक पृष्ठभूमि पर सहजीवन की एक अलग यंत्रणा का चित्रण करते हुए, व्यक्तियों के खोखले जीवन दर्शन को स्पष्ट करता है। व्यक्ति और समाज के बीच का संघर्ष 'नफरत केवल नफरत' कहानी के गुलाब के जीवन से भी संबंध रखता है। परिस्थिति द्वारा वेश्या जीवन की मजबूरन स्वीकृति अब उसके जीवन का अविभाज्य अंग तो बन गई है अब केवल दूसरों की निगाहों में भरी खीज ही उसकी सही जिदंगी है। दूसरी ओर झूठे सामाजिक नीति-नियमों में जकड़ी जिंदगी की विडंबना का स्वीकार इन दोनो के बीच का संघर्ष उसकी जिंदगी का अंतिम सत्य है। उसकी खीज इन शब्दों में प्रकट होती है, "इसी बात पर होड बदी जाती है। उसे याद आया कि इस होड़ में वह कितनी बार जीती थी। अपना शरीर और अपनी आत्मा बेचने की होड़ में......लोगों को लुटने की होड़ में...व्यभिचार और हत्या की होड़ में और बीमारियाँ बाँटने की होड़ में गुलाब सदा ही जीती थी आज भी वह जीती थी लेकिन आज की जीत की खुशी जैसे उसे टीस उठी।"

इस प्रकार कई कारणों से व्यक्ति को संघर्ष करना पडता है। कभी वह अपने अतीत के प्रति अधिक सचेत रहता है। इसलिए अपने व्यक्तित्व को विशिष्ट

बनाकर दूसरों के सम्मुख पेश करता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में सभी प्रकार के अंतःसंघर्ष की स्थितियों को चित्रित किया गया है जो कि निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रक्रिया को समझने के लिए आवश्यक ही नहीं तो अपरिहार्य भी है।

बाह्य संघर्ष की व्याप्ति– विष्णु जी मूलतः सामाजिक संचेतना के कहानीकार हैं। इसलिए उनके साहित्य में व्यक्ति और समाज इन दोनों स्तरों पर यथार्थ की पहचान मिलती है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में यथार्थ की मूल चेतना किसी सामाजिक आदर्श और तनावों के भीतर से गुजरती हुई स्थापित होना चाहती थी। स्वतंत्रता के बाद इस चेतना में काफी परिवर्तन नजर आता है। यथार्थ की पहचान दो स्तरों पर होती है। उसमें एक समकालीन जीवन में लक्षित होने वाले संबंधों, प्रसंगों, समस्याओं, घटनाओं, हलचलों आदि के मूल में कार्य करने वाली केंद्रवर्ती चेतना की समझ के स्तर पर। स्वतंत्रता पूर्व कहानी में सामाजिक जीवन के संक्रमण की गहरी पहचान मिलती है। स्वातंत्र्योत्तर काल की कहानी का समाज, समाज का जीवन और जीवन परिवेश तो स्वतंत्रतापूर्व कहानी के समाज से भिन्न नहीं हुआ, वह पूर्ववत जारी है। विष्णु जी की कहानी यात्रा भी स्वतंत्रतापूर्व काल से ही आरंभ होती है। इसीलिए उनका कहानी साहित्य इन दोनों काल के सामाजिक जीवन प्रस्तुति को और उससे उत्पन्न सभी सामाजिक गतिविधियों से प्रभावित रहना स्वाभाविक है।

अ. स्वातंत्र्यपूर्वकाल : राजनैतिक परिस्थितियों एवं समस्याओं से उत्पन्न संघर्ष–

बंगाल के विभाजन के बाद राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता के लिए हर प्रकार के त्याग और बलिदान के लिए जनता तैयार हो गई थी। राष्ट्र की मुक्ति के लिए त्याग और बलिदान जन-जीवन के सब से ऊँचे मूल्य बन गए थे। राष्ट्र के जीवन में त्याग, उत्सर्ग, स्वावलंबन एवं आत्मविश्वास का नया वातावरण बन गया था। गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्र ने पुनः अपने राजनैतिक उद्‌देश्य के लिए अपनी एकता और दृढ़ संकल्प का परिचय दिया था। स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता-पूर्व काल में स्वदेश प्रेम और राजनैतिक जागृति की चेतना ही प्रमुख रूप से जीवन का लक्ष्य था। जिसके परिणामस्वरूप देश के लिए अपनी आजीविका, सुख-चैन एवं स्वार्थ-भावना की आहुति देनी पड़ती थी। विष्णु प्रभाकर जी ने ई० सन् १९४२ के अगस्त क्रांति में संघर्ष करते हुए कई परिवारों के चित्र उपस्थित किए हैं। 'भाईसाहब' कहानी का अखिल सांप्रदायिक वैमनस्य के कारण देश में होने वाले अत्याचार, विरोध, विभिन्नता से तंग आकर इनके साथ संघर्ष करने के लिए तत्पर हो उठता है और घर छोड़कर चला जाता है। बीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज का जीवन, मुक्ति आंदोलन के विविध पक्षों से प्रभावित हुआ। विदेशी शासन से मुक्ति, भारत की जनता और नेताओं का एक ही प्रमुख राजनैतिक ध्येय था। इस आंदोलन के विरोधी तत्व विदेशी ही नहीं स्वदेशी भी

थे। संपूर्ण राष्ट्र बाह्य और आंतरिक संघर्षों में उलझा हुआ था। राजनैतिक संघर्ष के साथ-साथ सामाजिक बुराइयों को सुधारने के लिए सुधार आंदोलन भी चलाए गए। विष्णु जी की कहानियों में इसमें सबसे अधिक विघटन संबंधों और स्त्री-पुरुष की पवित्रता की रूढ़ मान्यताओं में प्रकट हुआ।

पाकिस्तान बनाने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा हिंदू मुस्लिमों का सदियों पुराना सॉझा, जातीय संस्कार था। वे इस संस्था को कमजोर करके नष्ट कर लेना चाहते थे। इस उद्देश्य के लिए सांप्रदायिक घृणा की आग सुलगाई गई। इन्हीं लोगों में एक वर्ग ऐसा भी था जो हिंदू मुसलमान के भेद से ऊपर मानवीय करुणा को जीवित रखने का प्रयास कर रहा था। इसी मानवीय करुणा का मूल केंद्रीय स्तर विभाजन की पीडा झेलने वाले पात्रों की कहानियों में मुखरित है। विष्णु प्रभाकर की कहानी 'मेरा वतन' अपनी धरती से अपनी क्षेत्रीय सभ्यता, संस्कृति और समाज से उखड़े और टूटे हुए उन व्यक्तियों की यातना-यात्रा है जो विभाजन के हादसे यथार्थ को सह नहीं पा रहें हैं और उनकी विक्षिप्तता उन्हें आगे नहीं पीछे की ओर खींचती है। बदली हुई परिस्थितियों में अपने वतन में व्यक्ति इतना बेगाना इतना अजनबी हो गया है उसे भारत में पाकिस्तान का नागरिक समझकर जेल में डाल दिया जाता है। व्यक्ति हिंदू हो या मुसलमान अब नहीं रह गया, वह हिंदुस्तानी या पाकिस्तानी हो गया है। विभाजन में त्रस्त व्यक्ति न अतीत से छूट पा रहा है और न वर्तमान से जुड पा रहा है। इस गहरी खींचतानी ने उसे विक्षिप्त या पूरा पागल बना दिया है। कहानी की यह संवेदना बहुत गहरी है और विभाजन की त्रासदी का जीवन से मृत्यु तक की यातना का करुण चित्र प्रस्तुत करती है।

विभाजन से संबंधित कुछ कहानियों में समाज और व्यक्ति के जीवन में सांस्कृतिक परिवर्तन की यातना के अनेक पहलू उजागर हुए है। देशद्रोही से विभाजन से जुडी क्रूर मानसिकता के उद्घाटन के साथ विभाजन के हिंसक परिवेश में जीवित मानवीय चेतना की ओर भी संकेत किया है। सांप्रदायिकता के माहौल में अवसरवादी राजनीतिज्ञ दंगों की मार्मिक तस्वीर खींचकर सहज में उत्तेजित हो उठने वाली जनता की भावनाओं को और भड़काने का कर्त्तव्य बड़ी तत्परता से निभा रहे हैं। उनके ओजस्वी भाषणों से उन्मत जनता देश के दुश्मन म्लेच्छों के नाश हेतु चल पड़ती है। उन्हें खबर मिल है कि डाक्टर खान सपरिवार डाक्टर अस्थाना के मेहमान है। डाक्टर अस्थाना उन्हें जीते जी अपने घर के अंदर नहीं जाने देते। डाक्टर की हत्या कर अंदर जाने वाले उसे घृणापूर्वक विश्वासघाती और देशद्रोही की संज्ञा देते हैं। अंदर जाकर वे उन पैंतीस मुसलमानों की निर्भयतापूर्वक हत्या करते हैं जिन्हें डॉक्टर ने शरण दी थी। डाक्टर अस्थाना अपने प्राण देकर मित्रता का धर्म निभाने के साथ-साथ सांप्रदायिकता की धुंध में खोती मानवता की भी रक्षा करते हैं।

अपहृत, विस्थापित औरतों की समस्या से पारिवारिक संबंधों में विराट संकट पैदा हो गया जिसने पारिवारिक संबधों को ही नहीं सांस्कृतिक मूल्यों को भी प्रभावित किया। बँटवारे के दौरान औरतों के अपहरण और बलात्कार जैसी प्रत्यक्ष घटनाओं के कारण पैदा हुई मानसिक विकृतियों और ग्रंथियों से 'हिन्दू' कहानी की कथावस्तु निर्मित हुई है। कहानी का एक हिंदू पात्र हिंदुओं को मुसलमानों के विरुद्ध संगठित करने के उद्देश्य से गॉव–गाँव में घूम रहा है। तभी एक खंडहर में असहाय पडी घायल मुस्लिम स्त्री की ओर उसका ध्यान जाता है। वह बैलगाडी का तांगा कर उसी स्त्री को अस्पताल ले जाता है। अभी वह समझ नहीं पा रही है कि वास्तव में वह क्या कर रहा है। सोई हुई अवस्था को मानो वह जगा देता है मात्र उसका संघर्ष वैसे ही जारी रहता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में विभाजन से उत्पन्न संघर्ष को विभिन्न कोणों से चित्रित किया है।

इस तरह स्वतंत्रता-पूर्व का सामाजिक जीवन संक्रमण की स्थिति में था। सारी संक्रमण स्थिति का दबाव सामाजिक जीवन पर पड़ा और उसके फलस्वरूप परिवर्तन अनेक समस्याओं एवं अंतर्विरोधों के रूप में प्रकट हुआ।

स्वातंत्र्योत्तरकालीन संघर्ष की पृष्ठभूमि – स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक चेतना के विकास की प्रवृत्ति समाज से व्यक्ति की ओर होने लगी। व्यक्तिवादी दायित्वयुक्त स्वाधीनता की मॉग बढ़ने लगी। व्यक्तिवादी चेतना का विकास पश्चिमीकरण तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास के साथ भी जुडा हुआ है। 'हिंदी कहानी के बदलते प्रतिमान' ग्रंथ में डॉ० रघुवरदयाल वार्ष्णेय का कथन है "व्यक्ति की उपलब्धि में धार्मिक आंदोलनों एवं सुधारकों, संस्थाओं का विशेष हाथ रहा था जिससे ईश्वर की मध्यस्थता समाप्त हो गई और व्यक्ति प्रमुख हो गया। परिणामत: व्यक्ति ने स्वयं आत्मिक सत्ता के रूप में अपनी चेतना को स्थापित कर लिया और भौतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण को प्रजातांत्रिक आधार भूमि पर स्थापित करने की दलील दी।"[२१] इस व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के संबंधो को प्रभावित किया है। विकास की इस प्रक्रिया की पार्श्वभूमि पर सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं को देखा गया है।

अ. नगरीय समाज का जीवन : भयाक्रांत स्थितियों से उत्पन्न संघर्ष –

नगरीय समाज का जीवन बहुआयामी है, जटिल और गतिशील है। यंत्र का मानव अस्तित्व पर प्रभुत्व जमा चुका है। उसका सारा सामाजिक जीवन कृत्रिम हो गया है। सहानुभूति, सहिष्णुता और मानवीय भाई चारे का स्थान उत्तेजना, तनाव, स्वार्थ, अकेलेपन ने ले लिया है। इन्हीं के मध्य फँसा आज का व्यक्ति अपने अस्तित्व को स्थायित्व देने के लिए संघर्षरत है। वह अपने 'स्व' की पहचान में संलग्न है। अपने अस्तित्व के साथ-साथ वह अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी उद्घोष करता है। स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण मुखवर है क्योंकि आज के व्यक्ति की कुंठा, निराशा, यातना, संत्रास, विसंगति और

हीन-भावना इसलिए है कि वह अपने अस्तित्व अथवा 'स्व' की पहचान के लिए संघर्षशील है। आज के महानगरीय जीवन में यह संघर्ष अधिक तीव्र, उग्र रूप धारण कर चुका है।

आ. हीन-भावना का बोध– 'रहमान का बेटा' कहानी का रहमान निम्न जाति का होने के कारण उसमें हीनता का बोध है। हीनता के प्रति विद्रोह तो उसके मन में है पर वह विद्रोह प्रकट नहीं कर पाता। जातीय संकीर्णता से ऊपर उठने के लिए उसको स्वयं अपने पिता से संघर्ष करना पड़ता है। उसकी प्रेरणा बस्तीवालों को भी जागृत करा देती है, जैसे "हम भी आदमी हैं। हम भी जीएँगे। हम अब जाग गए हैं।" 'हमें गिराने वाले' कहानी के बिहारी को यह हीन-भावना कमजोर बनाती है।

इ. कुंठा-निराशा बोध– 'अंधेरी सुरंग' की शिल्पा व्यक्ति स्वतंत्रता का समर्थन तो करती नजर आती है, मात्र स्वतंत्रता से स्वैराचार की स्वार्थवत स्वीकृति नहीं दे पाती। इसलिए उसका संघर्ष अपने आप से और परिवार से है। अपने पति से वह इस बात पर स्पष्ट रूप से विचार-विमर्श करती है। गुलाम बनकर जीना उसे पसंद नहीं। उसका कथन इस बात को स्पष्ट करता है, "मैंने तुम्हें अपना बनाया है पर गुलामी की शर्त पर नहीं। एक दूसरे के होते हुए भी हमारी अपनी-अपनी जरूरतें हैं, अपनी-अपनी जिंदगी है और उसे हम किसी भी तरह जी सकते हैं।" पति इन बातों को स्वीकार नहीं कर पाता और अत तक उसके जीवन में संघर्ष बना रहता है। 'कैसी हो मरिअम्मा' कहानी की मरिअम्मा की कुंठा जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गई है। पति द्वारा एक गवाँर औरत समझकर किया गया उसका त्याग उसके जीवन में फिर जीवन की नई चेतना नहीं बन पाता। प्रेमी द्वारा उसको स्वीकारने की स्वीकृति के बाद भी वह पति और प्रेमी के द्वंद्व के बीच उलझती रहती है।

ई. संत्रास-बोध– 'एक और कुंती' कहानी की नायिका पुरुषों द्वारा बार-बार वही मरणप्राय यातना मिलने के बाद भी घर की औरत बनकर, अलग-अलग पुरुषों के बच्चों की माँ बनकर उन्हीं यातनाओं में नारी-निकेतन में अपना जीवन यापन करती है। १९४७ के दंगों में वह अपना परिवार खो देती है और उसके बाद जीने की लालसा से बार-बार संघर्ष करती रहती है। उसकी व्यथा में भरी हुई उसकी वेदना उसके जीवन संघर्ष पर प्रकाश डालती है। "क्यों------ क्यों आदमी अपने से ही छल करता है, अपने ही 'मैं' से अजनबी हो जाता है? जो नितात मेरा अपना है, जो मेरे प्यार का प्रतिरूप है उसी से वंचित हूँ मैं। कारण कुछ भी रहा हो, कुंती कर्ण के पास जा सकती थी पर मैं–।[२४]

उ. अजनबीपन की भावना– व्यक्तिवादी भावनाओं से उद्भूत व्यक्ति-स्वातंत्र्य, क्षण की महत्ता, निराशा, विसंगति, समाज के प्रति विद्रोह की भावनाओं ने मनुष्य को इतना संकुचित बना दिया है कि वह अपने अतिरिक्त दूसरे की उपस्थिति को,

अजनबीपन की भावना से देखता है। 'एक अनचीन्हा इरादा' में विष्णु प्रभाकर जी ने व्यक्ति की इस भावना को स्वाभाविक रूप से संकेतित किया है। माँ-बाप के रोज के झगड़े बच्चों की जिंदगी को बिल्कुल तबाह कर देते हैं। बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति माँ-बाप से अपनत्व पाने की रहती है, मात्र उनके द्वारा इस अपनत्व को ही बच्चे के जीवन में संघर्ष का कारण बनाया जाता है तब बच्चों में अपने आप अजनबीपन आता है। यह अजनबीपन भी संघर्ष का एक और कारण बन जाता है। कहानी में 'मैं' का संघर्ष यही है जिसने मानो अपना अस्तित्व ही खो दिया है।'– अक्सर वह इसी तरह दिल में कमजोरी का अहसास लिए आवारा बच्चों की तरह घूमता रहता है, और थके हुए पंछी की तरह अपने ठिकाने पर लौट आता है। उसके अंतर में हास-उल्हास नहीं, रोशनी भी नहीं। बस जैसे सांय-सांय करती हवाएँ कानाफूसी करती हैं।''[२५]

ऊ. परिवेश के लिए संघर्ष– व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करता ही है, उसके चारों और फैले हुए परिवेश के लिए भी संघर्षरत हैं। 'चैना की पत्नी' कहानी के समसुख को पिता की मृत्यु के बाद जमीन के ठेके के लिए प्रत्यक्ष अपनी माँ के साथ संघर्ष करने के लिए खडा होना पडता है, जो माँ पिता की मृत्यु के बाद दूसरी शादी करके दूसरे गाँव चली जाती है। दूसरे पिता द्वारा उसकी खेती पर जब अधिकर की प्राप्ति के लिए परिस्थिति के साथ संघर्ष करना भी अनिवार्य बन जाता है। 'वापसी' कहानी की कथावस्तु इस संघर्ष को चित्रित करती है। पिता की मृत्यु के बाद नायक का शहर की ओर चले जाना और फिर गॉवों में कुछ परिवर्तन की इच्छा रखकर उसका वापस आ जाना, जिससे फिर से एक बार यहॉ का पूरा परिवर्तित वातावरण देखकर कुंठित हो जाना, इसी पृष्ठभूमि को कहानी की कथावस्तु बनाया गया है। इस प्रकार अनेक भयाक्रांत स्थितियाँ आज भी नगरीय परिवेश में व्याप्त हैं। यही आज के व्यक्ति की सही नियति है, जिसके साथ संघर्षरत रहने के लिए उसे प्रयत्नशील रहना पड़ता है।

बदलती संक्रांत मानसिकता आज का व्यक्ति पूरी तरह पीसा हुआ है, दूसरी ओर इसी मानसिकता के प्रभाव से व्यक्ति से बनी 'परिवार' संस्था को भी इसी मानसिकता ने घेर कर रखा है। परिवार समाज के विशाल भवन की नींव है, मात्र व्यक्ति और समाज के बीच चल रही छटपटाहट, सामाजिक विश्वासों, रीति-रिवाजों, विचारों और संस्थाओं की टूटन ही आज परिवार की नींव को हिला रही है। इसी से उत्पन्न संघर्ष भी आज चिंता का कारण है।

ए. पारिवारिक संबंधों में संघर्ष– परिवर्तित मूल्यों के युग में समाज की महत्त्वपूर्ण संस्था का परिवार में विघटन लक्षित होता है। आज पारिवारिक संबंधों में परंपरागत रूप के चौखट को तोड़कर एक नया रूप धारण किया है। आर्थिक विषमताओं ने भी पारिवारिक संबंधों पर दबाव डाला है, जिसके कारण पारिवारिक परंपरावादी संघटन टूटता जा रहा है। परंपरा से टूटकर तथा सभी प्राचीन

सामाजिक संबंधों के मोहपाश से मुक्त होकर अब व्यक्ति अधिकाधिक आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। उसका अकेलापन बढ़ता जा रहा है।

पत्नीत्व और मातृत्व नारी जीवन की परिणति न होकर केवल एक सामाजिक अनिवार्यता भर रही है। प्रेम संबंधों में त्याग, उत्सर्ग, बलिदान शारीरिक पवित्रता जैसे आदर्श अर्थहीन हो चुके हैं। परिवार के अन्य संबंधों में भी बदलाव आया है। माता-पिता के बदलते संबंधों के साथ-साथ समय का बदला हुआ मिजाज संतानों के व्यवहार में भी प्रकट होता है। इस स्थिति से उत्पन्न संघर्ष की अभिव्यक्ति विष्णु जी की कहानियों में विभिन्न धरातल पर होती है। 'खिलौने ओर बेटे' में परिवार का एक ऐसा ही विशुद्ध रूप मिलता है। बेटा सुनील अपनी पसंद की विदेशी लड़की स्तावना से विवाह करके विदेश में बस जाता है। 'फांसिल इन्सान और कहानी के विनोदशंकर और उनके परिवार का संघर्ष भी कुछ इसी प्रकार के है। बच्चों की शिक्षा, विकास के बारें में सोचने वाले एक पिता अंत में बच्चों की दृष्टि से केवल एक 'फांसिल' मात्र रह जाते हैं। 'पिता-पुत्र के संघर्ष भी कुछ इसी प्रकार का है। 'पिता-पुत्र' के संघर्ष का एक अलग रूप 'एक रात-एक-शव' कहानी में चित्रित किया गया है। पिता समान चाचा की मृत्यु का दु:ख बेटे को नहीं है। दोनों में गलतफहमी संघर्ष का कारण थी। चाचा ने ही उसको पाल-पोसकर बड़ा किया था लेकिन जब उसे पिता की हत्या के लिए यही चाचा जिम्मेदार है वह सत्य मालूम होता है तो दोनो में संघर्ष छिड़ जाता है। अंत में विदेश जाकर वह बस जाने का निर्णय कर लेता है। चाचा उसे अपनी जिम्मेदारी की याद दिलाते हैं तो दोनों में संघर्ष और भी बढता जाता है।

ऐ. पति-पत्नी संबंध : बदली हुई आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न संघर्ष–

स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता ने पति के एक छत्र स्वामित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानी 'ठेका' में उच्च मध्यवर्ग में प्रेम और अभिसार साथ ही चलते हैं। पति-पत्नी को एक तरह से अपने आर्थिक संकट में इस्तेमाल ही करता है। कहानी का व्यंग्य उस पारिवारिक मान्यता पर है जहाँ पति अपनी पत्नी का मालिक अथवा स्वामी होता है और वस्तु की तरह उसका क्रय-विक्रय कर सकता है, उसे कहीं भी दाँव पर लगा सकता है, किंतु नारी अपनी इच्छा से पत्नीत्व की सीमा पार करे तो उसे सहन नहीं कर सकता। पति कहता है– "स्त्री आखिर स्त्री है ढील चाहे जितनी दो पर रस्सी अपने हाथ में रखनी चाहिए।"[२६] वह पत्नी की सामाजिक स्वतंत्रता और अन्य पुरुषों के मध्य स्वतंत्र विचरण से क्षुब्ध है किंतु संतोष जब अपने संबंधों के प्रभाव के बल पर एक बड़े ठेके का स्वीकृति पत्र लाकर पति के हाथ में रख देती है तो वह उस पर न्योच्छावर सा हो जाता है। उसके क्रोध, अवसाद, सब का समाधान हो जाता है। पति-पत्नी के इस संबंध की स्थिति यह है, "वह जानता है कि संतोष बड़ी सामाजिक है। खूब मिलती-जुलती है। सरकारी विभागों के प्रमुख कर्मचारियों से

उसकी रब्त-जब्त है। इसका प्रारंभ उसी ने तो कराया था कि उसके सामने भी नयन नहीं उठाती।"[२७]

अर्थ का अभाव संबंधों की भावात्मक संबद्धता को गौण बना रहा है। 'समझौता' में अनिरुद्ध ने वेश्या की बेटी आयशा को अपनी जीवनसंगिनी के रूप में तो स्वीकारा, मात्र जब एक फर्म के बड़े सौदे में उसे सब कुछ गँवाना पड़ता है तो फर्म को बचाने के लिए वहाँ फर्म के ठेकेदारों द्वारा सौदे में पत्नी की मांग किए जाने पर वह क्रोधित हो जाता है मात्र समझौते के रूप में अंत में वह इसी बात को स्वीकारता भी है। 'अंधेरी सुरंग' कहानी के संघर्ष का कारण भी यही है। अंकित अपनी फिल्म के लिए शिल्पा से पैसों की मांग तो करता है, बल्कि अपने मित्र के साथ संबंध रखने के लिए भी कहता है मात्र शिल्पा इसे नकार कर अपने मित्र आयन से बातें करती है यह उससे सहा नहीं जाता।

आर्थिक विषमता ने समाज में वर्ग-संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी है। भावात्मक और विचारात्मक दोनो स्तरों पर स्त्री-पुरुष में संबंध स्थापित होते हैं। आर्थिक असमानता की स्थिति में पले पति-पत्नी में संस्कारों की भिन्नता के कारण पहले वैचारिक फिर व्यावहारिक संघर्ष होने लगता है। पति-पत्नी के संबंध में घोर संघर्ष की यह स्थिति मानवीय करुणा एवं अनुराग को खत्म कर रही है और ऐसा तनाव पैदा कर रही है कि संबंध टूटने की स्थिति में आ गया है। 'गृहस्थी' की वीणा और हेमेंद्र में हमेशा संघर्ष चलता है। वीणा ही परिवार को चलाती है तो हेमेंद्र समाजसेवा और देशसेवा को ही सब कुछ मान बैठा है। इसीलिए दोनो में कटुता संघर्ष बनकर बैठ जाती है। वीणा की व्यथा बहुत कुछ स्पष्ट करती है, "मैं कहती हूँ अपनी काहिली और निकम्मेपन को बातों के पीछे क्यों छिपाते हैं आप? कुछ करते क्यों नहीं ? ऐसे ही जीवन बिताना है तो शादी क्यों की ? क्यों दुनिया में रहने की हाविस करते हो ? कही जंगल में जा बसे होते!

ओ. नवीन नैतिक प्रतिमानों की स्वीकृति से उत्पन्न संघर्ष – आधुनिक मानव जीवन में बहुस्तरीयता है। व्यक्ति कई सूक्ष्म स्तरों पर एक ही संबंध के अनेक रूपों को जी लेता है। पति-पत्नी के संबंध का बंधन भी कुछ व्यापक बन गया है। 'शरीर से परे' की रश्मि के पति की संदेह प्रवृत्ति उन दोनो में संघर्ष का कारण है। प्रदीप जैसे साहित्यकार से वह प्यार करती है, उसके साहित्य में उसे रुचि है। उन दोनों का प्यार भी 'शरीर से परे' का है, लेकिन रश्मि के पति से यह सहा नहीं जाता। इस कहानी में यह मानव-निष्ठा नैतिक बोध है जो नारी की शारीरिक पवित्रता की पारंपरिक मान्यताओं को एक ओर नकार रहा है। उन प्रश्नों को ही अस्वाभाविक एवं भ्रामक मानता है, जो मानव की सहज प्रकृति का अतिक्रमण करते हैं। 'आश्रिता' की सोना के सामने यह प्रश्न आया ही नही। अजीत का विधवा स्त्री की सहायता करना, सामाजिक नैतिक मूल्यों की स्वीकृति के मध्य रहकर सोना के सामने शादी का प्रस्ताव रखना। अंत में उसी द्वारा पिता की ममता से सोना

की सारी सहज पवित्रता की सरलता को स्वीकार कर लेना। अंत तक यह सारे प्रश्न स्वाभाविक रूप से सोना के जीवन-संघर्ष का कारण बनकर रह जाते हैं।

आज पति-पत्नी के सबंध की नैतिकता समाज अथवा मानवता का संघर्ष छोडकर व्यक्ति का संघर्ष बन गई है। 'कैक्ट्स के फूल'' की कहानी में गिरीश की प्रेमा की ओर देखने की दृष्टि बिल्कुल उसी प्रकार की है। पति द्वारा पत्नी की किसी भी सामाजिक कार्यों में सहयोग की अस्वीकृति, स्वयं मात्र हमेशा प्रसिद्धि के कोलाहल में फँसे रहना ही इस संदर्भ को स्पष्ट करता है। पत्नी केवल उसी की अधिकार की वस्तु है, यही गिरीश की दृष्टि दोनों में अनबन का कारण है। 'राजम्मा' की कहानी में राजम्मा की हँसी दोनों में नैतिक अनैतिकता का मापदंड बनकर खडी हो जाती है। पति की दृष्टि से हँसी अनैतिक व्यवहार का सूचक संकेत बनती है, तो राजम्मा की दृष्टि यह उसका खुलापन है, जो दोनों के बीच संघर्ष का कारण है। यहॉ संबंधों का टूटना सूक्ष्म, सहज एवं जटिल है।

औ. विवाह : परिवर्तित दृष्टिकोणों से उत्पन्न संघर्ष– संयुक्त परिवार में परिवार द्वारा निश्चित की गई पारंपरिक विवाह प्रणाली और साथ-साथ उसका विरोध का स्वर स्वातंत्र्योत्तर कहानी में भी मुखरित हुआ है। इनके मध्य बदलती सामाजिक जीवन की परिस्थितियॉ भी तीव्रता से परिवर्तित हुई हैं। विष्णु जी का ध्यान इन बदली हुई मानसिक स्थितियों की ओर गया है। 'संघर्ष के बाद' कहानी की यह प्रमुख समस्या है। निर्वाण का दूसरी जाति की लडकी से शादी करके अपना अलग घर बसा लेना, यह विचार उसकी मां और परिवार के अन्य सदस्यों को पसंद नही आता। कोई उसकी सहायता नहीं करता। निर्वाण की पत्नी हेमा पति की बीमारी में उसकी सेवा कर स्वय बीमार हो जाती है, तो पत्नी को बचाने के लिए वह पूरे पैसे भी जुटा नहीं पाता। क्या करें, इस द्वंद्व में वह पूरी तरह फंस जाता है। 'नदी, नारी और निर्माण' के वीनू की भी यही समस्या है। वीनू शांताबाई को चाहता है, पर वह गरीब परिवार की होने के कारण पिता द्वारा उनको विवाह के लिए स्वीकृति नहीं दी जाती। वीनू इन झूठी सामाजिक परंपराओं से जूझना चाहता है– परिवर्तन की मांग करता है लेकिन उतना आत्मबल नहीं दिखा पाता जैसे– ''जहॉ आज सून-सान सांय-सांय करता है वहाँ मिल की चिमनियों की गगनभेदी किलकारियाँ गुंजरित होंगी। तब निर्धनता को मुँह छिपाने के लिए भी जगह नहीं मिलेगी और मनदूसियत अरब सागर में जा डूबेगी। 'बिंब-प्रतिबिंब' में भी इसी समस्या को दुहराया है। रमणीक के पिता द्वारा जाति न मिलने के कारण शादी को नकारा जाता है। ईश को इस बात का दुःख हो जाता है। वह रमणीक को बुझदिल मानती है। झूठी सामाजिक मान्यता के विरुद्ध संघर्ष कर उठती है। उसका वह मुँहतोड़ जवाब बहुत कुछ स्पष्ट करता है– प्रेम क्या केवल सौंदर्य या धन की अपेक्षा करता है ? क्या घनिष्टता का उससे कोई संबंध नहीं है ? तुम शायद कह रहे थे कि वह प्रेम नहीं है, वासना है। भैया वासना की निंदा करना

आचारवानों ने अपना पेशा बना लिया है। परंतु मैं पूछती हूँ "वासना के बिना, यौवन की पुकार के बिना भी प्रेम होता है, देश, धर्म, जाति, जीवन सभी का प्रेम उत्तेजना और उमंगों की अपेक्षा करता है। तुम जिस आध्यात्मिक प्रेम की दुहाई देते हो तो वह तो जीवन से मुँह मोड़ने की बात है और इसलिए बुजदिली है। इस प्रकार पारिवारिक संबंधों में बाह्य और आंतरिक जो परिवर्तन विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है उसका केंद्र बिंदु दापंत्य संबंध है।

अं. परिवार के सदस्यों की बदली हुई मानसिकता से उत्पन्न संघर्ष– माता-पिता और संतानों की पीढ़ियों का अंतराल अनेक प्रकार के संघर्षों, तनावों तथा विघटन का कारण बनता है। पीढ़ियों का अंतराल पारिवारिक संबंधों में अनेक रूपों में प्रकट होता है। माता-पिता और संतानों के बीच विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में विचारों तथा मूल्यों में समन्वय नहीं हो पाता, कहीं पर यह संघर्ष स्थित है, कहीं सीधा टकराव, आंतरिक अलगाव है, कहीं पर स्थिति के साथ समायोजन की स्थिति है। यह सारी स्थितियाँ कुछ विशेष बिंदुओं जैसे– विवाह, माता-पिता का प्रभुत्व, धार्मिक विश्वासों और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भिन्नता, आर्थिक दबाव, व्यक्तिगत स्वार्थ, यौन संबंध और आजीविका के बिंदुओं के इर्द-गिर्द बनी हुई है।

पुत्र-पुत्री और माता-पिता संबंध– आज माँ बेटी के संबंधों में भी दरारे आ गई हैं। 'कितने जेबकतरे' की सुगंधा और उसकी माँ में केवल स्नेह के बंधन नहीं है। सुगंधा को अपनी इच्छा न होते हुए भी पराए पुरुष से संबंध रखकर परिवार को चलाना पड़ता है। छोटी बहन साधना की शिक्षा, भाई को पाकेटमनी के लिए पैसे और इन सारी बातों के लिए उसकी इच्छा न होते हुए माँ से मात्र मिलती स्वीकृति जिससे उसमें और माँ में एक यौनं संघर्ष हमेशा बना रहता है, जिसे उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना पड़ता है। 'अंधेरी सुरंग' में माँ बेटी के संबंधों में माँ की इच्छा बेटी को बिल्कुल पसंद नहीं आती। अभिजात्य संस्कृति के झूठेपन को पूरी कहानी में माँ-बेटी के संघर्ष द्वारा चित्रित किया है। बेटी के मन में माँ के प्रति आक्रोश इस प्रकार प्रकट होता है, "मैं समझती हूँ तुम्हें पैसा चाहिए और प्रथम को ऐसा ही मशीन हूँ पर अभी इतना पैसा तैयार नहीं हुआ है।"

आज माँ-बेटी के संबंधों के साथ-साथ पिता-पुत्री के संबंध भी अर्थ के आधार पर नापे जाने लगे हैं। 'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी में विष्णु जी ने इसे एक गहरी तल्खी के साथ स्पष्ट किया है। स्वयं एक पिता होते हुए भी आर्थिक तंगदस्ती से परिवार को बचाने के लिए पिता अपनी बेटी को दरिंद्रों के हाथ सौंप देता है। उसके साथ वही व्यवहार होता है जिसका परिणाम अंत में मृत्यु होती है। पिता की मजबूरी और परिवार का स्वार्थ ही बेटी के जीवन में एक विडंबना बनकर रह जाता है।

भाई-बहन, भाई-भाई संबंधों में संघर्ष– सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में यह संघर्ष कई छोरों पर उलझे हुए नजर आते हैं। आभ्यंतरिक जटिलता संबंधों में

दृष्टिगोचर होती है। 'कितने जेबकतरे' की सपना और उसका भाई सुधीर दोनों अपनी बड़ी बहन सुगंधा के साथ केवल पैसों की बातें करते हैं। भाई की लापरवाही से जेबकतरे द्वारा चुराए गए पैसों के साथ उसको पकड़वाने के लिए भी बहन की ही आकांक्षा रखते हैं। यहाँ सुगंध का अपने जीवन के साथ, परिवार के साथ मन में बसा आक्रोश तीव्र बनकर उमड़ आता है। "रुपये सडकों पर नहीं बिखरे पड़े रहते। शरीर गंवाना पड़ता है। अपनी लापरवाही से दो सौ रूपये खो दिए और अब मुझसे आशा करते हो कि मैं उस जेबकतरे को पकड़वाने का इन्तजार करूं। मैं ही करूं सब कुछ...."[१२] भाई-भाई के संबंधों में तो आज केवल भावात्मकता न रहकर अर्थ के नाम पर बौद्धिकता आ गई है। विष्णु जी ने इस संबंध को पूर्ण रूप से बौद्धिकता के धरातल पर स्वीकारा नहीं। 'बँटवारा' के रामप्रसाद की आर्थिक तंगदस्ती में उनका छोटा भाई देवेन उनकी सहायता करता है। बेटे की पढ़ाई के लिए जब पैतृक संपत्ति मकान को ही गिरवी रखने की नौबत आती है तब देवेन स्वयं दुकान ले लेता है और भाई की सहायता करता है। पत्नी कहती है "क्या इतने रुपये यों ही फेंक दिए जाएंगे ?" तो वह व्यवहार की बात तो करता है, व्यवहार में नाते–रिश्तों को लाना नहीं चाहता। इस प्रकार आज हर व्यक्ति संबंधों की उपरी पर्त बनाए रखने के लिए अलग-अलग मुखौटा धारण करना आवश्यक समझता है और उन मुखौटों के पीछे वह अपने अंतस् में वास्तविकता को छिपाकर मानसिक संघर्ष से गुजरता है, अपनी आत्मा की प्रताड़ना सहता है क्योंकि उसके संबंध अब स्वार्थ की नींव पर टिकने लगे हैं। कथा साहित्य में यह संघर्ष अनेकानेक रूपों में उभरा है। टूटते पारिवारिक संबधों से उत्पन्न मानसिक संघर्ष का यह स्वरूप स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में मिलता है।

आर्थिक चेतना से उत्पन्न संघर्ष– स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक व्यवहार, आदान-प्रदान, संबंधों की अपेक्षाओं में काफी बदलाव आया है। इस परिवर्तन में आर्थिक तत्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। समाज के आर्थिक जीवन में अर्थ से उत्पन्न संघर्ष और द्वंद्व ने सामाजिक जीवन में तनाव और बिखराव अवश्य पैदा किए हैं। इसके छोर कहीं व्यवस्था और व्यक्ति, कहीं व्यक्ति और समाज और कहीं व्यक्ति और व्यक्ति होते हैं। इतना ही नहीं तो जीवन में परिवर्तन के आर्थिक तत्व ने पारंपरिक जीवन-मूल्यों को भी चुनौती दी, जिसके कारण पारिवारिक-सामाजिक संबंधों में भी संघर्ष उभरा। विष्णु जी की कहानियों में संघर्ष के इन सभी-रूपों की प्रस्तुति हुई है।

मध्यवर्गीय व्यक्ति का संघर्ष– वैज्ञानिक तंत्र ने तथा औद्योगिकरण ने अर्थ-तंत्र को काफी प्रभावित किया है। मूल्यों के परिवर्तन से व्यक्ति भाग्यवादी न रहकर अधिक तर्कवादी हो गया है। विषम आर्थिक स्थिति का शिकार सबसे अधिक मध्यवर्ग हुआ। आर्थिक स्रोत सीमित होने की वजह से यह वर्ग हमेशा संघर्षरत रहता है। कई प्रकार के अंतर्विरोध तथा द्वंद्वों को इस वर्ग को झेलना पड़ता

है। बेकारी की समस्या के साथ आर्थिक अभाव और नैतिक-सामाजिक बुराइयाँ भी जटिल रूप धारण करती चली जा रही हैं। 'आकाश की छाया में' की सरला भी इन सारी परिस्थितियों के मध्य फँसी एक मध्यवर्गीय नारी है। किसी भी प्रकार की सिफारिश उसके अभावग्रस्त जिंदगी को दूर नहीं कर सकती। एक अपाहिज पति और बेटे के भविष्य की चिंता यही उसके जीवन की सही पहचान है, जिसके लिए उसे अपने शरीर को बेचकर ही नैतिकता के बाजार में अपने आपको खड़ा करना है, यही वास्तव हैं। विष्णु जी ने मध्यवर्ग के वास्तव को ही वाणी दी है। 'हिमालय की बेटी' में रेवती का संघर्ष भी कुछ इसी प्रकार का है। दुर्बलताओं के चक्रव्यूह में से अपने पति की टाँगों के इलाज के लिए उसके पास कोई मार्ग नहीं हैं। अपनी असमर्थता से यह पति पर खींझ भी उठती है, फिर अपने आपको समझाती है। 'नई पौध' में यही समस्या एक श्रावक की विवशता बनकर रह जाती हैं। सपने में भी वह अपनी विवशता नहीं भूल पाता। गरीबी ही जटिल रूप धारण कर लेती है, जो एक पिता को अपने बच्चों की हत्या करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता भी नहीं निकाल पाता। पूरी कहानी में संघर्ष की एक विदग्ध छाया दिखाई देती हैं इस वर्ग के आर्थिक जीवन की अनेक समस्याएँ अपने विविध सदर्भों ओर स्वरूपों के साथ चित्रित हुई हैं।

मध्यवर्ग-अर्थतत्व और अस्तित्व संकट– मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में आर्थिक स्थिति और बौद्धिक बोध तथा आधुनिक मूल्य बोध के कारण अंतर्विरोध पैदा हो गया है। सांस्कृतिक-आर्थिक विपर्यय के कारण अस्तित्व संकट की गहरी व्यथा को विष्णु जी की कहानियों में तीखी अभिव्यक्ति मिली है। उनकी कहानियों में मध्यवर्ग के उस व्यक्ति या व्यक्तियों की पीड़ा का बोध होता है जो शिक्षित है, सभ्य है। वह मानवीय संवेदना और ऊँचे मानवीय मूल्यों से जुडे हैं। समझौता करना या अवसरवादी एवं सुविधालोभी होकर अहं को बेचना जिसके लिए संभव नहीं है और वह भौतिक सुखों की कीमत के रूप में अपनी मनुष्यता का सौदा भी नहीं करना चाहता। आर्थिक स्थितियों के परिवर्तन के कारण अपने आपको 'मिसफिट' पाता है। एक निराशा, वेदना, अनकही व्यथा उसके परिवार के जीवन पर छाई रहती है। 'सलीब' कहानी में प्रमोद सक्सेना द्वारा दी गई मामूली सी रिश्वत की स्वीकृति उसके परिवार को तबाह करती है तो दूसरी ओर प्रमोद सक्सेना के अंदर जगी मनुष्यता उसे बार-बार सचेत करती है। पत्नी द्वारा दी गई अप्रत्यक्ष स्वीकृति उनके अंदर की अनकही व्यथा को जगाती है। "बात सभी की नहीं है, मेरे अपने मन की हैं मुझे अच्छा नहीं लगता था, पर अपने को ही जीतने की कोशिश में बटोर नहीं पाया। अंतर्रात्मा मुझे कोसती तो तर्क पर तर्क करके उसे समझा देता।"[33] इस अनकही व्यथा के कारण संबंधों को भी 'काठ' होकर रहना पड़ता है। 'गृहस्थी' में एक ओर पति का निकम्मापन और दूसरी ओर पारिवारिक मजबूरियाँ वीणा और उसके पति के बीच एक अनकही व्यथा बनकर

रह जाती है, जो समझौता बनकर जीवन जीना भी पसंद नहीं करती। वीणा का यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है, "न जाने मैंने क्या पाप किए थे जो इस नरक में पड़ना पड़ा। हर वक्त बात, हर वक्त बात, जब देखो तब बात! जैसे बातें ही धरती को स्वर्ग बना देंगी। 'एक माँ एक देश' कहानी के मृणाल का संघर्ष भी उतना ही कठोर है। बेटे को ही एक अमीर प्रौढा के पास छोड़ने के लिए उसे मजबूर होना पड़ता है पर उसकी यह मजबूरी अवसरवादी वृत्ति बनकर नहीं रह जाती। बेटे के उज्ज्वल भविष्य की चिंता उसकी व्यथा, निराशा बनकर जीवन में संघर्ष का कारण बनी रहती है। इस प्रकार कभी-कभी मिसफिट हो जाने का अहसास ही व्यक्ति को अर्थलाभ के लिए, भ्रष्टाचार तथा अन्य असामाजिक कार्य करने के लिए प्रेरित करता है या अवसाद, घुटन, निराशा के कारण बनकर निष्क्रियता में बदलता जाता है।

आर्थिक संदर्भ और जीवन मूल्य– जीवन मूल्यों के नाम पर व्यक्ति केवल आर्थिक होकर रह गया है। मनुष्यता भी दांव पर लगाने को तैयार है। ऐसी अर्थमूलक संस्कृति में भावना को कोई स्थान नहीं मिलता। वहाँ व्यावसायिक जीवन-मूल्य ही प्रधान बन जाते हैं। 'आधुनिक हिन्दी कहानी समाजशास्त्रीय दृष्टि' ग्रंथ में डॉ० रघुवीर सिन्हा का कथन इस बात को स्पष्ट करता है, "जीवन के प्रति एक स्थूल भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रबल होता जा रहा है। इस कथन की पुष्टि में विष्णु जी की कहानी 'सलीब' भी प्रस्तुत है। प्रमोद सक्सेना द्वारा दी गई रिश्वत लेने की स्वीकृति को भौतिकवादी जीवन की सही पहचान मानकर चलते हैं। लोगों के व्यावहारिक दृष्टिकोण का यह विधान स्पष्ट करता है, "देखो इस सनकी को, ईमानदार बनने चला था, नौकरी भी खो बैठा। क्या यह नहीं जानता था कि जो भी सत्य के मार्ग पर चलता है वह दुःख भोगता है और जो असत्य का मार्ग अपनाता है वह सुखी होता है।" आर्थिक सामर्थ्य की दृष्टि से समाज में उच्च वर्गीय और मध्यवर्गीय मानसिकता में भी बडा अंतराल है। एक आधुनिक और पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित है तो दूसरा आधुनिकता का दावा करके भी पुराने मूल्यों से चिपका हुआ है। यह अंतराल ही संघर्ष का कारण बनता है। इसका सटीक उदाहरण 'पिचका हुआ केला और क्रांति' कहानी में मिलता है। बच्चे के हाथ से गिरा हुआ केला रास्ते पर चलने वाले एक भिखारी का बच्चा उठाकर खा लेता है और बाप और बेटे दोनों उसकी खिल्ली उडाते हैं मानों इन्हे इसी तरह जीना है, जो सही है और शाश्वत भी है। 'धरती अब भी घूम रही है' में मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में जीवन-मूल्य ही आर्थिक संकट से बचाने के लिए काम आ जाते हैं यही विचार पूरी कहानी में व्याप्त है। एक नन्हीं बालिका द्वारा अपने पिता की रिहाई के लिए सुनाई बातों के आधार पर अपना नन्हा सौंदर्य जन के लिए प्रस्तुत करने का विचार कहानी में गहरी संवेदना भर देता है। कहानी की संवेदना आने वाली पीढ़ियों की संस्कृति के साथ है। पूँजीवादी मूल्यों से अभिप्रेरित

सामाजिक जीवन और भ्रष्ट व्यवस्था को दो पार्टी के बीच मध्यवर्गीय नागरिक जिस कटुता, घुटन एवं असुरक्षा को महसूस करने लगा है उसका डरावना रूप इन कहानियों में उभरता है।

स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति के विचारों में, दृष्टिकोणों में बहुत बडा अंतर आ गया है। समाज और व्यक्ति का एक-दूसरे के प्रति देखने का दृष्टिकोण भी बदलता गया है और समग्र रूप से मानव जीवन में आया यह परिवर्तन ही उसके जीवन संघर्ष का मूल कारण रहा है।

कहानी के संघर्ष का स्वरूप– मनुष्य की सामाजिक चेतना का विकास किसी समाज विशेष के मूल्यबोध तथा जीवन दृष्टि पर निर्भर करता है। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में मूल्यबोध और जीवनदृष्टि में बहुत बडा परिवर्तन आया है। विज्ञान की उन्नति के साथ बढता मानव का मूल्य ईश्वरीय सत्ता को नकारना, धर्म सामाजिक जीवन का नियामक आदि से प्रकृति की नई परिकल्पना मानव जीवन के संदर्भ में की जाने लगी। मानव जीवन से संबंधित यह सभी अवधारणाएँ आज यथार्थ के रूप में परिणत हो रही है। दूसरी ओर मानव जीवन से संबंधित सभी प्रश्नों के उत्तर की खोज के लिए किया गया अनुसंधान और परीक्षण का शुद्ध भौतिक दृष्टिकोण आज आदर्श के रूप में परिणत हो रहा है। आदर्श और यथार्थ के बीच का संघर्ष आस्था में परिवर्तित होता है। कहानी समाज के संघर्ष और परिवर्तन का साक्षात्कार करती है। यथार्थ और आदर्श इनके मध्य व्यक्ति और परिस्थिति मौजूद रहती है। अंतःसंघर्ष की स्थितियाँ भी इनसे दूर नहीं रहती। कहानी में सामाजिक रूढियों के विरुद्ध व्यक्ति का आक्रोश, संघर्ष, व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। जीवन की आशा-निराशा में, अकेलेपन में न्युनाधिक रूप ईश्वर मनुष्य का अवलंब रूप में बना हुआ है मात्र आस्था के केंद्र मनुष्य का संकल्प और संघर्ष ही है। मूल्यबोध की संकल्पना मानव-सापेक्ष नैतिकता से जुड़ी हुई है। मनुष्य का अपना अस्तित्व ही उसकी भावना, विचारणा और अवधारणा का केंद्र बिन्दु है। कहानी में चित्रित संघर्ष इन सभी बिंदुओं को एक साथ जोडने का कार्य करता है। विष्णु जी की कहानियों में संघर्ष के इन विभिन्न बिंदुओं को चित्रित किया गया है।

यथार्थ और आदर्श के बीच संघर्ष– मनुष्य के भाव और विचारों से सामाजिक चेतना का उदय होता है। किसी समाज विशेष के मूल्य और जीवन दृष्टि से उत्पन्न चेतना यथार्थ कहलाती है। इस यथार्थ के सूक्ष्म आंतरिक जटिलताओं की खोज करते समय जो चेतना उद्‌भूत होती, वह आदर्श जीवन दृष्टि है। आज के व्यक्ति का संघर्ष इन दोनों के समन्वय की प्रस्तुति का कारण बनता है। विष्णु जी की यात्रा सामाजिक यथार्थ से निकलती है और उसका समापन आदर्श में होता है। 'भाई साहब' कहानी के अखिल के मन में सांप्रदायिकता के प्रति भरा आक्रोश उसे देश में होने वाले अन्याय, अत्याचार के विरोध के रूप में कार्य करने के लिए

अपने भाई, परिवार को छोड़ने के लिए मजबूर करता है लेकिन उसकी यह प्रेरणा आदर्श की स्थिति बनकर जब परिणत होती है तो दोनों के बीच यथार्थ का साथ लेकर आदर्शों की प्रस्थापना में उसका कार्य परिणत बनता जाता है। 'मुक्ता' कहानी का कमल अपनी पत्नी और पूरे परिवार को छोड़कर देश के लिए फाँसी पर चढ़ता है। इतना ही नहीं वो अपनी पत्नी को भी देशकार्य के लिए प्रेरित करता है। 'बेटे की मौत' कहानी में भी यही संघर्ष है। मोहन राष्ट्रीय प्रतीक गांधी टोपी की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राणों को गंवा देता है, पिता केदारनाथ को बेटे की मृत्यु का दुःख तो होता है लेकिन दूसरी ओर उन्हें अपने बेटे के कार्य पर गर्व भी महसूस होता है, वह अगर देश के लिए मर सकता है तो मैं क्यों नहीं मर सकता? आखिर वह मेरा बेटा था, बेटा[३६] पिता, पुत्र दोनों के मध्य देशप्रेम की चेतना आदर्श बनकर प्रेरित होती है।

'सुनो, ओ माँ' कहानी की नंदा एक अनाथ बच्ची का पालन करने के साथ-साथ 'सोशल सर्विस लीग' में अपना पूरा जीवन लगा देती है। राजनैतिक चेतना से प्रेरित उसकी जीवनदृष्टि नवयुवकों में चेतना का आदर्श प्रस्थापित करती है। 'गर्विता' कहानी में राधा के पति दिनेश को आजादी आंदोलन में भाग लेने के कारण फाँसी हो जाने के बाद भी इसे अपना सौभाग्य मानकर वह जीती है। विशिष्ट ध्येय, मूल्यों से प्रेरित जीवन दृष्टि को स्वीकार कर अमिट साहस, उत्साह और कर्तव्य के प्रति निष्ठा भाव का आदर्श निर्माण कर अपनी वास्तविकता को यथार्थ के रूप में स्वीकार करके जीना यही उसका जीवन सत्य है। यही संघर्ष है, जो व्यक्ति विकास का भी एक मार्गदर्शक होता है। 'हरिश पांडे' कहानी का पांडे जी अपनी बीमार पत्नी को छोडकर जेल की सजा भुगतता है। देश से बढ़कर और दूसरा कुछ भी नहीं यही विचार पांडेजी के संघर्ष की चेतना का प्रतीक है। 'धरोहर' की मृणाल का बंगाल के अकाल से त्रस्त जीवन और अपने क्रांतिकारी पति की एकमात्र निशानी अपने बेटे को त्यागकर पति के कार्यों में हाथ बंटाना या 'पतिव्रता' की सुमित्रा का कार्य भी लगभग इसी प्रकार का है।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी का सारा साहित्यिक संघर्ष ही निश्चित आदर्शों एवं जीवन की गरिमा-मर्यादा के प्रति रहा है। और यह संघर्ष अत्यंत सूक्ष्म ढंग से उनकी कहानियों में उभरा है। उनका संघर्ष असत् के साथ सत् का संतुलन स्थापित करते हुए नव-निर्माण की ओर दिशान्मुख होने का संदेश देता है।

आदर्श, आदर्श के बीच संघर्ष– यथार्थ की भिस्ती से उत्पन्न एक जीवन दृष्टि जब किसी निश्चित दिशा की ओर मूल्य बनकर संकेत कर देती है, तो वह दृष्टि आदर्श बनती जाती है। एक आदर्श जीवन मूल्य के साथ दूसरा आदर्श मूल्य टकराता है तब वह संघर्ष व्यक्तिपरकता की सीमा पार कर देता है। विष्णु प्रभाकर जी की 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी में चित्रित नीना और कमल जैसे दो नन्हें बालकों की जीवनदृष्टि एक आदर्श का ही संकेत करती है। नीना का अपने

पिता की जेल की रिहाई के लिए जज के पास जाकर सौंदर्य बेचने की बात करना, विष्णु जी का छोटे बच्चों के मन में समाज की गलत अवधारणा के प्रति आक्रोश का इस प्रकार प्रकटीकरण पूरी कहानी में एक आदर्श बनकर छाया रहता है। पिता की मामूली-सी रिश्वत के लिए जेल चला जाना और बच्चों को उसकी सजा के रूप में संघर्ष के साथ अपनी जिंदगी को ही दांव पर लगाने की दृष्टि एक नया आदर्शबोध तो है, दूसरी ओर कहानी बच्चों की मासूमियत द्वारा इस गहरी संवेदना के बारे में पाठकों को सोचने के लिए सचेत करना भी लेखक का उद्देश्य है। यह दोनों उद्देश्य पूरी कहानी में व्याप्त हैं जो कहानी के संघर्ष का कारण हैं।

'जज् का फैसला' कहानी भी इसी संघर्ष को एक अलग ढंग से चित्रित करती है। रेल दुर्घटना में अपनी पत्नी का सौंदर्य ध्वस्त होना और उसके लिए न्यायाधीश द्वारा पति को दिया गया न्याय एक अलग आदर्श है। न्यायालय द्वारा पत्नी को अब जीवित रहने के अधिकार को नकारना ताकि पत्नी के जीवित रहने से पति के सौंदर्य भावना का अपमान भी एक नई अवधारणा का संकेत संघर्ष का कारण है। सौंदर्य भावना का केवल रूप से जुड़ना ही इतना ही अर्थ नहीं तो व्यक्ति की अंत्स के साथ सौंदर्य भावना सच्चे रूप से जुड जाना चाहिए तभी वह शाश्वत होती है। इस कहानी में सौंदर्य की इस धारणा का मानो न्यायाधीश द्वारा खंडन ही किया गया है, जो एक आदर्श दृष्टि थी। पूरी कहानी में एक कथावस्तु के माध्यम से इसी संघर्ष का चित्रण विष्णु जी करते रहते हैं।

'खंडित पूजा' कहानी के नीलम का देशसेवा के प्रति गहरा लगाव है। अनाथ, अपाहिज बच्चो की सेवा में ही वह अपना पूरा जीवन गंवा देता है। उसी के सामने अपने वैयक्तिक प्रेम की भी बलि देता है। यह जीवनदृष्टि ही वीणा को उसकी ओर आकर्षित करती है जो भी उसी को अपना आदर्श मानकर उनके कार्यों में हाथ बंटाना चाहती है। एक विद्यार्थी संघ के जुलूस में गोलाबारी में वह रक्त से लथपथ होकर गिरता है, वीणा गोलाबारी से उसको बचाने का समर्थ प्रयास करती है इसीलिए कि नीलम की ईश्वरपूजा व्यर्थ न जाए। यहॉं दो अलग-अलग आदर्श एक दूसरे के सामने खडे हैं जो संघर्ष में परिणत होते हैं मात्र एक दूसरे के सामने गहरी विचारदृष्टि लेकर ही खड़े होते हैं। 'इतनी-सी बात' कहानी के अस्लम जावेद का संघर्ष कुछ एक निश्चित आदर्श पर टिका हुआ है। एक डाकू द्वारा डॉ विनीता शर्मा के अपहरण करने पर एक भाई की दृष्टि से विनीता की सहायता कर लेना जिसके लिए स्वयं उसे डाकुओं द्वारा जख्मि हो जाना आदि, इन्सानी रिश्ते की बुनियाद से जावेद का यह कार्य एक निश्चित आदर्श का पात्र है मात्र कुछ क्षण के लिए अपने मजहब को भूलकर एक मुसलमान द्वारा एक हिंदु स्त्री की सहायता करना, सभी स्थापित स्वार्थो से परे था। रिश्तों को इन सभी स्वार्थों से परे मानकर उसका स्वीकार कर लेने के बाद उन्हीं को एक सामाजिक स्वीकृति के मध्य आदर्श के रूप में खड़ा करने के लिए देखना यह

उसे पसंद नहीं है। जावेद का यह कथन बहुत कुछ स्पष्ट करता है, बस, इतनी सी बात थी फसाना कर दिया आप लोगों ने। विष्णु जी के इन आदर्शों में भी मानवतावादी दृष्टि का एक छोर छिपा हुआ नजर आता है जो व्यक्ति को अपने प्रति संघर्ष के लिए केवल प्रेरित नहीं करता बल्कि अपने आप को पहचानने के लिए मजबूर करता है।

व्यक्ति-परिस्थिति के मध्य संघर्ष– अनुभूति की तीव्रता ही व्यक्ति की गति अथवा संघर्ष का उद्‌गम स्रोत है। व्यक्ति की मानसिकता, संस्कार तथा संवेदना सामाजिक बदलाव में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन्हीं के मध्य व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष चलता है और दूसरी ओर परिस्थितियों के मध्य उसे अपने आप को खड़ा करके अपने अस्तित्व की भी रक्षा के लिए बचाने का उसका प्रयास चलता रहता है। व्यक्ति की अंतःचेतना और बाह्य स्थिति से जुडाव इन दोनों के मध्य उसे सघर्ष करना पडता है। विष्णु जी की रचनाओं में व्यक्ति और परिस्थिति के मध्य द्वंद्व चित्रण में जीवन के अनुकूल प्रतिकूल स्थितियों की पहचान करके उसी बेहतर संभावना की खोज की है। 'मैं जिंदा रहूँगा' कहानी के प्राण की यही समस्या है। दंगों में खोई एक असहाय औरत और बच्चे को पति और बेटे का प्यार देकर उनको अपनाने के बाद कुछ काल के बाद बेटे का असली बाप आकर उसकी माँग करता और 'राज' नाम की औरत को अपनी पत्नी का स्थान देने के बाद उसके असली पति द्वारा उसकी मांग करने से बिना किसी झिझक से फिर से एक बार अपनी असलीयत को स्वीकार करके जीना यही कहानी का द्वंद्व है। परिस्थिति के चंगुल में प्राण इस तरह फंसा है कि उसे वह सच्चाई स्वीकार करनी पडती है। राज को लिखे पत्र का वाक्य है जो उसकी स्थिति को बहुत कुछ स्पष्ट करता है, "बहादुर लोग गलती कर सकते हैं पर धोखा देना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है फिर भी दो शब्द मुझे तुम्हारे पास लाने को पर्याप्त हैं। प्रयत्न करना उनकी आवश्यकता न पड़े। मुझे जानती हो मरते तक जीता रहूँगा।

'कितना झूठ' कहानी के निशिकात के मन में उठने वाले जीवन संबंधी सवाल और उन्हीं के मध्य विशेष परिस्थितियों में फंसा निशिकांत चित्रित होता है। अस्पताल में प्रसव वेदना से तड़पती पत्नी को बचाने के प्रयास और उसी के बचाव के लिए बच्चे मरने के बाद खबर के रूप में झूठा जिंदा रहना यह सब झूठापन भी हम क्यों स्वीकारते हैं ? यह प्रश्न ही उसके संघर्ष का कारण है। झूठे सत्य का स्वीकार या नकार, किसी एक की जिंदगी बचाने के लिए परिस्थिति स्वीकारना या उसी अंतिम सत्य का स्वीकार करना इन सारे सवालों के मध्य निशिकांत का द्वंद्व चलता है। उसका द्वंद्व सत्य की खोज करता है, "सत्यभामा को बचाने के लिए मेरे अंदर इतनी तीव्र लालसा क्यों-क्यों मैं उसे मरने नहीं देना चाहता-क्यों मैं.......?"

'हिमालय की बेटी' कहानी में एक असहाय रेवती की व्यथा एक ओर चित्रित है तो दूसरी ओर उस व्यथा के अंदर परिस्थिति से उत्पन्न संघर्ष का चित्रण है। एक बार अपने प्रेमी कुशलानंद द्वारा प्यार को ठुकराकर चले जाने के बाद प्रेम की निशानी बेटे का दूसरे किशन नाम के व्यक्ति से पति और पिता के अधिकार की स्वीकृति देने की व्यथा रेवती के मन में बस जाती है। कुछ काल बाद कुशलानंद द्वारा फिर एक बार प्रेम की मांग, अपनी भूल का अहसास हो जाने के बाद बेटे के लिए पिता का अधिकार देने की इच्छा एक तरफ और दूसरी तरफ किशुन का अपने जीवन का दोनों के लिए किया आत्मसमर्पण आदि सारे सत्य परिस्थिति के रूप में रेवती के सामने खडे हैं। जो रेवती का एक बडा प्रश्न बनकर नियति के रूप में खड़ा है।

'कितने जेबकतरे' कहानी की सुगंधा का प्रयास परिस्थिति और आर्थिक विपदा में फंसे अपने व्यक्तित्व को बाहर निकालने के लिए है। सुगंधा की आर्थिक मजबूरी और परिवार की बढ़ती जिम्मेदारियाँ उसे मजबूरन अनचाही स्थिति का स्वीकार करने के लिए मजबूर बनाती है। दोनो में से किसी एक का ही स्वीकार उसे करना है तो स्वाभाविक है उसकी अस्तित्व की इच्छा को हार स्वीकारनी पड़ती है। परिस्थितियों के मध्य वह अपने आप को खडा तो करती है मात्र जीत उसकी नहीं होती। 'एक और कुंती' कहानी की नायिका की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की है। एक तथाकथित सुसंस्कृत परिवार की बेटी की बहू का भाग्य एक दिन दुर्भाग्य में बदल जाता है। १९८२ के दंगों में वह पति के साथ फंस जाती है। दरिंदों द्वारा पति की हत्या करने के बाद उसे एक अधेड़ व्यक्ति के साथ उसी के घर जाना पड़ता है और उसके बाद उन्हीं पुरुषों द्वारा किए गए घृणित व्यवहार को भी स्वीकारना पडता है। कुरूक्षेत्र के युद्ध के समान बार-बार वहीं स्थितियां उसके जीवित रहने का कारण बनी रहती है। फिर भी उन्हीं के मध्य उसकी अपने आपको बचाने की लालसा उसकी विभीषिका बनकर रह जाती है, जो कहानी में विस्तृत रूप से चित्रित है। अपहरण से लेकर एक नारी निकेतन में अपने मातृत्व की रक्षा करते-करते बचकर रहने की उसकी यात्रा परिस्थिति के सत्य को स्वीकारने में उसे मजबूर करती है। इसी सत्य का स्वीकार कर वह अंत तक परिस्थिति के साथ जूझती जीती है।

'नई पौध' कहानी का संघर्ष कुछ अलग ही है। एक श्रावक परिस्थिति के सामने अपने आपको पूर्णतः मजबूर पाता है। सपने में भी परिवर्तन को स्वीकार नहीं करता। एक ओर बच्चों का पालन पोषण और दूसरी ओर आर्थिक कठिनाइयों के मध्य यह व्यक्ति फंसा है। पूरी कहानी में उसकी व्यथा एक गहरी तल्खी के रूप में छाई रहती है। जैसे "कई दिन तक सोचता रहा कि मैं आत्महत्या करूँगा लेकिन आत्महत्या से तो बच्चों की और भी दुर्गति हो जाएगी। तो क्या करूँ? मैं उनको जीने का अवसर नहीं दे सकता। मरकर उनकी रक्षा नहीं कर सकता। तो

फिर राष्ट्र और मानवता के प्रति अपना कर्तव्य कैसे पूरा करूँ ? क्या करूँ ? आखिर क्या करूँ?[४१] 'राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा' कहानी की नर्तकी तारा वास्तविक रूप से राजकुमारी होते हुए भी सामाजिक समस्या का शिकार बन जाती है। वीरगढ की राजमाता का क्लर्क के साथ किया गया सौदा राजनर्तकी का भविष्य ही बदल देता है। राजकुमार नर्तकी तारा जो एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं मात्र नर्तकी के भविष्य का रहस्य खुल जाने पर पूरी परिस्थिति बदल जाती है। महारानी के सौभाग्य पर तारा के अधिकार को नकारा जाता है और केवल एक नर्तकी को ही। इसी सत्य का स्वीकार कर उसे अंत में सारी परिस्थितियों के सामने झुककर स्वीकृति देनी पडती है। 'नफरत, केवल नफरत' कहानी के गुलाब के जीवन का भी यही वास्तव पटल है जो पूरी कहानी में गुलाब के जीवन की एक सत्यता को खोलकर रख देता है। एक अच्छे घर की नारी को मजबूरन एक बार स्वीकार की गई परिस्थिति में रहना पडता है। वह इससे बाहर आना भी चाहती है, तो वह अब उसे संभव नहीं हो पाता। अपना शरीर और आत्मा बेचने की होड में मानो उसे भागते रहना है। इसी भागदौड़ में उसकी जीत होती है मात्र परिस्थिति बनकर उसे अपने जीवन सत्य का अहसास करा देती है। जो उसे मंजूर नहीं है। इस प्रकार व्यक्ति का परिस्थिति के साथ किया गया संघर्ष या समझौता ही उसकी सही पहचान है। इसी पहचान के मध्य हर एक का अपने आपको प्रस्तुत करने का प्रयास जारी रहता है।

परिस्थिति-परिस्थिति के मध्य संघर्ष का चित्रण– व्यक्ति और समाज के वैचारिक एवं भावात्मक संसार में यथार्थ और आदर्शों पर टिके जीवन मूल्य परिवर्तन का कार्य करते हैं। इस परिवर्तन का स्वीकार व्यक्ति और समाज दोनों को परिस्थितियों के मध्य रहकर करना पड़ता है। अलग-अलग परिस्थितियों में व्यक्ति और समाज को इनके साथ जुड़ी यथार्थ और आदर्शों की भिस्ति को स्वीकार करना पड़ता है। सामाजिक बदलाव की पृष्ठभूमि में अनेक प्रकार की स्थितियों का प्रबल दबाव होता है। जो दो भिन्न परिस्थितियों के मध्य संघर्ष की भूमिका के रूप में खड़ा हो जाता है। विष्णु जी ने अपनी कहानियों में बदलाव की इस स्थिति का अत्यंत विस्तृत चित्रण किया है। 'मणि, कलंक और राजनीति' कहानी में एक पौराणिक कथावस्तु के माध्यम से वर्तमान राजनीति के चित्र को दो अलग-अलग परिस्थितियों के रूप में चित्रित किया गया है, जो दोनों परिस्थितियों में कुछ निश्चित आदर्शो पर खड़ी है। एक मणि के लिए यादव और वृष्णि वीरों में संघर्ष है। इसमें कृष्ण और शतधन्वा में मणि की प्राप्ति में संघर्ष है, कृष्ण उसे पराजित कर मणि के साथ उसकी वाग्धदा सत्यभामा से विवाह कर लेते हैं तो शतधन्वा बदले के रूप में सत्रजित की हत्या कर देता है फिर भी उनको सत्रजित के पास मणि नहीं मिल पाती। बलराम, सत्यभामा सभी मणि को पाने के लिए लालायित है जो कृष्ण के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। यादवों में फिर एक

बार अविश्वास के कारण संघर्ष छिड़ जाता हैं कृष्ण ने यादव कुल की रक्षा के लिए अक्रूर के त्याग का स्मरण कर वह मणि अक्रूर को देते हैं। कृष्ण द्वारा अन्याय का खंडन करने के लिए किया संघर्ष और दूसरी बार न्याय की प्रस्थापना करने के लिए सच्चे आदर्शों की प्रस्तुति का समर्थन दोनों आदर्श स्थितियाँ थीं मात्र दोनों में वर्तमान मानवी स्वभाव विशेषताएं अलग-अलग परिस्थितियों में संघर्ष का कारण बनती हैं, जो संघर्ष मानव जीवन विकास की प्रक्रिया में एक नई दिशा देने का कार्य करता है। विष्णु जी की यह कहानी एक नए भावबोध को चित्रित करती है।

'राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा' कहानी में राजनर्तकी का वीरगढ़ के महाराज के प्रति बढ़ता आकर्षण और दूसरी ओर उसके असली जीवन का रहस्य मालूम हो जाने के बाद मन में उठी क्रंदन की भावना, दो अलग-अलग परिस्थितियाँ बनकर उसके सामने खड़ी है, दोनों में उसे संघर्ष ही करना पड़ता है। राजपुत्री को एक क्लर्क से बेचकर उसके बदले अपने राजपद के लिए एक वारिस की भीख के रूप में क्लर्क के बेटे को राजकुमार का पद प्राप्त करवा देना और अब जो सच्ची मां होकर भी उसे मां कहने के अधिकार से राजनर्तकी का वंचित रहना, राजनर्तकी तारा के सामने यह परिस्थिति संघर्ष बनकर खड़ी हो जाती है, जिस बेटी को क्लर्क ले गया था वह अब राजनर्तकी है जो राजकुमार चाहता है। इसी संबंध-सत्यों को राजमाता स्वीकार नहीं कर सकती और उसी में उसका अंत हो जाता है। राजमाता की मृत्यु के लिए राजनर्तकी तारा को ही दोषी ठहराया जाता है। दोनों में से किसी एक सत्य का स्वीकार तारा को करना है। समाज के झूठे आदर्शों की प्रस्थापना में तारा के सच्चे प्रेम की बलि दी तो जाती है साथ-साथ उसके सच्चे जीवन की अस्मिता को भी न्यायालय द्वारा नकारा जाता है, जो वास्तव बनकर कहानी में चित्रित हुआ है।

'युगांतर' कहानी भी एक युगीन समस्या का ही चित्रण है, जो काल के साथ व्यक्ति जीवन में एक व्यापक झूठी संभावना बनकर रह गई है। कहानी में दहेज के कारण बेटी के विवाह को रोकने की समस्या को दो अलग-अलग परिस्थितियों में चित्रित किया है। पच्चीस साल पहले रामधन की पत्नी को भी इसी समस्या के साथ जूझना पड़ा था। तब गॉव के जमींदार साहब ने उनकी सहायता कर एक तरफ से इस समस्या की ओर देखने का एक नया दृष्टिकोण दे दिया था। गाँव के दूसरे अच्छे वर के रूप में रामधन के साथ उस लड़की की शादी की गई थी। यही समस्या उनकी बेटी की भी बन जाती है। अब दहेज के कारण अपना सौदा होने देना उसे पसंद नहीं और इसी में उसकी माँ उसकी सहायता कर देती है। परिस्थितियां एक नई दृष्टि बनकर चित्रित होती हैं। एक में समाज के द्वारा सचेत होकर और दूसरी में स्वयं समस्या से जुड़ी व्यक्ति चेतना की प्रबलता, दोनों स्थितियां काल की परिचायक हैं। दोनों की स्वीकृति में संघर्ष है जो व्यक्ति के विकास में एक नई चेतना के रूप में खड़ा है।

विष्णु जी की रचनाओं में परिस्थितियों से उत्पन्न संघर्ष से पीड़ित कई पात्र है। परिस्थितियों से उत्पन्न निर्णय लेना कभी-कभी कठिनता उत्पन्न करा देता है मात्र जीवन की वास्तविकता को भी समझने के लिए व्यक्ति समक्ष सिद्ध होता है। विष्णु जी की रचनाओं में संघर्ष के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति हुई है जो व्यक्ति के जीवन का सही परिचायक बनकर रह गई है।

संघर्ष के परिणामों की व्यापकता : चयन की समस्या– स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने मानवजीवन में व्यक्ति के नए नैतिक बोध को अभिव्यक्ति दी है ओर अनिश्चय, अनास्था, निराशा द्वंद्व की स्थिति में आशा, विश्वास, प्रेरणा, गति, दिशा-निर्देश दिखाकर मानव अस्तित्व के विकास क्रम को नियमित रखने का प्रयास भी किया है। आधुनिक यथार्थ से पाए जाने वाले नैतिक बोध को सामाजिक दृष्टि से अभिव्यक्ति तो मिली, मानवीय करुणा को भी स्पंदित किया गया है। एक दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि मानवीय नैतिक बोध को जीवन के यथार्थ की क्रूरता में पकड़ना पड़ा है। तात्पर्य, मानवीय नैतिक बोध समाज, परिवार, व्यवस्था द्वारा व्यक्ति के आर्थिक-नैतिक शोषण के विरुद्ध खडा हुआ है तो दूसरी ओर मानवतावाद को व्यक्ति की दृष्टि से देखा गया। व्यक्ति को दोनों में से किसी एक को ही चुनना है जो संघर्ष के परिणाम के रूप में मिली देन है। मानवेत्तर में अनास्था तर्क, संदेह और निषेध के रूप में प्रकट हुई। अनास्था में नई आस्था का जन्म अनिवार्य था। अतः 'मानव जीवन की सुंदरतम् संभावनाओं की खोज, मानव की जिज्ञासा का क्षेत्र बन गया है जो संघर्ष की सीमाओं को निर्धारित करता गया।

कहानी में एक ओर सामाजिक जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों में प्रेम, करुणा, सहानुभूति, त्याग, बलिदान का समर्थन किया गया और यथासंभव यथार्थ के साथ आदर्श का समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न भी किया गया। समय के इसी गतिरोध को विष्णु जी की रचनाओं में समाज और व्यक्ति के संघर्ष एवं जिजीविषा के रूप में चित्रित किया गया है। उनका कहानी साहित्य भारतीय समाज के जीवन के बदलते रूप की अंतरंग पहचान कराता है। इसे वह मनुष्य के मन के आंतरिक संकट को सामाजिक संदर्भों की सापेक्षता एवं निरपेक्षता में देखते हैं। व्यक्ति को इन दोनों में से किसी एक का स्वीकार करना संभव नहीं होता, तो दोनों में किसी एक को ही चुनना पडता है। यह चयन का निर्णय ही बड़ी समस्या है, जो वह चाहता है उसे कभी न चाहते हुए भी समाज में अपने आपको बचाने के लिए उसे स्वीकारना पड़ता है। यह मजबूरी ही कुंठा, तनाव, बेचैनी, कभी-कभी आत्महत्या के लिए उसे मजबूर कर देती है। विष्णु जी की रचनाओं म इसी समस्या की कई रूपों में अभिव्यक्ति मिलती है।

आत्महत्या का विचार– पाप-पुण्य की भ्रांत कल्पनाएं भी आज व्यक्ति के नैतिक जीवनावरण में बहुत बड़ा परिवर्तन कर देती है। इसकी आड़ लेकर आज का मनुष्य पशु बनता नजर आता है। 'निशिकांत' कहानी के निशिकांत के मन में शादीशुदा होते हुए भी यशोदा जैसी एक पराई नारी के बारें में प्रेम की भावना

निर्माण हो जाने के बाद वह भ्रम में फँस जाता है। प्रेम की भावना पाप या भावना का सच्चा प्रकट रूप, अब मेरी दृष्टि से सही क्या है ? भावना यदि सही है तो एक विवाहित पुरुषों की यह सही भावना समाज की दृष्टि से पाप का ही प्रतिफल होगा। नीति-नियमों के उलझन में फंसे रहने के कारण निशिकांत सही निर्णय नहीं ले पाता और आत्महत्या का विचार उसके मन में आ जाता है। लेकिन आत्महत्या करना भी एक पाप है तो मैं क्या करूं ? इसी उलझन से वह बार-बार व्यथित हो जाता है और एक घोर पलायनवादी वृत्ति का शिकार बनकर रह जाता है।

'आत्मग्लानि' के शंकर में भी यही पलायनवादी वृत्ति अलग रूप में चित्रित है। वह बार-बार बंदी का सपना देखता है इसलिए कि अपनी स्त्री, बच्चों को पालने के लिए वह अपने समान मनुष्यों की स्त्रियों और बच्चों को भूख से तड़प-तड़पकर मरने के लिए उसने विवश कर दिया है : यह सब कुछ करके अपने हाथ झाड़ देता है क्योंकि वह मानता है जो सब होता है, पूर्व जन्मों के पापों का परिणाम है। इस पाप को मिटाने के लिए आत्महत्या ही सबसे अच्छा मार्ग है। यह मानकर वह चलता है, पर यह सामर्थ्य भी उसके पास नहीं है। अंत में विवशता उसे घेर लेती है, जो उसका संघर्ष बनकर रह जाती है।

'अंधेरी सुरंग' में शिल्पा का एक ओर अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए चला संघर्ष और दूसरी ओर पति और परिवार के मध्य चल रहे झूठे आदर्शों की प्रस्थापना के लिए अनिच्छा से दी गई स्वीकृति, इन दोनों की असहाय बेचैनी से उत्पन्न कुंठा उसकी आत्महत्या का कारण बन जाती है। पति, मित्र, परिवार के मध्य फंसी कुशल अभिनेत्री की झूठी प्रतिष्ठा की ओर केवल एक अर्थप्राप्ति का साधन के रूप में देखने की पति की दृष्टि का अनचाहे व्यवहार का प्रस्तुतिकरण, उसकी एक व्यक्ति, एक नारी के स्त्रीसुलभ भावनाओं का कुचलते जाना, जिसे कभी उसने नहीं चाहा था। उनमें से अब उसे किसी एक को ही स्वीकारना है, इसका निर्णय करना उसकी दृष्टि से असंभव था, उसकी यह कुंठा बेचैनी बनकर आत्महत्या में बदल जाती है।

समाज में परिवर्तित मूल्यों के युग में स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोण में भी पर्याप्त परिवर्तन आया है। पुरातन भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष का संबंध केवल पति-पत्नी के रूप में ही मान्य था, अन्यथा नहीं। आर्थिक रूप में भी स्त्री-पुरुषों पर निर्भर थी। पुरुषों के दास्यत्व में स्त्री की स्वतंत्रता दबी रहती थी। आज मूल्य-संक्रमण काल में नारी अपनी स्थिति को पहचान चुकी है। वह घर से बाहर निकलकर स्वतंत्रता हासिल कर रही है। प्रेम विवाह के निजी विचारों को उसने अपनाया है, जिनसे उनके जीवन में संघर्ष के कई कारण उभरकर आए हैं जो इन्सानी रिश्तों से भी परे हैं। इनमें जब दोनों सही निर्णय नहीं कर पाते और परिणामों के भागी बनकर रह जाते हैं।

कुंठा-बेचैनी का शिकार– 'कैक्ट्स के फूल' कहानी में चित्रित प्रेमा और गिरीश दोनों शिक्षित होते हुए भी दोनों की मनोवृत्तियों में भेद है, जो उन दोनों में सामंजस्य स्थापित होने नहीं देता। गिरीश के मन में झूठी प्रतिष्ठा कोलाहल बनकर रह गई है कि प्रेमा का स्थान उसकी दृष्टि से गौण ही रह जाए, इसीलिए उसे उसका किसी भी सामाजिक कार्यों में आना जाना पसंद नहीं है। प्रेमा पति के प्रेम के अलावा व्यक्ति स्वतंत्रता भी चाहती है जिसे गिरीश द्वारा नकारा जाता है। संघर्ष का यह कारण, जो दोनों में एक कुंठा बनकर रह जाता है। 'शरीर से परे' कहानी की समस्या को कुछ अलग दृष्टिकोण से चित्रित किया गया है। मानव-मूल्यों का विघटन, अपने अस्तित्व की संदिग्धता आरोपित आदर्शवाद तथा अपने अचेतन की चेतना आदि ने रश्मि और उसके पति को अधिक क्रांतिकारी बना दिया है, जिससे दोनों में आक्रोश भर उठता है। रश्मि के पति की संदेही प्रवृत्ति, उसके घरेलूपन की मांग करना, उसका प्रदीप जैसे साहित्यकार से प्यार और उसके साहित्य में रुचि लेना-जो प्यार दोनों के शरीर के परे का है लेकिन पति द्वारा उसकी अस्वीकृति ही संघर्ष का मूल कारण है। इसी आक्रोश के कारण वह उतना ही विवेकी और तर्कशील होता जाता है। विष्णु प्रभाकर जी की रश्मि आदि कुछ पात्र ऐसे हैं जो है सो है को स्वीकार तो कर लेते हैं लेकिन अपने मन के घात प्रतिघात को स्वयं भी नहीं समझ पाते। यही पात्र जब अधिक पैनी दृष्टि से अपने चारों ओर की परिस्थिति तथा उसमें अपने अस्तित्व की ओर दृष्टिपात करते हैं तो अधिक सूक्ष्म हो जाते हैं।

'रजनी' की व्यथा कुछ इसी प्रकार की ही है। सामान्य आर्थिक स्थिति होते हुए स्वाभिमान को अपना सबकुछ मानने वाली रजनी जो प्रभात के प्यार से वंचित तो है लेकिन दूसरे ही क्षण रजनी का असली रूप स्वयं उसके अपने आचरण और व्यवहार पर भी तरस खाने लगता है। रजनी इस व्यथा को झेलती है। विवाह के बाद की वास्तविकता को चुपचाप सह लेती है। जब वे अपनी कायरता प्रकट करते हैं तो उसकी व्यथा इन शब्दों में उमड़ आती है, "मेरी पराधीनता आपको बुरी लगती है लेकिन मुझे बुरी नहीं लगती क्योंकि जानबूझकर मैंने इसे स्वीकार किया है। चाहूँगी तो क्षण-भर में तोड़ दूंगी। लेकिन तुम इसे नहीं तोड़ सकते। 'आकाश की छाया में' की सरला भ्रष्टाचार की तिकड़म में फंसकर अपने शरीर का सौदा करने की पति से मांग करती है। यह उसकी मजबूरी है, जो उसका आज वास्तव बना है और उसे वह नकार नहीं सकती। बीमार पति का इलाज और छोटे बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी को तो टाला नहीं जाता और इनकी पूर्ति के लिए नौकरी करना भी जरूरी है। इसमें सिफारिश की मजबूरी के सिवा दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। इन दो वास्तव भूमिका में रजनी जीती है। उसका जीना एक निराशाग्रस्त वास्तवता की पहचान करता है। 'कैसी हो मरिअम्मा' की मरिअम्मा सच्चे प्यार की भूखी है। गंवार औरत समझकर एक बार पति द्वारा

त्यागने के बाद वह प्यार और बच्चे के प्रति जिम्मेदारियों को निभाते हुए जीती है। सत्येन की सहायता से वह विवाह में बंधकर जीना नहीं चाहती। उसकी बेचैनी ही संघर्ष को व्यक्त करती है। पति राजगोपाल ने उसके साथ पति की भूमिका नहीं निभाई थी, बस दया दिखाई थी जो सचमुच उसके बेचैनी का कारण था। जो उसे स्वीकार नहीं था। उसका यह कथन दया भाव से भरे झूठे रिश्तों की व्यर्थता स्पष्ट करता है, "दया की उष्मा क्षणिक होती है। फिर वही परंपरागत पति-पत्नी के कर्तव्य-शय्या गर्म करना और मां बनना....." सत्येन का प्रेम इन बातों से परे था जो वह चाहकर भी स्वीकार नहीं कर पाती।

अवसाद की स्थिति – 'बच्चा माँ का था' कहानी की चंदो भंगिन की कथा उसके जीवन का एक करुण चित्र है। एक नवाब रईस के हाविस का शिकार बन जाने के बाद वह एक बच्चे की मां बन जाती है। माँ का स्नेह उसमें कूटकूट कर भरा है। पति द्वारा, बस्ती के लोगों द्वारा बार-बार त्रस्त होने पर भी वह बच्चे को अपने से अलग नहीं करना चाहती। बच्चे की बीमारी में वह सेठ के पास पैसों की मांग करने के लिए जाती है तो उसके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता। उसे भी वह सह लेती है। उसकी कुंठा इन शब्दों में उमड़ पड़ती है, "इसका बच्चा! इस कमीने का बच्चा ? नहीं, बच्चा इसका नहीं हो सकता। इसे तो मैंने रक्त दिया है। मैंने जीवन, स्पंदन और चेतना दी है। मैंने प्राण दिए हैं। मैं इसकी माँ हूँ, बच्चा मेरा है, बच्चा माँ का है।" 'एक और कुंती' कहानी की नायिका केतकी की जीवन कहानी भी कुछ इस प्रकार की है। एक बार दंगों में सब कुछ खो जाने के बाद उसका जीवन, मातृत्व अधिकार भी उसे बार-बार अन्य पुरुषों पर निर्भर होकर स्वीकार करना पड़ता है। एक विवशताजन्य उदासीनता उसके पूरे जीवन में व्याप्त है जैसे– "मनुष्य केवल अपनी आंतरिक शक्ति के सहारे नहीं जीता बल्कि उसे उस शक्ति की भी आवश्यकता होती है जो उसे दूसरों की हमदर्दी में से मिलती है। उसमें छाया यह गहरा अवसाद ही उसके संघर्ष का कारण है जो अंत में निर्णय लेने में उसे असमर्थ साबित करा देता है। यह असमर्थता ही उसमें निराशा बनकर छाई रहती है। बच्चों को नारी निकेतन की संचालिका के पास छोड़कर वह चली जाती है–निराशा की यंत्रणा से भरी व्यथा में वह कहती है, "कैसा है यह अनोखा रिश्ता सपनों में जुड़ा और आँख खुली तो हाथ लगा एक विराट शून्य। फिर भी भरोसा मुझे है और वह मेरे अंदर से आया है बिना किसी के दखल के। जिस घोर यंत्रणा और संत्रास के दौर में मैं गुजरी हूँ, उसने मुझे यही संपदा तो बख्शी है। यह मेरे अंतर की गहराईयों में समा गई है। इसे भौतिक नेत्रों से नहीं देखा जा सकता।"

तनाव की स्थितियाँ– 'राजम्मा' कहानी में राजम्मा का खुले मन से पति के मित्रों के साथ बातें करना, उनके साथ खुलकर हँसना भी पति को पसंद नहीं आता। जिसके कारण राजम्मा पर, उसके सहज उन्मुक्त विचारों पर अंकुश लगने लगता

है, जो स्वाभाविक रूप से पति के मित्र के आकर्षण का कारण बनता है, जो दोनों की संघर्ष की स्थिति में निर्णय का बाधक बनकर उपस्थित होता है। 'बेमाता' में भी उजली और बिंदरावत दोनों पति-पत्नी की स्वाभाविक रूप से विचार प्रकृति भिन्न है। संघर्ष का कारण भी वैसे सामान्य है मात्र उजली इस कारण को मामूली तो नहीं मानती बल्कि शिक्षित परिवार में इज्जत की दुर्दशा की दृष्टि से उसकी ओर देखती है मात्र पति से इसी संदर्भ में बातें बढ़ाकर संघर्ष को बढ़ावा नहीं देती। यही कारण परिवार के सभी सदस्यों में भी तनाव उत्पन्न करता है जिससे एक-एक कर परिवार के सभी सदस्य अपनी अलग गृहस्थी बसाते हैं। बिंदरावन का नशे में चूर होकर गालियाँ देना और उसी कारण सबका अलग हो जाना, बार-बार समझाकर भी पति का अपनी हरकतो मे कोई परिवर्तन न करना यही उजली के जीवन में उत्पन्न संघर्ष की स्थितियॉ हैं। जो दांपत्य संघर्ष का एक अलग कारण है।

इस प्रकार मानव स्वभाव की विरूपता ही उसके सभी संघर्षों का मूल है। मूल रूप में समस्या ही विभिन्न प्रश्न उठाती है। उनकी ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो वह प्रश्न अधिक सूक्ष्म हो जाते हैं।

संघर्ष के परिणामों की व्यापकता नारी और पुरुषों के जीवन में भिन्न धरातल पर देखी जाती है। समकालीन स्थितियों में नारी का प्रतिमान बदल चुका है। आज की नारी एक ओर अस्तित्व चेतना से अभिप्रेरित है तो दूसरी ओर परंपरागत मूल्यों से गहरी संपृक्त है। नारी का संघर्ष इन दोनों के बीच एक स्थित सत्य बनकर खडा है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ने पुरुषों को नारी की तुलना में एक अलग धरातल पर खडा कर दिया है। नारी की तुलना में उसको अधिक महत्व दिया है। पुरुष अपनी कमजोरियों को छिपाकर स्त्री को ही दोषी ठहराता है और इसे मान्यता मिल जाती है कारण पुरुष प्रधान समाज है। ऐसी स्थिति में पुरुषो की अपेक्षा नारी को अधिक संघर्षरत रहना पड़ता है। फिर भी दोनों के मध्य एक सत्य है कि वर्तमान कहानी में आयोजित दोनों झूठे संतोष में नही जीते हैं बल्कि उनकी जिंदगी अतृप्त इच्छाओं, मानसिक, कुंठाओं, आर्थिक अभावों, शोषण, हताशा, निराशा आदि से भरी हुई है इनमें कहीं अनावश्यक आदर्श या बनावटी नैतिकता का परिचय नहीं मिलता।

पुरुष पात्रों का संघर्ष– सामाजिक व्यवस्था ने पुरुष को एक भले ही चौखट में खडा कर दिया हो मात्र वह अपनी यथार्थ की चौखट को ही अपनाता नजर आता है। विष्णु जी के 'सलीब' कहानी का प्रमोद सक्सेना नाम का पात्र इस दृष्टि से चित्रित है। रेल्वे का एक कर्मचारी है जो सिद्धांतवादिता और ईमानदारी का आदर्श के रूप में पालन करता है। भ्रष्टाचार-विरोधक दल की स्थापना करवाता है। अधिकारियों द्वारा उसका ढिंढोरा भी पिटवाया जाता है परंतु व्यावहारिक स्तर पर जब इससे जिया नहीं जा सकता तो जान लेता है कि आदर्शों में लिपटकर वह

परिवेश के यथार्थ चौखट में फिट नहीं हो पाता। बिना मांगे ली गई छोटी सी रिश्वत की स्वीकृति ही उसके आदर्शों को चकनाचूर कर देती है। ईमानदारी का रास्ता ही उसे झूठी वास्तविकता की पहचान करा देता है। पत्नी से कहा गया कथन इसी वास्तविकता को स्पष्ट करता है, "कानून का आधार यथार्थ है, सत्य नहीं। इसीलिए कानून को दया नहीं आती। "सच बोलने का जब कोई परिणाम नहीं, तब लोग क्यों सच बोलेंगे ? "सच बोलने से अपराध से मुक्ति तो नहीं मिल जाती। वह मिलती है दंड से।"[४७] आज के भ्रष्ट राजनीतिक जीवन की विसंगतियों का भयावह और हास्यास्पद, घृणित और कुंठित रूप उपस्थित किया गया है।

व्यवस्था के प्रति विद्रोह– 'हमें गिरानेवाले' कहानी के बिहारी का आक्रोश पूरी कहानी में व्यवस्था के प्रति एक विद्रोह के रूप में खड़ा होता है। वे पहले से गिरे हुए हैं उनको और नीचे गिराकर नेता लोग ऐश्वर्य के साथ जीना चाहते हैं। बिहारी का गरीबी का सपना उसकी दबी हुई आक्रोश की चिनगारी को बार-बार सचेत करता है। जो उनका वास्तव है जिसे व्यवस्था ने पूरी तरह दबोचा है, जैसे, "एक थकी हुई नारी, जो तांबे के एक पैसे पर बाज की तरह झपटती है रुपया सामने देख कैसे कहेंगी, मैं इसे नहीं लेती ? यह गरीबी और मुफलिसी की जीती-जागती सूरत है और-और[४८] 'भारत माता की जय' कहानी में यही आक्रोश व्यंग्य रूप में प्रकट हुआ है। अतिवृष्टि के कारण पूरे गांव, गृहस्थी बरबाद होती जा रही है। ऐसी ही एक आपदा में फंसी बुलूकी और उसके पति की गृहस्थी उजड जाने का दुःख कहानी में चित्रित हुआ है। सरकार केवल झूठी यंत्रणा देकर उनको आश्वस्त कर रही है। लेकिन क्या इसी झूठी आश्वास्तता से जिया जाता है ? बुलूकी के पति का आक्रोश सरकारी झूठी भ्रष्ट राजनीति का पर्दाफाश करता है, "पानी की जहाँ कमी हो, वहाँ आग ही हो सकती है। लेकिन इस आग और पानी के बावजूद भी वैभवशाली राजधानी उसी तरह जश्न मनाती रही, नाचती-गाती रही। कनाट प्लेस और चाँदनी चौक स्वप्न लोक की परियों से आलोकित होते रहें।

पारिवारिक-सामाजिक संबंधों में अकेलेपन की घुटन– 'खिलौने' और फांसिल इन्सान और कहानियों की समस्या पारिवारिक संबंधों में आए अलगपन को ही चित्रित करती है 'खिलौने' कहानी के प्रोफेसर के इकलौते बेटे का विदेश में जाकर किसी विदेशी लड़की से शादी करके घर बसाने का कारण उनका पूरी तरह टूटना, अकेलेपन की घुटन में जीने के लिए मजबूर कर देता है। उनकी खीज इन शब्दों में प्रकट होती है, "कोई भी मेरी बात नहीं सुनता। समझते हैं जैसे मैं हूँ ही नहीं और सच भी है, मैं हूँ ही कहाँ ?[५०] 'फांसिल, इन्सान और' कहानी के विनोदशंकर बेटी की पढ़ाई, की चिंता में तो डूबे हैं, लेकिन बेटों की किसी को परवाह है ही नहीं, इतना तक की बेटों द्वारा उनको मिले मेडल की प्रदर्शनी का आयोजन भी उन्हें पसंद नहीं है। उनकी दृष्टि से विनोदशंकर केवल पुराणगाथा बन गई है जब चाहे कह दे। बेटे की दृष्टि से अब पापा केवल म्यूजियम की वस्तु हैं। विनोदशंकर

से यह सहा नहीं जाता। वे अंदर से पूरी तरह टूट तो चुके हैं मात्र उनकी अंदर की चेतना एक घुटन बनकर व्यक्त होती है, "मोती सीप के गर्भ से जन्म लेते हैं परंतु–हम इन्सान हैं, केवल हाड़-मांस के पुतले नहीं।[५१] यहाँ स्थितियाँ अपने अनुकूल हो इसकी अपेक्षा नहीं है। किंतु जरूरत है अनुकूल करने की शक्ति का सचय करना। इस शक्ति के अभाव के कारण जीवन में अकेलापन बड़ा कष्टप्रद लगने लगता है।

मध्यवर्ग की बेबसी-कमजोर और परजीवी जीवन– 'गृहस्थी' की वीणा के पति हेमेंद्र की यह समस्या पूरे परिवार की त्रासदी का कारण बन जाती है। यह कहानी एक निकम्मे, नालायक व्यक्ति के मनोभावों का यथार्थ अंकन करती है। घर के प्रति हमारी भी कुछ जिम्मेदारी बन जाती है, इस बात का ख्याल तक न कर ऊपर से घर मे क्या है या नहीं यह देखे बिना मित्रों को खाना खाने के लिए बुलाना, मित्रों के साथ गप्पे झाड़कर निकम्मा बैठे रहना-पति की यह हरकतें वीणा से सही नहीं जाती। जो दोनों के बीच संघर्ष का कारण बन जाती हैं। परिवार के समस्त सदस्यों के उपेक्षा और अपमान जनक व्यवहार के बावजूद उसे कुछ नहीं मिलता। इस प्रकार मध्यवर्ग की बेबसी के फलस्वरूप कमजोर और परजीवी बन जाने वाले युवक का प्रतिनिधि चित्रण कहानी में हुआ है।

आर्थिक विपन्नता से आई विवशता– 'बंटवारा', 'तांगेवाला', 'मूड', कहानी में आज के जीवन में आर्थिक कठिनाई सहते हुए व्यक्ति की संवेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है। 'बंटवारा' का रामदास बेटे को डाक्टरी पढने के लिए पैसों के अभाव के कारण भिजवाना नहीं चाहता। बेटे की चिंता के कारण वह जीने का अपना एकमात्र सहारा मकान गिरवी रखने के लिए विवश हो जाता है। 'मूड' कहानी के रोशन को अपने आपको एक साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत करने के लिए मूड की आवश्यकता है यह स्थिति आर्थिक विवंचना से त्रस्त मूड का निर्माण करती है जिससे वह जो मन में उठे अंतर्नाद की आवाज को भी सुन नहीं पाता। रोशन को अंत में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए विवश रहना पड़ता है। यही विवशता उद्रेक के रूप में वह बच्चों पर, पत्नी पर क्रोध के रूप में प्रकट करता है, "क्या मैं अपनी जिम्मेदारी से भागूँगा ? अधिक से अधिक यह हो सकता है कि उनमें से एक-आध मर जाएगा। मर जाए, दुनिया में क्या मुसीबत आ जाएगी। इसके विपरीत–[५२]

आर्थिक विपन्नता का एक दूसरा कोण भी है जहाँ टूटते मूल्यों की संवेदना का घनत्व है 'तांगेवाला' कहानी का अहमद दिनभर तांगा चलाकर गुजारा करता है लेकिन उसका संघर्ष दिन से ही आरंभ होता है। कोई भी हिंदु की सवारी उसे नहीं मिलती। दिन भर खपाकर वह तीन रुपये पाने के बाद बीमार बच्चे के लिए दवाईयाँ खरीदकर चलने लगता है तो पुलिस उसे हिरासत में लेती है। घर पर पहुँचने के लिए देर हो जाती है और उसे अपने मृत बच्चे को देखना पडता

है। हिंदू या मुसलमान होना व्यक्ति की सही पहचान नहीं होती मात्र जातीय, संकीर्णता उसके कौन होने का निर्माण करती है। 'तांगेवाला' कहानी के अहमद का संघर्ष दोनो स्थितियों से गुजरता है। एक में विश्वास, भावनाओं और संबंधों के प्रति लगाव है और दूसरे में विखराव, टूटन है लेकिन यह पात्र भटकाव में ही जीवनगत सार्थकता की तलाश करता नजर आता है।

'सुराज' कहानी का झगड़ू मिश्र समाजगत संदर्भ में आत्मीयता और पराएपन के संघर्ष में वेदना झेलता है। कहानी का 'साहू' पात्र दूसरी स्थिति में जीता है। पैसे के बल पर अपने साधनों पर अधिकार बनाए रखता है जब की झगड़ू मिश्र एक स्वतंत्रता सेनानी होकर भी दुःस्वप्न में जीता है। पत्नी के लिए दवाईयॉ लाने अस्पताल चला जाता है तो देखता है दवाईयाँ हड़प है और दूसरी ओर उसका 'साहू' जैसे लोगों द्वारा उसे यह झूठा अहसास दिया जाता है कि गांधी बाबा का राज आने वाला है तब सब कुछ ठीक हो जाएगा। यह विश्वास ही उसकी पत्नी को खा जाता है। वास्तविक स्थिति और स्वप्न के बीच भी एक व्यवध ाान होता है। झगड़ू जैसे लोग उसी को सत्य मानकर चलते हैं। उसका एक झूठा विश्वास भी कभी आत्मीयता पर टिका था लेकिन यह आत्मीयता स्वार्थ के साथ जब टूट जाती है तो पराई हो जाती है यही स्वराज की अब सही अवधारणा है और उसे हमें स्वीकारना है। झगड़ू को जब इसी सत्य का ज्ञात होता है तब सबकुछ खत्म होता नजर आता है। आज यही संघर्ष ही व्यक्ति में एक निहायत सत्य बनकर रह गया है। इस प्रकार झगड़ू मिश्र आजादी मिलने के बाद उभरती आशाओं का तुषाराघात किस प्रकार होता है उसे अपनी जिंदगी के माध्यम से अनुभव कर लेता है।

दिमागी संतुलन खोने के कारण भीड़ के खिलाफ हुए विशिष्ट चरित्र—

'ऑपरेशन' और 'भोगा हुआ यथार्थ' कहानियों में पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'ऑपरेशन' कहानी में संतकुमार नाम का युवक पागल की मनोवृत्ति से ग्रसित तो है पर पागल नहीं, एक साधारण, स्वस्थ, सुशिक्षित और देश के लिए जेल हो आए आदमी के रूप में प्रस्तुत है। वह बार-बार डॉक्टर से मस्तिष्क का ऑपरेशन करने की विनती करता है इसलिए कि गांधी जी की हत्या करने वाला मैं ही था यह हत्या करने का आदेश मेरे हाथ को मस्तिष्क ने दिया था। क्योंकि उसकी यह धारणा थी कि मनुष्य का मस्तिष्क ही मनुष्यता के निर्माण का स्थान है। प्रेम, सौहार्द, करुणा आदि गुणों का स्थान भी यही है जो मैं ढूँढ़ रहा हूँ, जो कहीं लुप्त हो गया है। इस कहानी में चित्रित संतकुमार के संघर्षरत चित्रण द्वारा विष्णु जी ने एक गहरे सत्य का संकेत किया है। मनुष्य के मस्तिष्क से मानो आज प्रेम, सौहार्द, करुणा की संवेदना कहीं दूर निकल गई है। दिमाग में उसको ढूँढ़ना व्यर्थता है क्योंकि व्यक्ति का कार्य इन संवेदना से हटकर चलता है जो मनुष्य होकर पशु जैसा आचरण करता है। मनुष्य

के अंदर पशुता प्रबल बनने के कारण मनुष्यता का काम नहीं करती। आज के पाशवी वृत्ति से प्रेरित व्यक्ति का जीवन इसी तथ्य का संकेत है। मैं क्या बनना चाहता हूँ इसका ठीक निर्णय वह नहीं कर पाता जो निर्णय के संघर्ष में फॅसकर एक विशिष्ट चरित्र बना रहता है। 'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी का पारसनाथ दिमागी संतुलन खो बैठा पात्र है लेकिन उसको अपने जीवन की एक-एक घटना याद आ जाती है जो उसे सच्चे वास्तविक जीवन की पहचान करा देती है। जो उसकी गलतियों का जीवनभर लेखा-जोखा है। वह जीवनभर गलतियॉ करता रहा और अपने मन को समझाता रहा कि मैंने जो किया है अच्छा किया है। प्रत्येक व्यक्ति जो उसके द्वारा सताया गया था बारी-बारी से मूर्ति के रूप में आकर कहता है, "मैं पारसनाथ हूँ। पारसनाथ के बडे भाई निरंजन को पारसनाथ ने कहा मैं नहीं जानता तुम कैसे आ गए। क्या तुम सचमुच जिंदा हो। मैंने तुम्हें अपने हाथों से जलाया था।[५३] उसके बुरे कर्म उसको विक्षिप्त तो बना देते हैं, यह पीड़ा उसे मृत्यु तक भोगनी पडती है।

पीढ़ी अंतराल के साथ मूल्यों के विघटन से त्रस्त पात्र– 'एक रात एक शव' की कथावस्तु वास्तविक जीवन सत्य के साथ जुडी हुई बदलती मूल्य स्वीकृति का संकेत है। कहानी का पात्र ताऊजी और उनके बेटों के साथ जुडी वास्तविक जीवन की पहचान सही संघर्ष का कारण है। एक भाई दिनेश लंडन में जाकर बस गया है और दूसरा सुरेश भी जाना चाहता है लेकिन ताऊजी उसका विरोध कर देते हैं इसीलिए कि अब वह उनका बुढापे का सहारा है। सुरेश यह नहीं चाहता–उसका संघर्ष ताऊजी से है कि ताऊजी ही उसके पिता है क्योंकि ताऊजी के मां के पति-पत्नी जैसे संबंध थे। पिता इसके लिए विरोध कर रहे थे इसलिए उनको तालाब में डूबकर मर जाने के लिए विवश कर दिया गया, मॉ ने भी इसे चुपचाप स्वीकृति दी। बेटों को मॉ-ताऊजी के संबंध पसंद नहीं आते जो संबंध सामाजिक स्वीकृति से परे थे। 'अंधेरे आंगनवाला मकान' कहानी के वृद्ध दंपति की व्यथा भी इसी समस्या से जुडी है। बेटे एक-एक कर विदेश में जा बसे हैं। पिता को मिलना भी होता है तो मेहमान की तरह। पीढ़ी अंतराल के कारण व्यक्ति ने मानो आज अपनी पहचान भी खो दी है, यही स्थिति आज वृद्ध पिता के संघर्षरत जीवन का कारण है। पिता की व्यथा का संकेत इनमें भरा है, "सूनी-थकी जिंदगी को निरंतर एक प्रतीक्षा में ढोते रहते हैं। औलाद साथ छोड़ देती है तो मकान भी गैर बन जाता है लेकिन गैर बनने से पूर्व यदि हम बूंद के अस्तित्व को मिटाकर समुद्र में खो जाएँ यहाँ हर लहर अलग होकर भी अलग नहीं होती तो कॉक्रोच, नौकर, हरिजन आदि नक्सलवादी...." इस स्थिति द्वारा पीढ़ी अंतराल के साथ मूल्यों के विघटन को भी तटस्थता के साथ अंकित किया गया है।

सामाजिक वास्तविकता और निष्ठुरता में व्यक्ति की टूटन– 'पुल टूटने से पहले' एक निम्नवर्गीय परिवार की कहानी है। कहानी का नायक गरीबी की चक्की में

इस हद तक पिस चुका है कि अपने बच्चों को दो वक्त की रोटी भी नहीं दे सकता इसीलिए रास्ते में गिरे पाव-रोटी और शव-यात्रा में शामिल होते समय शव के ऊपर फेंके गए मखाने को उठाकर घर लाता है। उसे अपने मित्रों को खिलाता है। अपनी मजबूरी की कहानी काफी हाऊस में अपने एक परिचित से आत्मकथन द्वारा व्यक्त करता है, "हे माँ तुम जहाँ भी रहो, आनंद से रहो। तुम्हारी ही कृपा के कारण तो आज केवल एक प्याला काफी पीकर ही सब्र करना नही पडा।"[५५] गरीबी ने उसे पूरी तरह अकिंचन बना दिया है। निम्नवर्ग की यही वास्तविकता है जिससे नायक पूरी तरह टूटा हुआ नजर आता है।

'अंकुर का अहम्' कहानी में भी गरीबी ही नायक की वास्तविकता है। नायक एक गरीब खिलौने वाला है जो पर-स्त्रीगामी प्रकृति का है बात-बात मे गाली-गलौज करना उसके स्वभाव का अंग और रोजमर्रा बन गया था। विरोध किए जाने के फलस्वरूप वह पत्नी को खूब पीटता है तो बदले मे उसका बेटा सुदीप बाप को भी खूब पीटता है। दूसरे दिन पिता घर से गायब हो जाता है तो उसकी पत्नी छोटे बच्चे को लेकर कुएँ में डूब कर मर जाती है। इसलिए बडा बेटा सुदीप उग्र स्वभाव का और असहाय हो जाता है। कहानी के नायक का संघर्ष एक गहरी संवेदना बनकर रह जाता है।

आस्थावादी मूल्यों की रक्षा के लिए संघर्ष– किसी भी समस्या के मूल में मूलतः मानव–स्वभाव की विरूपता ही होती है। यह विरूपता ही उसे दुर्बल बनाती है। व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए नए-नए रास्ते अपनाने के लिए जब मजबूर हो जाता है तब उसे जीवन में संघर्ष को स्वीकारना पड़ता है। किसी आस्थावादी मूल्यों से बने मार्ग से चलना चाहे तो भी उसकी रक्षा उसका एक प्रश्न बन जाता है। वही उसकी पहचान भी बन जाती है और स्वाभाविक रूप से उसके जीवन में फिर से एक बार संघर्ष का रास्ता उसे अपनाना पडता है। 'इतनी-सी बात' कहानी का असलम जावेद मुसलमान है मात्र डाकुओं के हाथों फँसी एक हिंदू डाक्टर विनीता की रक्षा करते समय कुछ क्षण वह अपने मजहब को भूलकर इन्सानी रिश्तों को आस्मा के रूप में स्वीकार कर लेता है मात्र एक मुसलमान ने हिंदू की रक्षा का धर्म निभाना जो कार्य सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध था उसके लिए जावेद को संघर्ष का स्वीकार करना पड़ता है। 'मुरब्बी' कहानी में भी दोस्ती आस्था के रूप में दो निर्मल हृदय बूढों के बीच फलती-फूलती है। 'मुरब्बी और मुनव्वर दो अच्छे दोस्त हैं मुनव्वर ने मुरब्बी के बेटे राधे से तीन सौ रुपये उधार लिए थे जो वह ठीक समय पर चुका नहीं पाता इसलिए राधे उसकी जमीन की नालिश करने जाता है तो मुरब्बी अपनी पत्नी का गुलबंद गिरवी रखकर उसकी मदद करना चाहता है इसलिए कि मुनव्वर ने कभी इन्सानी रिश्तों की याद रखकर उसकी सहायता की थी। मुरब्बी के मन में एक मित्रता की आस्था तो जग जाती है, लेकिन बेटे का विरोध भी उसे सहना पड़ता है। 'मेरा वतन' कहानी का मित्र

पुरी ऐसा पात्र है जो बार-बार अमृतसर चला जाता। विभाजन के बाद अपनी भूमि के प्रति उसका लगाव ही एक दिन उसके संकट का कारण बन जाता है। अमृतसर में उसे हिंदुओं का काफिर समझकर उससे मार-पीट होती है तो हिंदुस्तान में उसे पाकिस्तान का जासूस समझकर मार दिया जाता है फिर भी अंत तक अपनी भूमि के प्रति आस्था इन शब्दों में प्रकट होती है, "वतन, धरती, मुहब्बत सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं। सबसे बड़ा मजहब है, दीन है खुदा का दीन जिस धरती पर खुदा का बंदा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वही मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वह मेरी मुहब्बत है।"[५६]

विष्णु जी के पात्रों में जीवन के प्रति गहरी आस्था दिखाई देती है। उनका आस्थावादी दृष्टिकोण ही उनके जीवन को एक नया अर्थ प्रदान करता है।

नारी पात्रों का संघर्ष— विष्णु जी ने नारी संघर्ष का चित्रण करते समय उसके जीवन यथार्थ को संपूर्ण आयामों में स्वीकृत किया है। नारी में सुलभ मृदुता के साथ-साथ कहीं पर एक स्वाभिमान भी है। उसका विवेक, उसका गौरव पुरुषों से समानता की माँग करता है। नारी जीवन में एक तथ्य निश्चित विचारणीय है कि उसका परिवार और परिवेश उसके रूप की नवीनता को तो स्वीकार करता है परंतु दूसरी ओर उसके आचरण में लीक तोडने का अंश भी दिखाई पड़ जाता है तो संबंधी एवं परिवेश के कान खड़े हो जाते हैं। इस पार्श्वभूमि पर नारी के संघर्ष को देखना जरूरी है।

पारिवारिक संघर्ष— आज भी नारी के लिए पारिवारिक संबंध मूलाधार है। उन्हीं में रहकर नारी को जीवन जीना पडता है। परिवार में नारी को संघर्ष रक्त संबंध और रक्त से इत्तर संबंधों के साथ संघर्ष करना पड़ता है। विवाह पूर्व और विवाह के बाद नारी के संघर्ष के धरातल बदले हैं। सामान्यतः नारी विवाह के पूर्व पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाती है जिसमें कभी स्वच्छंदता, कभी प्रतिबंध और कभी अनिवार्यता के भाव निहित रहते हैं। इसमें संघर्ष का धरातल तब अधिक तीव्र होता है जब उसे न चाहते हुए भी, जिम्मेदारियों का वहन करना पड़ता है। 'कितने जेबकतरे' की सुगंधा को पारिवारिक जिम्मेदारियों का वहन तो करना पडता है मात्र इन जिम्मेदारियों की पूर्ति के लिए नौकरी की जगह भी उसका संघर्ष और गहरा बनता है। बॉस की इच्छा के खातिर अपनी इच्छा न होते हुए भी उसे शरीर संबंधों को स्वीकृति देनी पड़ती है। यही स्वीकृति उसको अनेक प्रतिबंधों में बाँध देती है। बॉस और सुगंधा के बीच संघर्ष का यह कारण है, "तुम इस तरह आसानी से नहीं जा सकती" क्यों ?...क्योंकि, तुम हमारे रहस्य जानती हो। तुम्हें चुनना होगा यह नौकरी या"[५७] स्वतंत्रता के पश्चात् नारी की विवाह पूर्व कुंठा, तनाव, द्वंद्व, भटकाव एवं शोषण के कारण उत्पन्न संघर्ष अधिक तीव्र होता गया है। 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबाला की स्वच्छंद काम-वासना की पूर्ति के कारण उसका भटकाव उसको अंत में मृत्यु को स्वीकार करने के लिए विवश

कर देता है। जाबाला जैसी नारियों की जीवन के प्रति देखने की एक भ्रामक स्थिति ही संघर्ष को उपस्थित कर देती है। इसी परिवर्तित दृष्टि ने उसे व्यवहार के धरातल पर भी स्वच्छंद किया है। एक से प्रतिबद्ध रहकर प्रेम करना और उसी से जुड़कर रहने वाली धारणा आज खंडित हुई है जो आज संघर्ष का एक कारण है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सबसे अधिक परिवर्तन और नए संदर्भ पत्नी रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। नारी को इस रूप में एक और परंपरागत वर्तमान समय में उभरी नई संवेदनाओं, वैयक्तिक चेतना से जूझना पडता है। 'गृहस्थी' की वीणा' 'आकाश की छाया में' की सरला, 'हिमालय की बेटी', की रेवती आदि नारी पात्र अपनी पति की सेवा में ही आत्मसमर्पण मानकर जीवन-यापन करने वाली नारियाँ हैं जो आर्थिक विपन्नता में पिसकर एक लीक में चलना ही पसंद करती हैं। 'बेमाता' की उजली, 'एक और दुराचारिणी' की शरबती पति के अत्याचारों को चुपचाप सहती है। 'कैसी हो मरिअम्मा' की मरिअम्मा पति यातनाओं को सहती तो नजर आती है लेकिन वह आक्रोश और विद्रोह प्रकट नहीं करती। एक प्रेमी के रूप में यातनाओं को सहकर जीती है। विष्णु जी की नारी में संघर्ष से जूझने का अमिट साहस है जो साहस 'आकाश की छाया में' की सरला में है। प्रेमी को एक बार छोडने पर पति रूप में किए पुरुष का निष्ठा से स्वीकार कर उसके लिए त्याग के रूप में संघर्ष भी स्वीकार करती है। मात्र अंत में प्रेमी द्वारा प्रेम की एक बार फिर से याचना करने के बाद भी उसका धैर्य से अस्वीकार करना आदि नारी संघर्ष के कई रूप नजर आते हैं।

परिदारेत्तर संबंधों के कारण संघर्ष— आज नारी के रूपों में उभरे तनाव, द्वंद्व, कुंठा, आक्रोश, विद्रोह, विघटन, स्वच्छदंता आदि का कारण पारिवारिक एवं सामाजिक न होकर वैयक्तिक है। यह वैयक्तिक कारण ही अधिक बाधक बने हैं। परिवारेत्तर संबंधों में इन्हीं वैयक्तिक कारणों से नारी को वेश्या बनने के लिए मजबूर बनना पड़ा। विष्णु जी की 'नफरत केवल नफरत' कहानी की गुलाब का संघर्ष सामाजिक और आर्थिक दोनों धरातलों पर है। दिनभर की तीन रुपये की कमाई पर भी उसका अधिकार नहीं है। मजबूरन उसी स्थिति को वह स्वीकारती जाती है। दूसरी ओर यह गुलाब इस स्थिति से छुटकारा पाना चाहती है लेकिन समाज की दृष्टि से अब उसके विद्रोह का मूल्य कुछ नहीं है। वही स्थिति अब उसका वास्तव बन गया है। परिवार और परिवेत्तर संबंधों के धरातल पर नारी का विभिन्न रूपों में संघर्ष चलता है। इस प्रकार किसी सिद्धांत या आदर्श का अधिक आग्रह न होने के कारण ही नारी अपने वास्तविक रूप में चित्रित हो पाई है। इसमें नारी के व्यक्तित्व का आंतरिक पक्ष ही अधिक संघर्षरत दिखाई देता है।

आर्थिक स्वावलंबन के कारण संघर्ष— स्वतंत्रता के बाद नारी विभिन्न क्षेत्रों में बाहर आई है। स्त्रियों ने दफ्तरो, रेडियो, टी० वी०, वाणिज्य, उद्योगों में बड़ी संख्या

में प्रवेश पाया है। इससे स्त्री के कई रूप उभरे हैं जहाँ वह न प्रेमिका है, न पत्नी है तो मित्र के रूप में भी आई है। इसके साथ आफिस, कॉलेज, फैक्टरी, व्यवसाय आदि विभिन्न क्षेत्रों में सबंधों का नया रूप उभरा है। उसमें नारी को विभिन्न मनःस्थितियों के मध्य गुजरना पड़ा है। यौन भूख यहाँ भी कई रूपों में क्रियाशील दिखाई देती है। इसका बड़ा क्रूर रूप 'धरती अब भी घूम रही है' में दिखाई देता है। 'ठेका' में पति अपनी पत्नी को 'सोशल बना रहा है' बडे अफसरों से ठेका मंजूर करवाने के लिए। वेश्यावृत्ति-यौन के व्यावसायिकीकरण के पीछे भी अर्थतत्व का दबाव है। 'एक मौत समंदर के किनारे' की जाबाला अपने यौवन को वेश्यावृत्ति में बदलकर अलग-अलग पुरुषों से संबंध रखने में किसी प्रकार की हिचक नहीं मानती। उसके कथन में उसकी स्वार्थदृष्टि नजर आती है। "जीवन को सार्थक करना चाहती हूँ मैं। सीमित आकाश में स्वार्थ हो सकता है, सार्थकता नहीं है। सागर की चंचल लहरें किनारों में बंधी हैं, इसीलिए बेचैन है।[५८] जाबाला का स्वावलंबन का मार्ग उसको संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। आर्थिक स्वावलंबन से नारी का निजी व्यक्तित्व इस प्रकार प्रभावित हुआ है और दूसरी ओर उसका पारिवारिक संबंधों पर पड़ता गहरा प्रभाव भी उसके संघर्ष का कारण बना है। 'अंधेरी सुरंग' की शिल्पा एक अभिनेत्री है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने पर भी परिवार के सदस्य, पति भी उस पर निर्भर हैं उनकी मांग पूरी करने के लिए उसे जीवन में अनचाहे संघर्ष से जूझना पड़ता हैं। नारी के आर्थिक क्षेत्र में कार्य करने के नए संबंधों की सद्भावना हुई है, जो नारी के नवीन मनःस्थिति को रेखांकित करते जाते हैं।

आर्थिक परावलंबन से उत्पन्न संघर्ष— आर्थिक पराधीनता उसके शोषण का एक कारण है। उसका कार्यक्षेत्र समाज न रहकर घर रहा है। नारी के व्यक्तित्व का आकलन अर्थ की दृष्टि से न करके सौंदर्य की दृष्टि से किया जाता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यह धारणा बदली है। आर्थिक दृष्टि से पराधीन नारी का शोषण कभी अर्थ का अभाव, कभी पति की क्रूरता, कभी परिवार की जिम्मेदारियों में टूटती नारी आदि से होता है। 'गृहस्थी' की वीणा' 'आकाश की छाया में', की सरला, 'हिमालय की बेटी', की रेवती अर्थ अभाव के कारण टूटती नजर आती हैं। अपाहिज, बीमार पति का इलाज, बच्चों की शिक्षा, परिवार के सदस्यों की जिम्मेदारियों के कारण यह नारियाँ टूटती नजर आती हैं। 'बेमाता' की उजली को भी पति पर निर्भर रहना पड़ता है जो शराब के नशे में चूर होकर बहू-बेटों को गालियाँ देता है। उजली खिलौने बेचकर परिवार की मदद करती है फिर भी वह मजबूर है जो चुपचाप सब कुछ सहती जाती है। जो नारियाँ आर्थिक दृष्टि से पराधीन रहती हैं वे स्वाधीन होना चाहती हैं किन्तु जब वे पारिवारिक बाधाओं के कारण स्वाधीन नहीं हो पाती तब उनमें द्वंद्व एवं तनाव की स्थिति पैदा होती है। 'आश्रिता' की सोना पिता की मृत्यु के बाद अपने भाई की जिम्मेदारी को

उठाती है। स्वाधीन न होने के कारण, दूसरों पर निर्भर होते हुए भी स्वाभिमानी होने के कारण किसी की सहायता का स्वीकार भी नहीं करती और अंत तक संघर्ष से जीती रहती है। मात्र 'गृहस्थी' की वीणा भी इस दृष्टि से चित्रित की है। आर्थिक संकट उसे घेरता है लेकिन वह स्वावलंबन में जीना चाहती है।

विचार और भावना के मध्य संघर्ष– विचार का संबंध मनुष्य के बाह्य परिवेश से होता है और भावना का संबंध उसकी अनुभूति से। वह परिवेश में ही अपनी अस्मिता की खोज करता है। नारी का व्यक्तित्व इसी के मध्य नैतिकता, मर्यादा, मूल्यों के बंधन में रहकर स्वच्छंदता की खोज करता है। जहाँ उसके समक्ष यह प्रश्न उठे हैं तब वह अधिक वैचारिक हो उठी है और उसने भावना का विरोध किया है दूसरी तरफ नारी की परंपरागत मानसिकता भावुकता के बीच भी द्वंद्व उभरा है। 'सच! मैं सुंदर हूँ' कहानी की भाभी अपने देवर मुकुल के साथ प्रेमसंबंध रखने की कोशिश करती है और उसी में अपने अस्तित्व की खोज करती है। पति प्रेम की वास्तविकता को सब कुछ मानने वाली भाभी अपने मन में उठी भावनाओं पर नियंत्रण तो पाना चाहती है मात्र उससे यह संभव नहीं हो पाता तो अपने अस्तित्व की भावना को विचारों के रूप में देवर के सामने रख देती है। भाभी के मन में उठी भावनाओं की लकीरे इस प्रकार विचार बनकर आती है, "क्षण कितना प्रबल है, यह मैंने उस दिन जाना। सोचती हूँ कि इसमें जो शक्ति है, जो उद्दाम उद्वेग है वह वर्षों की घुटन का परिणाम है। जिस बात की हम कभी कल्पना भी नहीं कर सकते वह अनायास ही हो जाती है। कल का उन्माद भी क्षणजीवी नहीं था। न जाने कब से मेरे अंतर में पलता जा रहा था। मानूँगी कि मैं प्यासी हूँ। चेतन रहते कभी इस पर नहीं सोचा! सोचना वर्जित जो था। तुम्हारे भैया जैसे हैं, मेरे पति हैं, देवता हैं। नारी को क्या पति और देवता की ही आवश्यकता होती है? वे पूजा के पात्र हो सकते हैं, प्यार के नहीं।"[५९]

'मैं नारी हूँ' की रंजना ऐसी नारी है जो स्वतंत्र रूप से जीने की लालसा रखती है। यह विचार और भावना के द्वंद्व के बीच झूलती है। रंजना एक बार अपने पति विश्वरंजन मुखर्जी से अलग हो जाने के बाद नारी निकेतन में रहकर स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन कर रही है पर विश्वरंजन द्वारा दुबारा उसका स्वीकार करने की अनुमति से उसका आक्रोश उमड़ पड़ता है। आज तक पति प्रेम और अस्तित्व के मध्य झूलती उसकी भावना प्रश्नों के रूप में विचार बनकर उसके मस्तिष्क को घेरने लगते हैं और उसी में उसका उभरता द्वंद्व नजर आता है। रंजना के विश्वरंजन के साथ इस वार्तालाप में नारी अस्तित्व के साथ जुड़े सारे प्रश्न चित्रित होते हैं, "आप क्या है ? आप जो व्यक्ति हैं, वह क्या है ? क्या मात्र शरीर है ? तब आप में और लाशों में अंतर क्या है ? आप कहेंगे लाश निःस्पंद है हममें स्पंदन है लाश अचेतन है, हम सचेत हैं। आप के होने में चेतनशक्ति महत्त्वपूर्ण है तब यदि आप में से दस व्यक्ति आकर बरबस मेरे मुँह में कपड़ा ठूँस मेरी चेतनशक्ति को

निष्क्रिय कर देते हैं और मेरे शरीर को अपवित्र कर देते हैं तो क्या मैं अपवित्र हो गई?"[६०] इस प्रकार नारी की वैचारिक चेतना अपने परिवेश में गहरे स्तर तक महसूस करती है। वह अपना अस्तित्व बुद्धि के धरातल पर कसना चाहती है। इसलिए विचार और भावना के मध्य उसका संघर्ष बना रहता है।

प्राचीन विचारधारा में आस्था रखने से उत्पन्न संघर्ष– समाज परिवर्तन के साथ-साथ विचारधारा में भी परिवर्तन होता है। इस संक्रमण की स्थिति को व्यक्ति एक धरातल पर स्वीकार नहीं कर पाता। इसका स्वीकार व्यक्ति के विकास और परिवेश पर निर्भर करता है कि उसकी मानसिकता का विकास किस धरातल पर हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्राचीन विचारधारा का संबंध प्राचीन मूल्य एवं आदर्शों से है जिसको नारी अपनी परंपरा से निभाती आई है। विष्णु जी की नारी बहुत कम मात्रा में इसी रूप में चित्रित है। 'फांसिल, इन्सान और' कहानी के विनोदशंकर बेटों की पिता को केवल 'फांसिल' के रूप में देखने की दृष्टि से चिंतित है मात्र विनोदशंकर की पत्नी सरला उसे स्वीकारती है क्योंकि बडों को ही बच्चों की चिंता करनी है यह प्राचीन धारणा है जो आज भी वैसी बनी है जो हमें स्वीकार करती है मात्र सरला बेटों की बदलती धारणा और दूसरी ओर परंपरागत मूल्यों की स्वीकृति के मध्य फँसी रहती है।

आधुनिक विचारधारा में आस्था रखने से उत्पन्न संघर्ष– नारी जीवन में आधुनिकता के कारण संघर्ष नवीन मन:स्थितियों, अस्तित्व के प्रति सजग तथा व्यक्तित्व के त्रिकोणात्मक स्वरूप के कारण उभरता नजर आता है। 'बिंब-प्रतिबिंब', 'नारी चरित्रम्' 'तिरछी पगडंडियाँ' आदि कहानियों को देखा जा सकता है।

विष्णु जी की 'नारी चरित्रम्' कहानी की मारिया आधुनिक विचारधारा में आस्था रखती है। मारिया का जीवन के प्रति देखने का दृष्टिकोण कुछ अलग ही है। स्थानीय क्लब में लेखक और उनके मित्रों में चल रही बातचीत का विषय भी नारी ही था। उनके मन में नारी आजकल सेवा करने के प्रयत्न में बुद्धिमती तो क्या नारी भी नहीं रहती। लेखक द्वारा बताई गई कहानी की नायिका मारिया इस मत के विरुद्ध चित्रित होती है। वह दुभाषिए का काम करती है इसीलिए बार-बार अपने बॉस के साथ रहने का मौका उसे प्राप्त है मात्र वह उन सभी बातों से दूर है जो वासना के कारण स्त्री-पुरुष को पास ला देती है। मारिया का यह करारा उत्तर उसकी नर-नारी के प्रति बदलता आधुनिक दृष्टिकोण ही स्पष्ट करता है, "मुक्त व्यवहार वासना के कारण नहीं, उसके अभाव के कारण हो पाता है।"[६१] 'बिंब-प्रतिबिंब' की ईरा की प्रेम के प्रति विचारदृष्टि समाज की व्यावसायिक दृष्टि के सामने हार जाती है। रमणीक समाज की व्यावहारिकता को स्वीकार कर उसे ठुकरा देता है जो उसके संघर्ष का एक गहरा कारण है।

'तिरछी पगडंडियाँ' की शतरूपा का संघर्ष भी पति और प्रेमी के बीच उलझे रिश्तों को स्पष्ट करता है। संपादक किशोर उसे चाहता है। शतरूपा का

अन्य किसी पुरुष से मिलना-जुलना उसे पसंद नहीं। सुशील जो एक लेखक है, जो शतरूपा को चाहता है। किशोर अपने स्वार्थ के लिए शतरूपा का प्रयोग करता है। शतरूपा को दोनों के वास्तविकता की सही पहचान है मात्र वह दोनो के बीच अपने अस्तित्व को खोजती है जो त्रिकोण उसके जीवन में संघर्ष बनकर बैठा है।

वर्ग-भावना से उत्पन्न संघर्ष– वर्ग भावना का आज नारी के आचार-विचार, रहन-सहन पर बड़ा प्रभाव नजर आता है। मध्यवर्गीय नारी इससे अधिक प्रभावित है। नैतिकता और मर्यादा में फंसी रहने के कारण यह नारी अधिक संघर्षरत नजर आती है। कभी वह तथाकथित उच्च वर्ग के पतन के लिए संघर्ष करती है तो कभी कस्बे की मानसिकता से जुडकर रह जाती है। यह दो मुख्य स्थितियाँ उसके संघर्ष के महत्त्वपूर्ण कारण है। विष्णु जी की 'बच्चा माँ का है' कहानी की चंदो भंगिन जो एक सेठ के हाविश की शिकार बनकर एक माँ के कर्तव्य को, भावना को संघर्ष के रूप में स्वीकारती है। इतना ही नहीं तो यही उच्च वर्ग की मानसिकता उसकी सहायता तो नहीं करता बल्कि नैतिक मूल्यों को तोड़ता अपने पापों को भी नकारता है और ममत्व, पतीत्व के अधिकार को खरीदकर उसको लील भी सकता है। मध्यवर्गीय नारी की मानसिकता के धरातल पर भी भिन्नता नजर आती है, यहाँ भिन्नता उसकी कस्बे के अंदर एक घुटन के रूप में बसी रहती है, जिसे वह तोड़ना चाहती है मात्र तोड़ नहीं पाती।

'चैना की पत्नी' कहानी की नायिका चैना पति की मृत्यु के बाद अपना दुबारा घर बसाकर पड़ोस के गाँव में चली जाती है पहले पति का बेटा रामसुख और दूसरे पति में उसके जमीन के ठेके के कारण संघर्ष बना रहता है तो उसके अंदर छिपी मातृत्व की लहर जाग उठती है। बेटे की सहायता के लिए वह बिजली बनकर पति पर टूट पड़ती है। एक ओर उसको अपनी अस्तित्व की चिंता दुबारा शादी कर नया घर बसाने के लिए प्रेरित करती है और दूसरी ओर मातृत्व की चिंता से विह्वल नारी संघर्ष करके उसकी रक्षा भी करना चाहती है। नारी संघर्ष के साथ जुड़ी झूठी सामाजिक धारणा से उत्पन्न समाज की विकृत मनोवृत्ति उसको जीने के लिए दूभर कर देती है। 'डायन' कहानी की विचारदृष्टि नारी के जीवन में एक संघर्ष का नया कारण स्पष्ट कर देती है। कहानी की नायिका गफूरन के प्रति पूरे गाँव की देखने की दृष्टि एक अंधःविश्वास से घिरी हुई है। यह दृष्टि ही उसको गाँव को खो जाने वाली एक डायन के रूप में देखा करती है। उसके अंदर पनपी माँ की ममता को भी खत्म कर दिया जाता है। बुढ़ापे के कारण जब गफूरन से चूड़ियाँ बेचने का काम नहीं होता तो उसकी बेटी बानों आती है तो वहीं लोगों की धारणा आजतक बनी रही थी, वहीं धारणा बानों के प्रति भी बन जाती है। इस तरह समाज की झूठी धारणा और विश्वास ही एक कस्बे के अंदर बनी मानसिकता को बना पाया है, स्वीकार कर चुका है और गफूरन, बानो जैसी औरतों को उसी का शिकार होना पड़ता है जो उनका वास्तव भी है।

परिवेश का नारी के व्यक्तित्व के साथ गहरा और संश्लिष्ट संबंध है। उसीसे मनुष्य के संस्कार और मानसिकता का निर्माण होता है जिसमें भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से प्रभावित नारी के रूपों का समावेश हो जाता है।

संघर्ष चित्रण की आवश्यकता– साहित्यकार सामाजिक यथार्थ से जुड़कर अपनी अनुभूतियों को भूत, वर्तमान, भविष्य के मध्य खड़ा कर देता है। मानव भी अपने आपको समय-सापेक्षता में विश्लेषित करता जाता है। साहित्य सभी का प्रतिबिंब है। जो काल की गति को सीमाओं में नहीं बांध पाता। वर्तमान, अतीत और भविष्य को लेकर सर्वत्र द्वंद्व चलता रहता है। यह जहाँ एक ओर व्यक्ति और समाज की अपेक्षाओं और सीमाओं के बीच रहता है। वहाँ दूसरी ओर स्त्री-पुरुष की अपेक्षाओं एवं सीमाओं के बीच भी है। अतः जीवन की गति द्वंद्वात्मक रूप से चलती है। जिसके परिणामस्वरूप समय–समय पर परिवर्तन की प्रक्रिया कायम रहती है।

कहानी सामाजिक यथार्थ से जुड़ी है। यह किसी आदर्श बिंदु तक पहुँचने के लिए आदर्शों के पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर समाज और व्यक्ति के यथार्थ की सूक्ष्म आंतरिक जटिलताओं का अन्वेषण करती है। अर्थतत्त्व का दबाव कहानी के सामाजिक जीवन पर निरंतर बढ़ता गया है। पारिवारिक, सामाजिक संबंधों में संघर्ष की स्थिति के मूल में आर्थिक विषमता और अर्थोन्मुख मूल्यों का विकास मुख्य कारण है। संघर्ष के मध्य मध्यवर्ग की दमित, कुंठित, आर्थिक महत्वाकांक्षाओं की पीडा की भी पर्याप्त अभिव्यक्ति हुई है। कहानीकार की चेतना मुख्य रूप से इस वर्ग के अनुभव और विवेक से जुड़ी हुई है। वह जीवन के यथार्थ को आंतरिक जटिलताओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म सूत्रों को पकड़ती है। वह जीवन परिवेश के दबाव में बनते-बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। संघर्ष चित्रण में परिवेशगत यथार्थ के साथ जुड़ी लेखक की अनुभूति एक व्यापक स्तर पर बदलते काल की गति और मानव विकास की प्रक्रिया को निरंतर परिचित कराती जाती है। संघर्ष की स्थिति में ही अपने व्यक्तित्त्व को आँकने वाले महत्त्वपूर्ण बिंदुओं की पहचान होती है। साथ-साथ संघर्ष में तीनों कालों से जुड़ी मानवता की पहचान भी होती जाती है। साहित्यकार सामाजिक गतिविधियों में अलग होकर अपनी अनुभूति को प्रस्तुत नहीं कर सकता इसीलिए साहित्य में मूल्यों के रूप में उसका एक अलग प्रतिबिंब बना रहता है।

इस प्रकार संघर्ष की इस व्यापक पृष्ठभूमि पर विष्णु जी की कहानियों को देखा गया है।

निष्कर्ष रूप में, विष्णु जी की कहानियों में चित्रित संघर्ष चित्रण में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं। उनकी कहानियों में चित्रित संघर्ष पात्रों के मनोवैज्ञानिक वृत्ति के साथ-साथ दार्शनिक पृष्ठभूमि को भी चित्रित करता है। विष्णु जी के कई पात्रों में आर्थिक स्थिति शून्य होने के कारण अधिक संघर्षरत दिखाई देते हैं। इन पात्रों में और एक प्रवृत्ति दिखाई देती है कि अपने या दूसरों

के व्यक्तित्व को समझने में असमर्थ होने के कारण पात्रों में आत्महीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए समस्या का समाधान खोजने के लिए उनके अंतर्मन में विभिन्न विचार उद्यीप्त होते रहते हैं पर उन्हें सुलझाने में वे असमर्थ रहते हैं, इसीलिए अधिक संघर्षरत रहते हैं। इसमें कुछ पात्र असाधारण हैं और वे असाधारण परिस्थितियों में पड़े रहने से आत्मलीन तो हो जाते हैं मात्र उसकी बाह्ययाभिव्यक्ति न होने के कारण उनकी मनःस्थिति और अधिक संघर्षपूर्ण बन जाती है। विष्णु जी की रचनाओं में संघर्ष की अत्यंत व्यापक पृष्ठभूमि चित्रित होती है। इसमें एक तथ्य विचारणीय है कि उन्होंने इसी पृष्ठभूमि को यथार्थता की धरातल पर प्रस्तुत किया है, वह बाह्य परिस्थितियों के साक्ष पर नहीं, निजी अनुभवों के साक्ष पर आधारित है साथ-साथ उनकी रचनाएँ, आधुनिक समस्याओं और स्थितियों के यथार्थ का विश्लेषण और जीवन के रचनात्मक मूल्यों की स्थापना का प्रयास भी करती रहती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हर क्षेत्र में व्यक्ति की इकाई से लेकर समष्टि के व्यापक क्षेत्र में संघर्ष उभरा है। मध्यवर्गीय व्यक्ति की तो यह नियति रही है। एक बेहतर जिंदगी के लिए वह प्रायः व्यवस्था के विकृत रूप के खिलाफ संघर्ष करता है। शहरी मानसिकता, अर्थाभाव, काम-अतृप्ति, प्रेम की असफलता, संबंधों का टूटन, पारिवारिक विघटन से युक्त व्यक्ति का बाह्य संघर्ष और अंतःसंघर्ष आदि को विष्णु प्रभाकर जी ने विभिन्न आयामों द्वारा प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक सत्ता के लिए नेताओं का भ्रष्ट रूप, भाई-भतीजावाद की प्रवृत्ति से जन-जीवन का संघर्ष, चुनावों का खोखलापन आदि भी सन् १९५० के बाद की कहानियों में देखा जा सकता है। भारत-पाक विभाजन में धार्मिक संकीर्णता से उत्पन्न सांप्रदायिकता का बवंडर और शरणार्थियों के आगमन ने राष्ट्र को सर्वाधिक प्रभावित किया। विष्णु जी की दृष्टि वहाँ तक पहुँची और उसीके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक दंगों में व्यक्ति की मानसिकता और संघर्षरत वृत्ति को उभारने में वह सूक्ष्म हुए हैं।

स्वतंत्रता के उपरांत ग्राम-व्यवस्था में काफी परिवर्तन आया है। परंपरागत गाँव का ढाँचा टूटने से जीवन-मूल्य और जीवन दृष्टिकोण बदलते गए इसी बीच गांव में एक ऐसा वर्ग उभरा, जो सामाजिक, राजनीतिक प्रत्येक स्थिति से लाभ उठाकर अपने से निम्न वर्ग का शोषण करता रहा। एक ओर अमीरी बढ़ती गई तो दूसरी ओर गरीबी, जिसमें जीवन-मूल्य और मानवीय संबंध विघटित हो गए। इन उभरते हुए विशिष्ट वर्ग ने ग्रामीण व्यवस्था पर अधिपथ्य जमा रखा। विष्णु जी की कई रचनाओं में ग्रामीण जीवन और निम्नवर्ग का अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर संघर्षरत होना द्रष्टव्य है।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर की रचनाओं दवारा स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में नए-पुराने मूल्यों का संघर्ष, मूल्य-विघटन, मूल्य-संक्रमण जैसे तथ्य उभरे हैं।

उनकी कहानियों में परिवर्तित होते सामाजिक संदेशों में व्यक्ति की सही पहचान तथा सामाजिक परिवेश और समाज व्यवस्था के प्रति उसका संघर्ष और विद्रोह की प्रासंगिकता, सार्थकता और असार्थकता का विश्लेषण होता है। व्यक्ति अपनी बाह्य-व्यवस्था, प्रतिकूल परिस्थिति और सामाजिक अव्यवस्था के प्रति संघर्षरत तो होता है पर इससे भी अधिक संघर्ष उसके अंतर्मन में चलता रहता है। तात्पर्य, विष्णु जी की रचनाएँ समाज में व्यक्ति के बाह्य और मनोः संघर्ष की वास्तविक और सही तस्वीर को अंकित करने में सक्षम सिद्ध हुई हैं।

संदर्भ सूची

१ हिन्दी उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डॉ० एम० वेकटेश्वर, पृ० १७४
२ हिन्दी उपन्यास, समाज और व्यक्ति का द्वंद्व - डॉ० मजुला गुप्ता, पृ० १२
३ हिन्दी कहानियों मे व्यक्तित्व विश्लेषण - डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पृ० ७२
४ मानविकी पारिभाषिक कोष - डॉ० पद्मा अग्रवाल, पृ० ७४
५ हिन्दी कहानी : सामाजिक संदर्भ, डॉ० अश्वघोष पृ० ४०
६. एक मौत समदर किनारे (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ३७६
७ कितने जेबकतरे - (.. .. " ....) पृ० ४१६
८ हमे गिरानेवाले (.. . " . ...) पृ० ५०
९ एक माँ एक देश - (..... . " . .. .) पृ० ७४
१०. मैं नारी हूँ - (..... ... . " .... . .) पृ० ४०८
११ शरीर से परे - (संघर्ष के बाद) पृ० १६४
१२ दूसरा वर - (. . " ....) पृ० १५१
१३. कैसी हो मरिअम्मा (मेरी प्रेम कहानियाँ) पृ० १४०
१४. अंधेरी सुरग - (एक आसमान के नीचे) पृ० २४
१५. धरती का स्पर्श - (.... . .. . " ....) पृ० ६६
१६. एक और कुती - (आखिर क्यों) पृ० २३
१७. नफरत, केवल नफरत - (मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० १०८
१८. मुक्ता - (रहमान का बेटा) पृ० १७
१९. हरीश पांडे - (.. . .. . " . .. .) पृ० ५६, ६०
२०. वे दोनों (............... . " ....) पृ० ४०
२१. हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान — डॉ० रघुवरदयाल वार्ष्णेय, पृ० ८३
२२. रहमान का बेटा - (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ६८
२३. अंधेरी सुरंग - (एक असमान के नीचे) पृ० ६
२४. एक और कुंती - (एक और कुंती) पृ० २७
२५. एक अनचीन्हा इरादा - (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ३६६
२६. ठेका — (धरती अब भी धूम रही है) पृ० ७३
२७. .... " ....(....... .... " ....) पृ० ७४
२८. गृहस्थी - (इक्यावन कहानियाँ) पृ० १८६
२९. नदी, नारी और निर्माण (संघर्ष के बाद) पृ० २०५
३०. बिंब प्रतिबिंब - (मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० ६१

३१. अंधेरी सुरंग - (एक आसमान के नीचे) पृ० ६
३२. कितने जेबकतरे (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ४१६
३३. सलीब - (......... ...... " .. ..) पृ० ३५६
३४. गृहस्थी - (..... .... " .. ..) पृ० १६८
३५. आधुनिक हिन्दी कहानी . समाजशास्त्रीय दृष्टि - डॉ० रघुवर सिन्हा पृ० ११२
३६. सलीब - (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ३६५
३७. बेटे की मौत - (.............. .. " ....) पृ० ११४
३८. इतनी - सी बात (आखिर क्यों) पृ० ६०
३९. मैं जिंदा रहूँगा — (इक्यावन कहानियाँ) पृ० १७६
४०. कितना झूठ - (.... . .. . " ....) पृ० ६८
४१. नई पौध - (संघर्ष के बाद) पृ० ४८
४२. रजनी - (खंडित पूजा) पृ० २१८
४३. कैसी हो मरिअम्मा - (मेरी प्रेम कहानियाँ) पृ० १४२
४४. बच्चा माँ का है - (खिलौने) पृ० ६२
४५. एक और कुंती - (एक और कुंती) पृ० १६
४६. ...." ....(................ " ....) पृ० २६
४७. सलबी (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ३६५
४८. हमें गिरानेवाले - (... .... " ....) पृ० ४६
४९. भारत माता की जय - (सघर्ष के बाद) पृ० ६१
५०. खिलौने - (इक्यावन कहानियाँ) पृ० २६६
५१. फांसिल, इन्सान और - (......... ... .. " ....) पृ० ३०६
५२. मूड - (................ " ....) पृ० २३०
५३. भोगा हुआ यथार्थ - (...... ... .. ." . ...) पृ० ३४६
५४. अंधेरे आंगन वाला मकान — (. .... " . ...) पृ० ३६८
५५. पुल टूटने से पहले (... .... " ....) पृ० ३८८
५६. मुरब्बी - (आखिर क्यों) पृ० ४८
५७. कितने जेबकतरे - (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ४२२
५८. एक मौत समंदर किनारे - (...... .. .... " ....) पृ० ३७२
५९. सच ! मैं सुन्दर हूँ - (मेरी तैंतीस कहानियाँ) पृ० १६
६०. मैं नारी हूँ - (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ४४८
६१. नारी चरित्रम् - (खंडित पूजा) पृ० २६

5

विष्णु प्रभाकर की कहानियों में समकालीन बोध

पृष्ठभूमि– साहित्य और समाज को दो समांतर रेखाएँ मानें तो इन दोनों को मिलाने वाली रेखा युग चेतना या युगबोध ही है। साहित्य के लिए आवश्यक सामग्री युग प्रदान करता है और साहित्यकार उस युगबोध को संप्रेषित कर साहित्य की सृष्टि करता है। इसीलिए समय के प्रति साहित्यकार की प्रतिबद्धता बहुत महत्त्वपूर्ण रहती है। इसी पृष्ठभूमि पर युगबोध की संकल्पना को देखना बहुत जरूरी हो जाता है।

युग-चेतना से तात्पर्य सामान्यतः युग की मान्यताओं, स्थितियों एवं संदर्भों का बोध होता है। वस्तुतः प्रत्येक युग की अपनी एक विशिष्ट अथवा समान विचारधारा होती है। युग–चेतना की महत्ता उसके विकसित या परिवर्तित होने में है। 'विविध बोध : नए हस्ताक्षर' ग्रंथ में डॉ० हुकुमचंद राजपाल का वक्तव्य युग-चेतना की व्यापक परिधि को स्पष्ट करता है। उनका कथन है, "युग शब्द अपनी व्याप्ति में संपूर्ण मानव-संस्कृति का काल सापेक्ष अर्थ देता है। युग विभिन्न परिवेशो मे विभिन्न मूल्य निर्मित करता है और उन मूल्यों के कारण वह अपने विशिष्ट अर्थों का प्रसार करता है।"[1] वर्तमान समय में नई स्थितियों के कारण स्वातंत्र्योत्तर भारत में कौन से मूल्य उभरे हैं, चिंतन उभरा है और हमारे अनुभवों में कौन-से नए आयाम जुड़े हैं तथा युगीऩ यथार्थ इनसे टकराकर कौन से नए रूप धारण कर रहा है, इसकी चेतना युग-बोध है। तात्पर्य, समय के परिवर्तन के साथ-साथ युग चेतना भी बदलती रहती है।

साहित्य के संदर्भ में : युग-बोध– साहित्य के संदर्भ में युग-बोध का विचार किया जाए तो साहित्य सर्जन को मौलिक प्रश्नों के साथ जुड़कर चलना होता है। अन्य क्षेत्रों में जिस गति से परिवर्तन और विकास होता है उस गति से साहित्य में नही होता। साहित्य सर्जन की प्रक्रिया जटिल और भीतरी होती है वह बाहर की घटनाओं, अविष्कारों और तथ्य से एकाएक प्रभावित नहीं होती। साहित्य का संबंध मूलतः मानवीय संवेदना, अंतर सत्यों से होता है। मूल्यबोध इन सत्यों से जुड़ा रहता है। जब कोई मूल्य बहुत से समान धर्मा व्यक्तियों को प्रभावित करता है, तब वह बोधवृत्ति धारण करता है, इसी से युग विशेष के बोध का निर्माण स्वयं हो जाता है। प्रत्येक देश एवं समाज का अपना बोध होता है और युग परिवर्तन

के साथ उसका बोध भी बदलता एवं विकसित होता रहता है। इस प्रकार किसी कालखंड में अपने परिवेश में होने वाले राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रति सजगता, जागरुकता, अनुभूति की क्षमता तथा प्रतिक्रिया की क्षमता 'युगबोध' कही जा सकती है। 'हिंदी कहानी में युगबोध' ग्रंथ में डॉ० मंजुलता सिंह का वक्तव्य समाज की गतिविधियों में युगबोध की संकल्पना को स्पष्ट करता है। उनका वक्तव्य है, "युगबोध व्यक्ति में स्वयं उभरकर नहीं आता अपितु संवेदनशील कथाकार जो समाज की गतिविधियों से परिचित है, अपनी अनुभूति एवं युगीन यथार्थ की चेतना के माध्यम से अपनी कृतियों में रूपायित करता है।"[२] कहानी भी युग एवं कालसापेक्ष होती है। परिवेश, संस्कार, रूढ़ियाँ, परिवर्तन, गतिविधियां प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कहानीकार को प्रभावित करती है। कहानीकार अपनी रचना में युग के सत्य को अपनी संवेदनशक्ति और व्यक्तित्व-विशेष के अनुरूप डालकर उसे एक नवीन आयाम पैदा करता है। इस प्रकार मूल्यों से उत्पन्न चिंतन प्रणाली युगचेतना का गहरा साक्षात्कार कराती है।

विष्णु प्रभाकर सामाजिक संचेतना के प्रतिबद्ध कहानीकार है जिन्होंने स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक की सभी गतिविधियों को नजदीक से देखा है और उसे अपने कहानीकार के व्यक्तित्व में ढालने का प्रयास भी किया है, साथ-साथ उसे अपनी अनुभूति के स्तर पर एक नया संदर्भ दिया है। प्रस्तुत अध्याय में इसी पृष्ठभूमि पर उनकी कहानियों में उभरी समग्र युगीन चेतना को देखा गया है।

समाज की गतिविधियों से युगीन यथार्थ की चेतना प्रभावित रहती है अपितु इसके अंतर्गत कई सामाजिक अवधारणाएँ अंतर्भूत रहती हैं जो कहानीकार को प्रभावित करती रहती है। विष्णु जी की रचनाओं में इनका समग्र विवेचन किया गया है।

आधुनिकता के प्रति समग्र चिंतन शीलता— आधुनिकता यह एक सामाजिक अवधारणा है जिसका संबंध सामाजिक व्यवस्था, मनुष्य की सामाजिक संस्थिति, चिंतन प्रक्रिया, जीवन-मूल्य और विचारधारा से है। कहानीकार आधुनिकता को प्रश्रय देता है क्योंकि आधुनिकता युगबोध से जुड़ी है। आधुनिकता का संबंध वर्तमान से भी है और वर्तमान समय सापेक्ष होने के नाते समकालीनता से भी संबंधित है। 'नई कविता सीमाएँ और संभावनाएँ', ग्रंथ में डॉ० गिरिजाकुमार माथुर जी का यह कथन आधुनिकता के संबंध को गहराई से स्पष्ट करता है। उनका कथन है, "आधुनिकता का अर्थ मात्र सामाजिक अथवा बाह्रयाकार की नवीनता नहीं है। आधुनिकता अधिक आंतरिक अथवा मूल्यगत भाव है। उसका एक पक्ष दीर्घकालीन सांस्कृतिक विकास से संबंधित है। जिसमें मानवीय गरिमा तथा पावनता की स्वीकृति, स्वातंत्र्य, न्याय, अन्यायों के प्रति विद्रोह और असंगतियों

की मर्म प्रतीति, अनाहत की जिज्ञासा, व्यक्ति का विशिष्ट भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं का आदर, मानसिक मुक्ति आदि सम्मिलित हैं।"[3] 'नई कविता संवेदना और शिल्प' ग्रंथ में डॉ० मंजुला पुरोहित जी ने अपने वक्तव्य में लिखा है, "आधुनिकता का सबंध पुरातन एवं सांस्कृतिक चेतना से भी है।"[4] तात्पर्य, अपने समकाल के प्रति सचेत, वैज्ञानिक और विवेक सम्मत दृष्टिकोण अपनाना ही आधुनिकता है।

विष्णु प्रभाकर जी अपनी कहानियों में आधुनिकता को अधिक व्यापक, युग-सापेक्ष और समाजोन्मुख दृष्टि से देखते नजर आते हैं। विभाजन पर रचित उनकी कहानियाँ मूलतः सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ हैं। विभाजन के घटनाचक्र तथा पारस्परिक द्वेष एवं अविश्वास का चित्रण करते हुए भी इन कहानियों में मानवता के प्रति उनका विश्वास, उनमें जिजीविषा, मानवीय मूल्य एवं मर्यादाओं के प्रति उनकी आस्था झलकती है। तमाम अच्छाइयों-बुराइयों के साथ जीवन संघर्ष का चित्रण करते हुए भी उनका ध्यान सदैव मूल्यों के उत्कर्ष पर रहा है आधुनिकता जीवन की गहराई मापने का एक नया मानव-सापेक्ष दृष्टिकोण है। युगगत बदलता जीवन, परिस्थितियों के कारण व्यक्ति का आत्मकेंद्रित होते जाना आदि से उसका परिवेश से टूटता जाना और पारिवारिक संबंधों में बिखराव आ जाना आदि कई समस्याओं को कहानियों में चित्रित किया है। व्यक्ति के स्वतंत्र विचारों तथा आचरणों के कारण परिवार के मूल्य टूट रहे हैं। 'वे', 'ठेका', 'अंधेरी सुरंग' जैसी कहानियाँ परिवार के टूटने के कारणों को गहराई से स्पष्ट करती जाती है। नारी स्वतंत्रता का भी समर्थन करते नजर आते हैं, वे उसके साथ-साथ परिवार के प्रति स्त्री-पुरुष के बदलते दृष्टिकोण को यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं। अर्थकेंद्रित व्यक्ति की संकल्पना की अपेक्षा मानव कल्याण के लिए पति-पत्नी के समायोजित भाव संकल्पना पर की विश्वास करते हैं। 'अंधेरी सुरंग' कहानी की शिल्पा का चरित्र उसी दृष्टि से चित्रित किया है।

आज परिवार में नारी का सास, ससुर तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ 'एडजेस्ट' (समायोजित) न करने से जो समस्या परिवार में आ गई है, उससे मानव के मूल्यों का प्रश्न जुड़ता गया है। विष्णु जी की 'स्नेह' कहानी भी इसी मूल्य की तलाश करती है। 'संघर्ष के बाद' कहानी की हेमा विजातीय होते हुए भी अपने परिवार को टूटने से बचाने का अंत तक प्रयास करती रहती है और अंत में जातिभेद का स्वीकार करने वाली सास के मन में अपने अच्छे व्यवहार से एक विश्वास का भाव जताती है। पति-पत्नी के साथ परिवार के प्रति गहरा विश्वास मानवीय गरिमा तथा पावनता का द्योतक होता है। विष्णु जी की कहानियाँ इसी का समर्थन करती है।

देश की अद्भुत स्थितियों, प्रभावों और अभावों से आधुनिक बोध को खोजने का एक सांस्कृतिक माध्यम है। मानवीय जीवन को मूल्यवान बनाने की

क्षमता रखने वाले गुणों को जीवन मूल्य कहा जाता है। मूल्य शाश्वत व्यवहार है जो सभ्यता और मानवता को लेकर किया जाता है। इसीलिए जीवन मूल्यों का मूल आधार जीवन उत्कर्ष ही है। मूल्य केवल मानव व्यवहार को दिशा प्रदान नहीं करते अपितु वे अपने आप में एक आदर्श भी प्रस्थापित करते हैं। मूल्य मानव जीवन को स्थायित्व प्रदान करते हैं। मूल्यों के द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है। परिवर्तन की प्रक्रिया में आज मूल्यों में भी परिवर्तन नजर आता है। विष्णु प्रभाकर जी मूल्य प्रक्रिया और उसकी आवश्यकता पर गहरा विश्वास रखते हैं। साथ–साथ काल के अनुरूप उसके परिवर्तन का भी स्वीकार करते हैं मात्र केवल आधुनिकता के धरातल पर उसे स्वीकृत न कर शाश्वत सत्य के रूप में अपनाते हैं।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियाँ मानवीय आस्था की गहराई को अधिक सशक्तता और स्वाभाविकता के साथ चित्रित करती हैं। परिवेश की गहराई और उसके साथ जुड़ा हुआ सशक्त मानव ही उनकी कहानियों में चित्रित होता है। एक ओर महानगरीय सभ्यता के साथ बनते-बिगड़ते मानव-संबंध तो दूसरी ओर कस्बा, गांव से जुडा मानव भी उनकी कहानियों में अपने बने-बनाए जीवन मूल्यों को लेकर उभरता है। 'रहमान का बेटा' कहानी भी ऐसे ही कस्बों में बसे मुसलमानों की अपनी बनी बनाई दृष्टि को लेकर चलती है। कहानी का नायक रहमान और उसके साथी अपने विचारों से अडिग है तो उसका बेटा सलीम प्रगतिवादी विचारों का समर्थन करता हैं। वह कस्बे का रूप ही बदल देना चाहता है मगर रहमान और उसके साथ उसके विचारों को आसानी से स्वीकारने के लिए राजी नहीं होते। 'शमशू मिस्त्री' कहानी का शमशू भी धर्म और जाति की सीमाएं अर्थहीन मानता हैं 'वह रास्ता' कहानी के पात्र अहमद और निशिकांत धर्म और जाति की श्रृंखला में मानव अपने आप को जकड़कर जिए, पसंद नहीं करते। मानव सेवा में ईश्वर को ढूँढते हैं। अहमद का यह कथन धार्मिकता की सभी श्रृंखलाएं तोडता है, कहता है, "वह धर्म और तहजीब क्या जो हमें ऊँचा नहीं उठा सकती, जो हमें इन्सानियत के रास्ते पर नहीं ला सकती।"[५] निशिकांत का कथन भी इसी बात की पुष्टि करता है, "हम-आप तो कुछ बने नहीं, तब क्यों इस बात के लिए नफरत या मोहब्बत करें ? सोचने की बात केवल इतनी है कि क्या हम इन्सान बन सकते हैं ? 'टीपू सुल्तान' कहानी का टीपू मुस्लिम होकर हिंदुओं की बस्ती में रहता है; धर्म और जातिवाद की श्रृंखला को तोड़कर हिंदुओं के लिए अपनी जान तक दे देता है। 'काफिर' कहानी का अब्दुल मुसलमान होते हुए भी अपने हिंदू मित्र गणेश की जान बचाने के लिए निकल पड़ता है। 'हिंदू' कहानी का नायक दंगों में फँसी एक हिंदू नारी की सहायता करता है। उसके मन में अन्याय और अत्याचार के प्रति घृणा जागृत होती है। उसका यह कथन उसके अंदर छिपे आक्रोश को व्यक्त करता है, "कैसा सत्यानाशी चक्कर है ? कहीं अंत नहीं, कहीं किनारा नही–"[६] इस प्रकार

विष्णु जी की कहानियाँ सांप्रदायिकता वैमनस्य के वातावरण के बीच मानवीय एकता के सूत्र खोजने की कोशिश करती है। उनके पात्रों के अपने मूल्य हैं और उन्हीं मूल्यों को अपनाकर ही वे एकता के सूत्र के साथ एक दूसरे को जोड़ने का प्रयास भी करते हैं।

नैतिकता के बदलते मापदंड– सामाजिक मूल्य हर युग में साहित्य को प्रभावित करते हैं। समाज, राज्य तथा धर्म के द्वारा स्वीकृत व्यवहार ही मूल्य के अंतर्गत आते हैं। भारतीय संस्कारों में नैतिक मूल्यों को यौन आचरण की शुचिता से जोडा जाता रहा है। कई बार हमारे यहाँ इसे चरित्र का पर्याय ही मान लिया जाता है तो अर्थकेंद्रित अर्थव्यस्था में नैतिकता के मानदंड भी बदल गए हैं।

बीसवीं शती के आरंभिक काल में अनेक समाजसुधार के आंदोलन हुए। इनके द्वारा रूढ़ियों और परंपराओं से जकड़े समाज को सहज रूप में प्रगतिशील विचारों को स्वीकार करने के लिए एक पृष्ठभूमि निर्माण की गई साथ ही परंपरागत अनुपयुक्त मूल्यों का खंडन करते हुए, युगानुकूल नवीन मूल्यों को जन्म दिया। विष्णु जी के पात्रों में इन परिवर्तनशील मूल्यों को स्वीकारने की क्षमता हैं, मात्र कहीं भी वे नैतिक जीवनवादी विचारों को खोने नहीं देते। 'आश्रिता' की सोना पति की मृत्यु के बाद गांव के मास्टर उसके साथ शादी कर उसकी सहायता करना चाहते हुए भी वह उसका स्वीकार नहीं करती। 'कैसी हो मरिअम्मा' कहानी की मरिअम्मा पति द्वारा त्याग देने पर अपने प्रियतम से विवाह नहीं करना चाहती।

विष्णु जी ने अपनी कहानियों में समाज के बदले नैतिक मानदंडों के अनुरूप पात्रों का चित्रण किया है। उच्च वर्ग में अर्थ के लिए व्यक्ति अनैतिकता को अपनाता हुआ नजर आता है। उच्च वर्ग में तो क्लब संस्कृति ने सतीत्व की परंपरागत परिकल्पना को तो सर्वथा महत्वहीन बना दिया है। विष्णु जी की कहानियों में इसी संस्कृति में पलें कई पात्र मिलते हैं, जैसे 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबाला खुले आम क्लब संस्कृति का ही समर्थन करती है। 'भटकन और भटकन' कहानी भी अभिजात्य वर्ग के तौर-तरीकों को स्पष्ट करती है। मध्यवर्ग में भी आर्थिक दवाब के कारण विवाहित और अविवाहित नारियों को अनैतिक यौन संबंध रखने के लिए विवश होना पड़ता है। 'कितने जेबकतरे' की सपना तो अपनी इच्छा न होते हुए भी बॉस से मजबूरन यौन संबंध रखने पड़ते हैं। पारिवारिक विवशता यही उसकी मजबूरी है। माँ यह सबकुछ समझती है फिर भी अनचाहे कार्य के लिए उसकी स्वीकृति मिल जाती है।

आंतर्जातीय विवाह को विष्णु जी एक उचित और समयानुकूल बात मानकर स्वीकार लेते हैं। 'नदी, नारी और निर्माण' कहानी में वीनू के पिता द्वारा शांताबाई के साथ शादी के लिए इन्कार किया जाता है, तो बिंब–प्रतिबिंब कहानी में विष्णु जी ने ईरा के माध्यम से प्रतिरोध भी कराया है। 'संघर्ष के बाद' में हेमा और निर्माण आंतर्जातीय विवाह कर अपना अलग घर बसाते हैं। विधवा विवाह

के बारें में भी यही बात कही जा सकती है। 'आश्रिता' में सोना एक बार विधवा होकर दूसरे गांव जाकर दुबारा शादी कर लेती है। 'दूसरा वर' कहानी में भी जवान बहू की जिंदगी की चिंता और समाज के नीति-नियमों का विरोध सहकर अंत में बहू को देवर के साथ विवाह करने के लिए अनुमति दी जाती है। इस प्रकार विष्णु जी ने अपनी कहानियों में काल के अनुरूप बदलते जीवन दृष्टिकोणों को अपनाया है। वे इन सभ्यताओं की ओर मानवीय दृष्टि से देखते हैं।

नैतिक मूल्यों का मूल आधार स्वार्थ का त्याग है। इस उदात्त वृत्ति के अंतर्गत सभी मूल्य आ जाते हैं। अनेक कहानियों में व्यक्ति के समर्पित जीवन का चित्रण आता है। 'हिमालय की बेटी' कहानी की रेवती, 'कितने जेबकतरे की सपना, गृहस्थी की वीणा आदि कई नारियाँ हैं जिन्होंने अपनी इच्छाओं का दमन कर उदात्त मूल्यों की सृष्टि की है। इस प्रकार समाज में शांति तथा सुव्यवस्था बनाए रखने एवं मानवता का हित कायम रखने के लिए आचार प्रणालियों की अवधारणा की जाती है जो पूरे समाज को एक नैतिक दृष्टिकोण से जोडने का प्रयास ही करती है।

आदर्शवादी जीवन दृष्टि की स्वीकृति– मूल्यों का विकास समाज के साथ-साथ हुआ है। समाज में रहकर मूल्यों के सहारे ही मनुष्य अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं एवं आदर्शों को प्राप्त करता है। मूल्यों की जड बहुत गहरी होती है। 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास मूल्य संक्रमण' ग्रंथ में डॉ हेमेंद्र पानेरी जी का वक्तव्य बहुत कुछ स्पष्ट करता है। उनका कथन है, "मूल्य समाज की वह रीढ़ है जिसके सहारे समाज अस्तित्ववान होता है। किसी समाज की संस्कृति का अध्ययन उस समाज में प्रचलित मानव-मूल्यों के आधार पर ही संभव है।"[८] यही मूल्य समाज में नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और सौंदर्यपरक प्रतिमानों की स्थापना करते हैं, जो समाज की संरचना में आदर्श कहलाए जाते हैं। विष्णु जी के पात्र भी इन मूल्यों की प्रस्थापना करते हैं, जो समाज चेतना में एक अलग दृष्टि देते हैं। कहानी साहित्य में आदर्शवादी विचारधारा स्वतंत्रता पूर्व की कहानियों में अतिशय रूप में मिलती है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों की दृष्टि यथार्थवादी अधिक है। विष्णु प्रभाकर जी की स्वतंत्रतापूर्व काल की पृष्ठभूमि को सामने रखकर लिखी गई कहानियों मे आदर्शवादी जीवन मूल्यों के कई कोण नजर आते हैं।

'बेटे की मौत' कहानी का मोहन एक ऐसा आदर्शवादी पात्र है जो राष्ट्रीय प्रतीक गांधी टोपी की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राणों को तुच्छ समझता है। गोरे सैनिकों द्वारा टोपी को पैरों के नीचे कुचलने को उसे कहा जाता है लेकिन ऐसा करने के लिए निर्मोही मोहन का खून खौल उठता है। वह दृढ़ता से उसका विरोध करता है। 'आत्मग्लानि' के शंकर की पत्नी अपने पति को फटकारती है क्योंकि वे अपने क्रांतिकारी साथियों के साथ धोखा करते हैं। 'आत्मग्लानि' में शंकर जब स्वयं को गिरफ्तार करा देता है तब यह समाचार सुनकर शोभा के उल्लास की

सीमा नहीं रहती। 'गर्विता' कहानी की राधा के प्रति दिनेश को आजादी के आंदोलन में भाग लेने के कारण फाँसी होती है तो राधा इसे अपना सौभाग्य मानती है। 'मुक्ता' कहानी का कमल फाँसी पर चढते-चढ़ते देश की सोचता है। कहानी की नायिका मुक्ता भी पति के कार्य से प्रेरित होकर अपने बच्चों को सहेली के पास छोड़कर पति के समान आजादी की लड़ाई में निकलती है। इस प्रकार कर्तव्य के लिए मर मिटने वाले पात्रों के मन में अमिट साहस और उत्साह उसके पीछे छिपी हुई अनन्य प्रेम की गहरी अनुमति ही प्रकट होती है। 'निशिकांत का स्वप्न' कहानी का निशिकांत इस तरह एक रूप से आदर्शवादी जीवन दृष्टि को स्वप्न के रूप में अपनाकर चलता है। साहित्यिक होने के नाते अपनी विचार दृष्टि को समाज के काम लाना चाहता है। नौकरी का इस्तीफा देकर देश भ्रमण करके, स्थान-स्थान पर व्याख्यान देकर, देश के वास्तविक जीवन को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करता है। 'वे दोनों' कहानी का नारायण अगस्त क्रांति की लड़ाई में अपने प्राणों को गंवा देता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में चित्रित पात्र अलग-अलग स्तर के हैं। अधिकतर मध्यवर्गीय युवक-युवतियों में स्वतंत्रतापूर्व काल में एक चेतना के रूप में आदर्शवादी वृत्ति को अपनाने की दृष्टि नजर आती है। विष्णु प्रभाकर जी का मूल चिंतन ही समाजहित, मानव-कल्याण की कामना करता नजर आता है। स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रतापूर्व काल में समाज की आवश्यकताओं पर साहित्यकारों की चिंतन वृत्ति भी टिकी हुई थी। इसमें विष्णु जी की कहानियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। उनके पात्रों के पास जीवन के साथ संघर्ष करने के लिए जो अदम्य साहस है, वही आदर्श बनकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत होता है।

यथार्थवादी जीवन दृष्टिकोण का चित्रण – यथार्थवाद ने साहित्य को नई दृष्टि दी है। कहानी में आक्रोश तथा विद्रोह के रूप में उसकी अभिव्यक्ति दिखाई देती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में यथार्थवाद के कई कोण नजर आते हैं। कहानियों में यह दृष्टि कहीं समाजवादी यथार्थ रूप में, कहीं व्यक्तिवादी यथार्थ रूप में, कहीं अति यथार्थवादी प्रवृत्ति के रूप में तो कहीं आंचलिकता और कहीं अस्तित्ववाद के रूप लेकर मुखर हुई है। यथार्थवादी जीवन दृष्टि के कारण स्वातंत्र्योत्तर काल में कहानी को एक बृहद आयाम प्राप्त हुआ है। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर काल में आदर्शवादी जीवन-मूल्यों की अपेक्षा साहित्यकार जीवन का अधिकाधिक वास्तववादी चित्रण करना पसंद करता है जो आज साहित्य की चेतना बन गई है। आदर्श का साथ लेकर ही मूल्य समाज में मानवता की प्रस्थापना करते हैं मात्र इनको जिंदगी की कड़वी, सच्चाई से दूर नहीं लिया जा सकता। जहाँ वे कल्पना का सहारा लेते हैं वहाँ मूल्यों की वास्तविकता समाप्त होती है, उसका स्थान बेहद वायवीयता लेती है।

विष्णु प्रभाकर जी की 'जज का फैसला' कहानी में यही स्थिति चित्रित है। विमला अपूर्व सुंदरी है और उसका पति उसे जी जान से चाहता है किंतु एक दुर्घटना में विमला को गहरी चोटे लगती हैं और वह विद्रूप हो जाती है। पति उसकी इसलिए हत्या कर देता है कि अब वह सुंदर नहीं रही, उसे जीवित रहने का अधिकार नहीं रहा। जज पति को भी फांसी की सजा सुनाता है क्योंकि उसे जीवित रखना उसकी पवित्र भावना का अपमान है। कहानी में जज का फैसला वायवी लगता है फिर भी इससे यथार्थ का एक पक्ष निश्चित स्पष्ट होता है।

यथार्थ के चित्रण का एक दूसरा पक्ष भी विष्णु जी की कहानियों में उभरता है जो जीवन के प्रति देखने की एक नई दृष्टि देता है। दो महायुद्धों के भयंकर नरसंहार की प्रतिक्रिया स्वरूप निराशा, आश्रयहीनता की अनुभूति ने यथार्थवाद की पृष्ठभूमि तैयार की है और कहानी में आक्रोश तथा विद्रोह के रूप में अभिव्यक्ति हुई। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इसकी अभिव्यक्ति बिलकुल सहज और स्वाभाविक है। उनकी 'हमें गिराने वाले' कहानी निम्नवर्गीय जीवन की विवशता को स्पष्ट करती है। कहानी में नायक बिहारी के सपनें के माध्यम से उसके मन में छिपे आक्रोश को उमड़ते चित्रित किया है। बिहारी का यह कथन निम्नवर्गीय व्यक्ति के अंदर आज तक दबे आक्रोश को बाहर निकालता है, "हम ही अपनी इस बुरी हालत के लिए जिम्मेदार है, हम------ नहीं, नहीं क्या कोई जानबुझकर भी भूखों मरना चाहता है? क्या हम भूल रहे हैं? क्या हम जानते नहीं कि-----"।[६] बिहारी बाजार में पत्नी के साथ चला जाता है तो सब उसकी खिल्ली उडाते हैं यह उससे सहा नहीं जाता। बिहारी के मान में छिपा आक्रोश परिवर्तन की आशा तो करता है मात्र वास्तविक सच्चाई तो यह है कि आज मनुष्य के सभी व्यवहार धन से जुड़े हैं, जहाँ मनुष्यता का अंत होने जा रहा बिहारी जैसे निम्नवर्गीय व्यक्ति के जीवन का सही यथार्थ है। 'आजादी' कहानी भी इसी वस्तुस्थिति का तीखा अहसास कराती है कि जब तक हमारे समाज में जातिगत या सांप्रदायिक या वैचारिक संकीर्णता विद्यमान है, तब तक हमारी स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है।

'बच्चा माँ का था' कहानी में समाज में फैले पाखंड का विश्लेषण है। कहानी का नायक लाला जो ऊँचे कुल का है अपनी वासना की भूख मिटाने के लिए निम्न जाति की चंदो भंगिन को अपनी हाविश का शिक़ार बनाता तो है मात्र चंदो भंगिन लाला के पास बीमार बेटे को लेकर दवॉई मॉंने के लिए जाती है तो वह उसे घर से निकाल देता है। पूरी कहानी में एक ओर बस्ती का वास्तव चित्रण है तो दूसरी ओर उच्चवर्ग की झूठी जीवनशैली– जो समाज के वास्त यथार्थ को चित्रित करती है। 'जरूरत' कहानी में भी ऐसा ही वास्त यथार्थ चित्रित है जीवन को जीने के लिए जितनी जरूरतें है वह भी वे पूरी नहीं कर पाते। उनकी सहायता के लिए केंन्द्र खुलवाए जाते हैं लेकिन इसका लाभ उन्हीं को नहीं मिलता। कहानी

में इसी वास्तविकता पर व्यंग्य कसा है। सहायता केंद्र में आई एक बूढ़ी औरत खाने को न मिलने से मर जाती है। उसके क्रियाकर्म के लिए व्यवस्थापक एक कर्मचारी को बुलाकर पचास रुपये देकर चला जाता है। कर्मचारी क्रियाकर्म के लिए सामान खरीदना चाहता है तो रास्ते में मिले दो अधबूढ़े व्यक्तियों से वह सामान के बारे में पूछता है। वे अधबूढे इसी मौके का लाभ उठाकर कर्मचारी से पैसे छीनकर भाग जाते है। पुलिस उन्हें पकड़ लेती है तो उनके द्वारा दिया गया करारा उत्तर समाज के निम्नवर्ग के वास्तव को ही हमारे सामने लाता है। उनका कथन है "जी हाँ, हमने ही रुपये छीने हैं। माँगते तो हमें मिलते नहीं। लाश को टाट का कफन मिले या रेशम का, मिले भी या न मिले, क्या फर्क पडता है, पर हमें जीने लिए रुपयों की सख्त जरूरत थी।"[10] समाज में फैले पाखंड, धन के अभाव के कारण निम्नवर्गीय व्यक्ति को कभी-कभी मजबूरन भ्रष्टाचार की शरण लेनी पडती है। मात्र उच्चवर्गीय इसे सहजता से स्वीकार लेते हैं। 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी में नीना और कमल के पिता को मामूली सी रिश्वत के लिए जेल जाना पड़ता है मात्र कानून और न्याय के रखवाले कहें जाने वाले जज साहब स्वयं रिश्वत देकर अपनी पुत्री को सांस्कृतिक विभाग में डिप्टी डायरेक्टर और छोटे जज साहब के बडे बेटे की नियुक्ति इनकमटैक्स आफिसर के पद पर स्थापित करवा लेते हैं। विष्णु जी ने नीना और कमल जैसे छोटे बच्चों के मन में छिपे आक्रोश के माध्यम से समाज में फैले भ्रष्टाचार को नंगा करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार जिंदगी का एक बहुत बड़ा फलक इन कहानियों में उन्होंने प्रस्तुत किया है।

अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन की संस्थापना– जीवन तत्व या जीवन-सार के लिए अस्तित्व का होना आवश्यक है। निजी अनुभूति इसका बोध होती है। जीवन के प्रति वैयक्तिक दृष्टि की प्रधानता अस्तित्ववाद के विचारों का केन्द्र है। मनुष्य का जीवन वैज्ञानिक चिंतन, भौतिकता और जीवन की जटिलता से जकड़ गया है। इस संदर्भ में 'अस्तित्ववाद की मान्यता है कि मानवता पर आए इस संकट के कारण अनिवार्य हो गया है कि मानव को पुन. उसके प्राकृतिक आंतरिक गरिमा का सबल और बौद्धिक संबल दिया जाए जिससे वह संपूर्ण मानव बन सके।"[11] हिंदी साहित्य कोष में अस्तित्ववाद के संदर्भ में की गई मीमांसा इसी विश्वास को व्यक्त करती है, "अपनी समग्र व्यवस्था में मनुष्य ही अस्तित्ववादी धारणा मानवीय स्वातंत्र्य का संबल समर्थक है।[12] यही अस्तित्ववाद का मूल प्रेरक व्यक्तिपरक दृष्टिकोण है। जिसके मूल में रही तमाम पुरातन धारणाओं, जीवनमूल्यों, मान्यताओं, वैचारिक सारणियों को नकारकर नवीन भावभूमियों का संक्रमण करते हुए स्वातंत्र्योत्तर कालीन युगचेतना को स्वीकारा है।

इसी पृष्ठभूमि पर विष्णु प्रभाकर जी ने आधुनिक जीवन में आए अकेलेपन, पराएपन, अजनबीपन, अनास्था को अनुभूति के स्तर पर प्रत्यक्ष और

परोक्ष रूप में कहानियों का कथ्य बनाया है। स्वच्छंद जीवन के प्रति युवा पीढ़ी का लगाव रहा है। आज यह वर्ग अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा चाहता है। अपने दायित्व के लिए संघषशील है। 'भटकन और भटकन' कहानी में उन्होंने हिप्पी-संस्कृति के जीवन मूल्यों को खुलकर चुनौती दी है। मनःशांति पाने साधना केंद्र में आई नारियों का खुलकर शरीर व्यापार देखकर साधना बौखला उठती है। सर्वजीत को साधना द्वारा दिया गया करारा उत्तर विष्णु जी के कहानी में हिप्पी संस्कृति के प्रति गहरे विषाद को ही व्यक्त करता है। "जब दो शरीर सैकड़ों मीलों की मानसिक दूरी के साथ मिलते हैं, तो इस अर्थहीन मिलन में न सौंदर्य होता है और न सत्य। वह न तन को बांध पाता है, न मन को। इसी को कहते हैं अपवित्र होना। यही अश्लीलता है।[13] 'एक मौत समंदर किनारे' में उसके किए संघर्ष का चित्रण है। उसकी जीवन के प्रति देखने की दृष्टि उसके संघर्ष को गहरा बना देती है। रूढ़ प्यार से जब स्त्री उब जाती है तो उसे छोड़कर मुक्तता चाहती है पर अंत तक उसकी एक जैसी स्थिति नहीं रह पाती और फिर वह नए की तलाश में निकलती है। जो उसका अंत करा देता है। जाबाला का यह कथन युवकों में बढ़ते स्वच्छंद दृष्टिकोण को व्यक्त करता है, "मैं किसी भी दृष्टि में 'आश्रिता' नहीं बनना चाहती। सागर की लहर की तरह मुक्त रहना चाहती हूँ। उसे कोई बांध सका है ? न न कोई नहीं। प्रश्न नहीं! इतना ही जान रखो कि विवाह से पूर्व हम हमेशा गहरी अनुभूतियों की चर्चा करते हैं लेकिन कुछ ही दिनों बाद वह सब कुछ जो गहरा है फिसल जाता है और सतह पर के कुछ द्वंद्व बचे रह जाते हैं।"[14] 'एक अनचीन्हा इरादा' कहानी एक ऐसे ही जीवन के प्रति अनास्था की दृष्टि से देखने वाले बच्चे की मानसिकता को चित्रित करती है। माँ-बाप के रोज के झगड़ों से वह तंग आ गया है और वह अपने जीवन को ही 'एक अनचीन्हा इरादा' समझकर जीना पसंद करता है। कहीं उसने अपने अस्तित्व को ही खो दिया है। प्रस्तुत कहानियों में विष्णु प्रभाकर उन मानवीय घातक एवं पतनशील स्थितियों से साक्षात्कार कराते हैं जिनके कारण मानवीय अस्तित्व संकटमय है।

संत्रास-असुरक्षा बोध की धरोहर– भारतीय मन-मानस में व्याप्त कुंठा, घुटन, हताशा, भय, असुरक्षा की मिश्रित प्रतिक्रिया है। इसकी पृष्ठभूमि में देश-विभाजन, सांप्रदायिक दंगे, युद्ध एवं अकाल की भयावहता, भ्रष्टाचार, मंहगाई तथा बेरोजगारी का क्षोभ है। यह महानगरीय जिदंगी की विषमताओं तथा यांत्रिकी प्रणाली की दुष्परिणामों के कारण उत्पन्न हुई असुरक्षा के बोध की धरोहर है। निजी रिश्तों और परिवार के विघटन ने हर आदमी को अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए बेसहारा छोड़ दिया है। आज का व्यक्ति मानसिक और नैतिक संघर्ष में से गुजर रहा है। व्यक्ति के निजी जिदंगी और उसके विचार एवं कर्म की स्वतंत्रता के नष्ट होने के खतरे ने भय और आतंक को जन्म दिया है। जिसमें व्यावहारिक जीवन

में हमारे मूल्य टूट रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में मानव जीवन की इस प्रकार बदली हुई स्थिति को विष्णु जी ने अपनी रचनाओं में भली-भांति चित्रित किया है। उनकी कहानियों में इसकी सहज स्वाभाविक प्रस्तुति होती है।

सांप्रदायिक दंगों के कारण भूमि, परिवार ध्वस्त तो हो गए लेकिन इन दंगों ने मेहनतकश वर्ग की पूरी जीवन प्रणाली को अस्त-व्यस्त कर दिया। विष्णु जी की रचनाओं में मेहनतकश वर्ग की हताशा की सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। 'तांगेवाला' कहानी उनमें से एक प्रतिनिधि कहानी है। दंगों के बाद थोड़ी शांति होने पर गरीब तांगेवाले अपने रोजी रोटी की तलाश में निकल पड़ते हैं। लेकिन ऊपरी तौर पर फैली शांति अंदर से भभकती अग्नि की तरह लोगों के मन में वैसी ही बसी है। तांगेवाले अहमद के वक्तव्य से व्यक्त यह तल्खी स्वातंत्र्योत्तर काल में बदले अमानवीय दृष्टि को चित्रित करती है–' ऊपर से देखने में सब कुछ पहले जैसा ही है, लेकिन क्या वास्तव में सब कुछ वहीं रह गया है ? वहीं शहर हैं वे ही दुकानें...वे ही आदमी हैं। पर न जाने आज इनकी ऑखों में क्या है। वे एक दूसरे को ऐसे देखते हैं, जैसे सदियों के दुश्मन हैं।"[15] अहमद का यह वक्तव्य निम्नवर्ग की कुंठा को ही व्यक्त करता है। चारों ओर शक और नफरत के साए फैले हुए हैं। 'देशद्रोही' कहानी विभाजन से जुड़ी क्रूर मानसिकता के बीच जीवित मानवीय चेतना की खोज करती है। डॉ अस्थाना के यहाँ सहपरिवार आए मेहमान डॉ खान और उनके परिवार देश के दुश्मन म्लेच्छों के नाश के हेतु अवसरवादी जनता टूट पडती है। डॉ० अस्थाना उन्हें बचाने की जी-जान से कोशिश करते हैं मगर डॉक्टर की हत्या कर अंदर जाने वाले उन मुसलमानों की भी निर्भयतापूर्वक हत्या करते हैं जिन्हें डॉक्टर ने शरण दी थी। 'पड़ोसी' भी इसी त्रासदी को चित्रित करती हैं। कहानी में एक मुसलमान मोहन को ही मारने आते हैं। मोहन से उनका कोई व्यक्तिगत वैमनस्य नहीं, किंतु वे प्रतिशोध के लिए एक हिंदू चाहते हैं। मुसलमान कुंजडा, मोहन को बचाने के लिए अपनी जान खतरे में डाल देता है। इस प्रकार विष्णु जी की रचनाओं में देश-विभाजन से उत्पन्न सांप्रदायिक वैमनस्य की विभीषिका की त्रासदी से ग्रस्त मानव के चित्र मिलते हैं।

आपातकाल में भी अपनी पूरी जिंदगी ध्वस्त हो जाने के कारण करुणा से भरी वास्तविक जिंदगी जीने वाले परिवारों का चित्रण विष्णु प्रभाकर जी करते हैं। 'एक माँ-एक देश' कहानी की मृणाल अकाल की भयावहता से त्रस्त है। बच्चे की परवरिश के साथ उसके भविष्य की चिंता उसे सताती है। सभी गांव की स्थिति इससे अच्छी नहीं है। ऐसी स्थिति में दीदी मृणाल को शहर जाने की सलाह देती हैं। आपातकाल में फंसी मृणाल की अब तक दबी हताशा मानो पूरे गांव की बेसहारा, असहाय स्थिति को चित्रित करती है। मृणाल का यह कथन है, "पर यह भूख क्या परमात्मा ने भेजी है ? आदमी आदमी को खाता है।"[16] 'लैंपपोस्ट के नीचे

एक लाश' कहानी आपातकाल की क्रूर वास्तविक बेबसी को चित्रित करती है। कहानी में एक वृद्ध पिता अपने परिवार की भूख मिटाने के लिए अपनी बच्ची तक को दरिंदों के हाथ बेच देता है। परिवार को बचाने के लिए दरिंदों से मिले पैसों से सामान खरीदता हैं 'नई पौध' कहानी में स्वातंत्र्योत्तर विषम स्थितियों का विक्षोभकारी रूप चित्रण है। कहानी में दरिद्रय की विवशताओं से हार कर अपनी संततियों की हत्या की जाती है। मंहगाई और बेरोजगारी के कारण आज जन मानस में भी व्याप्त कुंठा है जो समाज में एक अभिशाप बनकर रह गई है।

विसंगति-निरर्थक होने की अनुभूति बोध-- व्यक्ति जब अपने आपको परिवेश के प्रति सक्रिय नहीं पाता तो उसे निरर्थक होने की अनुभूति होने लगती है। यह अनुभूति विसंगति बोध को जन्म देती हैं। जिदंगी और मृत्यु के भयावह संकट से अधिक अस्तित्व, अस्मिता, अधिकार का संघर्ष व्यक्ति को व्यर्थताबोध करता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी में पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के संदर्भो में यह बोध चित्रित हुआ हैं। विष्णु जी ने कहानियों में इसके चित्रण के साथ विसंगतियों के बीच सही जिंदगी की पहचान एवं सही आदमी की पहचान को कहानी में ढूँढ़ने का प्रयास किया है।

विष्णु प्रभाकर जी की 'खिलौने' कहानी के प्रोफेसर सुभाष और दीपा दोनों ऐसे माँ-बाप हैं जो चाहते हैं कि अपना बेटा सुनील उनके द्वारा प्रस्तावित लड़की मधुमिता से शादी करें। बेटे को यह बात पसंद नहीं आती। वह विदेश में जाकर स्तावना नाम की किसी दूसरी विदेशी लड़की से शादी करता है। दीपा भी निःसंग भाव से देखती है। सुभाष की खीझ स्वाभाविक रूप से इन शब्दों में उमड़ आती है, "कोई भी मेरी बात नहीं सुनता। समझते हैं, जैसे मैं हूँ ही नहीं और सच भी है, मैं हूँ ही कहाँ?"[36] 'फांसिल, इन्सान और' कहानी में भी लगभग यही भाव चित्रित हुआ है। कहानी के विनोदशंकर स्वयं एक अभिनेता होने के नाते बेटों से भी एक स्वाभाविक मान्यता है कि वे भी ऊँचे इन्सान बनें, कुछ करके दिखाए। इसीलिए वे अपने मित्र, मेडल तक की एक प्रदर्शनी का आयोजन करते हैं लेकिन बेटों द्वारा उनके स्वाभाविक उद्देश्यों को समझा तक नहीं जाता। वह हंसी-मजाक से पिता को म्यूजियम की वस्तु मानकर चलते हैं। इसमें पत्नी की भी सहायता उनको नहीं मिलती। विनोदशंकर से यह सब सहा नहीं जाता लेकिन उनकी पत्नी सरला मात्र चुपचाप यह सहती है। विनोदशंकर जी की निष्क्रियता इन शब्दों में व्यक्त होती है, "मोती सीप से जन्म लेते हैं, परंतु-जाने दो, हम इन्सान हैं, केवल हाड मास के पुतले नहीं।"[37] विष्णु जी ने विनोदशंकर के माध्यम से सही आदमी की पहचान को ढूँढ़ने का प्रयास किया है। 'एक रात एक शव' कहानी भी पिता पुत्र के संघर्ष के कारण माँ और बेटे के जीवन के प्रति बदलती दृष्टि को चित्रित करती है। पिता यह नहीं चाहता कि बेटा सुरेश विदेश में रहें दोनों में झगड़ा होता है। पिता यह सदमा बर्दास्त नहीं करते। इसी में हृदयगति बंद हो जाने के कारण

उनकी मृत्यु होती है। उसकी यह धारणा है कि अपने पिता ने पिता समान अपने भाई की हत्या की थी। इसीलिए बेटा अपने भ्रष्ट पिता का पिता के रूप में स्वीकार नहीं करता और विदेश चला जाता है। इस प्रकार विष्णु जी ने इन कहानियों द्वारा मानव जीवन में व्याप्त विसंगतियों का चित्रण तो किया है, साथ-साथ उनसे सच्चे मानव की तलाश की है जो जीवन की एक नई दृष्टि बन जाती है।

आक्रोश की अभिव्यक्ति– आज व्यक्ति अपने देश से, समाज से, परिवार से यहाँ तक की अपने आप से कटकर चलने को बाध्य है। उसे जीवन को बोझ समझकर उठाना पड़ता है। एक क्षण का सार्थक जीवन पाने के लिए उसे सौ बार मृत्यु का वरण करना पड़ता है। वह कभी चिल्लाकर आक्रोश प्रकट करता है तो कभी तटस्थता का भाव ग्रहण कर एकदम ठंडा पड़कर आक्रोश की अभिव्यक्ति करता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में आक्रोश के विभिन्न स्तर की अभिव्यक्ति का चित्रण मिलता है।

'हमें गिरानेवाले' कहानी का बिहारी गरीबी के कारण त्रस्त है। जब वह अपने मालिक के कमरे को, चीजों को देखता है तो खीझ उठता है। एक दिन वह अपने पत्नी के साथ बाजार चला जाता है तो एक युवक हँसकर उसकी गरीबी का मजाक उडाता है। भगवान के दर्शन कराने मंदिर चला जाता है तो मंदिर का आदमी उसे रोकता है। एक पैसा दक्षिणा डाल देता है तो एक पैसे में भगवान के दर्शन नहीं होते कहकर उसे भगा दिया जाता है। यह उससे सहा नहीं जाता। रास्तें में एक मोटर से टकरा जाता है तो वह उस नचाने वाले युवक पर गुस्सा उतारता है। गुस्से में आज तक दबी हुई-सी खीझ वह व्यक्त करता है, "हमें नीचे गिरानेवाले हम नहीं हैं, तुम हो! तुम जो दया, परोपकार, सेवा और न जाने क्या नया नाम लेकर हमें दबतो जा रहे हैं! हमें उठने ही नहीं देते। हमें अपने पैरों पर खड़े ही होने नहीं देते..."[१६] स्वतंत्रता के बाद मानव के प्रति देखने के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। केवल अर्थ केंद्रित सत्ता वृत्ति से मानव-मानव में भेद निर्माण होते गए। स्वतंत्रता पूर्व मांगल्य का जो सपना देखा था वह बिलकुल चकनाचुर होता गया। इसी कारण स्वार्थ वृत्ति को दबोचकर नष्ट करने की तीव्र इच्छा शक्ति बनती गई। मात्र इसमें जो दीन और लाचार थे वह दबे हुए आक्रोश को केवल व्यक्त करने के सिवा कुछ नहीं कर सके। इसीलिए उनकी परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो पाया। 'रहमान का बेटा' कहानी में सलीम के माध्यम से विष्णु जी ने निम्न-मध्यमवर्गीय व्यक्ति की विवशता के साथ उसके आक्रोश को व्यक्त किया है जो एक ओर सड़ी-गली जिंदगी से सार्थक जिंदगी पाने की माँग करता है।

स्वतंत्रता के बाद भी लोगों की वृत्ति नहीं बदली। आज भी निम्न वर्ग के लिए 'सुराज' स्वप्न ही रहा, वह सत्य नहीं बना। 'सुराज' कहानी के मिश्र जी

की यही व्यथा है जो आक्रोश बनकर पूरी कहानी में उमड़ती है। पत्नी की बीमारी में अस्पताल में झगडू मिश्र को दवा नहीं मिलती। दवा के अभाव में वह मर जाती है लेकिन साहू जैसे सेठ को डॉक्टर सारी दवा पैसे लेकर दे देते हैं तो साहू तल्खी से अपनी व्यथा व्यक्त करते हैं, "आजाद हिदूस्तान! कमीने कहीं के! आजादी से मुँह काला करते हैं।"[२०] 'तांगेवाला' कहानी का अहमद भी इसी तरह आक्रोश प्रकट करता है। अपना पेट पालने के लिए तांगा चलाने का काम करता हैं मुसलमान होने के कारण कोई भी हिंदू उसके तांगे में नहीं बैठता। घर पर बच्चा बीमार होते हुए भी पैसों के अभाव के कारण ठीक समय पर दवा भी नहीं ला सकता। दिनभर की कमाई के केवल तीन आने लेकर उससे दवा खरीदकर घर जाना चाहता है। तो रास्ते में पुलिस उसे पकड़कर थाने में ले जाती है। उसका खून बौखला उठता है फिर भी बेटे की बीमारी की मजबूरी से ठंडा पड़ जाता है। घर जाकर देखता है तो इकलौते बेटे की मौत देखता है। हताश होकर रहने के सिवा उसके हाथ में कुछ नहीं आता।

तटस्थता : अस्तित्व संकट का एक और कारण– विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में स्वतंत्रता के बाद मानव जीवन स्तर की अभिव्यक्ति को जितनी निकटता से चित्रित किया गया है उतनी ही तटस्थता से वे जीवन का चित्रण करते दिखाई देते हैं। वह स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों, परिस्थितियों, मानसिक भाव-जगत् को कहीं-कहीं अत्यंत तटस्थता से चित्रित करते हैं, जिसके कारण कहानी में विघटित मूल्यों एवं अस्तित्व के संकट को व्यापक संदर्भों में रूपायित किया गया है। तटस्थता अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की कड़ी है, जो व्यक्ति और समाज की संवेदना को जोड़ने का काम करती है। रचनाकार यदि तटस्थ रहकर अपने अनुभवों को प्रस्तुत करता है तो उसमें अधिक व्यापकता और विशिष्टता आ जाती है। विष्णु जी की 'रायबहादुर की मौत' कहानी इसका सक्षम प्रमाण है। कहानी में रायबहादुर की मृत्यु के बाद उनके प्रति झूठी सहानुभूति का भाव जताकर समाज के पाखंड को एक रूप से खोलने का प्रयास किया है। महानगरीय जीवन में व्याप्त विसंगति, एक दूसरे के प्रति झूठी सहानुभूति और तटस्थता कहानी का भाव जगत् चित्रित करती है। कहानी में मैं और मित्रों में चल रहा वार्तालाप लेखक ने अच्छी तरह चित्रित किया है, "मैंने कहा, विज्ञान के युग में आने की आवश्यकता नहीं।" "क्यों?" "क्योंकि आना सहानुभूति के लिए होता है और वह टेलिफोन द्वारा बड़ी सरलता से भेजी जा सकती है।" "और वह प्यारी भी लगती है।"--- तीसरे मित्र बोले। दूसरे साथी ने कहा, उसी प्रकार जिस प्रकार नाटक के सामने चल चित्र प्यारा लगता है।"[२१] 'पुल टूटने से पहले' कहानी में विष्णु जी ने 'मैं' के माध्यम से उच्चवर्ग के द्बारा निम्नवर्ग की की गई घोर वितृष्णा का चित्रण किया है। लेखक इस वर्ग तटस्थता से जीवन की विडंबना चित्रित करता हैं। कॉफी हाऊस में एक प्याला कॉफी पीने के लिए भी उसके पास पैसे नहीं। वह भी अपने

आपको अंत तक बचाने का प्रयास करता है। शव पर डाले गए मखाने से जेब भरता है। उसके मन में आए यह विचार भावों को स्पष्ट करते हैं, "मात्र साहस से ही नहीं लीला जा सकता संस्कारों को, पर उस क्षण मेरे पास वह कुछ भी था जो उन्हें लील सका, जो हर युग के संस्कारो को लीलता है। परिवेश और परिस्थितियों का दबाव ही तो क्रांति को जन्म देता है, लेकिन अक्सर इस दबाव की पहचान इतनी देर में होती है कि हम तब तक क्रांति करने लायक नहीं रह जाते ——"[२२]

मृत्यु बोध से उत्पन्न संत्रास की स्थिति– यह वैचारिकता अस्तित्ववाद से संबद्ध है। आतंक से प्रेरित मृत्युबोध चलित संत्रास भी हो सकता है पर एक स्वाभाविक एवं सामाजिक मृत्युबोध भी है जो इससे भिन्न होकर अस्तित्व कम है। एकाकीपन की पीड़ा से पीड़ित व्यक्ति की हताशा, हत्या और आत्महत्या में परिवर्तित हो सकती है। यांत्रिकीकरण ने आज मनुष्य को संत्रास से त्रस्त कर दिया है जीवन-मृत्यु का आदिम संघर्ष स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में पूरी तरह व्याप्त है। आज का व्यक्ति जीवन को व्यर्थ का बोझ मानता है और मृत्यु का स्वीकार करता है। अर्थहीन जीवन की सार्थकता केवल मृत्यु में हो सकती है इसलिए मृत्यु की कामना मुक्ति की कामना है। मृत्यु एक ऐसा अंतिम विकल्प है जिससे स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा संभव हैं। संत्रास या मृत्यु को आधुनिक जन-जीवन से काटकर नहीं समझा सकता।

विष्णु प्रभाकर जी की 'नई पौध' कहानी साक्षात नरक भोग की गरीबी तथा संत्रास से पीड़ित एक परिवार की व्यथा का चित्रण करती है। प्रस्तुत कहानी में एक भाविता का स्वप्न में अपने तीन बच्चों की हत्या करने के बाद दिया लिखित बयान उसकी संत्रस्त मानसिकता को चित्रित करता है। उसकी गरीबी की पीड़ा ने स्पप्न में भी उसे त्रस्त किया, "कई दिन एक सोचता रहा कि मैं आत्महंत्या करूँगा। लेकिन आत्महत्या से तो बच्चों की और भी दुर्गति हो जाएगी। तो क्या करूँ ? मैं उनको जीने का अवसर नहीं दे सकता। मरकर उनकी रक्षा नहीं कर सकता। तो फिर राष्ट्र और मानवता के प्रति अपना कर्तव्य कैसे पूरा करूँ ? क्या करूँ ? आखिर क्या करूँ ? बहुत सोचने के बाद इस निर्णय पर आया कि हम सब को समाप्त हो जाना चाहिए। हमारे रहने या न रहने से कोई अंतर नहीं पड़ेगा।"[२३] 'एक और कुंती' कहानी की नायिका दंगों में फँस कर अपने पति को गँवा देती है। दरिंदों द्वारा पति की मृत्यु और बार-बार बलात्कार की पीड़ा का दर्द उसे सताता है। वह इस पीड़ा से झूठी सहानुभूति दिखाने वाले पुरुषों से विवाह कर फिर से नई जिंदगी की शुरुआत तो करना चाहती है फिर बार-बार फँसती जाती है और बच्चों को लेकर अनाथाश्रम में आ जाती है। वहाँ भी उसका मन नहीं लगता। अर्थहीन जीवन जीने की अपेक्षा क्यों न हम इसे समाप्त कर दे इसी विचार से त्रस्त तो हो जाती है मगर बच्चों की चिंता से वह आत्महत्या का विचार

छोड़ देती है। उसकी संत्रस्त मनोदशा को बिलकुल स्वाभाविकता से चित्रित किया है। विष्णु प्रभाकर जी ने सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में पात्रों, परिस्थितियों और उसकी मनःस्थितियों द्बारा मृत्युबोध की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति को अधिक यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

ईश्वरीय बोध की बदलती संकल्पना– विगत समाज में मानव का स्थान गौण था। धर्म की सत्ता प्रमुख थी। मानव का आस्तित्व अमान्य था। इसलिए समाज में धार्मिक मूल्यों की प्रधानता रही। ईश्वर का भय जन-साधारण में व्याप्त था। इसी ईश्वर-भय या धर्म-भय को 'विवेक' के नाम से समाज में प्रतिष्ठा मिली। व्यक्ति के कर्म, जीवन के प्रति मोह, ईश्वर में आस्था जगाता रहा। 'नए उपन्यासों में नए प्रयोग' ग्रंथ में डॉ० दंगल झाल्टेजी का वक्तव्य इस बात की पुष्टि करता है। उनका कथन है, "सृष्टि के रहस्यों की अज्ञता, स्वरक्षा की भावना और भय तथा वर्ग-बद्ध समाज रचना से निर्मित आर्थिक वैषम्य आदि अनेक कारणों से ईश्वर एवं धर्म-संबंधी कल्पनाओं का विक होता गया।"[२४] परिणामस्वरूप विगत समाज में कालबाह्य जर्जर रूढ़ियों के पालन में ही व्यक्ति धर्म तथा ईश्वर को उचित समझता था।

आज आधुनिक चिंतन के विकास के साथ–साथ समाज में मानव को प्रतिष्ठा मिली। ईश्वर तथा धर्म चिंतन के संबंध में परिवर्तन हुआ है। मानव धर्म की फिर से एक बार प्रस्थापना हुई। इसका संबंध ईश्वर से न होकर मानव से है। दया, करुणा, संवेदना आदि मानवीय गुणों को विश्व में पुनः महत्त्व दिया जाने लगा। परिणामस्वरूप आज ईश्वरीय सत्ता के प्रति अविश्वास का भाव नई पीढी में अधिक बढ़ता जा रहा है कहानी साहित्य में भी सत्य, त्याग, सदाचार, धर्म, नैतिकता एवं ईश्वर के संबंध में नकारात्मक वर्णन अधिक मिलता है।

विष्णु प्रभाकर जी का साहित्य नए-पुराने के बीच सेतु का काम करता है। वह अपने समस्त साहित्य में मानवतावाद का समर्थन करते दिखाई देते हैं। धर्म की प्रतिष्ठित मान्यताओं का विघटन तथा नई पीढ़ी में नास्तिकता की बढ़ती प्रवृत्तियों का चित्रण भी उन्होंने अपनी कहानियों में अधिक विस्तार से किया है। 'शमशू मिस्त्री' कहानी के शमशू मिस्त्री का चरित्र उदार मानवीय दृष्टि का परिचायक है। वह कहते हैं कि, उनके भतीजे अब पुरानी परंपरा से कट गए हों, मिस्त्री अभी भी कहीं-न-कहीं उससे जुड़े हैं। इसी कारण कहानी के मैं के मजाक में यह कहने पर की "वह शेख मुश्ताक से अपनी भतीजी या भावजी का निकाह पढ़ा दे, वह क्रोध से काँपने लगते हैं। उनके अनुसार जिनकी कोई जात नहीं होती, वह शेख होते हैं। "हम रजपूत हैं। हमें सब कुँवर कहते हैं———"[२५] वह मैं से नाराज होकर चले जाते हैं लेकिन कुछ ही दिनों बाद एक दावत का निमंत्रण देने उसके दफ्तर पहुँचते हैं।" मैं दुबारा माफी माँग लेने पर वह गहरे अपनत्व से मुस्करा उठते हैं। उस मुस्कान में उनका मुक्त हृदय झलक रहा है। हमारे

पंडों-पुरोहितों, संतों-महंत ने स्वार्थ-साधन के लिए जो अनेक भ्रांत धारणाएँ समाज में प्रचलित की और समाज ने भी उस पर ऑखें मूँदकर विश्वास किया था। उसी भ्रांत धारणाओं को प्रेम, सौहार्द के रूप में बदलने का प्रयास विष्णु जी की कहानियों में किया गया है।

'अधूरी कहानी' का अहमद मित्र प्रेम के नाते ईद के दिन अपने मित्र दिलीप को सवैया लाकर देता है। दिलीप का भाई उसे नकारता है, तब अहमद के हाथ का कटौरा गिर पडता है उसको एक क्षण ऐसा लगता है, मुहब्बत की यह लकीर आज बिलकुल ही बदल गई है। अहमद के शब्दों में "इस दुनिया में मिटने वाला कुछ नहीं हैं। मुहब्बत तो हरगिज नहीं सिर्फ हमारी गफलत से कभी-कभी उस पर परदा पड जाता है।"[२६] विष्णु प्रभाकर जी की यह कहानी जातीय संकुचितता का विरोध कर मानवता की प्रस्थापना करना चाहती है। 'मेरा बेटा' कहानी में भी उन्होंने धर्म भेद की निस्सारता को रेखांकित किया है। डॉ० हसन और डॉ० शर्मा जब अस्पताल में कानपुर के रामप्रसाद को जीवनदान कर लौटते हैं, उन्हें पता चलता है कि रामप्रसाद को मुसलमानों ने मारा, हसन के दादा अत्यंत व्याकुल हो उठते हैं। 'मैं' उसके पास जाऊँगा, आखिर वह मेरा बेटा है कोई गैर नही, मैं मुसलमान हूँ और वह हिंदू, वह मुझसे, मेरे बच्चों से नफरत करता है---- वह भी मेरा बच्चा है।----- मैं उससे पुछूँगा, मैं मुसलमान हो गया तो क्या हुआ, हमारा बाप बेटे का नाता तो नहीं टूट सकता, आखिर उसकी रंगों में अब भी मेरा खून बहता है --"[२६] 'इतनी-सी-बात' कहानी में विष्णु जी ने इसी सच्चाई को रेखांकित किया है कि इन्सानी रिश्तों की बुनियाद किसी जाति, धर्म के रिश्तों से पक्की होती है। इसी कारण मुसलमान युवक दंगों में डाकुओं के हाथों फँसे एक हिंदू स्त्री डॉ० विनीता शर्मा को छुडाता है और स्वयं घायल होकर उसको बचाता है।

इस प्रकार विष्णु जी की कहानियों में समकालीन विभिन्न समस्याओं, गतिविधियों को जीवंत रूप में चित्रित किया है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने विराट युगबोध को विभिन्न धरातलों पर समझा और व्यक्त किया है। विष्णु जी की कहानियॉ भी इन विभिन्न धरातलों पर युगबोध को समझती हैं और उसे युगीन सत्य के साक्षात्कार के साथ प्रस्तुत करती हैं।

समय के प्रवाह में कहानीकार जितना अधिक आत्मजागृत होता है उतना ही वह परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध रहता है। सामाजिक परिवर्तन का संबंध समाज से रहता है इसलिए सामाजिक संगठन, सामाजिक ढाँचा, सामाजिक संबंध या समाज में होने वाले अंतरों को पहचानने के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रभाव कहानीकार की चेतना पर रहता है। कहानीकार की यह चेतना काल को प्रभावित करती है। इस दृष्टि से समाज की

विभिन्न पृष्ठभूमि को कहानीकार अपनी अभिव्यक्ति की चेतना के स्तर पर काल को प्रभावित करने वाली चेतना को किस तरह चित्रित करता है यह देखना भी जरूरी हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय में विष्णु प्रभाकर जी की रचनाओं में उनकी चेतना को सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों से देखा गया है।

सामाजिक जीवन की प्रस्तुति– भारतीय समाज का युगबोध की दृष्टि से आंकलन समाज, परिवार और व्यक्ति की इकाई के रूप में किया जा सकता है। भारतीय समाज को ग्रामीण और शहरी समाज के रूप मे देखा जाए तो परिवर्तन दोनों ही स्थानों पर दिखाई देता है। स्वतंत्रता के पश्चात् जीवनमूल्य बदलते गए समाज की जाति-व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। आर्थिक दबाव, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के कारण भारतीयों ने जातिय सीमाएँ तोडकर विभिन्न व्यवसाय अपनाएं। रहन-सहन, परंपराओं, रूढ़ियों मे परिवर्तन आया। नारी की स्थिति में सर्वाधिक परिवर्तन हुआ। इसी के साथ अंतर्विरोध भी मिलते हैं। समाज के व्यापक परिवर्तनों ने परिवार और समाज के परंपरागत संबंधों पर प्रश्न चिह्न लगा दिए हैं। विघटित मूल्यों के परिणामस्वरूप परंपरागत स्थापनाओं और आदर्शों का खंडन हुआ है। समाज परिवर्तन की इस पृष्ठभूमि पर युगबोध का समाज, परिवार तथा व्यक्ति के संदर्भों में अध्ययन किया जा सकता है। आज जीवन की सुख-समृद्धि के बीच नगर का व्यक्ति अकेलेपन, खालीपन से व्यथित है तो गॉव का व्यक्ति अपनी विषम आर्थिक स्थितियों और रूढिवादी मूल्यपरंपराओं से संघर्ष करता हुआ मानवीय संवेदना में जीने की कोशिश कर रहा हैं लेकिन आज समाज में दोनों स्थानों पर परिवर्तन हो रहा है। इसमें सबसे बड़ा परिवर्तन जातिप्रथा के विघटन में दिखाई देता है।

जातिप्रथा तथा अस्पृशता निवारण– भारतीय समाज में जातिप्रथा एक अभिशाप रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जातिप्रथा को समाप्त करने के लिए सहयोग तथा आंतर्जातीय विवाह आवश्यक माना गया है। जातिप्रथा के संबध में उभरती नई उदार नीति का समर्थन किया गया है। फिर भी स्वतंत्रता के बाद सवर्णो द्वारा निम्न जातियों पर किए गए अत्याचारों में कोई कमी नहीं आई हैं। अब निम्न जाति अपने शोषकों तथा शोषण के कारणों को पहचानने लगी है। विष्णु जी की रचनाओं में जातिप्रथा का खंडन तो किया गया है साथ-साथ वह इसके मूल को उखाडकर फेंकने के लिए प्रवृत्त करते हैं। 'रहमान का बेटा' कहामी में उच्च जाति का निम्न जाति के प्रति दुर्व्यवहार क्यों है यह बताते हुए स्पष्ट किया है कि गंदगी, अशिक्षा, सामाजिक व्यवहार इसके लिए दोषी हैं। 'रहमान का बेटा' के माध्यम से विष्णु जी ने निम्न वर्ग में जागृति निर्माण करने का प्रयास किया है। रहमान के बेटे का निम्नवर्ग के बीच किए भाषण का यह वक्तव्य हैं, "हम गंदे रहते हैं, हम अनपढ़ हैं, हम चोरी करते हैं, हमें बोलना नहीं आता, हमें खाने को नहीं मिलता इसमें हमारा ही दोष है। बड़े लोग हमें जानबूझकर नीचे गिराए जाते हैं

और हम बोले ही नहीं।"[२८] 'हमें गिरानेवाले' कहानी में नेता के भाषण द्वारा इसी जाति के प्रति किए गए दुर्व्यवहारों को इसी जाति को ही जिम्मेदार ठहराया है। नेता का भाषण सुनकर कहानी का नायक बिहारी, जो निम्न जाति का है सचेत हो उठता है नेता का यह कथन है, "यह सच है वे तुम्हें कुछ नहीं कह सकते हैं। यह तो तुम आप हो, जो अपने को नीचे गिराते जा रहे हों। अपने अधिकारों को आप ही छोड़कर कहते हो हम इस योग्य नहीं हैं। तुम्हीं हो जो अपनी विद्या, बुद्धि और शक्ति से इन्कार करते हो। तुम्हारे पास सबकुछ है और तुम कहते हो हम गरीब, अज्ञानी और भूखे हैं ——— ।"[२९] नेता के भाषण से बिहारी के मन में आक्रोश जग जाता है जो उसक अंदर दबी चेतना को बार-बार जागृत करता है।

दहेज प्रथा का खंडन– समाजिक रूढियॉ समाज के ह्रास का कारण होती हैं। इन रूढियों को नकारने की क्षमता सभी में नहीं होती। इनका विरोध करने के लिए प्रखर व्यक्तित्व एव जागरूक चेतना का होना अनिवार्य है लेकिन समाज में इसी का अभाव है। सामाजिक रूढियाँ ही दहेज की प्रथा को बढ़ावा देती हैं। विष्णु जी की रचनाओं मे कई पात्रों ने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाते हुए उसे चुनौती दी है। मध्यवर्गीय लडकी के विवाह के पीछे दहेज की समस्या के साथ उसका सौंदर्य भी समस्या बन जाता है। आज असुंदर लडकी के साथ धन ही गुण है। इसलिए वर खोजने में पर्याप्त कठिनाई अनुभवित की जाती है। 'अंतर्वेदना' कहानी की चंद्रा पढी-लिखी, सुशिक्षित-सुचरित्र है लेकिन सौंदर्य की स्वाभाविक पूँजी से वचित है, इसलिए विवाह के बाजार में अपना मूल्य बढाने के लिए उसे प्रयत्नशील रहना पडता है। कहानी के नायक से चद्रा शादी के बारे में पूछती है तो वह उसकी अन्तर्वेदना सुनकर भी उसे नकारता है। केवल झूठी सहानुभूति आज के समाज की प्रतिष्ठा मात्र बन गई है। तमाम पुरुष वर्ग अच्छे गुणों के बजाय सौंदर्य की झूठी कल्पना से प्रभावित होने के कारण यह समस्या बन गई है। सामाजिक बोध के रूप में विष्णु जी अपनी 'युगांतर' कहानी में हल सुझाते हैं। कहानी में माता-पिता के विवाह में दहेज की समस्या से विवाह टूटने की नौबत आ जाती है। गॉव के सरपंच इस समस्या से विवाह टूटने से बचाते, जब सालों बाद वहीं समस्या बेटी के विवाह के समय खडी हो जाती है, तो बेटी स्वयं इस प्रथा के विरूदध आवाज उठाती है। समस्याएँ तो सालो-साल चलती आ रही हैं मात्र उसके प्रति अब उन्हीं नवयुवकों के विचारों में परिवर्तन की आवश्यकता है 'युगांतर' कहानी इसी विचार को स्पष्ट करती है।

अंतर्जातीय विवाह की बदलती धारणाएँ– परंपरागत विवाह की जातिगत संकीर्णताओं की बढ़ती हुई उपेक्षा के विरुद्ध फलस्वरूप वैवाहिक संबंधों में जो क्रांति आई है, उसने आंतर्जातीय विवाह को जन्म दिया है। सामाजिक बोध की दृष्टि से आंतर्जातीय विवाह में आज दो दृष्टिकोण नजर आते हैं। एक में युवा पीढ़ी परास्त होकर समझौता करती है और दूसरे में विरोध प्रकट कर परिवार से अलग

हो जाती है और आंतर्जातीय विवाह कर लेती है। पाश्चात्य शिक्षा और नारी जागरण इन दो महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर यह समस्या झूलती दिखाई देती है। विष्णु जी की कहानियों में इन दोनों रूपों को चित्रित किया गया है। 'बिंब-प्रतिबिंब' कहानी की ईरा और रमणीक दोनों एक दूसरे को चाहते हैं लेकिन जाति न मिलने कारण रमणीक के पिता द्वारा दोनों के विवाह को नकारा जाता है तो रमणीक समझौता करता है और जज की लड़की से विवाह के लिए राजी होता है। ईरा इस घटना को अंत तक भूलती नहीं। ईरा के पिता कमलनाथ और उसकी माँ के जीवन में भी इसी तरह की घटना घटित हो चुकी थी यह रहस्य बताते हैं, कमलनाथ ईरा का भाई बनकर रहे यह्न उनकी इच्छा रहती है, ईरा भी उसे भाई मानकर चलती है मात्र कमलनाथ के म्न में ईरा का सच्चा प्रतिबिंब एक प्रेयसी के रूप में बसा था जो सच्चाई बनकर कहानी में प्रकट होता है। प्रस्तुत कहानी में भी सालों बाद भी आंतर्जातीय विवाह संबंधी परंपरागत धारणाओं के विभिन्न दृष्टिकोणों को चित्रित किया है। 'न्दी-नारी और निर्माण' कहानी का वीनू शांताबाई को चाहता है मगर जाति न मिलने के कारण पिता के द्वारा किए विरोध को चुपचाप स्वीकारता है। 'संघर्ष के बाद' कहानी के हेमा और निर्वाण दोनो भिन्न जातियों के होते हुए भी परस्पर विवाह कर लेते हैं। उन्होंने अपने को सबल एव समर्थ समझकर समाज की खोखली मान्यताओं, अन्य परंपराओं और सडे-गले विचारों की अवहेलना कर अपना मार्ग चुन लिया है। निर्वाण की माँ को यह विवाह पसंद नहीं दोनों को पारिवारिक कलह से मुकाबला करके घर छोडना पड़ता है, उसका भी वह स्वीकार करते हैं। कहानी में अंत में जब हेमा पति की बीमारी में उसकी सेवा करते करते स्वयं मरणासन्न हो जाती है तो स्वयं निर्वाण की माँ को अपनी गलती का अहसास हो जाता है और वह हेमा को बहू के रूप में स्वीकार करती है। विष्णु जी ने प्रस्तुत कहानी में जातिधर्म की अपेक्षा मानवता धर्म की प्रस्थापना कर परिवार में कल्याण के लिए उसकी आवश्यकता महसूस की है, जो समाज विकास का एक नया कदम माना जाएगा।

काल परिवर्तन के साथ समाज में परिवारों में मत-मतांतरों की स्वीकृति-अस्वीकृति संभव है दूसरी ओर आज समाज में यह चित्र नजर आता है कि प्रगति और आधुनिकता के युग में भी अज्ञान और अंध:विश्वास से ग्रस्त पिछडी हुई जातियों में पुरानी दोषपूर्ण रूढ़ियाँ अपने पाँव जमाए हुए हैं। इन्हीं कारण 'टूटते दापंत्य संबंधों की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में हुई है। 'खिलौने' कहानी में इसी समस्या का और एक दूसरा रूप सामने आता है। कहानी में पिता की इच्छा है कि बेटा पिता द्वारा प्रस्तावित मधुमिता नाम की लडकी से विवाह करे मात्र बेटे से इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया जाता है और विदेश में जाकर किसी स्तावना नाम की विदेशी लड़की से विवाह कर लेता हैं। अंत में पिता द्वारा इस अनहोनी को इच्छा के विरूद्ध क्यों न हो स्वीकार करना पड़ता है।

संयुक्त परिवार विघटन-- युग परिवर्तन के साथ सामाजिक मूल्य भी बदलते हैं। यह परिवर्तन स्वाभाविक है। लेकिन समाज के स्थायित्व के लिए मूल्यों का स्थायित्व भी उतना ही जरूरी है आज परिवारों में मूल्यों के चिंतन की उसको गिरने से बचाने की समस्या प्रधान होती आ रही है स्वाभाविक रूप से परिवारों का विघटन होता जा रहा है इसके लिए और भी कई कारण हो सकते हैं।

नवीन शिक्षा पद्धति, पाश्चात्य प्रभाव, बौद्धिकता के विकास के साथ ही आज युवा-मानस में परस्परिक मूल्यों के प्रति विद्रोह का भाव जागृत हुआ है जिसके परिणामस्वरूप नई-पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी में संघर्ष उत्पन्न हुआ है। आधुनिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् युवा वर्ग की पारिवारिक व्यवसाय में रूचि नहीं रही। आर्थिक दबावों के कारण पुरुष के साथ नारी भी नौकरी से जुडती गई, साथ ही भूमि का बँटवारा और पारिवारिक क्लेश तथा पारिवारिक मूल्य स्थितियों से उत्पन्न घुटन तथा व्यवसाय के प्रश्न आदि अन्य स्थितियों में भी संयुक्त परिवार के ढॉचे को बिखरा दिया और व्यक्ति के भीतर स्वतंत्र, स्वच्छंद जीवन की लालसा जगा दी। अर्थ की महत्ता जैसे-जैसे बढती गई पारिवारिक संबंधों में वैसे-वैसे तनाव भी बढ़ता गया। समकालीन स्थिति में आज संयुक्त परिवार के विघटन को एक सही मायने में देखना आवश्यक हो गया है। विष्णु जी कहानियों में इस समस्या की ओर विभिन्न कोणों से देखते नजर आते हैं।

'संघर्ष के बाद' कहानी में बेटे के अंतर्जातीय विवाह के कारण परिवार के विघटन को चित्रित किया गया है। 'बॅटवारा' कहानी में भी ऐसे विघटित परिवार को चित्रित किया है। कहानी का नायक आर्थिक तंगी से बेटे की शिक्षा के लिए जीने का सहारा दुकान गिरवी रख देता है कहानी का देवर शिक्षित है शादी के बाद भाई की सहायता करता है लेकिन पारिवारिक झगड़ों से बाज न आ जाए इसलिए अलग गृहस्थी पसंद करता है। 'बेमाता' में ऐसे परिवार का चित्रण है जिसके बेटे पिता की गाली गलौच के कारण तंग आ चुके हैं, दूसरी ओर आर्थिक तंगी के कारण उनकी बहुएँ भी कमाकर अपनी अलग गृहस्थी बसाना चाहती हैं। 'अंधेरे आंगनवाला मकान' कहानी में परिवार में मूल्य स्थिति से आए परिवर्तन के घुटन तथा व्यवसाय के कारण विदेश में रह रहे बच्चे और उनके माँ-बाप के घुटन को चित्रित किया गया है। "होने के तो तीन बेटे और दो बेटियॉ है मेरी। लेकिन कोई वास्ता ही नहीं रखता हमसे।" मॉ की घुटन भरी करुण व्यथा पूरी कहानी में चित्रित है। माँ की कथा सुनकर मिलने आई बेटी की सहेली दीप्ती और उसका पति माधव के मन में भी यह घुटन एक संत्रास-सी छा जाती है। माधव को लगता है, "जैसे वे व्यक्ति न होकर प्रतीक है उस काल-खंड के जिसमें स्पंदन तो होता है पर समुचे काल-खंड से जुड़ने की शक्ति नहीं रह पाती। सूनी-थकी जिंदगी को निरंतर एक प्रतीक्षा में ढोते रहते हैं।"[११] आज संयुक्त परिवार प्रथा अपनी उपयोगिता खोकर उसके गठन में केवल दोष ही रह गए हैं,

इसका विशुद्ध चित्र विष्णु जी की 'खिलौने और बेटे' कहानी में मिलता है। परिवार के बडे सदस्यों के विचार, मूल्य, चिंतन की बहू-बेटियों की दृष्टि से कोई कीमत नहीं है। जिसमें पत्नी की पति के प्रति बढ़ती चिंता और बेटों के बीच अपने अलग अस्तित्व बचाने की चिंता से घुटन भरती माँ खड़ी की है जो बेटों के हाँ में हाँ मिलाने से पति की बढ़ती व्यथा को चित्रित करती है। परिवार के आपसी रिश्तों में अलगाव, घुटन, ईर्ष्या ही स्वतंत्रता के पश्चात् परिवारों के टूटने के लिए कारण बन गए हैं जिसके कारण नई-पुरानी पीढ़ी का संघर्ष विभिन्न स्तरों पर बढता जा रहा है।

नई-पुरानी पीढ़ी का संघर्ष– दो पीढ़ियों के बीच मूल्यों और मान्यताओं को लेकर मतभेद सदा से चलता आया है परंतु वर्तमान युग में यह भेद अधिक गहरा होता जा रहा है। आठवें दशक की कहानियों में नई पीढी पुरानी पीढ़ी के प्रति विशेष आस्था प्रकट करती हुई दिखाई देती है। नई पीढ़ी को सर्वत्र यह अनुभवित हुआ है कि उसके साथ अन्याय हुआ है। उन्हें अँधेरे में रखा जा रहा है उन्हें जो कुछ मिलना चाहिए था, नहीं मिला है वे अपने आपको एक वंचित पीढ़ी मानते हैं। विष्णु जी ने कहानियों में भी इस युवा आक्रोश को अभिव्यक्ति दी है। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, जातीयता, प्रांतीयता से उपजी संकीर्णता और अनेक घातक प्रथाओं के प्रति कहानियों में विक्षोभ का स्वर मुखरित हुआ है।

पुरानी पीढ़ी के जीवन के दो आयाम प्रमुख हैं। एक उसकी दुर्गति का और दूसरा युवा पीढी से वैचारिक संघर्ष का। विष्णु प्रभाकर जी ने इन दोनों का सशक्त चित्रण किया है। 'अंधेरे आंगनवाला मकान' कहानी में बहू-बेटे विदेश में रहने के कारण घर में अकेले रह रहे बूढे मॉ-बाप को देखने के लिए समय ही नहीं। जिसके कारण बूढ़ों की दुर्गति हो जाती है। 'बेमाता' कहानी का परिवार भी ऐसी ही दुर्गति के अभिशाप से त्रस्त है। उजली पति के शराब पीने और गाली-गलौच सुनकर तंग आ चुकी है बहू-बेटे पढे-लिखे हैं पिता से ऐसा व्यवहार बर्दाश्त नहीं करते। नौकरी के बहाने वह अलग गृहस्थी तो कर चुके हैं मात्र उजली अकेली बहू-बेटियों से हँसता-खेलता घर देखने का अधूरा सपना लेकर खिलौने बनाकर बेचती रहती है 'एक रात-एक शव' कहानी पिता का अपने पुत्रों के प्रति वैचारिक संघर्ष और संघर्ष के कारण परिवार पर आई विपत्ति का चित्रण करती है। कहानी के ताऊ की हालत बहुत बिगड़ जाती है जो अंत में उन्हें मृत्यु के लिए विवश करती है। ताऊजी की व्यथा का चित्रण बहुत गहरा है। बेटा झगडा करके चला जाता है तो ताऊजी की दृष्टि वहीं खो जाती है। लडखड़ाकर गिर जाते हैं। "हर घर के भीतर एक नाली होती है जो सडांध को बाहर ले जाती है। कभी-कभी वह रुक भी जाती है। इस क्षण उन्हें लगा जैसे वह नाली कभी की रुकी हुई है, जैसे उसकी सडांध उनके नासिका-रंध्रों में बसने लगी है और वह डूब रहे हैं, उस सडांध का अंग बन रहे हैं। ताऊजी की व्यथा में पुरानी पीढ़ी का गहरा आक्रोश

व्यक्त होता है। 'फांसिल इन्सान और——' कहानी में पिता विनोदशंकर के विचारों से उनके बच्चों के विचार मेल नहीं खाते। बच्चों की दृष्टि से पापा अब केवल 'म्यूजिअम की वस्तु' है। इस विचार से विनोदशंकर त्रस्त रहते है और अंत में मजबूरन केवल एक 'फांसिल' मात्र रह जाते हैं। कहानी के अंत में इस प्रकार दुर्गति के रूप में विनोदशंकर के अंदर छिपे एक कलाकार का अंत हो जाता है। इस प्रकार विष्णु जी की कहानियों से यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि कहीं तो पुरानी पीढ़ी आक्रोश से भरी दिखाई देती है और कहीं समझौतावादी बनकर नियति के हाथों पिट गई है। इन कहानियों में कहीं बूढ़ों का दुःख-दर्द, युवाओं के दुर्व्यवहार तथा बूढी-पीढी द्वारा युवा पीढी के संघर्ष तथा अंतर्द्वद्व और विवशता का वर्णन है।

युवा पीढी का आक्रोश भी उतनी ही सशक्तता से चित्रित हुआ है। 'एक अनचीन्हा इरादा' कहानी का नायक अपने माता-पिता से स्वाभाविक प्रेम की माँग करता है पर बार-बार दोनों के झगडों से वह तंग आ चुका है। आक्रोश से भरकर माँ-पिता को ही मार डालने के इरादे से मचलता रहता है। 'एक रात-एक शव' कहानी में ताऊजी की पिता की हत्या कर झूठी तसल्ली दिखाकर सच्चाई को छिपाने की वृत्ति सुरेश को पसंद नहीं आती। जो विदेश जा रहा है तो ताऊजी को बूढापे का कारण बताकर अपने स्वार्थ के लिए रुकवाना उसे पसंद नहीं आता। पूरी कहानी में इसी संघर्ष का चित्रण आता है। इस प्रकार विष्णु जी की कहानियों में पिता के बर्बर, अमानवीय व्यवहार, आतक, भय के विरोध में जो कहानियाँ मिलती हैं उनमें परिवारिक धरातल पर युवा पीढी का आक्रोश व्यक्त हुआ है।

पारिवारिक रिश्तों से उभरता नया सामाजिक बोध— वर्तमान युग में बदलते जीवन मूल्यों के साथ परिवार की बढ़ती उपेक्षा का चित्रण मिलता है। परिवार विघटन की प्रक्रिया आज एकाकी परिवारों तक भी जा पहुँची है जिसने पारिवारिक रिश्तों के संबंध, विवाह संस्था के आस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। विष्णु जी की कहानियों में पारिवारिक रिश्तों के बदलाव को यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति मिली है। पिता-पुत्र के संघर्ष तो सामान्य रूप से दिखाई देते हैं पर पिता-पुत्री, माँ-बेटी, भाई-बहन, सास-बहू, ससुर-बहू का संघर्ष पारिवारिक टूटते रिश्तों की पहचान हैं। पिता-पुत्र के संघर्ष कटुता की सीमा को पार कर गए हैं। पिता-पुत्री को लेकर जो तनाव बढ़ता है उसका कारण पुत्री का स्वतंत्र जीवन जीने की कामना तथा आत्मनिर्भर होना है। 'एक रात-एक शव' कहानी में चित्रित संघर्ष और उसी कारण पिता की मृत्यु और पुत्र-पुत्री का वापस विदेश चला जाना कहानी में एक गहरे विषाद को छोड़ता जाता है।

पिता-पुत्री के संबंधों के साथ माँ-पुत्री के संबंधों में भी कटुता आई है। कुछ अंश में आज यह संबंध अर्थ-लालसा की भीत्ती पर खड़े हैं। 'अंधेरी सुरंग' कहानी की शिल्पा, जो एक अभिनेत्री भी है, पति की धन लालसा, माँ का

क्लब-पार्टी में चले जाने के लिए बार-बार पैसों की मॉग करना, इससे उत्पन्न कटुता दोनों में संघर्ष का कारण बन जाती है। भाई-बहन के बीच कटुता का कारण भी कुछ हद तक यही है। 'कितने जेबकतरे' कहानी में सपना और सुधीर के संबंधों में भी कटुता है सुधीर छोटा है बटुए से किसी द्वारा दो सौ रुपयों की चोरी हो जाती है। पैसों के साथ सुधीर की और भी एक मॉग है कि उसी जेबकतरे को पकड़वाने का इंतजाम भी बहन द्वारा ही हो जाए तो अच्छा है। एक ओर से आर्थिक तंगदस्ती के कारण पिता की मृत्यु के बाद परिवार को चलाना और भाई-बहनों की लापरवाही से जीवन गुजारने की त्रासदी सपना के संघर्ष का और एक कारण बन जाती है।

इन संबंधों के अलावा अत्याचार, दुर्व्यवहार के साथ ही बहुओं का सास के प्रति संबंध भी अवज्ञा और अपमान का कारण बनता जा रहा है। स्वतंत्रता के बाद पारिवारिक रिश्तों में परिवारों में कटुता और अधिक बढ गई है जिसका कारण शिक्षा, नौकरी, स्वतंत्रता, समानता और आस्तित्व का विकास माना जा सकता है। नया पारिवारिक बोध यही बन रहा है कि कोई किसी से कम नहीं समझता। पारिवारिक रिश्तें और संबंध टूटते जा रहे हैं जिनका वर्णन यथातथ्य रूप में विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में किया गया है।

प्रेम-संबंधों के बदलते रूप— स्वातंत्र्योत्तर काल में पारिवारिक मूल्य बदलते नजर आ रहे हैं। विवाहित जीवन की रूढ मान्यताएँ बदल चुकी हैं। आधुनिक युग में विवाह एक सामाजिक समझौता मात्र रह गया है। व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना से प्रेम संबंधों में भी तीव्रता से बदलाव आया है। आज प्रेम भावुकतापूर्ण एवं सौदर्य मिश्रित न रहकर नितांत व्यक्तिगत अनुभव की वस्तु बन गया है। प्रेम संबंधों के रूपों की अभिव्यक्ति अलग-अलग धरातलों पर चित्रित होती है।

'संबल' कहानी का मि० सिंह एक अलग पात्र है। पत्नी पर उसका अगाध प्रेम हैं। इस प्रेम की खातिर वह शराब पीना भी छोड देता है। एक दुर्घटना में पत्नी की मृत्यु हो जाती है तब भी उसके प्रेम को मि० सिंह नहीं भूलते। जब उनकी मृत्यु हो जाती है तब बक्से में उनकी स्वर्गीय पत्नी के एक चित्र के साथ रेशम में लिपटी शराब की एक बोतल मिल जाती है, जो उन्होंने पत्नी की स्मृति में रख छोड़ी थी। 'जज का फैसला' कहानी के नायक का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम बिलकुल अस्वाभाविक है। नायिका विमला को उनके पति जी जानसे चाहते हैं क्योंकि वह अपूर्व सुंदरी भी है किंतु एक रेल दुर्घटना में विमला को गहरी चोट लग जाने के कारण वह विद्रूप हो जाती है। पति से उसकी विद्रूपता बर्दाशत नहीं होती, और अब उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है, यह मानकर पति द्वारा विमला की हत्या की जाती है और इस पर न्यायालय में जज द्वारा फैसला सुनवाया जाता है कि उसे जीवित रखना उसकी पवित्र भावना का अपमान होता इसलिए उसे फांसी की सजा दी जाती है; 'शरीर से परे' कहानी में नायिका रश्मि

शादी-शुदा होते हुए भी प्रदीप जैसे साहित्यकार से प्यार करती है। उसे प्रदीप के साहित्य में रुचि है लेकिन रश्मि के पति को उसका यह व्यवहार पसंद नहीं आता। रश्मि अपने आदर्शों को प्रदीप में पाती है जो पति का संदेह दोनों के संघर्ष का कारण बन जाता है। 'कैसी हो मरिअम्मा' के नायिका का प्रेम बिलकुल सात्विक है। दो बार विवाह कर पति द्वारा ठुकरा जाने के बाद भी सत्येन के प्रति प्रेम को वह फिर से पति प्रेम में नहीं बदलना चाहती। सत्येन के प्यार को वह कलंकित नहीं करना चाहती। वह उसे प्रेमी के रूप में ही स्वीकारती है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में प्रेम के कई कोण चित्रित कर विभिन्न सत्यों का उद्घाटन किया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रेम-संबंधों में आए बदलाव का एक पक्ष अर्थ से जुडा है। अर्थलालसा के कारण स्त्री-पुरुषों में प्रेम को अर्थ से खरीदने की प्रवृत्ति बढ़ती नजर आती है। नितांत व्यक्तिगत अनुभूति स्वार्थ केंद्रित मानसिकता में परिवर्तित हो गई है।

पुरुष-मानसिकता में परिवर्तन— समाज, वर्ग, परिवार और परिवेश के समीप होकर भी औपचारिक दूरियाँ पुरुष वर्ग अनुभव करने लगा है। पुरुष अब आत्मकेंद्रित अधिक हो गया है। उस पर बढती महँगाई, बेरोजगारी के कारण अर्थप्रधान समाज व्यवस्था ने मानसिक बोझ डाला है। उसे समाज, परिवार और दापंत्य जीवन में समायोजन करना है, उसके नए व्यक्तित्व के अनुरूप अपने को ढलना है, क्योंकि अब वह उसकी 'अनुमामिनी' नहीं सहगामिनी हैं। संतान के प्रति भी प्रभुत्व-संपन्न पिता रूप में बदलाव आया है और बच्चों के प्रति दृष्टिकोण की उदारता पुरुष ने अपनाई है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में भी पुरुष की इस बदली हुई मानसिकता को सक्षमता से चित्रित किया है।

'ठेका' कहानी का रोशन अपने मित्रों के साथ पार्टी में नारी स्वतंत्रता पर खुलकर बातें करता है पर पार्टी में जब उसकी पत्नी अपने बॉस के साथ जाने के लिए पुछती है तब पहले उसका आत्मसम्मान जागृत हो उठता है मात्र जब वह बॉस से ठेका लाकर उसी को देती है तो उसको वह राजी-खुशी से स्वीकारता है। रोशन अपने स्वार्थ के लिए पत्नी का उपयोग कर लेता है तब उसकी मानसिकता में परिवर्तन होता है। युवा पुरुष के अनिश्चित, संघर्षपूर्ण भटकनयुक्त जीवन के मूल्य में दो समस्याऐं प्रधान हैं— 'घर' और 'रोटी' की समस्या। बेरोजगार, युवक न 'घर' बसा सकता है न पेट भर सकता है जिसके कारण पारिवारिक धरातल पर उसका अपमान होता है और व्यक्तिगत धरातल पर वह कुंठित होता है। 'गृहस्थी' कहानी का हेमेंद्र ऐसा ही युवक है जो कुछ कमाता नहीं और अपमानित और कुंठित जीवन व्यतित करता है। युवा मानस के तनाव, असफलताएँ और कुंठित व्यक्तित्व और भी कई कहानियों में मिलते हैं। 'मूड' कहानी का रोशन ऐसा चरित्र है जो बार-बार कहानी लिखने के लिए सोचता है

तो बार-बार परिवार की चिंताओ से त्रस्त रह जाता है, पूरी कहानी में उसके व्यवहार और कर्तव्य के बीच किसी-न-किसी चिंता से त्रस्त होकर पूरी कहानी नहीं लिख पाता जो उसके कमाने का साधन है वह भी मूड पर निर्भर है, जब कि मूड उसके पारिवारिक समस्याओं के साथ जुडा है।

पुरुष मानसिकता में बच्चों के प्रति उदारता का भाव बढ रहा है, तो युवकों में उतनी ही मात्रा में उत्तरदायित्व हीनता बढती नजर आती है। विष्णु जी ने इसकी सुंदर अभिव्यक्ति की है। 'खिलौने' कहानी के प्रो० सुभाष चाहते हैं कि बेटा उनकी मर्जी से उनकी प्रस्तावित लडकी से शादी करें, इसलिए वह उसे अपनी पत्नी द्वारा भी समझाने का प्रयास करते हैं फिर भी बेटा नहीं मानता अंत में आत्मविभोर होकर सोचते रहते हैं। उनका कथन ही उनकी आत्मकेंद्रित उलझी हुई मानसिकता को स्पष्ट करता है, "आदमी क्यों सहज भाव से अरमान संजोता चला जाता है? रुककर सोचता क्यों नहीं? दूसरा पक्ष देखता क्यों नहीं? क्यों नहीं मानता कि ...'[33] अंत में उनको समायोजन करना ही पडता है। विष्णु प्रभाकर जी ने पुरुष-मानसिकता में इस प्रकार बदलते दृष्टिकोण को यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। आज पुरुष मानसिकता के बदलाव के साथ और एक बात महत्त्वपूर्ण हो गई है: स्त्री-पुरुष के आपसी संबंधो के संबंध में नैतिक धारणाएँ बदल रही हैं, पारिवारिक संबंधों में विघटन हो रहा है, धार्मिक आस्थाओं का लोप होता जा रहा है। जिससे आज व्यक्ति संदर्भहीन होता जा रहा है। वह अपनी योग्यताओं के आधार पर संदर्भों की खोज में लगा हुआ है। विष्णु प्रभाकर जी की 'अंधेरी सुरंग' कहानी में प्रमुख रूप से इस प्रश्न को दुहराया गया है। कहानी की नायिका शिल्पा और उसके पति में संघर्ष है यह अर्थ से केंद्रित समाज व्यवस्था में आत्मसम्मान को अपनी वैयक्तिक सीमा के साथ जोडकर देखने का व्यक्ति का प्रयास जो पारिवारिक विघटन का एक प्रमुख कारण बन सका है। प्रस्तुत कहानी में इसी प्रकार संदर्भहीन व्यक्ति की मानसिकता पर प्रकाश डाला है।

परिवर्तित नारी मानसिकता– स्वतंत्रता के बाद पुरुष मानसिकता के साथ नारी मानसिकता में भी अमूल-चुल परिवर्तन दिखाई देता है। झूठे आदर्शों के मोह को नारी ने त्याग दिया है। आज उसे समाज और ईश्वर का झूठा भय भी न रहा। वह पुरुष के समान स्वतंत्र, उन्मुक्त जीवन जीना चाहती है। उसकी दृष्टि से पतित्व की परिभाषा बदल गई है, त्याग, बलिदान, क्षमा, दया जैसी भावनाओं के नाम पर वह अब मूर्ख नहीं बनना चाहती है। शिक्षा एवं पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से नारी अब समाज में गतिशील भूमिका चाहती है। विष्णु प्रभाकर जी ने भी नारी के इस बदलते रूप के साथ, उसकी समस्याओं से संबंद्ध प्रश्नों के प्रति खुले चिंतन का दृष्टिकोण उपस्थित किया है। विष्णु प्रभाकर जी की 'शतरूपा की मौत' कहानी की रूपा मुक्त वासना व्यवहार से उत्पन्न बच्चे का दायित्व स्वयं लेना

चाहती है। खन्ना उसे दिखाने की वस्तु मानता है। शतरूपा के अंदर छिपी मातृत्व की लालसा और दूसरी ओर अविवाहित मातृत्व से उत्पन्न डर के कारण खन्ना ने दो बार उसका मातृत्व छीन लेने के बाद भी तीसरी बार वह उसे बचाने की इच्छा रखती है। वह किसी की दया की भीख लेना पसंद नहीं करती क्योंकि परिवार की मजबूरी के खातिर ली दया की इसी भीख के कारण वह इस मार्ग पर लाई गई थी, वही आक्रोश अब भी उसके मन में बसा है जो कहानी में बार-बार उमड़ता है। 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबाला को भी इसी तरह चित्रित किया गया है जो स्वच्छंद वृत्ति से अपनी पसंद के कई पुरुषों के साथ संबंध रख सकती है। जीवन के प्रति देखने का उसका दृष्टिकोण भी बिलकुल अलग है, "जीवन को सार्थक करना चाहती हूँ मैं। सीमित आकाश में स्वार्थ हो सकता है सार्थकता नहीं है। सागर की चिर-चंचल लहरें किनारों में बंधी है, इसलिए बेचैन है।"[३४] जाबाला की धारणा है कि अपने को बंदी बनाकर सुख की कल्पना नहीं की जा सकती। मुक्तभाव से कहती है, 'क्या है सुख की परिभाषा ? कैसी है वह ! मैं अपने को धोखा नहीं देना चाहती।"[३५] विष्णु जी की कहानियों में इस प्रकार काल के अनुरूप बदलती नारी की गति का बिलकुल स्वाभाविक चित्रण मिलता है।

नारी मानसिकता में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है, अब वह पारंपारिक पत्नी-बोध से मुक्त है और अपना जीवन स्वयं जीने को तत्पर है। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में नारी मानसिकता के बदले हुए संदर्भ विविध रूपों में दिखाई देते हैं। शिक्षा, नौकरी, अविवाहित जीवन, अविवाहित मातृत्व, मातृत्व की लालसा और मातृत्व से छुटकारा चाहना कहानियों में चित्रित है।

अर्जिका नारी की उलझनें– आधुनिक शिक्षा तथा शिक्षा के माध्यम से अर्जित स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप स्त्री के कंधों पर दोहरा दायित्व आ पड़ा है। पुरुष का दायित्व मात्र अर्जन करना है तो स्त्री न केवल नौकरी करती है, घर की व्यवस्था भी देखती है, बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाहन भी करती है। एक ओर घर की आर्थिक आवश्यकताओं की दी हुई मजबूरी है तो दूसरी ओर अपनी शिक्षा और ज्ञान को प्रयोग में ला सकते हैं। आत्म-तोष की प्राप्ति की इच्छा भी है। इस प्रकार आज की नारी समाज में अपनी गतिशील भूमिका निभाती जा रही है जिसके कारण अनेक स्थानों पर उसे कार्यरत रहना पडता है। घर की चार दीवारी छोड़कर पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की प्रवृत्ति से नारी की मानसिक स्थिति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, प्रेम, पारिवारिक संबंधों में आमूल परिवर्तन हुआ है।

विष्णु जी ने कहानियों में नारी की इस उलझी हुई स्थिति को सक्षमता से चित्रित किया गया है। 'कितने जेबकतरे' कहानी की सपना ऐसी पारिवारिक उलझनो में उलझी हुई नारी चित्रित की गयी है। दफ्तर से आते ही उसकी उलझनें आरंभ होती हैं, मानो जिससे वह अपनी स्वतंत्र चेतना को ही खो चुकी है। "वे

सब एक के बाद एक बोले जा रहे थे पर कमरे की उस उदास रोशनी में सपना होकर भी वहाँ नहीं थी। उसके अंतर में भी उस क्षण वैसी ही उदास रोशनी थी जिसमें अनेक चेहरे गड्डमगड्ड हो गए थे उस क्षण। अनेक आवाजें एक दूसरे को काटती हुई गूंज उठी थी, अंधेरे में काफी हाऊस की असंख्य आवाजों की तरह जिसमें बस घुटता हुआ नाद होता है, अर्थ नहीं होता।"[३५] सपना की उलझी हुई स्थिति यहाँ बिलकुल स्वाभाविक रूप से स्पष्ट होती है। दफ्तर में बॉस के साथ शरीर का सौदा करने से होने वाली मन की स्वाभाविक स्थिति को भी यथातथ्य रूप में कहानी में चित्रित किया गया है। विष्णु जी की कहानियों में कार्यरत नारी की विवाहित जिंदगी की अनेक सच्चाइयाँ उभरकर आई हैं। 'ठेका' कहानी की रोशन को पति को ठेका लाकर देने के लिए बॉस के साथ जाना पड़ता है इसमें उसकी और पति की बढ़ती आर्थिक लालसा या 'अंधेरी सुरंग' की शिल्पा को वह न चाहते हुए भी पति की फिल्म बनाने के लिए पति की इच्छा के खातिर पति के मित्र के साथ जाने की पति की इच्छापूर्ति, दोनों को कुछ अंश में समझौता करना पड़ता है। आज आर्थिक विवशता या समाज में अपना विशिष्ट स्थान पाने की लालसा के कारण घर से बाहर निकली नारी को अपनी जिंदगी में इच्छा-आकांक्षाओं से समझौता करना पडता है।

तात्पर्य, वर्तमान जीवन में पग-पग पर आर्थिक दबाव को झेलती अविवाहित नारी के लिए नौकरी एक ऐसी अनिवार्यता बन जाती है जिसे वह छोड नहीं पाती। घर और बाहर की सारी जिम्मेदारियों से अकेले जूझने के लिए वह अपने आपको तैयार कर लेती है। इस प्रकार के निर्णय की पृष्ठभूमि में कभी परिवार का दायित्व और कभी अहं के टकराव से विवाह न करने की इच्छा, जीवन स्तर में सुधार की आकांक्षा, कभी स्वावलंबन की भी बात होती है। कभी-कभी ऐसी भी स्थिति होती है जिससे बाहर आना भी असंभव हो जाता है। प्रथम संतान होने के कारण 'कैसी हो मरिअम्मा' कहानी की मरिअम्मा, 'शतरूपा की मौत' कहानी की रूपा, भाई-बहनों की उत्तरदायित्वहीनता, 'कितने जेबकतरे' की सपना, माँ की परवशता के कारण उसे नौकरी का सहारा लेना ही पड़ता है। मुक्ति के प्रयास में विष्णु प्रभाकर जी ने 'कितने जेबकतरे' कहानी की सपना के माध्यम से परंपरागत मूल्य-दृष्टि को नकारते हुए नारी स्वतंत्रता और अस्मिता की रक्षा के प्रति प्रतिबद्ध स्वस्थ मूल्य-दृष्टि का परिचय दिया है।

अविवाहित मातृत्व स्वीकृति– स्वार्थ, काम, सुविधा और संपन्नता भोगी वृत्ति ने प्रेम संबंधी विचार मूल्यों में आमूल परिवर्तन कर दिया है। यौन संबंधों में उभरती स्वेच्छावृत्ति अब कहीं आत्मा को कचोटती नहीं है, तो पुरुष और नारी दोनों ही इसे प्राकृतिक सहज अनिवार्य मूल वृत्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। दैहिक संबंधों से उत्पन्न मातृत्व की समस्या नारी की आधुनिक मानसिकता को उजागर करती है। परंपरा से चली आ रही भारतीय नारी की पवित्रता, त्याग, ममता के संस्कार

परिवर्तित हो गए हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में नारी की इस मानसिकता को, जहाँ वह परंपराओं से मुक्ति पाने की व्याकुलता में छटपटा रही है, विस्तृत विवेचन मिलता है। विष्णु प्रभाकर जी की 'शतरूपा की मौत' कहानी की रूपा खन्ना के साथ मुक्त यौन संबंध रखती है। खन्ना की इच्छा के कारण उसने पहले दो बार भ्रूणहत्या भी करवा ली है मात्र अब उसकी प्राकृतिक सहज अनिवार्य मूल वृत्ति जग गई है वह बच्चे का दात्यिव स्वयं लेने को तैयार है पर बार-बार भ्रूणहत्या के लिए प्रस्तुत नहीं है। कहानी की नायिका कहती है, "मैं जानती हूँ, मेरा यह बच्चा अपने पिता का नाम न ले सकेगा। मैं चाहती भी नहीं कि उस जैसा बदज़ात इन्सान मेरी संतान का बाप बने। अवैध कहलाना उससे कहीं बेहतर है मैं उस आदर्शवाद में भी नहीं फँसना चाहती कि कोई दया करके उसका पिता बन जाए मैंने जो किया है उसे भोगने का साहस मुझमें है, पर मैं उसे खोना नहीं चाह्ती।. ..."[39] अविवाहित नारी की मानसिकता के तीन रूप कहानी में मिलते हैं– एक वह जहाँ वह उसी से गर्भपात कराने को विवश है, दूसरा वह जहाँ वह शरीरसुख को पुरुष के साथ भोगती है, परंतु शादी या बच्चों के उत्तरदायित्व को न उठाकर गर्भपात कराके छुटकारा पा लेना उचित समझती है। विष्णु जी की कहानियों में नारी का यह रूप नहीं मिलता। तीसरा नारी का नया रूप है जहाँ वह गर्भपात को अनुचित मानती है और विवाह न होने पर भी बच्चे की जिम्मेदारी स्वयं उठाने या पुरुष को उस जिम्मेदारी की बाध्यता देने को प्रस्तुत है। 'शतरूपा की मौत' कहानी की रूपा का यह परिवर्तित रुप निश्चित रूप से उल्लेखनीय है। नारी का यह तीसरा रूप यह विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों की उपलब्धि मानी जाएगी क्योंकि नारी भ्रूणहत्या जैसे पाप से बच जाती है, मातृत्व सुख की पूर्णता को पा लेती है और समाज में एक नए परिवर्तन को लाना चाहती है।

विभिन्न स्तरों पर शोषित नारी– स्वातंत्र्योत्तर भारत के समाज-सुधारकों ने इस बात की तीव्र आवश्यकता अनुभव की है कि अब नारी विषयक मध्यकालीन सामंती संस्कारिता को समाप्त करके नारी को पुरुष के समान अधिकार दिए जाने चाहिए। व्यवहार के स्तर पर मात्र नारी शोषण जारी है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य में वेश्या समस्या के अनेक कोण उपस्थित किये गये हैं। आज की कहानियों में कहानीकार उस आधारभूत सत्य को सामने लाना चाहता है जहाँ नारी जीविकागत विवशताओं एवं व्यक्तिगत लालशाओं के कारण वेश्या बनने पर विवश होती है। वह अब केवल वेश्या बनकर नहीं वरन् कार्लगर्ल सोसाइटी गर्ल बनकर यही पेशा करती है। घर की चार दीवारी में सुरक्षा का कवच पहनाने वाले पिता, भाई एवं पति नारी को कितना असुरक्षित बना रहे हैं और कितना शारीरिक एवं भावात्मक शोषण उसका हो रहा है, यह स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में देखा जा सकता है। विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ भी इन सत्यों से जुड़ी हैं। 'नफरत, केवल नफरत' कहानी नारियों की आर्थिक परवशता का चित्रण करती है। कहानी की

नायिका गुलाब सस्ते दामों पर ग्राहकों का सौदा करती है और तरह-तरह की बीमारियाँ लेती-देती है। शरीर बेचकर भी रोटी नहीं मिलती, पेशा छोड़कर भिखारिन बनकर स्वाभीमान से जीने का सपना भी नहीं पूरा होता और वह नियति के हाथों अपने को छोड़ देती है। 'बच्चा माँ का है' कहानी ऐसी ही एक निम्नवर्गीय नारी के शोषण का चित्रण करती है। कहानी की नायिका चंदो भंगिन भ्रष्ट सेठ के हाविश का शिकार बन जाती है और एक बच्चे को जन्म देती है। आर्थिक परवशता के कारण वह बच्चे का ठीक तरह से पालन भी नहीं कर पाती। हवेली के लोगों की घृणा की पात्र भी ठहराई जाती है। आर्थिक परवशता के कारण 'कितने जेबकतरे' कहानी की सपना को अपनी सहेली द्वारा सुझाए गए विचार को अपनी इच्छा न होते हुए भी इसी व्यवसाय को स्वीकारना पड़ता है। 'आकाश की छाया में' की सरला को भी पति की बीमारी में पैसों की जरूरत है, यह मजबूरी उसे इसी व्यवसाय की ओर उद्‌युत करती है। आजादी के बाद वेश्या का नाम, रूप, स्थान, बदल गया है पर वेश्यावृत्ति, नारी-शरीर की सौदेबाजी नहीं बदली है। मध्यवर्गीय शिक्षित नारियों में एक ऐसे वर्ग की संख्या बढी है जो नगरों-महानगरों में कहीं भी देखी जा सकती है। सोसायटी गर्ल या कालगर्ल कहलाने वाली यह आधुनिकाएँ किसी वेश्या से कम नहीं और उनका उपयोग समाज में पुरुषो के द्‌वारा इसी रूप में किया जाता है। कहीं यह नारियाँ अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थाओं के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की 'हवस' का शिकार बनती है। 'एक मौत समंदर किनारे' कहानी की जाबाला ऐसी ही नारी है, जो अंत में सेठ बाजोरीलाल के 'हवस' का शिकार बनती है। विष्णु जी की कहानियों में नारी शोषण के विभिन्न कारणों और परिस्थितियों की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है।

नारी की बदलती युग चेतना– आज नवीन तथा प्राचीन मूल्य स्थितियों के मध्य नारी का संक्रमणग्रस्त मानसिकता में परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में यदि एक ओर नारी के एकाकीपन की पीड़ा, असमर्थता, संस्कारबद्‌धता चित्रित है तो दूसरी ओर उसकी जागरुकता, अस्तित्व चेतना तथा उसकी बदलती युग चेतना का चित्रण मिलता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में नारी की बदली मानसिकता उसके अंदर के छिपे विद्रोह को मुखारित करती है। 'शतरूपा की मौत' कहानी की रूपा की मातृत्व लालसा, 'नफरत केवल नफरत', कहानी के गुलाब का वेश्यावृत्ति से बाहर आने का निग्रह, 'बिंब-प्रतिबिंब' की ईरा का प्रेम के प्रति बदलता दृष्टिकोण, 'कितने जेबकतरे', की सपना नारी स्वतंत्रता की चेतना, नारी मानसिकता के इस बदलते विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार आज नारी परिवर्तित प्रतिहिंसा में कहीं अकेलेपन से जूझ रही है, तो कहीं परिवर्तित समझौते करके अपने व्यक्तित्व को सार्थक बनाने में प्रयत्नशील भी है। आज नारी मानसिकता में यह जो परिवर्तन आया है, वह समाज के स्वरूप को बदलने में अवश्य अपनी भूमिका संपन्न करेगा।

स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी समस्याओं का नवीन दृष्टिकोण से विचार किया गया है। इस काल में एक ओर स्वराज्य की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के माध्यम से समानता और स्वतंत्रता के अधिकार सर्वमान्य हो गए हैं तो दूसरी ओर मार्क्सवादी दर्शन के कारण समाज में आधारभूत परिवर्तन की भूमिका निर्मित होने लगी। संयुक्त परिवार में नारी का जीवन निर्वाह हो जाता था, परंतु अब परिवारों के विघटन के कारण एक छोटे परिवार में नारी साधन विहीन हो गई है और उसके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हुई हैं। इसी व्यापक धरातल पर नारी जीवन की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं पर विचार किया गया है। नारी का क्षेत्र परिवार से, सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि पर विस्तृत हुआ है। फलतः स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी परिवार, समाज, राजनीति में सामंजस्य प्रस्थापित करने का सफल प्रयास करने लगी है जो उसे सही अर्थ में गरिमा प्रदान करेगा।

संतान-मानसिकता में परिवर्तन– स्वातंत्र्यपूर्व काल में प्रेमचंद जी ने बाल मनोविज्ञान को ध्यान में लेकर कहानियों की रचना की हैं। जिनमें बच्चे के अभाव, भोलेपन, वेदना और उल्हास का वर्णन है। आदर्शवादी दृष्टि से बच्चों की अच्छाइयों को उभारने का प्रयास इन कहानियों में किया है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य में सामाजिक विसंगतियों के संदर्भ में बच्चों की भावनाओं का चित्रण जैनेंद्र कुमार तथा विष्णु प्रभाकर जी ने किया है।

विष्णु जी की 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी में बच्चों के द्वारा प्रशासनिक भ्रष्टाचार का वर्णन किया गया है। नैतिकता का पालन किस सीमा तक हो गया है यह इस कहानी में बच्चों के अकेलेपन से अभिव्यक्त है। जब पिता को जेल से छुड़ाने के लिए भोली नीना न्यायाधीश से कहती है, "मैं एक दो दिन आपके पास रह सकती हूँ" और छोटा भाई टिप्पणी करता है – "मेरी जीजी खूबसूरत है और आप लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं...."[5] बच्चों की सहज अभिव्यक्ति से लेखक ने मानवीय संवेदना को उभारने का प्रयास किया है। बच्चे परिवार की सबसे कोमल इकाई होते हैं। व्यवस्था को बदलना या व्यवस्था के लिए संकट उत्पन्न करने की क्षमता उनमें नहीं होती परंतु व्यवस्था के चक्र में वे पिसते अवश्य हैं।

स्वतंत्रता के बाद परिवारों में बदलाव आया है, माता-पिता के बीच झगड़े बढ़े हैं और बच्चे त्रिशंकु की स्थिति में आ गए हैं। कहीं पिता विवाह कर लेता है तो माँ अकेले बच्चे का बोझ संभालती है और प्रत्येक क्षण बच्चे को अपना होना आवश्यक लगता है, कहीं पर माता-पिता के तलाक की स्थिति में संतान को समाज में अपमान सहना पड़ता है। 'एक अनचीन्हा इरादा' कहानी ऐसे ही एक बच्चे की मानसिक यंत्रणा को साक्षात करती है जो माता-पिता के रोज के झगड़ों से तंग आता हैं, वहाँ उसका ध्यान कहीं पढ़ाई में नहीं है या बच्चों के साथ खेलने-कूदने में। उसको पिता आदमी न होकर एक भयानक खूँखार जानवर

लगते हैं। इस प्रकार माँ-पिता के झगड़ों के कारण एक भयानक अनचीन्हा इरादा उसके अंतर में उभरता है और और बेसहारा घूमता रहता है, अवारा बच्चों की तरह और दिन बीतता जाता है।

संतान की मानसिकता में आजादी के बाद परिवर्तन आया है। उनमें भय तथा पुरानी पीढ़ी के प्रति सम्मान कम होता जा रहा है। अपनी बात को कहने का साहस, पिता से विरोध करने का साहस, बड़ों के प्रति अवज्ञा भाव तथा निजी स्वतंत्रता एवं अधिकारों के प्रति जागरुकता बढ़ रही है। 'एक रात एक शव' कहानी का सुरेश और उसके पिता में जो संघर्ष है वह उसी कारण है कि पिता के द्वारा उसकी स्वतंत्रता को नकारा जाता है। पिता की हर बात का वह विरोध करता है। पिता उसे विदेश जाने से रोकते हैं तो वह उनका विरोध करता है। उसी दृढ़ता से बातें करता है, "मैं आपको पिताजी कहने का अधिकार चाहता हूँ। मैं सब को यह बता देना चाहता हूँ कि जिस व्यक्ति का मैं पुत्र कहलाता हूँ वह तालाब में अकस्मात नहीं डूब गया था। मैं उसका पुत्र नहीं हूँ। मैं उसे नहीं पहचानता। मैं आपका पुत्र हूँ...[४९] पिता की मृत्यु के बाद माँ से भी वह उसी दृढ़ता से बातें करता है।" तुम इस सत्य को क्यों नहीं स्वीकार करती कि भैया और मैं उस पिता की संतान नहीं है जिसका नाम म्युनिसिपल कमेटी के रजिस्टर में लिखा हुआ है ? यह क्यों नहीं कहती कि तुम उसकी पत्नी नहीं हो। तुम....[५०] इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर कहानी में केवल बच्चों की समस्याएँ नहीं हैं तो उन समस्याओं से जूझती हुई उनकी मानसिकता भी दिखाई देती है। संतान की मानसिकता को बदले परिप्रेक्ष्य में सफलता से चित्रित किया गया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में बदलती सामाजिक चेतना के साथ राजनीतिक गतिविधियों का भी गहरा असर साहित्यकार की चेतना पर होता रहता है। युगचेतना को छोड़कर किसी जीवंत समाज को सही रूप में अंकित नहीं किया जा सकता। युगीन परिस्थितियों और चेतनाओं के परिवेश में जीवन सत्यों को पहचानने की दृष्टि होती है। अतः इस दृष्टि से साहित्यकार समाज की ओर देखता है। विष्णु प्रभाकर जी में भी गहरी दृष्टि है जो स्वतंत्रता प्राप्ति की लालसा लेकर एक गहरा जीवन दर्शन देती है। यहाँ राजनैतिक पृष्ठभूमि पर टिकी समाज की मूलभूत जीवन दृष्टि को भी देखना जरूरी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति और मोहभंग– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता मिलने के कारण उदार चेतना का प्रार्दुभाव हुआ था। दूसरी ओर विभीषिकाओं का घुटन से भरा हुआ आक्रोश चारों ओर छाया हुआ था और तीसरी ओर स्वाधीनता संग्राम के संदर्भ में एकजुट हुई पूंजीवादी और जनवादी दोनों शक्तियाँ पूर्णतः विचलीत हो गई थीं। स्वतंत्रता के बाद से लेकर अब तक के भारतीय समाज को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग वह था जो स्वतंत्रता के आस-पास सोचने के स्तर पर पर्याप्त प्रौढ़ हो चुका था, इसमें सभी बुद्धिजीवी राजनीतिज्ञ एवं व्यवसायी आ जाते हैं। दूसरा स्वतंत्रता के बाद पैदा

हुआ जिसने आजादी के बारें में सिर्फ पुस्तकों में पढ़ा है। नई पीढ़ी ने आजादी के बाद भी क्राइसिस को अपनी आँखों से देखा, यह पीढ़ी उसको झेलने को तैयार नहीं थी। सन् १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति और देश के विभाजन ने देश का ढाँचा ही बदल दिया। आजादी का सपना जो उन्होंने देखा था वह टूट गया और जनता मोहभंग की स्थिति में पहुँच गई और स्वतंत्रता के नाम पर सत्ता का हस्तांतरण मात्र हुआ।

राजनीति, कूटनीति और वोटनीति में पिसती जनता के आक्रोश को स्वातंत्र्योत्तर कहानी में अभिव्यक्ति मिली है। राजनीति से बदलती स्थिति में अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन भी इन कहानियों में प्रस्तुत होता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियाँ भी इसी परिवेश के साथ जुडी हुई हैं। देश के स्वतंत्र होने के कुछ समय पूर्व से लेकर कुछ समय बाद तक होने वाले सांप्रदायिक विद्वेष को उन्होंने स्वयं देखा और भोगा है। उसी की सेक्षम अभिव्यक्ति उनकी कहानियो में हुई है। उनकी कहानियों में एक ऐसा व्यक्ति उभरा है जो जीवन के हर मूल्य पर प्रश्नचिन्ह लगाता जा रहा है। वह एक ऐसे बोध के लिए छटपटा रहा है जिसमें वह अपने व्यक्तित्व की सार्थकता प्राप्त कर सके। इन कहानियों का परिप्रेक्ष्य स्वतंत्रता के बाद का नया जीवन और उसकी यथार्थ स्थिति है। मोहभंग की मानसिकता को सबसे अधिक मध्यवर्ग ने झेला है। विभाजन के अभिशाप ने उसे निराशा, पीड़ा, घुटन और विवशता दी है और अपनी ध्वस्त मान्यताओं को विरासत मे लिए यह वर्ग जिंदगी की वास्तविकता से टकराता रहा है। इसकी सक्षम अभिव्यक्ति विष्णु जी की कहानियों में मिलती है। देश की स्वतंत्रता और देश का विभाजन इन दोनों घटनाओं से उनका कहानी साहित्य पूर्णतः प्रभावित दिखाई देता है।

विभाजन एवं अमानवीय अनुभव— विभाजन ने अनगिनत लोगों के जीवन को भावात्मक, विचारात्मक तथा मनोवैज्ञानिक धरातल पर हिला के रख दिया है। देश-विभाजन से उत्पन्न समस्याओं में शरणार्थियों के आवास, स्त्रियों के अपहरण, बलात्कार तथा उनसे संबंधित विकृतियों की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में विस्तार से मिली है। विभाजन की विभीषिका ने स्वतंत्रता पूर्व की राष्ट्रीय आस्था को खंडित कर दिया। यह त्रासदी स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में सतह से ऊपर-ऊपर घटित होने वाली घटनाओं से महत्त्वपूर्ण सतह के नीचे जो घटित हुआ है उनका वर्णन है। युगबोध का धरातल मानवीय संवेदना को झकझोरता है और कहानीकारों ने इस राजनीतिक युगबोध को संवेदनात्मक धरातल पर उभारा है।

विभाजन की त्रासदी को आधार बनाकर विष्णु प्रभाकर जी ने अनेक कहानियों की रचना की है। यह मूलतः मानवीय संवेदना के कहानीकार हैं। लम्बे समय तक आर्य समाज से जुडे रहने पर भी वह मानव की मूलभूत एकता के स्वप्न देखते रहते हैं। मनुष्य को धर्म के खाते में बाँटकर देखने वाली मानसिकता से मुक्त है। विभाजन के घटनाचक्र तथा पारस्परिक द्वेष एवं अविश्वास का चित्रण करते

हुए भी इन कहानियों में मानवता के प्रति उनकी आस्था झलकती है। विभाजन से संबंधित कहानियों में विभाजन के विभिन्न पक्षों का उद्‌घाटन हुआ हैं। तो कुछ कहानियाँ हिंदू मुस्लिम दोनो संप्रदायों के आपसी सौहार्द का चित्रण करती हैं। यह प्रत्यक्षतः विभाजन पर आधारित नहीं है, किंतु इन से उस माहौल को समझन में मदद मिलती है, जब दोनों सांप्रदायों के बीच नफरत और अविश्वास का जहर नहीं फैला था।

'मुरब्बी' ऐसी कहानी है जो दोनों संप्रदायों के पारस्परिक स्नेह और विश्वास को अभिव्यक्ति देती है। सरल हृदय मुरब्बी एक छोटे से गांव में अपनी दुकान चलाया करते हैं। उनके मुस्लिम मित्र मुनव्वर ने मुरब्बी के पुत्र राधे से तीन सौ रुपये उधार लिए थे। फसल खराब हो जाने के कारण वह रुपए चुका नहीं पाया। अब राधे नालिश करने जा रहा है तो मुरब्बी के मन में जैसे कुछ कचोट रहा है, "जब मैं फेरी लगाऊँ या तो यही एक आदमी था जिसने मदद दी थी। महीनों उसकी झोपड़ी में दुकान लगाई।"[५१] मुनव्वर का कर्ज चुकाने को वह अपनी मृत पत्नी का गुलबंद बेचना चाहते थे। 'शमशू मिस्त्री' कहानी का शमशू मिस्त्री धर्म तथा जाति की सीमाएँ अर्थहीन मानता है। 'सफर के साथी' कहानी में सांप्रदायिक दंगों के बीच लड़ते एक मुहल्ले के हिंदू–मुसलमानों के बीच एकता के सूत्र मौका पाते ही उभर आते हैं। लाला सुंदरलाल महबूब के लड़के रमजान को बचा लेते हैं तो सारा झगड़ा समाप्त हो जाता है लेकिन आपसी समझ और सौहार्द की ऐसी कहानियाँ नफरत और अविश्वास के माहौल में धूमिल होती जा रही हैं। घृणा और द्वेष का जहर फैल रहा है और इसके फैलने में धार्मिक कट्टरता भी कम उत्तरदायी नहीं है 'अधूरी कहानी' कहानी इसी बात को अच्छी तरह स्पष्ट करती है। कहानी में हिंदू मुस्लिम यात्री विभाजन के प्रश्न को लेकर आपस में उलझ रहे हैं। हिंदू मुस्लिम समस्या को विष्णु प्रभाकर जी ने इस कहानी में प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हिंदू मुस्लिम धर्म के सिवा किसी रिश्ते को समझना नहीं चाहते। इस समस्या का दूसरा पहलू 'अधूरी कहानी' में उभरा है। उसमें हिंदू मुसलमानों में हुई बहस इस समसया के ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय कारणों को सामने लाती है –"छः सौ नहीं साहब! हमने नौ सौ बरस हुकमत की है। "जी हाँ नौ सौ वर्ष! "उन नौ सौ बरस में हिंदू बराबर हमसे नफरत करते रहे।

"जी, क्या कहा आप ने ? हिंदू साहब बोले, नफरत करते रहे? जो जुल्म करता है उससे नफरत की जाती है, प्यार नहीं किया जाता।"[५२]

नफरत के इस माहौल में समाज के मेहनतकश वर्ग की ओर उनका ध्यान गया है: सांप्रदायिक दंगों ने जिसकी पूरी जीवन प्रणाली को अस्त-व्यस्त कर दिया है। 'तांगेवाला' कहानी इसी का प्रमाण देती है। दंगों के बाद थोड़ी शांति हुई है और गरीब तांगेवाले भी रोजी-रोटी की व्यवस्था में लग गए हैं। ऊपर से

देखने में सब कुछ पहले जैसा ही है, लेकिन क्या वास्तव में सब कुछ नहीं रह गया है ? वही शहर है। वे ही दुकानें...वे ही आदमी हैं। पर न जाने आज उनकी आंखों में क्या है ? वे एक दूसरे को ऐसे देखते हैं, जैसे सदियों के दुश्मन हैं।[73] कहानी का नायक अहमद मुस्लिम है इसीलिए कोई भी हिंदू उसके तांगे में नहीं बैठता। इस प्रकार चारों ओर शक और नफरत के साये फैले हुए हैं, जिन्होंने समाज के निम्नवर्ग को सबसे अधिक आक्रांत किया है। 'देशद्रोही' कहानी में विभाजन के हिंसक परिवेश में जीवित मानवीय चेतना की ओर संकेत किया गया है। यह कहानी विभाजन से जुड़ी क्रूर मानसिकता का उद्‌घाटन भी करती है। अवसरवादी राजनीतिज्ञ दंगों की मार्मिक तस्वीर खींचकर सहज में उत्तेजित हो उठने वाली जनता की भावनाओं को भड़काने का कर्तव्य बडी तत्परता से निभाते हैं। उन्हें जब खबर मिलती है कि डॉ० रमण सपरिवार डॉ० अस्थाना के मेहमान है और वे डॉक्टर अस्थाना के रूप में घर में घुसकर डॉक्टर खान के परिवार की हत्या कर देते हैं। डॉ० भगवान अस्थाना के घर में घुसकर डॉ खान रमण के उस परिवार की रक्षा अपने प्राण देकर करते हैं और मित्रता का धर्म निभाते हैं।

'पड़ोसी' में इसी धर्म को एक मुसलमान कुंजडा निभाता है, जो मोहन का पड़ोसी है। पचास मुसलमान मोहन की हत्या करने के लिए आते हैं। मोहन से उनका कोई व्यक्तिगत वैमनस्य नहीं हैं, किंतु वे प्रतिशोध के लिए एक हिंदू चाहते हैं और यह हिंदू है। कुंजडा मोहन को बचाने के लिए अपनी जान खतरे में डाल देता है। वह शोर मचाकर अपने को बाहर निकालता है और तब तक लाश की रखवाली करता है, जब तक लोग वहॉ नहीं पहुँच जाते। रोते हुए कहता है, "मैं इन्हे न बचा सका। मैं पडोसी का हक अदा न कर सका।[74] कहानी में इस प्रकार परिवेश के दबाव से परिवर्तित होती मनुष्य की मानसिकता का भी चित्रण किया गया है। हिंदू कहानी में एक हिंदू की परिवर्तित मानसिकता का चित्रण है। जो पूर्व बंगाल में मुसलमानों द्वारा हिंदुओं के नाश के संगठित प्रयास से उत्तेजित हो उठा है। हिंदुओं को मुसलमानों के विरुद्ध संगठित करने के उद्‌देश्य से वह गाँव--गाँव में घूम रहा है तभी एक खंडहर में असहाय पड़ी घायल मुस्लिम स्त्री की ओर उसका ध्यान जाता है। सोई हुई मानवीयता जाग उठती है। उसे लगता है, "नारी के अपमान के लिए ही राम ने रावण का नाश किया था। नारी के अपमान के लिए ही महाभारत का कांड हुआ है। वे हिंदू नारियाँ थी, इसी कारण हिंदूओं ने उसका बदला लिया। यह मुस्लिम नारी है इसका बदला मुसलमान लेंगे तो क्या उन्हें गलत कहा जा सकेगा ? कैसा सत्यानाशी चक्कर है, जिसका कोई अंत नहीं।"[75] वह बैलगाड़ी का प्रबंध कर उस स्त्री को अस्पताल ले जाता है।

'वह रास्ता' कहानी हिंदू मुस्लिम कटुता के कारणों को स्पष्ट करती है। कहानी का अहमद साम्यवादी दल का कार्यकर्ता है। उसने देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व त्याग देने का संकल्प किया था। आजादी की पहली शर्त यह

थी कि हिंदू मुसलमान एक हो। वह मानता था कि जब तक खुदा और मजहब है तब तक इन्सान की अक्ल आजाद नहीं हो सकती, उसने ईश्वर और मजहब के विरुद्ध जिहाद बोल दिया था। उसका यह परिणाम हुआ कि मुसलमान उससे नफरत करने लगे। हिंदू उसका यकीन नहीं करते थे। दुःख दर्द में वह अकेला तडपता रहा निशिकांत के परमार्थ से वह अपनी पार्टी के नेता ज्योतिप्रसाद के पास जाता है, लेकिन वे उसकी किसी प्रकार की सहायता नहीं करते। पत्नी की बीमारी अहमद को समझौते के लिए विवश कर देती है। संकट के साथ मिली एक पुराने दोस्त की सहायता और हमदर्दी से वह मुस्लिम लीग में शामिल होकर पाकिस्तान का समर्थक बन जाता है। लेकिन निशिकांत को भरोसा है एक-न-एक दिन अहमद के पुराने सपने पूर्ण होंगे। "दुनिया का हर बडा काम शुरू करने में सपना ही मालूम होता है। पाकिस्तान होने पर भी हिंदू-मुसलमानों को यहीं और इसी तरह रहना होगा। उनके आपसी संबंध किस प्रकार सुधर सकते हैं, यह समस्या बनी ही रहेगी। उसको आप और मेरे जैसे व्यक्ति ही सुलझा सकते हैं। उसका रास्ता नहीं है, जो एक दिन आपने सुझाया था। 'एक पिता की संतान' कहानी में विष्णु जी ने सांप्रदायिक एकता को चित्रित किया है। तीन-मित्र-हिंदू, मुस्लिम और सिक्ख अपने पूर्वजों की सूची बनाते हैं तब तथ्य सामने आता है कि तीनों के पूर्वज एक ही हैं। क्षणभर तीनों के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है, किंतु दूसरे ही क्षण खान-पान संबंधी अपनी अलग-अलग मान्यताओं के कारण तीनों आपस में झगडने लगते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हमारी खोज अभी अधूरी है। एक पिता की संतान तो हम हैं ही, पता अब दरअसल यह लगाना है कि आखिर हम अलग क्यों हुए ?

'मैं जिंदा रहूँगा' कहानी विभाजन के बाद मनुष्य के जीवन और उसके अंतहृदय में उत्पन्न समस्याओं, भावनाओं को चित्रित करती है। विभाजन के बाद पंजाब से भागते समय प्राण की पत्नी और माँ-बाप दरियाँ में बह गए। एक-एक कर बच्चों की मृत्यु हो गई। लाहौर से भागते समय राज उसे संतानहीन अवस्था में एक शिशु के साथ खेत में मिली। राज का सबकुछ खो चुका था प्राण बचाकर भागते समय एक बर्थ के नीचे से अपने सामान के भुलावे में उस शिशु दिलीप को ले आई थी। अपने पति को मृत समझकर वह प्राण के साथ रहने लगी। राज का मन बहलाने के लिए प्राण उसे मंसूरी ले आता है। मंसूरी में दिलीप के वास्तविक माता-पिता उसे पहचान लेते हैं। दिलीप के चले जाने के बाद राज की अवस्था मुर्दे जैसी हो जाती है तभी प्राण का ध्यान प्रतिदिन अपना पीछा करने वाले व्यक्ति की ओर चला जाता है। पूछने पर ज्ञात होता है कि वह व्यक्ति राज का पति है। संकट के क्षणों में वह व्यक्ति पत्नी की रक्षा न कर सका था, वह वेदना उसे खल रही है। प्राण के अंतर्मन को जैसे कोई धीरे-धीरे छूरी से काटने लगता है, लेकिन ऊपर से अपने को संयमित कर वह राज के पति से राज को ले जाने का आग्रह

करता है। राज के चले जाने पर सूने घर को देखकर उसका हृदय वेदना से भर उठता है, "सुख भी कैसा छल करता है। आकर लौट जाता है। राज को पति मिला, पुत्र मिला। दिलीप को माँ-बाप मिले और मुझे-मुझे क्या मिला ? दूसरे ही क्षण गरदन को जोर का झटका देकर कहता है, "ओ मैं कायर हो चला। मुझे मिला, जो किसी को नहीं मिला।"[४८] प्रस्तुत कहानी मानवीय धर्म के निर्वाह से प्राप्त उस सुख को सकेतित करती है जो मनुष्य को उदात्त धरातल पर पहुँचाकर उसे सही अर्थों में संतोष प्रदान करता है। 'मेरा वतन' कहानी भी ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण पहलू को चित्रित करती है। इसमें अपनी भूमि से उखडे हुए मनुष्य की अंतर्वेदना को चित्रित किया गया है। इसमें साप्रदायिक विभत्सता का चित्रण हुआ है, साथ ही राजनीतिक स्वार्थपरकता की व्यंग्यात्मक झलक भी स्पष्ट होती है। इस प्रकार विष्णु जी की कहानियॉ विभाजन के विभिन्न आयामों को चित्रित करती हैं। उन्होंने विभाजन की त्रासदी को उससे उत्पन्न मानवीय संवेदनाओं को गहराई से चित्रित किया है।

विघटनकारी स्थितियाँ तथा युद्ध के परिणाम-- स्वतत्रता के बाद देश विभाजन की विभीषिका ने जनमानस की चेतना को झकझोर दिया है। साथ कई विघटनकारी शक्तियों ने भी भारतीय जन मानस की चेतना को जगाने का कार्य किया है। भारत मे विघटन के संभावित कारणों में प्रमुख कारण राजनीतिक अव्यवस्था है। न्यायव्यवस्था का दोषपूर्ण व्यवहार, रानीतिक स्वार्थ, राजनीतिक दलबदी, युद्ध और समाज विरोधी कारणों को राजनीतिक सफलता के लिए अपना लेना आदि विघटन के प्रमुख कारण रहे हैं। भारत की राजनीति पर विश्व के युद्धों का भी प्रभाव है। आतंक, भय, कुठा को जन्म देने वाली राजनीतिक गतिविधियों में युद्ध एक महत्त्वपूर्ण रूपरेखा निभाता है। हिंदी कहानी मे इन राजनीतिक गतिविधियो के परिणामों के चित्रण के साथ परिवेशगत सच्चाइयों और चुनौतियों को भी अभिव्यक्ति दी गई है। आजादी के बाद जो बुनियादी परिवर्तन राजनीतिक क्षेत्र में होने चाहिए थे, वे नहीं हुए।

सन् ७० के बाद जनता की मन:स्थितियों में व्यापक असंतोष ने संघर्ष के द्वार खोल दिए। वामपंथी प्रभाव से नक्सलवादी आंदोलन को बढावा मिला। पश्चिम बगाल की अव्यवस्था एवं अनिश्चितता की स्थिति से उग्रवादी वामपंथी ने अपना सर उठाया। विष्णु जी की कहानियॉ इन राजनीतिक गतिविधियों का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं। 'स्वतंत्रता' के बाद राजनीतिक चेतना का स्वरूप बदलता गया जिसके मूल में 'स्वतंत्रता' यह मूलभूत चेतना थी वह आज स्वार्थपूर्ण राजनीति में परिवर्तित हो गई है। जिसके साथ समाज की मानसिकता भी जुड़ी दिखाई देती है। इसके कई विशुद्ध चित्र विष्णु जी की कहानियों में मिलते हैं। स्वतंत्रता के बाद १९८४ में दिल्ली में जो दंगे हुए उसके मूल में जो विघटनकारी शक्तियॉ काम करती थीं उनकी मनोवृत्तियों की यथार्थ अभिव्यक्ति का चित्रण

मिलता है। यह घटनाएँ स्वतंत्रता पूर्व के १९४७ के दगों की यादें और आदमी के भीतर सोया राक्षस आज भी मरा नहीं है को सचेत करती हैं। 'सत्य को जीने की राह' कहानी एक ऐसे ही कारुणिक अवसाद को छोडकर चली जाती है। कहानी दो मित्रों को अपने किए बुरे कार्य की यादें सताया करती हैं। सदीप खन्ना और सुरजीत सिंह दो अच्छे दोस्त थे। दोनों पास रहते थे। दिल्ली में दंगेवालों ने महानगर की बस्तियों को जलाकर राख कर दिया था तब एक खंडहर में एक सत्रह-अठारह वर्ष की एक युवती अपने आप को बचाने की चेष्टा कर रही थी तब फिर से दंगा हो जाता है। लडकी खंडहर में अपने आप को बचाने की कोशिश में है दोनों कीमती सामान बटोरकर भागने की कोशिश करते हैं। लडकी बेहोशी से जग जाने के पूर्व उसी कीमती सामान चुराते देख न ले, सुरजित सिंह उसकी हत्या कर देता है। दोनों मिलकर उसका शव घोडे के शव के साथ बॉधकर लिटा देते हैं। संवाददाता विनय बत्रा ने बताई यह कहानी आज भी खत्म नहीं होती। सुरजित सिंह को आज भी अपनी बेटी को देखकर अपने भूतकाल की घटनाऍ याद आ जाती हैं तो वे अपने आप को दोषी मानते हैं। आज यह घटना किसी सुरजित सिंह के बेटी के साथ भी हो सकती है– मुसलमान, सिख और शायद कल-निरंतर इसी प्रकार हमारे भीतर छिपे राक्षस को जगाने का प्रयास करता रहेगा मात्र सत्य को जीने की राह आज तक किसी को नहीं मिली। कहानी में विष्णु जी ने समाज के एक व्यापक सत्य को एक घटना के माध्यम से खोजने का प्रयास किया है। संदीप खन्ना की व्यथा के माध्यम से विष्णु जी ने मानवता को फिर से एक बार जगाने का संकेत दिया है। उनका कथन है, "लड़ना हमें उस राक्षस से है, लेकिन हम जो हैं कि बेजान मुखौटों को जोंच रहे हैं।–– कितनी प्रगति कर चुके हम, कितने अद्भुत आविष्कार किए हमने, सत्य को जीने की राह आज तक नहीं खोज पाए, शायद खोजना चाहा ही नहीं"[४९] 'एक और कुंती' ऐसी ही एक नारी की कथा है जो दंगों में अपना सब कुछ खो चुकी है। मात्र वह जब इन सारी परिस्थितियों से बार-बार बाहर आकर नई जिदगी जीने की शुरूवात कर लेती है तो फिर हर बार जिंदगी उसके साथ वहीं खिलवाड करती दिखाई देती है। इसी विभीषिका से त्रस्त नायिका आशया अंत में एक नारी निकेतन मे आश्रय खोजती है। विघटनकारी शक्तियो ने केवल परिवार तो क्या समाज की पूरी मानसिकता को ही ध्वस्त कर दिया है। विष्णु जी ने अपनी कहानियों में विघटनकारी स्थितियों से उत्पन्न बदलती समाज की ध्वंसता को अधिक नजदीकता से चित्रित किया है।

राजनीति का विषाक्त दर्शन– राजनीतिक वातावरण को विषाक्त करने में आपातकाल का प्रमुख हाथ रहा है यह दौर राजनीति में मूल्यों की गिरावट का था। इस विभीषिका का कोपभाजन शहरों की अपेक्षा गाँवों को अधिक बनना पडा है। यह भी ग्रामीण व्यक्ति की नियति की एक विड़म्बना ही है। विष्णु प्रभाकर

जी की कहानियों में बंगाल के अकाल और उसके बाद की मानव जीवन की क्रूर नियति को चित्रित किया है। 'मार्ग में' कहानी बंगाल के अकाल की भयावह स्थिति तथा भूख से पीड़ित बिलखते आदमी का यथार्थ चित्रण करती है। कहानी की बुढ़ियॉ अकाल में अपना सब कुछ खो चुकी है, स्वयं भी अकालजन्य भूख को झेल रही है और एक अपरिचित बच्ची को पाल रही है। 'धरोहर' कहानी मे मृणाल अपने क्रांतिकारी पति की निशानी अपने बेटे को पालती है पर बंगाल का अकाल उसे असहाय बना देता है और वह अपने बेटे को किसी दूसरे के भरोसे छोड देती है। 'भूख ओर कुलीनता' कहानी में बंगाल के अकाल में फँसे सुधीरबाबू और उनके परिवार का चित्रण हैं। घर में अनाज नहीं है। गाँव के गॉव उजडते जा रहें हैं और सेठ का एक गुमास्ता गरीबों को झूठी सहानुभूति दिखाने के बहाने आकर सधीरबाबू से कहता है कि गरीबों की सहायता के लिए हम जन-गणना कर रहे हैं तो उनका खून बौखला उठता है। उनके क्रोध में सरकार की झूठी नीति और बर्ताव के प्रति आक्रोश भर उठता है, "लेकिन यह दर्द आज क्यों पैदा हुआ? तुम्हारे उन सेठों ने ही तो जनता के मुख से अनाज छीनकर देश की यह दशा कर दी है। मन की यह अपवित्रता, पीड़ित मानवता का यह आर्तनाद, इन सब के लिए वे ही जिम्मेदार हैं।---- पेट भरने के सारे साधन नष्ट करके फिर भूख मिटाने का ढोंग करना, पहले धाव करना और फिर उसे भरने के लिए अपना रेशमी दुपट्टा फूँकना। वाह जी वाह, कैसी सुंदर करुणा है। कैसा मनोहर' नाटक है।----"[५०] सुधीरबाबू की मॉ एक शेर अनाज के लिए तडपकर मर जाती है। आपातकाल लाभ उठाकर भ्रष्ट नेताओं ने अपने घर भर दिए और सामान्य जनता को गरीबी में ही मरना पडा।

'एक माँ एक देश' कहानी की मृणाल भी इसी विभीषिका से त्रस्त है। पति की मृत्यु के बाद बेटे को बंगाल का देश बधु बनाने का उसका सपना अधूरा रह जाता है। बल्कि उससे बेटे का ठीक तरह से पालन भी संभव नहीं हो पाता। देशवासियों के प्रति उसके मन में भरा आक्रोश उमड़ आता है, "कई मारे अकाल ने सोने के देश को राख बना दिया। कहते थे कि हमारे देश वाले है जो मुख का घास छीनकर तिजोरी में बंद कर रहे हैं सच, क्या वे सोना खाते हैं? वह भी एक दिन मिट्टी बनेगा, पर तब तक सारे का सारा देश मिट्टी बन चुकेगा।"[५१] इस प्रकार बंगाल के अकाल के बाद की स्थिति ने पूरी समाज व्यवस्था को ही मानों निचोड दिया था। माँ-बेटे, नाते-रिश्तों में भी गिरावट आई थी। परिवारों की भूख मिटाने के लिए कई लड़कियों ने अपनी इज्जत तक मिट्टी में मिलाई थी। 'लेंम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी में ऐसा ही एक विवश पिता चित्रित किया गया है, जो अपनी बेटी को दरिंदों के हाथ सौंप देता है। वे उसके साथ वही व्यवहार करते हैं जिसका अंत मृत्यु होती है। विष्णु प्रभाकर जी ने जीवन की इस कड़वी सच्चाई को वास्तविकता के साथ चित्रित किया है। 'भारत माता की जय'

कहानी भी एक ऐसे अति-वृष्टि के कारण ध्वस्त परिवार की व्यथा का चित्रण करती है, साथ-साथ ओछी राजनीति पर तीखा प्रहार भी करती है। राजनीति का विषैला माहौल आज केवल अखबारों में झूठी चर्चा तक सीमित रह गया है। कहानी की नायिका बुलूकी के आक्रोश मे छिपी दर्द की संवेदना उसके तीव्रतर होते शब्दों की गहराई को व्यंग्यात्मक रूप से स्पष्ट करते हैं, "अखबारों में छपा करता है कि कुतुब से ऊँचे बांध बंध रहे हैं, निगट नगरों जैसी फैक्टरियॉ चल पडी हैं बहुत शीघ्र ही सब को मकान मिलेंगे, रोजी रोटी मिलेगी, पानी-बिजली मिलेगी। देश स्वर्ग बनेगा— लेकिन उसके ससुर और उनके बच्चे——? नहीं, नहीं सब झूठ है, सब माया जाल है। अपने वैभव को बचाने के लिए झूठे स्वर्ग के सपने हैं।"[५२] इस प्रकार प्राकृतिक आपदाओं का लाभ उठाकर राजनीतिज्ञों ने सामाजिक गतिविधियों को तो विषैला बना दिया और उसमें मानवता को दबाकर नष्ट करने का प्रयास भी किया।

इस प्रकार अपातकाल पर लिखी गई कहानियों में मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और राजनीतिक धरातल पर व्याप्त संत्रास और भय का चित्रण मिलता है। सर्वत्र भय की स्थिति में चुपचाप एक स्वतंत्र देश के लोगो को कितना भोगना पडता है, यह भारतीय अपातकाल का भयानक मूल्यांकन है इसी के परिणाम, चुनाव, वोट, सत्ता के प्रति आक्रोश जन-मानस मे घर करता गया और स्वातंत्र्योत्तर कहानी में इस राजनीतिक भ्रष्टाचार का खुलकर वर्णन किया गया। मोहभंग सीमा पर पहुॅचकर सृजनात्मक विद्रोह में परिणत हुआ। इस युगबोध को हिंदी कहानी में विस्तार से देखा गया है।

बदलता राजनीतिक दृष्टिकोण— स्वातत्र्य प्राप्ति के बाद देश का नक्शा बदलता गया है। स्वतंत्रता के बाद जिनके हाथों में शासन की बागडोर आई उन्होंने वायदे तो किए पर स्वतंत्रता का सही अर्थ जनता को नहीं दे पाए। जिस न्यायपूर्ण 'लोकतंत्र' का स्वप्न भारतीय जनता ने देखा था, सरकार ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। आजादी से पूर्व देश का राजनीतिक नेतृत्व जन-मानस की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करता था पर आजादी मिलते ही नेता वर्ग शासक वर्ग बन गया। राजनीति के साथ, 'नीति' का संबंध स्वतंत्र भारत में लगभग समाप्त हो गया है। देश की स्वाधीनता के संग्राम में जिस चरित्र में बल और आवेश का सगम हुआ था, गांधी के रूप में जो दृष्टि मिली थी वह धीरे-धीरे ओझल होती गई है।

गांधीवादी चेतना ने पूरे भारतीय परिवेश को चार-पॉच दशकों तक प्रभावित किया। गांधी की मृत्यु के बाद भी पुरानी पीढी अनेक सिद्धांतों के प्रति आस्थावान थी। स्वतत्रता के बाद जन्मी पीढ़ी गांधी के प्रति अशास्वत नहीं थी पर कुछ कहानीकारों ने गांधीवादी चेतना से प्रभावित होकर ईमानदारी, सच्चाई, नैतिकता, त्याग, जनहित, अहिंसात्मक संघर्ष, ह्रदय परिवर्तन में विश्वास रखते हुए गांधीवादी मूल्यों की रक्षा की हैं अधिकांश कहानीकारों ने गैर ईमानदार तथा तथाकथित गांधीवादी छद्‌म नेताओं का रहस्योद्‌घाटन भी किया है।

विष्णु प्रभाकर की 'अधूरी कहानी' में मानवता की प्रतिष्ठा एवं गॉधी -दर्शन का समर्थन है। एक मुसलमान पात्र समझाता है, "परहेज सदा मोहब्बत की जड खोदता है। वह नफरत करना सिखाता है। आपने हम से नफरत की और चाहा कि हम आप से प्यार करें।"[५३] गांधी ने सिखाया था एक दूसरे से प्रेम, एक धर्म में अन्य सभी धर्मों का समन्वय। राजनीति को धर्म से जोडकर शासक मे निस्पृहता और अपरिग्रह की आवश्यकता पर विष्णु जी ने भी बल दिया है। 'मुरब्बी' 'सफर के साथी' 'आखिर क्यों?' कहानियों में अहिसा और प्रेम के द्वारा हृदय परिवर्तन में विश्वास जताया है। 'मुरब्बी' में मुरब्बी अपनी मृत पत्नी की एकमात्र निशानी बेचकर अपने मुसलमान मित्र मुनव्वर की नालिश में जप्त होने वाली जमीन बचा कर निस्पृह मित्रता की याद दिलाता है। 'सफर के साथी' कहानी मे चित्रित संघर्ष भी एक हिदू डॉक्टर एक मुसलमान के बच्चे के प्राणों की रक्षा कर मुसलमानो के मन मे बसे नफरत को, जहर को निकाल देता है 'आखिर क्यों?' कहानी में शकर और उसके परिवार की हत्या करने के लिए आए डाकू का हृदय परिवर्तन भी इन्हीं बातों का संकेत करता है। स्वतंत्रता के बाद गांधी जी के प्रति आस्था और विश्वास टूटता दिखाई देता है। गांधी भक्त आदर्शवादी नेताओं की दुर्दशा इस बात का प्रमाण है कि शासकवर्ग उनका अपमान, अवहेलना, उपेक्षा कर रहा था और आजादी के बाद उसकी दुर्दशा अपने हाथों हुई। विष्णु प्रभाकर की 'सलीब' कहानी में गांधी के सिद्धातो पर आस्था रखने वालों मे मानसिक विक्षोभ का चित्रण हुआ है। कहानी में शासक की भ्रष्ट नीति पर एक सरकारी अफसर द्बारा व्यंग्य किया गया है जो राजनीति का सच्चा रूप प्रकट करता है। उसका कथन बहुत कुछ स्पष्ट करता है, "मैं! जानता हूँ नेता की सदारत में दल के दल, कर्मचारी प्रतिज्ञा लेगे, उत्साह का ज्वार उमड पड़ेगा, लेकिन एक दिन फिर भाटा आएगा और फिर गाडी पहले की तरह अपनी लीक पर चलने लगेगी। इस काजर की कोटरी में सभी कहते है, "शासक और व्यवस्था के सबसे ऊँचे शिखर से लेकर सबसे नीचे की पैडी तक−−"[५४] इस प्रकार गांधी भक्तों को केवल मिली है यंत्रणा और गॉधी के प्रति लोगों में जगा है विश्वास जिसका सशक्त वर्णन कहानी में मिलता है।

तात्पर्य, विभाजन की त्रासदी और उसमें सुलझता मानव प्रमुख रूप से विष्णु जी ने अपनी कहानियों मे चित्रित किया है लेकिन इसमें उनकी दृष्टि मात्र मानवता की प्रस्थापना की ही रही है। उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक जीवन, राष्ट्र और विश्व के क्षितिजों को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। उनका उद्देश्य मात्र जनता में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय भूमिका पर विश्वबंधुत्व, एकता और मानवता का जयघोष करता है। इन्हीं आधारों पर देखा जाए तो आज देश के नेताओं की छवि धूमिल पड़ती गई और उसके स्थान पर स्वार्थी, लंपट, धूर्त, धोकेबाज की छवि उभरती गई। इस छवि में परिवर्तन की माँग करना ही विष्णु जी की विचारधारा का बोध है।

भ्रष्टाचार के परिदृश्य– भ्रष्टाचार या छद्मावस्था को शासनतंत्र या राजनीतिक तंत्र तक सीमित मान लिया जाता है, जब कि व्यवस्था के अंतर्गत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी संगठन एवं संस्थाएँ आ जाती हैं जो मनुष्य का शोषण एवं दमन करती हैं इसी कारण स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में शोषण एवं दमन को रोकना संभव नहीं है क्योंकि इसमें आज व्यक्ति की प्रधानता बढ़ गई है। आज भ्रष्टाचार ही राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके बिना राजनैतिक परिदृश्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में भ्रष्टाचार का युगबोध स्वतंत्रता के बाद यथार्थपूर्ण सत्य के साथ उभरा है।

विष्णु प्रभाकर जी की 'धरती अब भी घूम रही है' 'ठेका', 'सलीब' 'छोटा चोर बड़ा चोर' आदि कहानियों में भ्रष्टाचार के व्यापक परिदृश्यों को चित्रित करने वाली सशक्त कहानियाँ हैं। स्वतंत्र भारत में सरकारी तंत्र की आधारशीला रिश्वत है जिसके बिना पुलिस विभाग, रेलवे विभाग, सरकारी दफ्तर, शिक्षा संस्थान, किसी की भी इमारत खडी नहीं रह सकती। निःस्वार्थ जनसेवा के नाम पर किया गया नाटक कितना बेईमान है यह स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में देखा जा सकता है। रिश्वत कई रूपों में और कई वस्तुओं की दी जाती है। औरत, शराब तथा धन के रूप में रिश्वत का आदान-प्रदान सरकारी-गैर सरकारी सभी स्थानों मे चलता है। विष्णु प्रभाकर जी की 'ठेका' कहानी में औरत की रिश्वत देकर सरकारी कर्मचारी ठेका लेने में सफल हो जाता है। जो पत्नियाँ पति को तरक्की, अपना शरीर समर्पण करके दिलाती हैं उन्हें पति का पूरा सहयोग मिलता है और व्यक्तिगत रूप से भी वे स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार पा जाती हैं। 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी में भ्रष्टाचार की व्यापकता को मार्मिकता से चित्रित किया गया है। कहानी में बच्चों का पिता बीस रुपये की रिश्वत लेता है और सजा भोगता है। दूसरी ओर बच्चों का मौसा खूब रिश्वत लेकर भी बेदाग बचा हुआ है। स्वयं न्यायमुर्ति अपनी लड़की और पुत्र को रिश्वत देकर नौकरी दिलाते हैं और तिड़कम द्वारा नौकरी दिलाने में सफलता प्राप्त करते हैं। बच्चों का पिता सीधा है, इसलिए पकड़ा जाता है, जब की चालाक लोग सब कुछ करके भी मजे में हैं। 'सलीब' कहानी में भ्रष्टाचार के प्रश्न को मूल्य-स्तर पर उठाया गया है। रेलवे का एक कर्मचारी प्रमोद सक्सेना को मात्र सौ रुपये की बिना माँगी रिश्वत लेने की स्वीकारोक्ति के कारण बर्खास्त कर दिया जाता है। 'छोटा चोर-बड़ा चोर' कहानी के बडे बाबू बिना झिझके रिश्वतें लेते हैं। ठेकेदार भी बड़े बाबू को छोटी-मोटी रिश्वतें देकर फौज का सामान सस्ते पर चुका लेते हैं और बड़े बाबू को चूप करने के लिए बार-बार रिश्वतें देते हैं मात्र कहानी का नौकर सर्दी के दिनों में पिता की एक कोट की सक्त जरूरत भी पूरी नहीं कर पाता। मालिक का कोट चुराकर जरूरत पूरी हो जाने पर उसे वापिस कर देता है चोरी करके उससे रहा नहीं

जाता। एक मामूली नौकर के मन में नैतिकता जग जाती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनीति से नैतिकता का कोई संबंध नहीं रह गया है। इस प्रकार व्यवस्था में भ्रष्टाचार जितना बढता गया है कहानी मे उसकी अभिव्यक्ति तीव्र रूप में होती गई है।

कहानीकारों ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनो प्रकार से स्पष्ट कर दिया है कि स्वतंत्र भारत में भ्रष्ट नेताओं, अधिकारियों, पूँजीपतियों द्वारा लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली का दुरुप्रयोग हुआ है और मानवीय आस्था तथा विश्वास को भंग किया गया है। त्याग, कर्तव्य और जन सेवा के आदर्शों से आज की राजनीति वचित है तथा उच्च राष्ट्रीय बोध की गरिमा को आघात पहुँचाया गया है। विष्णु प्रभाकर जैसे कहानीकार आज के राजनीतिक बोध को सक्षमता से अभिव्यक्त करने मे सफल हैं।

किसी भी देश का आर्थिक युगबोध उसके सामाजिक, राजनैतिक युगबोध से अभिन्न रूप से जुडा होता है। राजनीति के माध्यम से सत्ता का सूत्र संचालन तथा नीति-निर्धारण उस देश और समाज को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख तत्व 'आर्थिक' है। आर्थिक प्रगति जहॉ एक तरफ समाज को सुसंस्कृत बनाती है।, वहॉ दूसरी ओर व्यक्ति को अधिक सुविधाएँ भी प्रदान करती है कि समाज और राष्ट्र को उन्नत बनाएँ। सच बात यह है कि वर्तमान मानव जीवन ही अर्थ-प्रधान बन गया है, अर्थ जीवन की समस्त गतिविधियों का केन्द्रबिंदु है। जिस प्रकार मानव शरीर को प्राण सचलित करते हैं, उसी प्रकार मानव जीवन को अर्थ गतिशील बनाता है। अर्थाभाव में मानव 'पशु' बन जाता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में मानसिक अशांति उत्पन्न हो जाने के कारण बुद्धि और विवेक कुंठित हो जाते हैं। आत्मीयता, शत्रुता में परिणत हो जाती है और मनुष्य ऐसे अभावजन्य कुंठाओं में ग्रस्त हो जाता कि या तो अपराध वृत्ति ग्रहण कर लेता है या सामाजिक विषमताओं का शिकार होकर असहाय जीवन जीने लगता है। इसी पृष्ठभूमि को स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने अच्छी तरह जान लिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में आर्थिक युगबोध का अध्ययन इस बात का संकेत देता है कि हिंदी कहानीकार आर्थिक समस्याओं से प्रारंभ से आज तक निरंतर जुड़ा हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में और एक बात महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, वह है, राजनीति के माध्यम से सत्ता का सूत्र-संचालन तथा नीति-निर्धारण, उस देश और काल की आर्थिक व्यवस्था में प्रतिफलित होता है। सदियों से दासता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण भारत की आर्थिक व्यवस्था जर्जरित हो चुकी थी इसलिए स्वतंत्र भारत में आजतक समझा गया कि भारत का आर्थिक रूप से पुनर्गठन हो। 'अर्थ' जीवन की धुरी है। अतः उसकी महत्ता सबसे बढकर है। युद्ध, विभाजन, स्वतंत्रता और औद्योगीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों से आर्थिक युगबोध बदलता रहा है। औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न भावनात्मक दबाव और आर्थिक परवशता दोनों को यथार्थ रूप से स्वातंत्र्योत्तर कहानी में अभिव्यक्ति मिली है।

लघु एवं कुटीर गृह-उद्योगों पर गुजारा करने वालों के हालात में भी स्वतत्रता के बाद कोई विशेष परिवर्तन होता दिखाई नहीं देता। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की योजनाओ का लाभ ग्रामीणों को नहीं हुआ है। ग्रामीण हस्तशिल्पकारो को सम्मान से जीने का अवसर नहीं मिला। वे मेहनत मजूरी करते है। निपुण हैं परंतु उनका शोषण होता है। विष्णु प्रभाकर जी ने 'सॉचे और कला' कहानी मे ग्रामीण लघु उद्योगों में कार्यरत शिल्पकारों का शोषण दिखाया है। ग्रामीण कलाकारी अब नष्ट होती जा रही है जो कभी इन कहानीकारों के पेट का साधन थी लेकिन अब वह बिलकुल नष्ट होती जा रही है। जो उनकी व्यथा बनकर रह गई है। कहानी मे चित्रित 'मैं' के विचार बहुत कुछ स्पष्ट करते है, "कभी यह तिजारत खूब चलती थी पर आज के विज्ञान के युग में मिट्‌टी का महत्त्व इस्पात में समा गया है। कला मशीन में सिमट गई है और शिल्पकार के हाथ भी मिट्‌टी में सौदर्य और प्राण डालने में अशक्त होते जा रहे हैं। जैसे सब कुछ व्यापार हो गया हो। जैसे सब कुछ का लक्ष्य बस पैसा और पेट हो।"[५५]

समाज में व्यक्ति का स्थान उसके आर्थिक स्तर द्‌वारा अनिश्चित होता है। अर्थ मानवीय जीवन का साध्य बन गया है। इसी अर्थ के लिए मारामारी के कारण गुंडागर्दी, हिंसा, आतंक, असुरक्षा और आवश्यकता बढ रही हैं। धनाशक्ति और अर्थाशक्ति से व्यक्ति आदर्शहीन, विवेकहीन और दिशाहीन होता जा रहा है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में धन-पिशाच के फैलाए पंजो में मानव को छटपटाते हुए दिखाया गया है और आर्थिक युगबोध की बदलती मान्यताओं के साथ बिखरते भावात्मक संबधों को अभिव्यक्त किया गया है। 'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी में जीवन भर बेईमानी से संचित धन से पारसनाथ जैसा वृद्‌ध व्यक्ति जीवन और मृत्यु को भी अपने वश में करने की आकांक्षा रखता है। धन के लिए शक्ति और शक्ति के लिए धन की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है। विष्णु जी की 'ठेका' 'अंधेरी सुरंग' 'समझौता' आदि कहानियों में रातों-रात अमीर बनने के लिए नैतिकता को तिलांजली देते हुए देखा जा सकता है। हिंदी कहानियों में बाप-बेटी, भाई-बहन, माँ-बेटी, पति-पत्नी के भावात्मक रिश्तों में पैसों के कारण बदलाव देखने को मिलता है, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में अर्थ से बढ़कर किसी वस्तु का मूल्य नहीं है।

युग, काल विराट आयाम हैं। जिसमें समाज की सामान्यतः एक विशिष्ट मानसिकता बनी रहती है। इसी मानसिकता को बनाने में उस काल की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण कार्य करती रहती हैं। आजादी मिलने पर लोगों को अधिकार बोध हुआ और छोटे से छोटे व्यक्ति को उपेक्षित न समझकर मनुष्य के नाते उसे सम्मान देने का प्रयत्न होने लगा है। इसकी एक प्रतिकूल धारा भी उभरी हैं वह भारतीय जन की संयम और क्षमता की प्रवृत्ति हैं। आज देश के नव-निर्माण का लक्ष्य सामने है किंतु देश में व्यापक आर्थिक विषमता

के कारण धनिक और निर्धन दोनों के मध्य अंतर की खाई बढती जा रही है। इन दोनों विरोधी धाराओं का प्रभाव इस युग में प्रत्यक्ष है और सही बोध विष्णु प्रभाकर जी की कहानियो में भी मूलतः उभरकर आया है। उन्होंने इस बोध को विशेष सूक्ष्मता से व्यक्त किया है। युग की विडंबनाओ को पात्रों के बाह्यसंघर्षों में अभिव्यक्त किया गया है उसे उनके अंतद्र्वंद्व में भी प्रखर अभिव्यंजना मिली है।
समाज के आर्थिक-स्तंभ-- वर्ग या श्रेणी किसी समाज का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग होता है जिसका निर्माण उस समाज के श्रम, उत्पादन तथा वितरण के साधनों द्वारा होता है। इसके साथ मनुष्य की वंश-परंपरा, शिक्षा, न्याय, रहन-सहन का स्तर तथा व्यक्ति की प्रतिभा भी उसे विशिष्ट वर्ग का व्यक्ति प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में समाज विकास की प्रक्रिया में वर्गीय चेतना प्रमुख रूप से कार्य करती है। यह चेतना अलग-अलग स्तर पर कार्यरत हैं 'हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग' ग्रंथ में डॉ० मंजुलता सिंह ने इसकी स्पष्टता को व्याख्यायित किया हैं। उनका वक्तव्य है, "वर्तमान समाज आर्थिक दृष्टि से तीन वर्ग या तीन श्रेणियों में विभक्त है-- उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग शोषक या शोषित, पूँजीपति या श्रमिक के नाम से भी जाने जाते हैं। संसार के सभी पूँजीवादी देशो में उक्त तीनों श्रेणियाँ विद्यमान हैं।"[५७] स्वातत्र्योत्तर कहानी में समाज के यही तीनों वर्ग आर्थिक स्तंभ माने गए हैं जिनकी विशेषताओं एव विवशताओं से आर्थिक युगबोध को अभिव्यक्ति मिली है।

आर्थिक दृष्टि से संपन्न उच्चवर्गीय व्यक्ति सभी सुख-सुविधाओं का भोक्ता होता है। उच्चता का दंभी यह वर्ग समाज में अनेक रूपों में छाया हुआ है और मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग का शोषण करता रहता है। उच्च वर्ग में भौतिक मूल्यो के प्रति अतिरिक्त लगाव विद्यमान रहता है। स्वतंत्र भारत में इस वर्ग के निकट आए और सुविधाभोगी होने की महत्त्वाकांक्षा उच्च वर्गों में भी जाग रही है। उच्च वर्ग की आर्थिक मनोवृत्ति को व्यक्त करने वाली कहानियों में इस वर्ग की अहंमान्यता, धन के प्रति मोह, अन्य वर्गो के प्रति उपेक्षा ओर हिकारत का भाव, आत्मकेंद्रित असामाजिकता, सुविधाओं के प्रति लगाव, धन-संचय की प्रवृति देखने को मिलती हैं। उच्च वर्ग पर लिखी गई कहानियों में पूँजीवाद के तथाकथित हाथखंडों की ओर सब से अधिक ध्यान आकर्षित किया है। पूँजीपति पिट्ठुओं को पालते हैं और शोषितों को थोड़ा-थोड़ा दान डालकर उनका मुँह बंद कर देते हैं। विष्णु प्रभाकर की 'पुल टूटने से पहले' कहानी में काला धंधा करने वालों को वेश्या से भी बदतर माना गया है क्योंकि वेश्या लेना-देना बराबर करती है जब कि काला धंधा करने वाले सिर्फ लेते हैं। ऐसे भ्रष्ट लोग "व्यक्ति की चेतना को जलाकर समुचे राष्ट्र को नपुंसक, पंगु और चरित्रहीन बना देते हैं।"[५७] इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर की 'एक मौत समंदर किनारे' कहानी में काले धन की उपयोगिता का वर्णन है-- "काला धन बोरियों में भी बंद रहता है। वहीं से उसका एक भाग

विलासिता पर खर्च होता है, दूसरा भाग राजनीतिक पार्टियों को जाता है। सत्ता सेवा से नहीं काले धन से प्राप्त की जाती है और फिर सत्ता से काला धन अर्जित किया जाता हैं।"[५८] उच्च वर्ग में पारिवारिक संबंधों का आधार सुख-सुविधाएँ तथा पैसा है। 'अंधेरी सुरंग' में माँ-बेटी से क्लब पार्टी के लिए पैसों की माँग करती है, पिताजी नई गाड़ी खरीदना चाहते है। तो पति अपनी फिल्म बनाने के लिए पत्नी से पैसों की माँग करता है। उच्च वर्ग की आर्थिक दृष्टि से स्थिति जितनी सुदृढ़ है उतनी ही पारिवारिक रिश्तों की दृष्टि से खोखली दिखाई देती है। हिंदी कहानियों में आर्थिक शोषण, आर्थिक असमानता और आर्थिक विषमताओं का दोषी इसी वर्ग को माना गया है।

मध्य वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक-सभी दृष्टियों से दूसरे वर्गों से भिन्न है। मध्य वर्ग की विशेषता स्पष्ट करते हुए, 'हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग' ग्रंथ में डॉ० मंजुलता सिंह का वक्तव्य बहुत कुछ स्पष्ट करता है। उनका कथन है, "मध्यवर्ग में आत्मनिर्भरता तथा जीवन और परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की अद्‌भूत क्षमता रहती है। यह समाज का श्रेष्ठतम् अंग है जिसमें प्रेरक शक्ति, नेतृत्व, भावना और भविष्य की चेतना एक साथ दिखाई देती है।"[५९] आर्थिक दुर्व्यवस्था, सम्मानपूर्ण स्तर बनाए रखने की आकांक्षा, असंतोष, आत्मप्रदर्शन, स्पष्टवादिता, दिशाहीन शिक्षा, बेरोजगारी आदि कारणों से न तो मध्यवर्ग उच्चवर्ग की भॉति अपने को सुरक्षित अनुभव करता है और निम्नवर्ग की भाँति भाग्य के सहारे सब छोड़कर निश्चिंत हो पड़ता है। हिंदी कहानी में इस वर्ग की स्थिति को स्पष्ट करते हुए 'हिंदी कहानी में युगबोध' ग्रंथ में डॉ० मंजुलता सिंह लिखती है, "हिंदी कहानी में मध्यवर्ग का व्यक्ति आर्थिक प्रतिद्‌वंद्‌विता के कारण अनेक व्यंग्य, लांछन, उपहास, उपेक्षाएँ सहन करने पर भी अपने नैतिक आदर्शों के बल पर पूँजीपतियों के क्रूर कुचक्रों से लड़ते हुए शोषित वर्ग को निरंतर संघर्ष करने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहता है।"[६०] समाज में वर्ग संघर्ष को मिटाने के लिए मध्यवर्ग हिन्दी कहानियों में जुझता हुआ दिखाई देता है।

कहानीकार भी स्वयं मध्यवर्ग की सीमा में आतें हैं। अतः उनकी दुर्बलताओं को भली प्रकार पहचानते हुए उन्होंने इसका वर्णन् किया है। पैसा मध्यवर्ग की कमजोरी है और पैसों के लिए हर प्रकार का समझौता व्यक्ति को करना पड़ता है। 'गृहस्थी' की वीणा को घरखर्चा, बच्चों का पालन-पोषण पति का निकम्मापन आदि के साथ समझौता करना पड़ता है। 'कितने जेबकतरे' की सुगंधा को पिता की मृत्यु के बाद परिवार को चलाने के लिए बॉस के साथ न चाहते हुए भी संबंध रखकर अपनी इच्छाओं का गला घोंट देना पड़ता है। 'एक माँ, एक देश' कहानी की मृणाल बेटे को बंगाल का देशबंधु बनाने का सपना पूरा नहीं कर सकती। 'हिमालय की बेटी' की रेवती को दोनों पॉव कटे हुए पति को

ठीक करने के लिए विषशता का स्वीकार करना पड़ता है। दोनों स्थितियाँ इस वर्ग की दुर्बलता की ओर संकेत ही हैं।

मध्यवर्ग के आर्थिक समझौते रिश्तों की पर्तों को उखेड़कर रख देती है। 'ठेका' इस कहानी में पति-पत्नी का नहीं पति और पत्नी के पैसों का संबंध है। 'ठेका' में नैतिक मूल्यों की गिरावट मानव को कितनी निम्न स्थिति में पहुँचा देती है इसका सही चित्रण मिलता है। 'मार्क्सवाद और हिंदी कहानी' ग्रंथ में डॉ० सुधाकर जी का वक्तव्य इस बात पर प्रकाश डालता है उनका कथन है, ऊँची वैयक्तिक लिप्साएँ, आर्थिक तंगी, सामंतवाद का प्रभाव तथा नई पाश्चात्य सभ्यता का आकर्षण इस वर्ग के अंतर्विरोधों एवं मानसिक संघर्षों को व्यक्त करता है।"[६१] यही कारण है कि जीवन से निराश होकर पतनोन्मुखी विचारों का स्वीकार करके यह वर्ग अपने परिवार के तथा समाज के जीवन में विकृति पैदा करता है और अनेकानेक समस्याएँ निर्माण कर देता है।

हिंदी कहानियों में मध्यवर्ग के लोग एक आर्थिक चक्रव्यूह में फँसे दिखाई देते हैं जिसमें घुसना उनकी विवशता है और निकलना उनके लिए संभव नहीं है। उनकी संवेदना और सहानुभूति भी वर्गीय और वैयक्तिक सीमाओं से घिरी रहती है। 'नाग-फांस' कहानी के लाला चंद्रसेन का बेटे के विवाह में बढ़िया बाजे का ऑर्डर देना ताकी बिरादरी में नाम हो जाए, 'जीवन एक कहानी' में आमदनी सिर्फ पचास रुपये होते हुए भी कांत का तरह-तरह की किताबें खरीदना क्योंकि लोग उसे शिक्षित समझे। इस प्रकार मध्यवर्ग की विवशता, संघर्ष और स्थितियों से समझौता हिंदी कहानी में यथार्थ भूमि पर वर्णित हैं जिसके मुख्य कारण हैं की कहानीकार आर्थिक घटनाओं से प्रभावित रहे हैं। स्वतंत्र भारत के व्यक्ति के बदलते आर्थिक युगबोध को उन्होंने व्यक्तिगत धरातल पर अनुभूत किया है।

निम्नवर्ग के आर्थिक बोध को स्पष्ट करने वाली कहानियों का स्वर भी मध्यवर्ग की निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति एवं जन-जन में जागृति का संदेश पहुँचाना है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने विशेष रूप से विसंगतियों पर प्रहार किया है परंतु उपेक्षित और वांछित के न मिल पाने, विषम परिस्थितियों के टकराने, निम्नवर्ग की युवा पीढ़ी का आक्रोश भी कहानी में विस्तार से वर्णित है। अपनी कहानियों में निम्नवर्ग की आर्थिक स्थिति को चित्रित करते हुए जीवन और जगत् के अभावों तथा कष्टों के प्रति विष्णु प्रभाकर जी की दृष्टि बराबर सजग रही है। 'हमें गिरानेवाले' कहानी के द्वारा बिहारी के साथ किए लोगों के व्यवहार से वह यही बात सूचित करना चाहते हैं कि, समाज की यही नियति बन गई है कि वह गिरे हुए लोगों को और गिराता है। उसकी अभावग्रस्तता एक हँसी बनकर रह जाती है। यह बात बिहारी के मन में भी आक्रोश निर्माण करती है। 'सुराज' में सुराज निम्नवर्ग के लिए एक दुःख स्वप्न से अधिक कुछ नहीं है। इसमें साहू जैसे उच्चवर्गीय लोग आजादी के पूर्व सुखी थे और आजादी के बाद निम्नवर्गीय झगडू

मिस्त्री जैसे शोषित लोगों को कुचलकर उनको अपने जीवन के दुःख दर्द को सीने पर विवश कर देने वाली मानसिकता को यथार्थ के साथ चित्रित किया है। 'आजादी' कहानी में एक ऐसी वस्तुस्थिति का तीखा अहसास कराया है कि जब तक हमारे समाज में जातिगत या साप्रदायिक, वैचारिक संकीर्णता विद्यमान है तब तक 'आजादी' का सही मतलब हम जान नहीं पाएँगे। 'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी में भी निम्नवर्ग की एक क्रूर कथा का चित्रण आता है। एक बाप अपने परिवार की भूख मिटाने के लिए अपनी जवान पुत्री को दरिदों को बेच देता है, वे दरिंदे उसकी वहीं हालत बनातें हैं जिसका परिणाम मृत्यु होती है। प्रस्तुत कहानी में एक ओर निम्नवर्ग की विवशता के चित्रण के साथ मध्यवर्ग की इस वर्ग के प्रति झूठी सहानुभूति का चित्रण भी वास्तविकता को स्पष्ट करता है 'पिचका हुआ केला और क्रांति' कहानी में भी इस वर्ग की अभावग्रस्तता के चित्रण के साथ उच्चवर्ग की निम्नवर्ग की प्रति बढती हीन भावना को ही चित्रित किया गया है। छोटा भांजा अपने मामा से हँसी-मजाक में कहता है कि क्यों न हम इन गरीबों को चाँद पर भेज देते? मामा का बच्चे को दिया जवाब मानों उच्च वर्ग की झूठी क्रांति का व्यंग्य है जो पूरी कहानी में एक गहरी संवेदना छोड देता है मामा का कथन है, "ये लोग तो बेहद जाहिल हैं। असल में प्रकृति जिनको जैसा बनाती है वैसे ही वे रहते हैं। फिर भी हम उनकी गरीबी दूर करने की कोशिश मे लगे हैं।"[६२] 'बच्चा माँ का था' कहानी की चंदो भंगिन इसी प्रकार एक उच्चवर्ग के सेठ के हाविश का शिकार बनती है। किसी को सच्चाई बता भी नहीं सकती क्योकि समाज उसे ही झूठा साबित करेगा इसलिए चुपचाप चारों ओर से प्रतारणा को सहती है। कहानी पूरे समाज में फैले पाखंड को विश्लेषित करती है।

आर्थिक युगबोध को स्पष्ट करने के लिए हिंदी कहानी में अनेक समस्याओं का चित्रण हुआ है जिनमें प्रधान रूप से जनसंख्या, दिशाहीन शिक्षा, बेरोजगारी, महँगाई, आवास तथा दैवी एवं भौतिक आपदाएँ भी हैं जिनका चित्रण विष्णु जी की कई कहानियों में मिलता है। विष्णु जी ने दैविक, भौतिक आपदाओं से त्रस्त परिवार, सरकार की झूठी और बदलती धारणाओं को व्यंग्य रूप में चित्रित कर मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की आर्थिक शोचनीय दशा का विदारक चित्रण किया है। 'भारत माता की जय' कहानी में बुलूकी और उसका परिवार अति-वृष्टि के कारण बहुत त्रस्त है। थोडा बहुत बचा राशन, मसाले, चीनी सब नष्ट हो जाते है। एक धरणग्रस्त गाँव में लोग भूख की पीड़ा से मर रहे हैं और दूसरी ओर अखबारों में उसके लिए सहायतार्थ झूठी चर्चा का वर्णन है। पता लगा बांध सुरक्षित है। क्या बांध पूरा होते ही सदा के लिए यह विपदा टल जाएगी। यह भी सूचना दी गई कि मकान इस साल पिछले वर्ष से कम गिरे है और तेइस लाख की आबादी में बीस-बीस व्यक्ति दब या डूब गए तो उसका कोई अर्थ नहीं"[६३] इसका लाभ उठाने वाले सेठों का अमानवीय व्यवहार भी इसी कहानी में देखा जा सकता है। विष्णु

जी ने अकाल की विभीषिका पर बड़ी यथार्थ और करुण कहानियाँ लिखी हैं। 'एक माँ एक देश', 'भूख और कुलीनता, 'मुक्ति', 'भारत माता की जय' कहानियों में अनाज और पानी तथा दवाइयों के लिए तरसते मरते लोगों का चित्रण है। 'भूख और कुलीनता' में सुधीरबाबू की मॉ घर में एक शेर बचा अनाज भी लोगों में बांट देती है मात्र लोग मां को बचाने के लिए दवाईयाँ लाने के लिए पैसों की जरूरत होती है तो कोई सहायता नहीं करना चाहते। आखिर सुधीर बाबू की माँ दवा के अभाव के कारण मर जाती है 'एक मॉ एक देश' कहानी की मृणाल बंगाल के अकाल के कारण त्रस्त होकर बेटे को शहर में एक अमीर प्रौढा के पास छोडकर आती है। स्वतंत्र भारत की विसंगतियों का दारुण चित्रण इन कहानियों में किया गया है।

आर्थिक स्थिति से जूझती अर्जिका नारी का संघर्ष– आर्थिक संकट आज के युग का सबसे बडा सकट है और जो नारी पुरुषों से अधिक जूझ रही है उसके लिए सब से बडी चुनौती है। युद्ध, विभाजन, स्वतंत्रता, औद्योगीकरण, यांत्रिकीकरण से भारत के आर्थिक ढॉचे में बहुत बडा परिवर्तन हुआ है। आज एक ओर नारी के लिए नौकरी की विवशता है तो दूसरी ओर जिंदगी की दौड में पुरुषों के समानांतर बढने की ललक भी उसमें विद्यमान है। इस प्रकार दुहरी-तिहरी जिम्मेदारियों के बीच संघर्ष करती हुई नारी पूरी सच्चाई के साथ हिंदी कहानियों मे उभरती दिखाई देती है। आर्थिक सकट से मुक्ति पाने के लिए स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जीने के लिए परिवार का आर्थिक स्तर ऊपर उठाने के लिए स्त्रियों का एक बहुत बडा वर्ग नौकरी को चुनौती के रूप में लेने को प्रस्तुत दिखाई देता है।

घर से बाहर निकलने के लिए नारियों ने अनेक स्तरों पर संघर्ष झेला है, कमाकर परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करके भी व्यक्तिगत स्तर पर अपमान उठाया है और कमाने की प्रतिस्पर्धा में मानसिक, शारीरिक यंत्रणा भी सही है। हिंदी कहानियों में नारी का पराजित रूप देखने को नहीं मिलता तो निरंतर संघर्ष से जूझता हुआ मिलता है। अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व को बचाए रखने की पूरी सतर्कता कार्यरत नारी में दिखाई देती है। हिंदी कहानियों मे शिक्षित नारी सामाजिक और नैतिक रूढियों-परंपराओं को तोडती घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर अपनी असीम शक्ति और प्रतिभा के बल पर आर्थिक अभावों को दूर करने का प्रयास करती हुई देखी जा सकती है।

विष्णु प्रभाकर जी ने नारी के संघर्षशील व्यक्तित्व का चित्रण संवेदनशीलता के साथ किया है। आधुनिक शिक्षा और शिक्षा के माध्यम से अर्जित स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप नारी के कंधों पर आर्थिक बोझा ढोने की शक्ति आ गई है। 'कितने जेबकतरे', कहानी की सपना परिवार की प्रथम संतान होने के कारण पिता की मृत्यु हो जाने पर अविवाहित रहकर परिवार का पूरा दायित्व उठा लेने में समर्थ है। सपना छोटे भाई–बहनों की समस्याओं के आगे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का

गला घोट देती है। जीवन स्तर को सुधारने की आकांक्षा, 'गृहस्थी' की वीणा, 'आकाश की छाया में' की सरला, 'हिमालय की बेटी', की रेवती आदि में देखी जा सकती है। 'गृहस्थी' कहानी में पत्नी की कमाई से घर में चीजें आती हैं। 'अंधेरी सुरंग' कहानी की शिल्पा पति की फिल्म बनाने के लिए, माँ-पिता की इच्छाओं की पूर्ति के लिए सहायता करती है पर वह विक्षुब्ध भी है। "मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। पर इसका मतलब यह नहीं है कि प्रेम के नाम पर तुम मेरी आजादी पर चोट करो और वह भी पैसों के लिए। तुम मुझे पैसा बनाने वाली मशीन बनाना चाहते हो, तो सुन लो, तुम्हारी शिल्पा तुम्हारे लिए मर गई, मर गई, मर गई।"[६४] विष्णु जी की कहानियों में नारी का दूसरा रूप भी चित्रित होता है जिसमें वह स्वयं समाज की सारी विपदाओं को स्वीकार करके एक तरह से उसकी सहमति तो प्रकट करती है और उसमें अपने आपको एक अलग प्रकार से उभारने का प्रयास भी उसका रहा है। 'ठेका' कहानी की रोशन जो पति को अपने शरीर का विक्रय कर ठेके के रूप में आर्थिक स्तर की एक विशिष्ट ऊँचाई तक पहुँचाने का मार्ग कहीं-न-कहीं उसके पुरुषों के समांतर बढ़ने के विचार का समर्थन करता हैं। 'एक मौत समंदर किनारे' कहानी की नायिका जाबाला की एक विचारवृत्ति इसी बात का समर्थन करती है। 'तिरछी पगडंडी' कहानी की नायिका का सामाजिक दृष्टिकोण इन्हीं बातों की ओर संकेत करता है। 'अंधेरी सुरंग' कहानी की शिल्पा समाज के नीति-नियमों को व्याख्यायित तो करती है मात्र अंत में कहीं, वह उसमें अपने आपको असमर्थ भी पाती है। नारी की इस असमर्थता में भी कहीं स्वतंत्र चेतना की मांग है जो एक नया युगबोध बनकर कहानी में आ गया है।

नौकरी करने की यंत्रणाएँ भी नारी को भोगनी पड़ती हैं। हर नई नौकरी के नए अनुभव होते हैं। 'आकाश की छाया में' कहानी की सरला नौकरी के लिए विवश है मात्र सिफारिश की तिकडम में फंसने के कारण उसके पूरे जीवन को झकझोर देता है। अंत में उसकी विवशता शरीर का सौदा करने की बात तक बनी रहती है। 'हिमालय की बेटी' कहानी की रेवती भी ऐसी ही नारी है जो पैसों के अभाव से जिंदगी से जूझ रही है। यह संघर्ष इतना भयावह और करुण है कि पति के कटे पांवों को ठीक करने की इच्छा भी वह पूर्ण नहीं कर पाती। हिमालय जैसा बल भी उसकी आर्थिक विपदा में समाप्त हो जाता है। 'कितने जेबकतरे' कहानी की नायिका भी इसी समस्या का शिकार बनी है। उसका जीवन को चलाने के लिए नौकरी करना आवश्यक है पर शरीर का सौदा करके नौकरी करना उसे स्वीकार नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी ने नारी ने अपने अस्तित्व को पहचान लिया है। आत्मनिर्भरता ने नारी को पुरुष के समकक्ष लाने का प्रयास किया है और यही कार्यरत नारी की उपलब्धि है।

शोषण से त्रस्त मजदूरों की यंत्रणा– देश का पिछड़ापन देश की गरीबी से जुड़ा हुआ है और गरीबी शोषण से जुड़ी हुई है। गरीबी अमीरी की बढ़ती खाई, मंहगाई

तथा बेरोजगारी के साथ जुडे हुए शोषण के नित नए रूप दिखाई देते हैं। शोषण की चक्की में पिसने वालों की यंत्रणा हिंदी कहानी में विस्तार से वर्णित है। विष्णु प्रभाकर जी की 'तांगेवाला' कहानी में मजदूरों की आर्थिक समस्याओं का वर्णन है। 'तांगेवाला' कहानी का अहमद मुसलमान होने के कारण उसके तांगे में कोई हिंदू नहीं बैठता, दिनभर उसे तांगा चलाना पड़ता है। बच्चे की बीमारी के लिए भी उसके पास पैसे नहीं है। कहीं जाकर तीन आने दिनभर की कमाई हो जाती है। उसी से दवाईयॉ खरीदकर वह तेजी से भागता है। शहर के दंगों में पुलिस पकडकर हवालात में बंद कर रखती है, उसकी मारपीट हो जाती है। उसे ही शैतान मान लिया जाता है। 'सुराज' कहानी के झगडू मिस्त्री को दवा न मिलने के कारण अपनी बीमार पत्नी को गंवाना पड़ता है। अस्पताल की सारी दवा साहू हडप लेता है। 'हमें गिरानेवाले' कहानी का बिहारी जो एक मजदूर है जो सपने में भी गरीबी को नहीं भूलता। 'भारत माता की जय' कहानी में बुलूकी और उसके परिवार का चित्रण है। अति-वृष्टि के कारण वह सब कुछ खो बैठता है और उसके बाद सरकार द्वारा सामान्य मजदूरों को कुछ सहायता भी नहीं दी जाती केवल देने का बहाना बनाया जाता है जिसके कारण बुलूकी जैसे मजदूर पूरी तरह पिसते जाते हैं। इस प्रकार आज अर्थतंत्र तेजी से परंपरागत मूल्यों और अंधविश्वासों को तोड रहा है जिसका हिंदी कहानीकारों ने सक्षम चित्रण किया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनीतिक मूल्यों के हास तथा आर्थिक शोषण के कारण सांस्कृतिक मूल्यों में भी विघटन हुआ। भारत के सांस्कृतिक मूल्य भारतीय परिवेश एवं जन-जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप ही निर्मित हुए। सस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से स्थापित है। बाह्य आचरण की अपेक्षा इसमें आतरिक संघटन पर अधिक बल दिया जाता है। संस्कृति का सही पक्ष जीवन मूल्यों से संबंधित है जो काल से जुडा है। साहित्यकार की दृष्टि भी काल से जुडी रहती है। इसीलिए स्वाभाविक रूप से वे संस्कृति के साथ जुड़े रहते हैं। यही सांस्कृतिक गठन ही बोध बनकर एक नई प्रेरणा के रूप में जन्म लेता है। इसकी व्यापकता को स्पष्ट करते हुए, 'बदलते मूल्य और आधुनिक हिंदी नाटक' ग्रंथ में डॉ० ओमप्रकाश सारस्वत जी का वक्तव्य स्पष्ट है। "प्रत्येक जाति देश अथवा व्यक्ति के भी भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक मूल्य होते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हमारें भावों, विचारों एवं व्यवहारों द्वारा होती है। हमारी संस्कृति के गुण या मूल्य हैं– दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सत्य, अहिंसा, परोपकार, आस्था, श्रद्धा, क्षमा, उदारता, विश्वबंधुत्व की भावना त्याग एवं संयम तथा सदाचार आदि।"[६५] संस्कृति के नवीन मूल्यों के संबंध में 'नई समीक्षा : नए संदर्भ', ग्रंथ में डॉ० नगेंद्र जी कहते हैं – सांस्कृतिक मूल्यों से अभिप्राय उन तत्वों से है जो सत्य के संधान और सिद्धांत में सहायक होते हैं, ये जीवन की कल्याण–साधना अर्थात्

भौतिक और आत्मिक विकास में योगदान मानते हैं और सौंदर्य चेतना को जागृत एवं विकसित करते हैं।"[६६]

स्वतंत्रता के बाद विघटन के पीछे निराशा, अवसाद, विफलता और कुंठा काम करने लगी है। युग के साथ मूल्य भी बदलते गए। साहित्य में इसके बदलते चित्र नजर आते हैं। भारतीय संस्कृति में जिन नए सांस्कृतिक मूल्यों का उदय हुआ उनमें सब से पहले हमने आर्थिक अंधःविश्वास का तिरस्कार किया। हमारे संपूर्ण दृष्टिकोण में वैज्ञानिकता को लाया गया, धर्म निरपेक्षता के साथ मानवतावाद का उदय हुआ। इसी पृष्ठभूमि पर हमें विष्णु प्रभाकर जी की रचनाओं में चित्रित सांस्कृतिक बोध की परिसीमा को जान लेना आवश्यक हो जाता है।

मानवतावादी जीवन दृष्टि– संस्कृति के बदलते मूल्यों में मानवतावाद का उदय हुआ। विष्णु जी की दृष्टि में मानव की संकीर्णता कर्म में निहित है। वह कर्मवादी जीवनदर्शन का प्रतिपादन करते हैं। वास्तव मे कर्म मानव-जीवन का उच्चतम मूल्य है। जिसके मूल में जन-कल्याण का भाव होना चाहिए। विष्णु जी की कई कहानियों में इसका बोध होता है। 'मुरब्बी' कहानी का मुरब्बी अपने मुसलमान मित्र मुनव्वर द्वारा की गई सहायता को नहीं भूलता तो अपने पुत्र राधे द्वारा उसकी जमीन निलाम होने से बचाता है। 'हिंदू' कहानी का नायक दंगों के दिनों में भी रास्ते में घायल पड़ी मुसलमान औरत की सहायता करता है। 'सफर के साथी' कहानी के लाला सुंदरदास और मुस्लिम नेता महबूब कसाई में आपसी बैर होते हुए भी, लोगों के मना करने पर भी वैद्य लाला सुदरदास महबूब कसाई के बेटे की जान बचाता है। 'पड़ोसी' कहानी मे मोहन जो हिंदू है, जिसका मुसलमानों से कोई बैर नहीं लेकिन प्रतिशोध के लिए वे मोहन की हत्या करना चाहते, यह बात इसी मुसलमान कुंजडे को पसंद नहीं आती। वह मोहन को बचाने का प्रयास करता है मात्र असफल रह जाता है। वह रोते हुए कहता है, "मैं इन्हें न बचा सका। मैं पड़ोसी का हक अदा न कर सका।"[६७] 'मैं जिंदा रहूँगा' कहानी का प्राण अपनी पत्नी और बच्चों को खोकर भी दंगें में फंसी एक असहाय औरत राज और एक बेटे को सहारा देता है। अंतः में राज के असली पति और बेटे का असली पिता मिलने पर, दोनों को उनके स्थान मिलने पर स्वयं अकेला रहता है। कहानीकार ने प्राण के माध्यम से मानवता धर्म की महत्ता को चित्रित किया है। 'इतनी सी बात' कहानी का असलम जावेद भी मजहब की अपेक्षा मानवता को अधिक महत्त्व देता है और गुंडों के हाथों फंसी एक हिंदू औरत डॉ० विनीता की सहायता करता है। विष्णु जी सत्य, अहिंसा, प्रेम को सर्वोपरि मानते हैं। भारतीय संस्कृति का भी यही संदेश है। इस संस्कृति में मानव महत्त्वपूर्ण है, न कि धर्म, जाति। मानव कल्याण की कामना ही कर्म का सही मतलब है जो विष्णु जी के पात्रों का जीवनदर्शन है। विष्णु जी ने अपनी कहानियों द्वारा मूलतः सांस्कृतिक विकास की मानवीय यात्रा को रूपायित किया है।

विदेशी संस्कृति का प्रभाव– नए सांस्कृतिक मूल्यों के उदय में निःसंदेह विदेशी संस्कृति का प्रभाव रहा, लेकिन वे सभी सांस्कृतिक मूल्य भारतीय परिवेश एवं जन–जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप उदित हुए। धार्मिक अंधःविश्वास का तिरस्कार भी इसी बात का परिचायक है। विष्णु जी की लगभग सभी कहानियॉ धार्मिक अंधः विश्वास का तिरस्कार करती हैं। 'अधूरी कहानी' में हिंदू मुस्लिम के गहरे भेद से अनभिज्ञ अहमद सवैया लेकर सबसे पहले दिलीप के घर पहुँचता है इसीलिए कि दिलीप की मॉ ने रमजान के दिन अपने बेटे के हिस्से का दूध उसे दिया था मात्र जब दिलीप की मॉ सवैया लेने के लिए इन्कार करती है तो उसका विश्वास टूट जाता है। दिलीप की मॉ को वहॉ भले ही धर्म याद आया हो मात्र विष्णु जी ने इसमें धार्मिक अंधःविश्वास को तोड दिया है। वैसे 'सफर के साथी' 'शमशू मिस्त्री', 'मुरब्बी', 'वह रास्ता', 'अगम अथाह', 'मेरा बेटा', 'आज होली है', 'ये बंधन', 'इतनी सी बात', 'स्यापा मुका' आदि कहानियों द्वारा विष्णु जी ने धर्मनिरपेक्षता जैसे सांस्कृतिक मूल्य की सशक्त अभिव्यक्ति की है। 'ये बंधन' कहानी में सुरैया अनीला दोनों बचपन की सहेलियॉ हैं। शादी के बाद जब दोनों एक दूसरे से मिलती है तो हंसी-खुशी दोनों में बातें होती हैं।, दोनों के मन में किसी प्रकार के बंधन नहीं हैं पर जब सुरैया अनीला की माँ से मिलने रसोई घर में चली जाती है मॉ सुरैया को देखती है तो उसके हाथ से कढ़ाई गिर जाती है और वह गिर पडती है। सुरैया को बहुत दु.ख होता है परंतु वही मॉ अस्पताल से संदेश भिजवाती है कि मेरे आने तक सुरैया को घर से जाने न देना। विष्णु जी के पात्रों ने धार्मिक अंधःविश्वासों को तोडकर नए मूल्यों की प्रस्थापना की है पर उनके पात्र भारतीय परिवेश और जनजीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप चित्रित किए गए हैं।

व्यक्ति स्वातंत्र्य में पूर्ण आस्था– विष्णु जी ने नए मूल्यों का स्वीकार कर धर्म, परंपरा, नीति से अतिग्रस्त संस्कृति का अस्वीकार किया है। 'रहमान का बेटा', 'मेरा बेटा', 'मेरा वतन' आदि जैसी कहानियों में विष्णु जी ने इसी बात को स्पष्ट किया है। 'रहमान का बेटा' कहानी का रहमान रूढि-परंपरा में जकड़ा हुआ है मात्र उसका बेटा जब अपने परिवार द्वारा जाति में 'विचार-आचारों में' ठीक-ठाक से रहन-सहन आदि बातों को नीति मानकर उनमें सुधार लाने का प्रयास करता है, तो रहमान उसे नकारता नहीं। 'मेरा बेटा' कहानी तो धर्म भेद को नकारती है। 'मेरा बेटा' कहानी में डॉ० हसन और डॉ० शर्मा जब अस्पताल में कानपुर के रामप्रसाद को जीवनदान कर लौटते हैं, उन्हें पता चलता है कि यह रामप्रसाद हसन के पिता को मुसलमानों ने मारा, हसन के दादा अत्यंत व्याकुल हो उठते हैं। भले ही रामप्रसाद ने धर्म बदल दिया हो लेकिन खून से जुड़े रिश्तों पर उनका विश्वास है। धर्म की अपेक्षा यह रिश्ता ही मानव की पहचान है यही मानकर हसन के पिता अपने भाई से मिलने चले जाते हैं। 'देश–द्रोही' कहानी में भी इसी बात को दुहराया गया है। घर में मेहमान बनकर आए डॉ० खान और उनके परिवार की

उन्हीं की जाति के लोगों द्वारा की गई हत्या के समय अपने प्राण देकर डॉ० आस्थाना मित्रता का धर्म निभाते हैं। 'मेरा वतन' कहानी का मि० पुरी ऐसा पात्र है जो विभाजन के बाद जब लाहौर चला जाता है तो काफिर समझकर उसकी हत्या की जाती है पर वह अपने वतन को नहीं भूलता। धर्म, जाति, प्रांत के भेद मानवता को मिटाते जा रहे हैं मात्र हमारी संस्कृति इस पर विश्वास नहीं करती। धर्म, जाति, परंपराएँ व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा नहीं बन सकती। जब मानव इनके साथ अपनी स्वतंत्रता को जकड़ता है तब उसका मनुष्यत्व समाप्त होकर वह पशुता का आचरण करने लगता है, भारतीय संस्कृति में आस्था रखने वाले विष्णु जी की कहानियों द्वारा यही प्रमाणित सत्य सामने आता है।

जीवन के नव निर्माण में अटूट आस्था— स्वतंत्रता, समानता एवं विश्वबंधुत्व ऐसे युगीन सांस्कृतिक मूल्यादर्श हैं, जो मानवीय संबंधों को उदात्त आधारभूति निर्मित करते हैं। विष्णु जी ने इन आदर्शों को यथास्थान स्थापित किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में युगीन संस्कृति के नए आयाम उद्‌घाटित करने की कोशिश की है। जीवन के नव निर्माण में यही आयाम उनकी अटूट आस्था के रूप में उदित होते है। विष्णु जी के पात्रों में मूलतः जीवन के प्रति आस्था और विश्वास का स्वर है इसीलिए जीवन की ओर देखने की उनकी दृष्टि में गहरा स्वर नजर आता है। 'क्रांतिकारी', 'दीप जले घर-घर', 'वे दोनों', 'मुक्ता' जैसी कहानियों में चित्रित पात्र में दूसरों को भी जीने की एक नई चेतना दे देते हैं। देश के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने वाला नारायण 'वे दोनों' कहानी में चित्रित है। नारायण जैसे मित्र की प्रेरणा लेकर कहानी का पात्र हरीश उसकी देशभक्ति से प्रेरित होता है। मानव मूलतः बर्बर हो ही नहीं सकता। विष्णु जी का यह गहरा विश्वास है। इसी विश्वास के कारण उनके घर में हत्या करने के लिए आए हत्यारे के मन में भी परिवर्तन की चिनगारी जग जाती है। 'आखिर क्यों?' इस कहानी में शंकर अजनबी हत्यारे के साथ विश्वास से बातें करते कहता है, "इन्सानी जिदंगी का बुनियादी मसला है और इसके लिए इन्सान बने रहना जरूरी है। सोचना चाहिए कि दूसरों के होने में मेरा होना कैसा है ? अनाज पैदा करके भी किसान भूखें क्यों रहते हैं ? महल बनाकर भी मेमार झोपड़ों में सिर क्यों छिपाता है ? कपड़ा बुनकर भी जुलाहा तन क्यों नहीं ढक पाता ? इसके जवाब में अक्सर कहा जाता है— जो पैदा करने वाले हैं, वह अपनी पैदा की हुई चीज का इस्तेमाल नहीं करते, दररक्षों पर कितने फल आते हैं पर वह उन्हें कभी नहीं खाते।"[६६] खतरनाक हत्यारे के विचारों में परिवर्तन हो जाता है। 'सत्य कों जीने की राह' कहानी में चित्रित संदीप खन्ना और विनय बत्रा इन दो मित्रों में हुआ परिवर्तन कहानी के अंत में यही सूचित करता है कि जीवन के नव-निर्माण में यदि अटूट आस्था हो तो जीवन में कितने ही बुरे कर्म हो गए तो अंत में अच्छाइयों की ओर मुड़ने की प्रेरणा व्यक्ति को एक नया अर्थ देती है। 'जीवन का एक और नाम' कहानी में विष्णु जी ने तो जीवन के प्रति देखने

की एक नई दृष्टि दी है। कहानी में अनंत काका स्वयं कैन्सर के मरीज होते हुए भी सुमिता जैसी कैन्सर की मरीज के मन में जीवन के अंतिम क्षण तक आनंद और उल्लास भर देते हैं। इतना ही नहीं तो उसके मन में नेत्रदान और देहदान की जो बात उभर आती है उसीसे जीवन की सार्थकता को बढ़ाने में एक उसी प्रकार का मनुष्य जो जीवन के कुछ क्षण बाद नश्वरता में परिवर्तित होने वाला है उसी के मन में भी नव-निर्माण की आशा जगाने का कार्य अनंत काका जैसा पात्र करता है जो सभी नाते-रिश्तों से दूर है। उनमें एक ही रिश्ता है वह इन्सानियत का जो जीवन का सही मतलब बताता है। विष्णु जी ने जीवन को नए-नए संदर्भों में डालकर नए मूल्यों की प्रस्थापना की है।

नारी जाति के प्रति सम्मान की भावना– सामाजिक मूल्यों में नारी की विशेष महत्ता है। नारी उन व्यापक विराट आदर्शों को लिए हुए है जो हमारी संस्कृति की युगों से धरोहर रही हैं। विष्णु प्रभाकर जी ने नारी का परंपरागत आदर्श व्यक्त किया है। वह पुरुष की साधना में सहायक है। व्यक्तिगत क्षणों में भी सामाजिक समस्याएँ उसके पास हैं। भारतीय चिंतन में नारी का समर्पित व्यक्तित्व उदात्तता का द्योतक है। विष्णु जी के साहित्य में नारी इन समस्त रूपों में चित्रित होती है। 'क्रांतिकारी', 'मुक्ता', 'संघर्ष के बाद', 'आश्रिता', 'गृहस्थी', 'संबल', 'हिमालय की बेटी', 'नचिकेता', 'आकाश की छाया में', 'खिलौने' आदि जैसी कहानियों में विष्णु प्रभाकर जी ने नारी को परंपरागत रूपों में चित्रित किया है। इन परंपरागत रूपों में बहू, पति-पत्नी के लिए आत्मसमर्पण, पारिवारिक जिम्मेदारियों में पति का सहयोग करती नारी भारतीय संस्कृति के आदर्शों को निभाती चित्रित है। स्वतंत्रता के बाद पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव भारतीय जनमानस में बढ़ता गया है। शिक्षा-प्रसार, औद्योगीकरण के कारण नारी के विचारों में परिवर्तन होता गया। विष्णु जी ने नारी के परिवर्तित रूप को भी स्वीकारा है। 'बिंब-प्रतिबिंब', 'सच मैं सुंदर हूँ', 'शतरूपा की मौत', 'तिरछी पगडंडियाँ', 'मैं नारी हूँ', 'राजम्मा', 'मारिया' आदि जैसी कहानियों में चित्रित नारियों में केवल परंपराओं का स्वीकार कर बने बनाए मार्ग पर चलने की ललक नहीं है तो नारी स्वतंत्र विचारों का समर्थन करती है। अपने स्वतंत्र अस्तित्व की माँग करती है। विष्णु जी ने इस नारी स्वतंत्रता का भी समर्थन किया है। 'आश्रिता', 'दूसरा वर' जैसी कहानियों में विधवा के पुनर्विवाह का अधिकार स्वीकार कर समाज के सामने नवीन विचारों की सृष्टि की है। 'नफरत, केवल नफरत', 'एक मौत समंदर के किनारे', 'एक और कुंती', जैसी कहानियों द्वारा वेश्या को भी समाज में सम्मान से जीने की इच्छा को प्रस्तुत कर एक नया जीवनादर्श प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता पूर्व काल में नारी जिस प्रकार किसी की दासी या कठपुतली थी, वह आज नहीं है। पुराण काल से लेकर उसका व्यक्तित्व उदात्तता का द्योतक है इसी विश्वास की निर्भय अभिव्यक्ति विष्णु जी की कहानियाँ करती हैं।

युग बोध की सीमा काल के साथ बांधी नहीं जाती। प्रस्तुत अध्याय मे युगबोध के साथ जुड़ी हुई विष्णु प्रभाकर जी की समकालीन विचारधारा और उससे अभिव्यक्त मानव–जीवन दर्शन के अध्ययन को भी उनके साहित्य के साथ जोडा जा सकता है। कहानी मे युगबोध का आयाम विश्वव्यापी है क्योकि मनुष्य को पहली बार उसकी परंपरा, धर्म, दर्शन तथा सस्कृति से अलग कर नए युगबोध के साथ नवीन यथार्थ की भूमि पर देखने का प्रयत्न किया गया है।

सामाजिक युगबोध की दृष्टि से विष्णु जी ने ग्रामीण तथा शहरी जीवन में आए परिवर्तनों को दो रूपों में व्यक्त किया है– पहला है परंपरागत रूप तथा दूसरा है परिस्थितियों, परिवर्तनो से बदला हुआ नया रूप 'जातिप्रथा एवं अस्पृश्यता' निवारण के लिए उन्होंने परिवर्तित उदार नीति को प्रमुखता दी है। 'रहमान का बेटा' जैसी कहानी में सवर्ण और अनुसूचित जातियो के संघर्ष को नए परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया गया है। शिक्षा, नौकरी, स्वतंत्रता-समानता और अस्तित्व बोध ने समाज एवं परिवार को नए रूप में प्रस्तुत कर दिया है जिनका विस्तृत विवेचन कहानी में मिलता है। नारी मानसिकता के संदर्भ में नारी की समस्याओं तथा उससे संबंधित प्रश्नो के प्रति खुले चिंतन का स्वरूप कहानी मे मिलता है। नारी मे स्वतत्रता, उन्मुक्तता, अस्तित्व की तलाश, अधिकार के प्रति उदारवादी दृष्टि का परिचय कहानीकारो ने दिया है। विष्णु जी की कहानियॉ नारी के जागरुक अस्तित्व को उजागर करती हैं।

आज मानवीय मूल्यों से अधिक आर्थिक मूल्य महत्त्वपूर्ण बन चुके हैं। उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग वर्तमान समाज के आर्थिक स्तंभ हैं। उच्चवर्ग की अहमान्यता, धन के प्रति मोह, अन्य वर्गों के प्रति उपेक्षा, असामाजिकता को कहानियों में विस्तार मिला है। अधिकाश हिंदी कहानीकार मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसीलिए कहानियो मे इस वर्ग को विस्तार मिला है। निम्नवर्ग को चित्रित करने वाली कहानियों में शोषक वर्ग की निंदा और शोषित वर्ग के प्रति कहानीकार की सहानुभूति के स्वर के साथ-साथ निम्नवर्ग की बदलती मानसिकता को रेखाकित किया गया है। आर्थिक सकट को नारी वर्ग ने एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। दुहरी-तिहरी जिम्मेदारियों के बीच सघर्ष करती हुई नारी विष्णु जी की 'अंधेरी सुरंग', 'कितने जेबकतरे' जैसी कहानियों में अपने अस्तित्व की पहचान बनाने में संघर्षरत हैं। हिंदी कहानी में आर्थिक बोध इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि स्वतत्रता के बाद देश के प्रति बढते वर्ग-सघर्ष को बढावा दिया है क्योंकि वर्ग-संघर्ष से ही वर्ग-रहित समाज की स्थापना हो सकती है। इसी वर्ग-रहित समाज की स्थापना का सूत्र गांधी जी के विचारों के समर्थक विष्णु प्रभाकर जी में मिलता है। उन्होंने नारी को मनुष्य के पद पर प्रतिष्ठित किया है। गांधी युग के स्वतत्रता सग्राम में उसे घर से बाहर की कर्म-भूमि में लाकर खडा कर दिया है और इसी युग में तेजी से बदलती अभिव्यक्ति की चेतना भी रही है।

इस प्रकार नए युगबोध ने व्यक्ति स्वातत्र्य पर बल देते हुए नारी के महत्त्व को स्वीकार किया है और उसकी समता और स्वतंत्रता के लिए उदार दृष्टि अपनाई है। नारी ने स्वयं इस उद्देश्य से गंभीर सघर्ष और परिश्रम किया है। प्रतिकूल प्रथाओं के परित्याग, नारी शिक्षा तथा नारी स्वातत्र्य का भाव इस युग में व्याप्त है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि को हिदी कहानीकारो ने अलग धरातल पर चित्रित किया है। आजादी के बाद की मोहभंग की स्थिति, प्राचीन और नवीनता के बीच स्पष्टता सामने न होने के कारण जीवन के हर मूल्य पर प्रश्नचिन्ह लगाने की स्थिति, भारतीय स्वतंत्रता, भारत-विभाजन, सांप्रदायिक दगे, शरणार्थी समस्याएँ आदि के जीवंत चित्र मिलते है। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक वातावरण को विषाक्त बनाने में आपातकाल के साथ आतक और असुरक्षा का फैला हुआ वातावरण 'एक मॉ, एक देश', 'भूख और 'कुलीनता', 'एक और कुंती', 'सत्य को जीने की राह', 'मृत्युंजय' जैसी कहानियों में शब्दबद्ध किया गया है। राजनीति में संघर्ष विरोध को कहानीकार ने नई दिशा दी है। गॉव तथा शहर दोनों स्थानों पर जनता में चेतना का विकास कहानी मे वर्णित है। नेताओं की कथनी और करनी का अंतर युवा पीढ़ी ने समझ लिया है और उसकी विद्रुपात्मक अभिव्यक्ति कहानी में दिखाई देती है।

विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में युगीन संस्कृति के नए आयाम उद्घाटित करने का प्रयास किया है और ये आयाम आज अधिक महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं क्योंकि आतंराष्ट्रीय जीवन की अनिवार्य शर्त धर्म बन गया है। पाश्चात्य विचारधाराओ का प्रभाव बढ रहा है। इसका समर्थन करते हुए 'नई कविता के प्रबंध काव्य-शिल्प और जीवन दर्शन' ग्रंथ में डॉ० उमाकांत जी का कथन है : "मार्क्सवाद, विकासवाद, अस्तित्ववाद, मनोविज्ञान जैसी विचारधाराएं विश्वजनीन प्रभाव स्थापित कर चुके हैं। देश, समाज, जाति और व्यक्ति मूल्यों के विघटन से जूझ रहे है, नारी और पुरुष की भूमिका परिवर्तित हो रही है तथा विश्वचेतना, संत्रास, संशय ग्रस्त कुठित एवं विद्रुप मानसिकता को जी रही हैं।"[६६] स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकारों ने अपने दायित्व को समझकर नवीन सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करते हुए आधुनिक समाज को नया मोड देने का प्रयत्न किया है। आज धर्म एवं पाप-पुण्य की संकल्पनाएँ भी बदल चुकी हैं। विष्णु जी कर्तव्यबोध को कर्म मानते हैं। इस दृष्टि से उनकी धर्म के संबंध में सामाजिक दृष्टि अपने आप में एक बोध बन जाती है। इसकी पुष्टि करते हुए 'युगबोध और हिंदी नाटक' ग्रंथ में डॉ० सरिता वशिष्ट का कथन है, "आज धर्म का अर्थ-कर्तव्य, मनुष्य व्यक्ति और समाज के सामंजस्य द्वारा अपना जो विकास करता है उसके लिए विहित कर्तव्य ही उसके धर्म के अंग हैं।"[७०] आज परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए जिस कार्य से लोग हित होता है वह पुण्य है अन्यथा पाप है। यह नई दृष्टि है जो युगबोध के साथ जुड़ी हुई है।"

तात्पर्य, स्वातंत्र्योत्तर कहानी में एक ऐसा समाजबोध व्याप्त है जो राजनैतिक जीवन में राष्ट्रवादी, सामाजिक जीवन में सुधारवादी, नैतिकता में मानवतावादी, आर्थिक जीवन में मार्क्सवादी तथा ऐतिहासिक जीवन में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के उद्देश्यों में बंधा हुआ है।

संदर्भ सूची

१. विविध बोध–नए हस्ताक्षर, डॉ० हुकुमचंद राजपाल, पृ० १०
२. हिन्दी कहानी में युगबोध–डॉ० मंजुलता सिंह, पृ० ३१
३. नई कविता सीमाएँ ओर संभावनाएँ–डॉ० गिरीजा कुमार माथुर, पृ० १०५
४. नई कविता संवेदना और शिल्प–डॉ० मजुला पुरोहित, पृ० ६०
५. वह रास्ता (मेरा वतन) पृ० १०४
६. वह रास्ता (") पृ० १०४
७. हिन्दु (") पृ० १५६
८. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास–मूल्यसंक्रमण, डॉ० हेमेंद्र पानेरी, पृ० ३०
९. हमें गिरानेवाले–(इक्यावन कहानियाँ) पृ० ४६
१०. जरूरत–(मेरी प्रिय कहानियाँ) पृ० ७०
११. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य–डॉ० श्यामसुन्दर मिश्र, पृ० १५
१२. हिन्दी साहित्य कोश–भाग १ पृ० १३ सपा धीरेंद वर्मा
१३. भटकन और भटकन– (एक आसमान के नीचे) पृ० ८७
१४. एक मौत समंदर किनारे– (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ३७०
१५. तांगेवाला– (") पृ० १३
१६. एक माँ एक देश – (") पृ० ७२
१७. खिलौने– (") पृ० २१६
१८. फांसिल इन्सान और– (") पृ० ६०६
१९. हमें गिराने वाले – (") पृ० ५१
२०. सुराज– (") पृ० १२२
२१. रायबहादुर की मौत– (") पृ० १२४
२२. पूल टूटने से पहले – (") पृ० ३८७
२३. नई पौध – (संघर्ष के बाद, दूसरा संक्रमण) पृ० ४८
२४. नए उपन्यासों में नए प्रयोग–डॉ० दंगल झाल्टे, पृ० ७५
२५. शमशू मिस्त्री – (मेरा वतन) पृ० ८४
२६. अधूरी कहानी – (") पृ० ५१
२७. मेरा बेटा–(मेरा वतन) पृ० ७३
२८. रहमान का बेटा– (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ६८
२९. हमें गिरानेवाले – (") पृ० ४६
३०. अंधेरे आंगनवाला मकान (") पृ० ३६४
३१. .... " ....(") पृ० ३७१
३२. एक रात एक शव– (") पृ० ३१३
३३. खिलौने – (") पृ० २६५
३४. एक मौत समंदर किनारे– (") पृ० ३७२

३५ ...." .. ..(") पृ० ३७१
३६. कितने जेबकतरे – (") पृ० ४१६
३७ शतरूपा की मौत – (मेरी प्रिय कहानियाँ) पृ० १३१, १३२
३८. धरती अब भी घूम रही है – (इक्यावन कहानियाँ) पृ० २६१
३९ एक रात एक शव – (") पृ० ३१२
४०. .. .." . .... (") पृ० ३१४
४१. मुरब्बी – (मेरा वतन) पृ० ३५
४२. अधूरी कहानी – (") पृ० ४४
४३. तागेवाला – (") पृ० ५५
४४ पडोसी – (") पृ० १४६
४५. हिन्दू – (") पृ० १५६
४६. वह रास्ता – (") पृ० ११३, ११४
४७. एक पिता की सतान – (खंडित पुजा) पृ० १४५
४८. मैं जिदा रहूँगा– (इक्यावन कहानियाँ) पृ० १७७
४९. सत्य को जीने की राह– (एक और कुती) पृ० ७
५०. भूख और कुलीनता – (साँचे और कला) पृ० ५३
५१. एक माँ एक देश – (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ७२
५२. नई पौध– (सघर्ष के बाद · सं० २) पृ० ६२
५३ अधुरी कहानी – (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ८६
५४. सलीब – (") पृ० ३६२
५५ साँचे और कला – (साँचे और कला) पृ० २२
५६. हिन्दी उपन्यासो में मध्यवर्ग–डॉ० मजुलता सिंह, पृ० २
५७. पूल टूटने से पहले– (पूल टूटने से पहले) पृ० १२
५८. एक मौत समदर किनारे– (इक्यावन कहानियाँ) पृ० ३६८
५९. हिन्दी उपन्यासो मे मध्यवर्ग – डॉ० मजुलता सिह, पृ० ६
६० हिन्दी कहानी मे युगबोध– डॉ० मंजुलता सिह, पृ० १९६
६१. मार्क्सवाद और हिन्दी कहानी– डॉ० सुधाकर गोकाककर पृ० ८७
६२. पिचका हुआ केला और क्रांती– (खिलौने) पृ० १०६
६३. भारत माता की जय– (सघर्ष के बाद) पृ० ८६
६४. अंधेरी सुरग– (एक आसमान के नीचे) पृ० २२
६५. बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक–डॉ० ओमप्रकाश सारस्वत, पृ० ७८
६६. नई सीमाए : नए संदर्भ – डॉ० नगेंद्र , पृ० ७६
६७. पडोसी – (मेरा वतन) पृ० १४६
६८. आखिर क्यो ? – (आखिर क्यों ?) पृ० ७४
६९. नई कविता के प्रबध काव्य–शिल्प और जीवन दर्शन – डॉ० उमाकात गुप्त, पृ० ३४२
७०. युगबोध और हिन्दी नाटक–डॉ सरीता वशिष्ठ, पृ० ७४

❖❖❖

6

विष्णु प्रभाकर की कहानियों का तात्त्विक विवेचन

पृष्ठभूमि— स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, आत्मपरक भावना, मनोविश्लेषण तथा अंतश्चेतनावाद के सूक्ष्म विवेचन से मानव जीवन की समस्याओं का नया अध्ययन और उनका मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अतः इस युग की कहानियों को दो भागों में बांटा जा सकता है—
१. जीवन के सामाजिक यथार्थ एवं युगबोध तथा भावबोध को लेकर लिखी जाने वाली कहानियाँ।
२. आत्म—परक दृष्टिकोण को लेकर लिखी जाने वाली कहानियॉ।

पहले प्रकार की कहानियों की परंपरा मुख्यतः प्रेमचंद की कहानियों की परंपरा का ही विकास है— जिसे यशपाल, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, अमृतराय आदि कहानीकारों ने आगे बढाया। प्रस्तुत अध्याय में सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि के आधार पर विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का तात्विक विवेचन किया गया है।

कथावस्तु या कथानक— कथानक कहानी का पहला प्रमुख तत्त्व है। कहानी शिल्प के पारंपारिक विधायक तत्वों में इसका— (Plot) का सर्वोच्च स्थान है। इसी पर कहानी का समूचा रूप-विधान निर्भर रहता है। कथावस्तु रचनाकार के मानस का वह बीज है, जिससे कथा का अंकुरण, पल्लवन, पुष्पन और प्रतिफलन होता है। इस संदर्भ में 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास' ग्रंथ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के विचार ध्यातव्य हैं। वे लिखते हैं— "जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा मनुष्य के मन और मस्तिष्क में धनीभूत होती है। अभिव्यक्ति के लिए वह वाणी का सहारा लेती है, कभी आकृति का लेकिन वह अपने भावप्रकाशन में अधिक से अधिक रोचकता, आकर्षण और प्रभुविष्णुता लाने के लिए अन्यन्य रूप-विधानों की योजना की प्रवृत्ति कहानी को जन्म देती है और उसके विभिन्न रूप कहानी के शिल्प-विधि के प्रेरक होते हैं।"[१] हिन्दी साहित्य कोश में धींरेद्र वर्मा ने कथानक की व्याख्या दी है।" यह कहानी का वह तत्व है जो उसमें वर्णित काल क्रम से श्रृंखलित घटनाओं को रीढ़ की हड्डी की तरह दृढ़ता देकर गति देता है और जिसके चारों ओर घटनाएँ बेल की भाँति उगती, बढती और फैलती हैं।'[२] धीरेंद्र वर्मा की इस व्याख्या को मद्दे नज़र रखकर कथानक की स्थिति की ओर देखा

जाए तो सफल कहानी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसके मूल भाव से सबंधित संपूर्ण घटनाक्रम एक निश्चित योजनानुसार प्रस्तुत किया जाए। तात्पर्य कहानी के तात्विक विवेचन की गहराई में जाकर देखें तो स्पष्ट दिखाई देगा कि कथानक की मूल प्रवृत्ति ही स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर रही है। इसका मूल कारण कहानी का उत्तरोत्तर जिंदगी के जटिलतम यथार्थ की अभिव्यक्ति की दिशा में उन्मुख होना और युगबोध के तनाव के परिणामस्वरूप, उसके कथ्यगत तेवर का बदलते जाना है। 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी 'कथ्य और शिल्प' ग्रंथ मे डॉ० शिवशंकर पांडेय का वक्तव्य इस बात की पुष्टी करता है। उनका वक्तव्य है। "कथानक के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होने में स्थूल घटनाओं की जगह मानसिक अंतद्वंद्वों मनोवैज्ञानिक भावों तथा मनः स्थितियों के सूक्ष्म चित्रण का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है।"[३] कथानक का संबंध उन घटनाओं एवं कार्यों से होता है जो पात्रों द्वारा घटित होते है तथा कहानी को विकास की ओर ले जाते हैं। स्पष्ट है कि कथानक ही कहानी के निर्माण का आधार है।

कथानक की स्थितियाँ— घटनाप्रधान कथानकों में स्थूलता अधिक होती है, उनमें कार्य-व्यापारों और घटना-चमत्कारों की बहुलता रहती है। कभी-कभी कार्य-व्यापारों में अति मानवीयता का समावेश हो जाता है और दैवी संयोगों की योजना भी रहती है। चरित्र प्रधान कथानक तुलनात्मक रूप से सूक्ष्म होते हैं। उनमें मुख्य स्थान पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं विश्लेषण का होता है। चरित्र में मानसिक संघर्ष, कार्य-कलापों, अनुभूतियों आदि का आरोह-अवरोहात्मक चित्रण किया जाता है। भाव-प्रधान कथानक में पात्रों का वह स्थूल रूप भी नहीं रहता। उसमें उस पात्र की अनुभूति विशेष का सूक्ष्म चित्रण किया जाता है।

आधुनिक युग की कहानियों के कथानकों की निर्माण भूमि विविध प्रकार की है अर्थात् वे विषय विविध हैं। जो युग की कहानियों के कथानकों का आधार बनते हैं पर प्रायः इन कथानकों की निर्माण विधि सांकेतिक अधिक लक्षात्मक कम होती है। आधुनिक युग की कहानियों के कथानक के बारे में 'हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया' ग्रंथ में डॉ० परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं–" आधुनिक युग की कहानियों में कभी-कभी कथानक निर्माण का ऐसा स्तर भी दिखाई पड़ता है। जो मूल कहानी के सूत्रों में नहीं, कहानी के किसी दूरगामी संदर्भों में विकास करता है।"[४] इसी पृष्ठभूमि पर कथानक की स्थितियों का अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट होती है कि आधुनिक कहानियों में कथानक दो रूपों में प्राप्त होते हैं।

स्थूल कथानक

कथानक का ह्रास— जीवन के सामाजिक यथार्थ एवं युग बोध तथा भावबोध को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों में मुख्यतः स्थूल कथानकों वाली कहानियाँ भी प्राप्त होती हैं। इनमें घटना प्रधान कहानियाँ अधिक है जिनमें जीवन की व्यापक संवेदनाओं को यथार्थ परिवेश में चित्रित करने का प्रयास किया है। आत्म-परक

दृष्टिकोण को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों में मनोविज्ञान का अधिक आश्रय ग्रहण किया गया है और उनमें कथानक का पूर्ण-हास लक्षित होता है। इन कहानियों में वातावरण, पात्र, संवेदना या मनः स्थितियों का चित्रण किया गया है। इन कहानियों में ही शिल्प-प्रयोग प्राप्त होते हैं और अवचेतन विज्ञप्ति या चेतना-प्रवाह पद्धति (Steam of consciousness) प्रतीक योजना, सांकेतिकता एवं बिंबों आदि की नवीतम् शिल्प प्रणालियों का उपयोग किया गया है। ये कहानियॉ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तो होती गई हैं और अधिक व्यंजनात्मक तथा बौद्धिक भी हो गई हैं। विष्णु प्रभाकर जी की अधिकतर कहानियाँ पहले प्रकार की हैं मात्र सातवें, आठवें दशक तक आते-आते वे आत्मपरक रचनाओं की ओर मुड़े नजर आते हैं। इसलिए उनकी कहानियों में इन दोनों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है।

कथानक के आधार पर विष्णु प्रभाकर की कहानियों का वर्गीकरण—आधुनिक युग की कहानियों के अनेक कथानक ऐसे हैं जो व्यक्तिगत सत्य को लेकर लिखे गए हैं परन्तु वह व्यष्टिगत होते हुए भी समाविष्टगत सत्य को भी प्रतिपादित करते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए विष्णु प्रभाकर की कहानियों के कथानकों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

१. ऐसे कथानक जिनका भावसत्य समाविष्टगत रूप में व्यक्त होता है।
२. ऐसे कथानक जिनका भावसत्य नितांत व्यष्टिगत रूप में व्यक्त होता है।
३. ऐसे कथानक जो व्यष्टिगत होते हुए भी समाविष्टगत रूप में भी व्यक्त होते हैं।

प्रथम वर्ग में—'हमें गिरानेवाले', 'दफ्तर में', 'जीवन एक कहानी' 'वह रास्ता', 'कितना झूठ', 'अधूरी कहानी', 'धरती अब भी घूम रही है', 'सुराज', 'पिचका हुआ केला और क्रांति', 'परिवर्तन', 'अरुणोदय', 'छोटा चोर-बड़ा चोर' 'नारी चरित्रम्', 'आदर्श, आवेग और सत्य', 'मार्ग में' 'युगांतर', 'राजकुमार और मछली', 'पूल टूटने से पहले', 'ढोलक पर थाप' 'सत्य को जीने की राह' 'चिरंतर सत्य', 'जिंदगी एक रिहर्सल', 'एक आसमान के नीचे' 'पेडियों पर उठते पंदचाप' 'छाती के भीतर' 'आखिर क्यो' ? 'धरती का स्पर्श 'यह कम', 'आजादी' 'सुनो, ओ माँ, 'ये उलझने', 'आदर्श, 'आँसू और अँधियारा', आदि जैसी कहानियों को रखा जा सकता है।

द्वितीय वर्ग में— 'मुक्ता' 'हरिश पांडे, पंडित जी', 'निशिकांत', 'मुक्ता', 'जज का फैसला', 'बच्चा माँ का था, 'संबल', 'माँ-बाप', 'स्वप्नमयी', 'चाची', मुहूर्त टल गया, 'अभाव', 'अब्दुल्ला' 'ऑपरेशन, 'मूड', 'बीमारी', 'रजनी', 'चितकबरी बिल्ली' ,राजम्मा 'भोगा हुआ यथार्थ', 'मुरब्बी' 'शमसू मिस्त्री', 'मारिया', 'मैं नारी हूँ' , 'चैना की पत्नी', 'अंधेरी सुरंग', 'कैसी हो मरिअम्मा' आदि जैसी कहानियाँ रखी जा सकती हैं।

तृतीय वर्ग में— 'खंडित पूजा', 'द्वंद्व', 'रहमान का बेटा', 'अंतर्वेदना', 'रहस्य', 'अपरिचित', 'तांगेवाला', 'मैं जिंदा रहूँगा', 'स्नेह', 'अगम-अथाह', 'जीवन-दीप', 'डायन', 'हिमालय की बेटी', 'नाग-फांस', 'शरीर से पर', 'मेरा वतन', 'बँटवारा', 'एक माँ एक देश', 'नचिकेता, 'वापसी', 'मणि, कलंक और राजनीति', 'रात की रानी

और लाल गुलाब', 'नदी, नारी और निर्माण', 'स्वर्ग और मर्त्य', 'कैक्टस के फूल', 'नई ज्यामिति', 'भूख और कुलीनता' 'शतरूपा की मौत', 'बिंब-प्रतिबिंब', 'तिरछी पगडंडियाँ', 'एक अनचीन्हा इरादा', 'सलीब', 'एक और कुंती', 'कितने जेबकतरे', 'सच ! मैं सुन्दर हूँ', 'वर्षा गुलाब और सनक' आदि जैसी कहानियाँ रखी जा सकती है।

विष्णु प्रभाकर की कहानियों के कथानकों का मूल्यांकन– विष्णु जी की कहानियाँ जीवन के किसी न किसी प्रश्न को चित्रित करती रहती हैं। जिनमें जीवन की व्यापक संवेदना को ही प्रधानता रहती है। प्रायः ऐसी कहानियों का प्रारम्भ इस प्रकार होता है, "रात काफी हो चुकी है। मौत ने वातावरण को आलिंगन में बाँध लिया है। दोनों एक दूसरे की आँखों में झांकते हुए जैसे खो गए हैं। लेकिन वह शीघ्र ही अपने को इस वातावरण से जोड़ लेता है। जल्दी-जल्दी कपड़े पहनता है और तेजी से बाहर निकलता चला जाता है। नीचे सब कही मौन है। उसकी अपने पैरों की पदचाप ही उसकी एकमात्र संगिनी है। जैसे दोनों संग-संग स्लीपवाकर की तरह चले जा रहे हों और उनके स्वर प्रतिनिधि बनकर गूंज रहे हों लेकिन कौन किसका प्रतिनिधि है, यह पहचानना कठिन हो जाता है। वह एक दूसरे में सिमटे मकानों के पास से गुजरता है। खुली सड़कों को पार करता है। घने छायादार वृक्षों के नीचे से गुजर जाता है जिनकी टहनियाँ और पत्ते इस समय स्तब्ध हैं। उसका मन कहता है कि वह यहीं घास पर दो क्षण लेट जाएं। न जाने कितनी बार इस पार्क के एकाकी कानों में उसने अपने अकेलेपन को सहलाया है।

लेकिन सहसा उसे लगता है कि वह अब और अकेला नहीं है। कोई अनजाना प्यार उसे घेरता आ रहा है। वह उसे धकेल नहीं सकेगा। उसे स्वीकार करेगा।"[५] इन कहानियों में लेखक का ध्यान स्पष्ट व्यंजना, यथार्थ की अभिव्यक्ति एवं सत्यान्वेषण की ओर है। कहानियाँ प्रमुखतः कथानक के ह्रास को लेकर भी प्राप्त होती हैं पर उनका बाहुल्य नहीं है।" 'हिन्दी कहानी का स्वरूप और विकास' ग्रंथ में डॉ० सुरेश सिन्हा का यह वक्तव्य उनकी समस्त विचारधारा पर प्रकाश डालता है। वे लिखते हैं, "विष्णु प्रभाकर समष्टि चिंतन के कहानीकार हैं और जीवन के यथार्थ का प्रस्तुतीकरण उनका उद्देश्य होता है इसलिए वे कलावादी नहीं हैं।"[६]

विष्णु जी के कथानकों की प्रमुख विशेषता यह है कि उनकी अधिकांश कहानियाँ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं। उन्होंने पौराणिक या ऐतिहासिक कथानकों को भी चित्रित किया है मात्र ऐसे कथानकों को उन्होंने केवल सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिया है और उसके माध्यम से आज के आधुनातन मानव जीवन की संस्थिति का चित्रण किया है। इन कथानकों में उन्होंने अपने युग-जीवन को चित्रित किया है। उनकी अधिकांश कहानियों में मौलिकता भी है।

कथानकों में निश्चित क्रमबद्धता एवं संगठन हैं। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के कथानक बहुत ही सुगठित हैं। कहानियों में कुतुहल और रोचकता का आदि से अंत तक निर्वाह हुआ है। 'नई ज्यामिति' कहानी में नूतन शिल्प का प्रयोग सर्वत्र व्याप्त है। वर्तमान जीवन की संक्रमणशीलता को उन्होंने अपनी कहानियों में आवेष्ठित किया है। उनकी कहानियाँ जीवन के विविध पक्षों का प्रतिनिधित्व तो करती हैं मात्र उनका मूल स्वर सामाजिक है। नए युग के बदलते हुए तेवर को उन्होंने पहचाना है। उन्होंने आधुनिकता को ग्रहण किया है किन्तु उनकी आधुनिकता में पश्चिमी प्रेरित कुंठा, घुटन और संत्रास नहीं है। उनकी कहानियों में लेखकीय हस्तक्षेप न्यूनतम है।

नई कहानी के संदर्भ में भी इनके कथानकों पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है। पुरानी कहानी के कथानकों की तुलना में जो परिवर्तन नई कहानी के कथानकों में आविर्भूत हुए हैं, उनमें प्रमुख बात यह है कि मनोविज्ञान और बौद्धधिकता के प्रभाव के कारण कथावस्तु का स्वरूप पहले की अपेक्षा नितांत भिन्न हो गया है। 'कहानी : नई कहानी' ग्रंथ में डॉ० नामवर सिंह का इससे संबंध वक्तव्य ध्यातव्य है, "कथानक की धारणा ही बदल गई है। किसी समय नाटकीय और कौतुहलपूर्ण घटंना संगठन को कथानक समझा जाता था। आज घटना संगठन इतना विघटित हो गया है। कि लोगों को अधिकांश कहानियों में कथानक नाम की कोई चीज नहीं मिलती। इसी को कुछ लोग कथानक का हास भी कह सकते है, किन्तु वास्तविकता यह है कि हास कथानक का नहीं कथा का हुआ है और जीवन का लघु-प्रसंग, खंड,, मूड, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति चरित्र ही कथानक बन गया है अथवा उसमें कथानक की क्षमता मान ली गई है।"[७] कथानक का यह परिवर्तन विष्णु प्रभाकर जी की सभी कहानियों में नहीं देखा जाता। उनकी सभी कहानियाँ नई और पुरानी दोनों कथानक की दृष्टि से ग्राह्य हो सकती हैं।

विष्णु प्रभाकर जी के कथानकों के बारे में और एक बात महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है कि उन्होंने कथानक की परंपरागत धारणा को तोड़कर बौद्धधिक धरातल से कथानक का चुनाव किया है। जिसके फलस्वरूप कथा संदर्भों में अधिक सूक्ष्म और गहन बौद्धिकता की प्रवृत्ति लक्षित हुई है। कथानक की व्याप्ति की प्रचलित रूढि छोड़कर उससे एक भाव, एक अनुभूति, एक संकेत की प्रतिष्ठा का चित्रण होता गया है। उन्होंने सूक्ष्म-मनोवेगों की जटिलता को रूपायित करने के लिए कहानी की रूपगत शैली या अभिव्यक्ति की नई पद्धतियों का आविष्कार किया है। परिणामतः पत्र, डायरी के रूप में उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं, जैसे 'सच ! मैं सुन्दर हूँ', 'एक और कुंती' 'साँझ के साँए' आदि। इसके साथ उन्होंने कहानी में फ्लैशबैक टेकनीक (पूर्वदीप्ति शैली) 'बेमाता', 'कितने जेबकतरे' जैसी कहानियों में स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। कहानी में उन्होंने प्रतिकात्मक योजना एवं

बिंब विधान की उपयोगिता को भी नए सिरे से अनुभवित किया है। इस दृष्टि से उनकी 'चितकबरी बिल्ली', 'नई ज्यामिति', 'पैडियों पर उठते पदचाप', 'अर्द्धनारीश्वर' आदि कहानियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

पात्र और चरित्र चित्रण– आज के मानव का चरित्र विविध सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एव मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है। कहानी के क्रमिक विकास के साथ-साथ योजना संबंधी धारणाओं में भी परिवर्तन आता गया है और वह युगीन परिस्थितियों की तनावपूर्ण अभिव्यक्ति के संदर्भ में कहानी की जीवंतता का प्रमाण हैं। 'हिन्दी कहानियों में शिल्प-विधि का विकास' ग्रंथ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल जी का कहानियों में पात्रों की अवधारणा संबंधी मंतव्य द्रष्टव्य है वे लिखते हैं–"कहानी में संजोए गए पात्र तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक परिवेश के सहज स्वाभाविक अंग बनकर ही कहानी में आते हैं। वे संघर्षशील मानव एवं युगबोध के प्रतिनिधि होते हैं।"[८] व्यावहारिक दृष्टिकोण से किसी भी समाज में रहने वाला मनुष्य अपनी समकालीन परिस्थितियों और निकटवर्ती वातावरण से प्रभावित होता है। युगीन स्थितियाँ ही उसके संपूर्ण आचार, व्यवहार और क्रिया-कलाप को प्रभावित और नियंत्रित करती हैं। कहानीकार अपनी कथावस्तु में नियोजित घटनाओ के अनुकूल पात्रों की सृष्टि करके उनके चरित्र-चित्रण के माध्यम से मनुष्य के चारित्रिक विकास की प्रक्रिया का परिचय देता है।

कहानी के रूप विधान में पात्र-योजना के साथ-साथ चरित्र-चित्रण की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आधुनिक कहानी का मूलाधार मनोविज्ञान है और मनोविज्ञान का मूल केंद्र चरित्र है। इसलिए चरित्रों को कथावस्तु के सजीव संचालक कहा गया है। अत. स्वाभाविक है कि आधुनिक हिन्दी कहानियों में चरित्र का महत्त्व सर्वाधिक रहा है। इस बात की पुष्टि देते हुए 'हिन्दी कहानी' ग्रंथ में डॉ० प्रकाश दीक्षित लिखते हैं, "कहानी के चरित्रों के स्वाभाविक विकास के लिए स्वाभाविकता, सजीवता, अनुकूलता को अनेक विद्वानों ने आवश्यक माना है।"[९] मानव चरित्र के बाहरी पक्ष की सच्चाई का उद्घाटन जितना सरल है उसके अंतर्मन का रहस्योद्घाटन उतना ही जटिल है। कहानीकार पात्रों को विभिन्न स्थितियों में डालकर चित्रित करते हुए उसके बाहरी ही नहीं अंतर्जगत की भी झाँकी प्रस्तुत करता है और बड़ी बारीकी से इस बात को रेखांकित करता जाता है। चरित्र-चित्रण में सहजता, मौलिकता और विश्वसनीयता लाने के लिए कहानीकार विभिन्न परिस्थितियों का सृजन करता है और उन्हीं के सहारे वह पात्रों के नैतिक-अनैतिक शुभ-अशुभ, भले-बुरे आचरण का औचित्य सिद्ध करता है क्योंकि मूलतः कोई मनुष्य बुरा नहीं होता परिस्थितियाँ उसे बुरा या भला बनने को बाध्य करती हैं।

इसी पृष्ठभूमि पर विष्णु जी के पात्रों और चरित्रों पर भी प्रकाश डाला जा सकता है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में चित्रित पात्र–योजना– विष्णु जी की कहानियों में सामान्यतः पात्रों का विभाजन निम्नलिखित रूपों में किया गया है–

१. अवस्था भेदों पर आधारित पात्र-बाल, युवा, वृद्ध-पात्र
२. नारी पात्रों का चरित्र-चित्रण
३. वर्ग भेदों पर आधारित पात्र-उच्च, मध्य और निम्नवर्ग
४. संप्रदाय भेदों पर आधारित पात्र-हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख पात्र

अवस्था भेदों पर आधारित पात्र– मोटे तौर पर प्रत्येक देश के व्यक्तियों को चार अवस्था में देखा जा सकता है। अवस्था के आधार पर भारतीय हिन्दी कहानीकारों ने भी मनुष्य की चारों अवस्थाएँ बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था के रूपों का चरित्रांकन किया है। सामाजिक कर्तव्यों का उत्तरदायित्व अवस्था–आधारों पर केंद्रित होने के कारण अपेक्षाकृत युवा लोगों में कुंठा और विरोध भावना उत्पन्न करता है क्योंकि उन्हें अधिकतर उत्तरदायित्व के कार्य नहीं सौपे जाते अथवा उन पर बहुत नियंत्रण रखा जाता है। 'हिन्दी कहानी : दो दशक' ग्रंथ में डॉ० सुरेश धींगडा का इस संदर्भ में कथन है, "आधुनिक साहित्य में कुंठा और विरोध के इन्हीं संकेतों को पकड़ने का प्रयत्न भी किया गया है। हिन्दी कहानी और विशेषतः नई कहानी में इसकी सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है।"[१०] सन् ६० के बाद की कहानियों में परिवेश की स्थितियों को पूरी तरह चित्रित किया गया है। इसलिए सभी अवस्था के लोगों का चित्रण हिन्दी कहानियों में सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

बाल पात्र– 'एक अनचीन्हा इरादा' में विष्णु प्रभाकर जी ने एक सात वर्षीय बालक का चरित्र-चित्रण किया है। बच्चों को माँ-बाप का उचित लाड-प्यार न मिलने पर बच्चे अक्सर बिगड जाते हैं : जिद्दी हो जाते हैं। प्रस्तुत कहानी का बालक भी अपने माँ-बाप, भाई-बहन सभी से उपेक्षित रहा है। प्रस्तुत कहानी में एक प्रसंग के उपलक्ष्य में उसकी मनोदशा को स्पष्ट किया गया है। अपनी वर्ष-गाँठ के अवसर पर भी उसे मिठाई के बदले पिटाई मिलती है। इसलिए वह पिता को जानवर समझता है और माँ को पालतु गाय। वह देखता है कि प्रतिदिन उसके माँ-बाप आपस में झगड़ते ही रहते हैं। इसलिए वह अक्सर घर से बाहर चला जाता है तो माँ-बाप को आपस में लड़ते हुए देखता है। कल्पना में ही वह पड़ोस के बच्चों को खूब पीटता है, उसके माँ-बाप बचाने आते हैं तो वह और भी उग्र रूप धारण कर लेता है। अपनी माँ के हाथ में दाँत गड़ा देता है, बाद में उसे ऐसा लगता है कि वे दाँत मेरे ही बदन में गड़े जा रहे हैं। बालमनोविज्ञान के पारखी कहानीकार ने उसके माध्यम से सशक्त बालकों की दमित इच्छाओं की पूर्ति कल्पना के माध्यम से हो सकती हैं, इस कहानी द्वारा संदेश दिया है कि वह बच्चा

प्रत्यक्ष रूप से न बच्चों को पीट सकता था और न अपने माँ-बाप को। फ्रायडवादी मनोविज्ञान का प्रभाव इस कहानी में सहज ही देखा जा सकता है।

'धरती अब भी धूम रही है' कहानी में विष्णु जी ने एक दस वर्षीय और एक आठ वर्षीय बालकों को चित्रित किया है। एक छोटी-सी रिश्वत लेने के कारण पिता को जेल की सजा भुगतनी पड़ती है। प्रस्तुत कहानी के बालकों को इसी कारण अपने मौसा-मौसी से बार-बार तंग होना पड़ता है। मौसी के पिता के कारण तानें भी सुनने पड़ते हैं। पूरी कहानी में चेतन-चेतन द्वंद्व है। बालिका-चाची-बालिका नेता सब के प्रति कहानी में पात्रों के माध्यम से प्रच्छन्न द्वंद्व छाया रहता है। खूबसुरत होना भी क्या रिश्वत है ? 'मौसा कहते थे कि गंजे हाकिम के पास खूबसूरत लड़की भेज दो और कुछ भी करवा लो-- खूबसूरत लड़की और रुपया और खूबसूरत लड़की-- इन्हें लेकर जज और हाकिम काम क्यों कर देते हैं ? और उसके मौसा बहुत से रुपये लाते हैं, पर लड़की कभी नहीं लाते--।"[11] इस प्रकार कहानी के पात्रों के अंतस् छिड रहे निरंतर संघर्ष की अभिव्यक्ति बच्ची के माध्यम से जीवन की विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश को चित्रित करती है।

युवा पात्र-- समकालीन युग का युवा-मानस सचेत तो हो गया है और उसने पुरानी पीढ़ी की नैतिकता, ईश्वर और धर्म-संबंधी विचार, अपरिवर्तनीय मान्यताओं को भी नकारा है। विष्णु जी ने अपनी कहानियों में युवा पीढ़ी की इसी मान्यता को भी स्वीकृति दी है। 'एक शव' कहानी में दो सगी बहनों का विवाह दो सगे भाई से होता है। बडे भाई ने अपने छोटे भाई की पत्नी से गलत संबंध स्थापित किए हुए थे। इस बात की ज़ानकारी छोटे भाई कमलकिशोर को होती है तो वह तालाब में डूबकर मर जाता है। उसकी पत्नी अपनी बड़ी बहन का हक छीनकर विधवा होते हुए भी आनंद भोग मनाती है। इस बात की जानकारी उसके दोनों लड़कों को होती है तो दोनों भाई दिनेश और सुरेश लंदन चले जाते हैं। आज कमलकिशोर के भाई की मृत्यु हो गई है तो शव पर सही मायने में वही शोक मना रही है। 'मैं नारी हूँ' कहानी में रंजना के कर्मठ व्यक्तित्व का चरित्र-चित्रण किया गया है। रंजना की शादी डॉ० विश्वरंजन मुखर्जी से हुई है पर रंजना एक दिन असामाजिक तत्वों का शिकार हो जाती है तो पति के पास पत्र लिखती है, "तो यदि आप में से दस व्यवित्त आकर बरबस मेरे मुँह में कपड़ा ठूँस मेरी चेतना शक्ति को निष्क्रिय कर देते हैं और मेरे शरीर को अपवित्र कर देते हैं तो क्या मैं अपवित्र हो गई ? उत्तर में निवेदन है कि" रंजना का अब हमारे परिवार में कोई स्थान नहीं है, वह स्वतंत्र है जो चाहे, जहाँ चाहे रहें।" पत्र पढकर रंजना सोच नहीं पाती की मेरे पति इतने बदल कैसे गए ?

अहिल्या विद्यापीठ की संस्थापिका प्राचार्या की प्रेरणा से रंजना एम्० ए० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर अध्यापिका बन जाती है। अब पति रंजना से मिलना चाहते हैं पर रंजना मिलने से इन्कार कर देती है। मैं आ सकता हूँ के जवाब

में रंजना कहती है, "नहीं, आप नहीं आ सकते, जिस रंजना को आप खोजने आए हैं वह मर चुकी है, मैं नारी हूँ और नारी अब अपनी आत्मसम्मान की रक्षा करना जानती है।"[12] इस प्रकार विष्णु प्रभाकर की कहानियों के पात्रों की मनः स्थितियों का कैनवास तो बहुत विकृत है और जिंदगी के बहुत से खंडों को समेटता भी है।

वृद्ध पात्र– वृद्ध व्यक्ति किसी प्रकार के परिवर्तन को जल्द ग्रहण नहीं करते तो परंपरा के साथ जुड़कर रहना ही पसंद करते हैं। उनकी मनोवृत्ति अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर युवा-पीढ़ी पर शासन करने की होती है और युवा पीढी स्वतंत्रता चाहती है। विष्णु प्रभाकर की कहानियों में वृद्ध पात्रों का परंपरावादी रूप, संवेदनशील रूप, उदारवादी रूप एवं परिवर्तन पसंद रूप, दया, ममता और वात्सल्य भाव से भरा हुआ रूप एवं अन्याय प्राय· सभी रूपों में देखा जा सकता है।

'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी में एक अत्यंत वृद्ध और निर्धन व्यक्ति का चरित्रांकन हुआ है। लाचारी और बेबसी ऐसी है कि भूखों मरने की नौबत आ गई है। ऐसी स्थिति में भूख से तडपते अपने परिवार को बचाने के लिए अपनी जवान बेटी को एक ड्राइवर के हाथ बेच देते हैं। उन्हीं के शब्दों में "ठीक कहता है यह मेरी बेटी है परसों मैंने इसे भूख से बिलबिलाते परिवार की रक्षा के लिए एक ट्रक ड्राइवर के हाथ बेच दिया था। उन्हीं रुपयों से तो यह सामान ले जा रहा हूँ। कितना उपकार कर गई बेचारी हमें बचा गई। अगले जन्म में जरूर राजा के घर जन्म लेगी। ऐसा ही करना है भगवान।"[13]

'बेमाता' कहानी में वृंदावन और उसकी पत्नी उजली का चरित्र चित्रण हुआ है। उजली एक ऐसी भारतीय नारी है, जो सब कुछ सह कर भी खुश रहती है। वृंदावन के दो बेटे हैं–जगदीश और कन्हैया-दोनों की शादी हो चुकी है। जगदीश की पत्नी सरस्वती और कन्हैया की पत्नी रति। रति अपने पति के साथ घर से दूर पंजाब में रहने लगी है। अब जगदीश की पत्नी सरस्वती भी घर में नहीं रहना चाहती है चूँकि उसका बेटा मंजूल अपने दादा वृंदावन के समान ही गाली देने लगा है। यह तो बहाना मात्र है दरअसल सरस्वती अपनी सास उजली के साथ नहीं रहना चाहती। वृंदावन बात-बात में गाली देने वाले हैं इसलिए हमेशा नशे में धुत होकर पत्नी को गालियाँ बकते हैं। उजली के अंकुश के कारण ही वे कम पीते हैं नहीं तो नशें में ही डूबे रहते। उजली को अपने बेटे और बहुओं के बिछड़ने का दुःख है पर उसे वह व्यक्त नहीं होने देती है। पडोसियों में निम्नलिखित तर्क देती है, "सरकारी नौकरी है बेटे को क्वॉर्टर मिल गया है जाना ही पड़ेगा। मैंने तो बहुत कहा किसी को बना दे पर बहन, आज कल का जमाना कोई शिकायत कर दे तो ? इसलिए सोचा जाना ही ठीक होगा। बहू तो बहुत मुकदमें में फँसाया। अंत में इसी प्रकार विक्षिप्त-सा होकर पारसनाथ मर गया। पारसनाथ के चरित्र के माध्यम से यह जाना जा सकता है कि बुरे कार्य के फल आसन्न मृत्यु तक भोगने पडते हैं।

• 'जीवन का एक और नाम' कहानी में सुमिता और अनंत काका, जो दोनों ही कैंसर रोग से पीडित हैं। इस संसार से बहुत जल्द विदा लेने वाले हैं। अनंत जिसे सुमिता काका कहा करती है काफी समझदार और दुनियादारी से निर्लिप्त हैं। वे तत्त्वदर्शी हैं इसलिए मृत्यु को जीवन का दूसरा नाम के रूप में मानते हैं। अनंत काका ने कहा, "एक ऑसू नहीं टपकना चाहिए। बेड़ी बनकर उसकी विकास-यात्रा की बाधा बन जाएगा वहाँ। हो सकता है माँ, मृत्यु उसे सँवार-सजाकर फिर कर्मक्षेत्र में भेज दे या फिर विराट चेतना में लीन हो जाए।"[१५] सुमिता भी मृत्यु से तनिक नहीं घबराती है इसलिए तो उन्होंने कहा- "आप चिंतित रहेंगे तो मै कैसे शांति पा सकूँगी। मैं आपको प्रसन्न देखना चाहती हूँ। मैं बहुत खुश हूँ, नए-नए लोगों की यात्रा करूगी और हॉ पापा मेरा शरीर मेडिकल कॉलेज को दे देना विद्यार्थियों के काम आएगा।"[१६]

'आस्था का द्वंद्व' कहानी में प्रभा और उसके पति विपिन की गरीबी, लाचारी को उजागर किया गया है। प्रभा के पास जो हार है वह उसे माँ से मिला है। मॉ को नाती से मिला था। पुश्तैनी हार के प्रति प्रभा को मोह था पर वह अपना बेटा अरविंद, जो कारोबार करता है उसी के फर्म में एक आदमी ठहरा था, जो तश्करी किया करता था, पकडा गया तो पुलिस इस काम में अरविंद का भी हाथ हो सकता है, सोचकर पेरशान कर रही है। अरविंद का नाम कटवाने के लिए पॉच हजार फीस चाहिए अर्थात् पुलिस को घूस चाहिए। विपिन के पास पैसा नहीं है इसलिए अपनी पत्नी प्रभा को हार बेचने के लिए कहता है। प्रभा बेचारी न चाहकर भी हार दे देती है वह सोचती है प्रो. सदारमाणी, बलदेव मोची, जमादारिन आदि सभी पैसे उधार ले लेकर देने का नाम नहीं ले रहे हैं, नहीं तो इस विपत्ति में काम आता। पॉच हजार पुलिस को देने के बाद पॉच सौ रुपये बचते हैं। पत्नी और पति स्वयं से सवाल करते हैं, "जो पॉच सौ रुपये हमारे पास बचे हैं क्या वे हम बलदेव को नहीं दे सकते? लेकिन इसका उत्तर किसी के पास नहीं था क्योंकि दिया कुछ नहीं जाता, सब कुछ छीना जाता है।"[१७]

'पर्वत से भी ऊँचा' कहानी का वृद्ध कैलाश दर्शन की लालसा लिए घर से निकल पडता है और स्वाभिमानी इतना है कि अपने बेटों तक से कोई मदद नहीं लेता। वह अपनी धुन का पक्का है। उसे विश्वास है कि वह एक न एक दिन कैलाश दर्शन करेंगा। 'अपना-अपना सुख' कहानी में विष्णु जी मनुष्य की नियति पर व्यंग्य करना चाहते थे परंतु कहानी का अंत होते-होते कहानी नायक एक ऐसा चरित्र बन गया है जो हमारा होकर भी अपनी संतान के लिए ही नहीं बल्कि समाज मात्र के लिए संवेदना से भर उठता है। अपनी वेदना में वह समष्टि की वेदना पा लेता है। 'विष्णु प्रभाकर प्रातिनिधिक रचनाएँ' ग्रंथ में डॉ. कमलकिशोर गोयनका का वक्तव्य विष्णु जी के पात्रों की विशेषता स्पष्ट करता है। उनका वक्तव्य है, "विष्णु जी अपने पात्रों पर अंकुश नहीं रखते हैं उन्हें स्वयं चलने और

विकसित होने का अवसर देते हैं।"[५] इस प्रकार डॉ. गोयनका का यह वक्तव्य विष्णु जी के बारे में बिलुकल खरा उतरता है।

नारी पात्रों का चरित्र-चित्रण– विष्णु प्रभाकर की कहानियों में नारी के सभी रूपों को देखा गया है। जीवन नारी के बिना नहीं चल सकता। जीवन का अध्ययन नारी के बदलते रूपों का ही अध्ययन है। आज नारी सर्वत्र छाई हुई है– राजनीति में, सामाजिक जीवन के हर पहलुओं में केंद्रीय एवं राज्य सरकार के प्रायः हर विभागों में कार्यरत नारी को देखा जा सकता है। विष्णु जी ने नारी के स्वतंत्र रूप को भी पकडने का प्रयास किया है। उनकी कहानियो में नारी के व्यक्तित्त्व, रूप को देखने की दृष्टि भी उभरी है, नारी के चरित्र का स्वतंत्र एवं अर्जिका नारी का सर्वाधिक प्रभावशाली रूप उभरा है। नारी के चित्रण का केंद्रीय स्वर भी वर्तमान में जीने का आग्रह ही है। केवल जीने का यथार्थ, यथार्थ को उसके संपूर्ण आयामों में स्वीकार लेने का आग्रह है।

'नचिकेता' कहानी की शांति एक स्वाभिमानी स्त्री है। वह विधवा है पर समाज में किसी की मदद उसे स्वीकार नहीं है। वह मरणासन्न है पर किसी के समक्ष झुकने को तैयार नहीं है। 'अभाव' कहानी की नायिका को यही दर्द जलाता है कि वह संतानरहित है पर वह अपने इस अभाव की पूर्ति अपने अच्छे व्यवहार द्वारा अपने पडोसियों को अपना बना लेने में तथा पड़ोसन की बच्ची को प्यार लुटाने में कर लेती है। उसके मन की कसक उसकी खुशी के द्वारा जाहिर होती रहती है। 'ग्रहस्थी' कहानी की वीणा स्वाभिमानी है पर अपने पति की आदतों से तंग है। पति समाजसेवा और देशसेवा में लीन है। उसकी परवाह नहीं करता, वीणा घर छोडकर चले जाने का निश्चय कर लेती है पर जैसे ही उसे पता चलता है कि उसके पति उसे ही घर का पर्याय मानते हैं तो वीणा को अपनी भूल का अहसास हो जाता है। 'एक और दुराचारिणी' की नायिका जिंदगी के अभावों से जुझने के साथ ही पति और प्रेमी के बीच जुझती रहती है। वह पति के अत्याचारों से बेजार है पर उसे छोड भी नहीं पाती क्योंकि वह उसका पति है। 'मारिया' एक विदेशी महिला के पवित्र और सात्त्विक प्रेम की कहानी है। पात्र काल्पनिक जिदगी की कडवी सच्चाइयों से दूर लगते हैं। 'जज का फैसला' कहानी की भी यही स्थिति है। विमला अपूर्व सुंदरी है किंतु एक दुर्घटना में विमला को गहरी चोटे लगती हैं वह विद्रूप होती है तो पति उसकी हत्या कर देता है और जज उसे फॉसी की सजा देता है क्योंकि उसे जीवित रखना उसकी पवित्र भावना का अपमान है। यह सब बेहद वायवी लगता है। 'आश्रिता' के अजीत और सोना विचित्र तथा घोर आदर्शवादी पात्र हैं। सोना विधवा है, अजीत उसे चाहता है पर सोना किसी अन्य से विवाह कर लेती है। वह पुनः विधवा होती है अजीत उसे फिर बेटी के रूप में स्वीकार लेता है।

विष्णु जी की कहानियों में जिस नारी का चित्रण हुआ है उसमें पारस्परिक नारी-सुलभ मृदुता के साथ-साथ कहीं एक गुमान तक स्वाभिमान भी है- यह मानना पड़ेगा। वह अपनी भावात्मक आवश्यकताओं के लिए पुरुष पर आश्रित है उसमें कहीं एक ऐसा विश्वास ऐसा बोध भी है जितनी पुरुष की आवश्यकता उसे है– उतनी ही पुरुष को उसकी भी। वह अर्जनशीला है, अतः उसका विवेक, उसका आत्मगौरव पुरुष से समानता की माँग करता है। प्रेमी रूप में पुरुष वह समानता उसे भरपूर देता है परंतु पति की भूमिका आते ही उसका रूप बदल जाता है और उस नारी को एक पारंपारिक पति का सामना करना होता है। वह आत्मनिर्भर है। कई स्थितियों में वह अपने पूरे परिवार की अन्नदाता है, पर उसका परिवार और परिवेश उसके रूप इस नवीनता को तो स्वीकार करते हैं बल्कि इसका स्वागत करते हैं– पर उसके अपने आचरण में यदि लीक को तोडने का अंश भी दिखाई पड़ जाता है तो संबंधी एवं परिवेश के कान खड़े होने लगते हैं। 'स्वातंत्र्योत्तर' हिंदी उपन्यासों में नारी पात्रों में युग चेतना' ग्रंथ में डॉ. वि. विजयालक्ष्मी के विचार इस बात की पुष्टि करते हैं। उनका वक्तव्य है, "स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी का क्षेत्र परिवार से सामाजिक एवं राजनीतिक पीठिका तक विस्तृत हुआ है। फलतः स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में कुछ नारी चित्रण उभरे हैं ये नारी पात्र परिवार, समाज और राजनीति में सामंजस्य स्थापित करने का सफल प्रयत्न कर रहे हैं।"[१९]

वर्ग-भेदों पर आधारित पात्र– आधुनिक भारतीय समाज में वर्णाक्षम व्यवस्था और पुरानी जातियों को गौण बनाकर आर्थिक व्यवस्था और नव सामाजिक परिवेश के आधार पर मनुष्यों के मुख्य रूप तीन वर्गों (उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग) में विभाजित कर, अर्थ ने आज प्रधान रूप ले लिया है।

उच्च वर्ग– इस वर्ग ने देश के सारे धार्मिक तत्र को अपने हाथ में लिया है। राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण निर्णयों में इस वर्ग ने सक्रिय भूमिका निभाई है। समकालीन भारतीय स्थान का उच्चवर्ग एक विशिष्ट जीवन बोध का अभ्यासी है जिसने अपने हितों की रक्षा के लिए शेष सामाजिक वर्गों का सदा अहित किया है। इन सारे लक्षणों से उच्चवर्गीय भारतीय नारी भी अलग नहीं है। इसी कारण आधुनिकता की प्राथमिक लहर उच्चवर्गीय नारी परिवेश में ही परिलक्षित होती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में जीवन की विभिन्न स्थितियों से जूझ रहे विविध प्रकार के पात्र हैं। वे मानव चरित्र के अंकन को ही कहानी में महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

'एक मौत समंदर किनारे' कहानी में एक अविवाहित नवयुवती जाबाला का चरित्र चित्रण किया गया है। वह यौन सुख पाने के लिए अनैतिक से अनैतिक काम कर सकती है। वह नवयुवती सुंदर भी है इसीलिए उसके चाहतों की कोई कमी नहीं थी, कई लोगों के साथ उसके संपर्क थे। मुकुल बाजोरिया एक धनी व्यापारी था उसके साथ रहकर वह उन्मुक्त होकर धन खर्च कर सकती थी,

इसीलिए बाजोरिया से भी प्रेमसबंध स्थापित करती है। बाजोरिया की पत्नी इस बात को जान गई। अपने पति को समझाने का प्रयास भी किया पर सफल नहीं हो सकी। इसीलिए वह धन देकर हत्यारों से जाबाला की जान समाप्त करवा देती है, "अमावस्या की रात थी और वर्षा के कारण समंदर तुफानी था, छोकरी ने खूब पी रखी थी, वे दोनों वहॉ आनंद मना रहे थे कि अचानक बाजोरिया के वहॉ से हटते ही उन्होंने छोकरी को तुफानी लहरों में फेंक दिया। वह चीखी, बाजोरिया दौड़कर आया। उसे डूबते देखकर कपडे उतारे और कूद पड़ा, तैरना जानता था पर हत्यारों के सामने एक न चली।"[२०] फलस्वरूप बाजोरिया की भी जान चली गई। 'बच्चा माँ का है' कहानी में चदो भगिन सेठ के हविश का शिकार बन जाती है और उसके बच्चों की मॉ बन जाती है। बीमार बच्चे को वह सेठ जी के पास ले जाती है तो सेठ जी उसे ठुकरा देते है। उसकी सोच उच्च वर्ग की विलासिता की निर्भत्सना करती है, "इस बच्चे के बाप तो लाला---थे। वही जो माया की शैया पर सोते हैं, माया की थालियों मे भोजन करते हैं, माया जिनके पांव पखारती है-----"[२१]

मध्यवर्ग– स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में मध्यवर्गीय नर-नारी के सपने, सफलता-असफलता, दुर्गति, निराशा, कुंठा, हताशा, बेचारापन, असंतोष, आक्रोश, अजनबीपन, पीढ़ीगत अंतराल, सेक्स संबंधो की सघर्षता एवं जीवनगत विसगतियो को आसानी से देखा जा सकता है। विष्णु जी स्वयं मध्यवर्ग से जुडे हैं इसीलिए उनकी कहानियों में चित्रित अधिकाश पात्र मध्यवर्ग से ही आता है। कहानियों के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं।

'एक माँ एक देश' कहानी की मृणाल बेटे को बंगाल का देशबन्धु बनाने का सपना देखती है लेकिन धन के अभाव के कारण उसको अपने सपने की पूर्ति के लिए बेटे को एक धनिक प्रौढ़ा के पास छोडना पड़ता है। 'खिलौने' कहानी के पति-पत्नी चाहते हैं कि बेटा उनकी पसंद की लडकी से शादी करेगा लेकिन वह विदेशी लड़की से शादी करता है। 'अन्तर्वेदना' की चंद्रा की स्थिति उसके अदर की कसक को व्यक्त करती है। धनाभाव और सौदर्य की कमी उसके विवाह की बाधाएँ बनी है। सच! मैं सुंदर हूँ' की भाभी प्रकृति के साथ जीवन की विषमताओ को खोना चाहती है। 'सलीब' कहानी मे रेलवे के एक कर्मचारी प्रमोद सक्सेना की मामूली सी रिश्वत लेने की स्वीकोरोक्ति उन्हें बलि का बकरा बना देती है। इस प्रकार इच्छाओं की अपूर्णतः एवं आकाक्षाओं के अनुकूल अवसर की अप्राप्ति इस वर्ग में निराशा, कुंठा एवं घुटन निर्माण करती है। जीवन से निराश होकर पतनोन्मुखी विचारों का स्वीकार करके यह वर्ग अपने, परिवार तथा समाज के जीवन में विकृति प्रदान करता है और अनेकानेक समस्याएँ निर्माण कर देता है।

निम्नवर्ग– विष्णु प्रभाकर की कई कहानियों मे निम्नवर्गीय चरित्रो का भी निर्माण किया गया है। 'पूल टूटने से पहले' शीर्षक कहानी एक निम्नवर्गीय परिवार की

कहानी है। इस कहानी का नायक गरीबी की चक्की में इस हद तक पिस चुका है कि अपने बच्चों को दो वक्त की रोटी भी नहीं दे सकता। इसलिए रास्ते मे गिरे पाव-रोटी और शवयात्रा में शामिल होते समय शव के ऊपर फेंके गए मखाने को उठाकर घर लाता है। उसे अपने मित्रों को खिलाता है। अपनी मजबूरी की कहानी काफी हाउस में अपने एक परिचित से आत्मकथन द्वारा व्यक्त करता है, "हे माँ, तुम जहाँ भी रहो, आनंद में रहो। तुम्हारी ही कृपा के कारण तो आज केवल एक प्याला काफी पीकर ही सब्र करना नहीं पड़ा।"[२२]

'कितने जेबकतरे' कहानी भी एक गरीब परिवार से संबंधित है। सपना, सुगंधा, सुधीर और साधना-तीन बेटियाँ और एक बेटा और पत्नी को छोडकर सपना के पिता स्वर्ग सिधार गए। सपना बी. ए. करने के बाद नौकरी में लग गई। अब सुंगंधा, साधना और सुधीर का दायित्व सपना सभालने लगी। सपना की तंगी हालत को देखकर उसकी सहेली प्रतिमा सारी समस्याओं के अत के लिए उसे पैसे वाले व्यक्ति से प्रेम करने की सलाह देती है। सपना मजबूरी में, न चाहकर भी एक मेडिकल ऑफिसर डॉ० प्रदीप खन्ना से प्यार करने लगती है। यह प्यार दरअसल प्यार नहीं पैसे के कारण था और पैसे रोटी की जुगाड़ के लिए थे न कि विलासिता के लिए। 'अंकुर का अहम्' कहानी में एक गरीब खिलौने बनाने वाला है जो परस्त्रीगामी प्रवृत्ति का है। बात-बात मे गाली-गलौच करना उसके स्वभाव का अग और रोजमर्रा जिंदगी बन गया था। विरोध किए जाने के फलस्वरूप उसने पत्नी की खूब पिटाई की। बदले में सुदीप ने भी बाप को खूब पीटा। दूसरे दिन उसका पिता गायब था, उसकी माँ अपने छोटे बच्चों को लेकर कुएँ में डूब मरी। इस प्रकार सुदीप उग्र स्वभाव का और असहाय हो गया।

संप्रदाय भेदों पर आधारित पात्र– भारत में विशालता की वजह से विविधता भी आसानी से देखी जा सकती है। यहाँ विभिन्न धर्म और संप्रदाय के लोग सदियों से रह रहे हैं, इसीलिए किसी एक धर्म को राष्ट्रीय धर्म के रूप में अपनाना कठिन ही नहीं वरन् अस्वाभाविक है। यहाँ विभिन्न प्रकार की सभ्यता और संस्कृति विकसित हुई है फलस्वरूप हिंदू, मुस्लिम, सिख, इसाई एवं अन्य संप्रदाय के लोग भी यहाँ समान रूप से रहते हैं। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में सभी संप्रदाय के लोगों का चयन करते हुए उनका चरित्रांकन किया है।

हिंदू पात्रों का चरित्र-चित्रण– हिंदू पात्रों का अधिकाधिक प्रयोग समाज सापेक्ष है और साथ ही युग सापेक्ष भी। यही कारण है कि विष्णु जी की कहानियों में भी हिंदू पात्रों का चरित्र-चित्रण अधिक हुआ है। इनमें से कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं।

'जीवन का एक और नाम' कहानी में सुमिता और अनंत, जो दोनों ही कैन्सर रोग से पीड़ित हैं, इस संसार से बहुत जल्द ही विदा लेने वाले हैं। अनंत जिसे सुमिता काका कहा करती है, काफी समझदार और दुनियादारी से निर्लिप्त

है। वे तत्वदर्शी है, इसीलिए मृत्यु को जीवन का दूसरा नाम के रूप में मानते हैं। 'ऑपरेशन' कहानी में संतकुमार को एक ऐसे मनोवैज्ञानिक पात्र के रूप में चित्रित किया है। उसको ऐसा लगता है उसके मस्तिष्क में कोई ऐसा रोग निश्चित है जो उसके हाथ को गलत कार्य करवाने के लिए आज्ञा करता है और वह डॉक्टर को मस्तिष्क का ऑपरेशन करने के लिए कहता है। डॉक्टर को अचरज है कि यह ज्ञानी होकर भी इस प्रकार का व्यवहार क्यों करता है। वह रह-रहकर बोल उठता है, जिस समय वह मानवता की प्राण प्रतिष्ठा के लिए प्राणों का होम कर रहा था उस समय मैंने अपने प्राणों की रक्षा के लिए हिंसा का स्वर उठाया। उस समय मैंने गीता के कृष्ण की दुहाई दी और शस्त्र-बल का प्रचार किया। जिस समय वह दुश्मन को दोस्त बनाने में लगा हुआ था मैंने लोगों को दुश्मन पर हमला बोल देने को उकसाया- यह सब मैंने किया, मैं जो अपने को उसका शिष्य, उसका साथी कहता था----"[२३]

मुस्लिम पात्रों का चरित्र-चित्रण– हिंदुओं के बाद मुस्लिम संप्रदाय के लोग आते हैं। हिंदू-मुसलमानों के मतभेद स्वतंत्रता से पूर्व ही उभरकर सामने आ गए थे किंतु देश विभाजन की घटना ने उन मत भेदों को उग्रतर रूप प्रदान कर दिया। विभाजन के समय लाखों लोगों के उजड़ने, लूटमार, मारकाट जैसी घटनाओं ने भारतीय जन-मानस में निराशा और असहायता को जागृत किया। हिंदू-मुसलमानों का विवाह आज भी किसी न किसी रूप में हमें देखने को मिलता है। इसका प्रभाव हिंदी कहानीकारों पर पड़ना स्वाभाविक है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से सांप्रदायिक एकता स्थापित करने की कोशिश की है जिसे उनकी कहानियों में चित्रित मुस्लिम, संप्रदाय के पात्रों के चरित्रों में भी देखा जा सकता है। उनमें से कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं।

'मुरब्बी' कहानी दोनों संप्रदायों के पारस्परिक स्नेह और विश्वास को अभिव्यक्त कर देती है। इसमें मुनव्वर एक मुस्लिम पात्र है। सह ह्रदयी मुरब्बी हिंदू पात्र है। मुनव्वर ने मुरब्बी के पुत्र राधे से तीन सौ रुपये उधार लिए थे लेकिन फसल खराब हो जाने के कारण वह रुपये चुका नहीं पाता तो स्वयं मुरब्बी मुनव्वर का कर्ज चुकाने के लिए अपनी मृत पत्नी का गुलबंद बेचना चाहता है। 'सफर का साथी' कहानी में हिंदुओं के सरगना कस्बे के मशहूर वैद्य लाला सुंदरलाल और मुसलमानों के नेता महबूब कसाई का एकलौता लड़का रमजान बीमार हो गया। यह जानकर कि लाला सुंदरलाल के पास ही इस मर्ज की दवा है महबूब पहले तो खामोश हो जाता है बाद में पुत्र की ममता के कारण वशीभूत होकर वे लाला सुंदरलाल से बेटे की भींख मांगने चल पड़ते हैं। लोगों के मना करने पर भी लाला सुंदरलाल महबूब के घर जाकर रमजान का इलाज करते हैं।

'मेरा बेटा' कहानी धर्म भेद की निस्सारता को ही रेखांकित करती है। खून जमा देने वाली सर्दी में दोनों संप्रदाय वहशियों की तरह आपस में लड़े जा

रहे हैं। डॉ हसन और डॉ शर्मा जब अस्पताल मे कानपुर के रामप्रसाद को जीवनदान देकर लौटते हैं उन्हे पता चलता है कि यह रामप्रसाद हसन के पिता का बडा भाई है। यह जानकर कि रामप्रसाद को मुसलमानों ने मारा, हसन के दादा अत्यंत व्याकुल हो उठते हैं। "मैं उसके पास जाऊँगा, आखिर वह मेरा बेटा है, कोई गैर नहीं, मैं मुसलमान हूँ ओर वह हिंदू, वह मुझसे, मेरे बच्चों से नफरत करता है--- वह भी मेरा बच्चा है। ----मैं उससे पूछूँगा, मैं मुसलमान हो गया तो क्या हुआ, हमारा बाप-बेटे का नाता तो नहीं टूट सकता, आखिर उसकी रगों में अब भी मेरा खून बहता है।"[२४]

सिक्ख पात्रों का चरित्र चित्रण– हिंदी कहानियों पर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो सिक्ख पात्रों की अधिकता तो नहीं दिखाई देती। विष्णु जी विभाजन के पूर्व पंजाब में रह चुके थे और उनकी सर्वाधिक संख्या मात्र पंजाब राज्य में है, इसीलिए उनकी कुछ कहानियों में सिक्ख पात्रों का चित्रांकन प्रस्तुत मिलता है। लेकिन इसकी अधिकता नहीं है।

विष्णु जी ने अपनी कहानियों द्वारा इन दो संप्रदायों को भी जोड़ने का प्रयास किया है। हिंदू और मुसलमान या हिंदू और सिक्ख होना इस समस्या के मूल में नहीं है। मूल में है मनुष्य स्वभाव की विरूपता। इस विरूपता को ही मिटाने का प्रयास इन कहानियों में किया गया है। 'स्यापा मुका' कहानी की अम्मा सुमति एक हिंदू औरत होकर भी सिक्ख परिवार में शादी कर चुकी है। उसके दो बेटे हैं एक डॉ० सर्वजीत सिंह और दूसरा मनजीत सिंह-डॉ० सर्वजीत सिंह की हत्या पंजाब के आतंकवादियों द्वारा इसलिए की जाती है कि वे केशधारी नहीं थे और छोटे भाई मनजीत सिंह को हरियाणा में करनाल के पास इसलिए मारा जाता है कि वे केशधारी थे। धार्मिक उन्माद और पागलपन के प्रति सुमति के मन में खेद है जो पूरी कहानी में व्यथा बनकर उमड़ता है। 'सत्य को जीने की राह' कहानी में १६७४ में जो दंगा हुआ था उस समय सिक्ख और हिंदुओं के परिवारों को ध्वस्त कर दिया गया था। उसमें सुरजीत सिंह और उसका पूरा परिवार नष्ट हुआ था, उसी परिवार की कहानी है। जो सुरजीत सिंह के माध्यम से निरतर बदलते समीकरणों में आदमी के भीतर सोये राक्षस को निरंतर जागते देखता है और उनके हाथ जूझना भी चाहता है। इस प्रकार विष्णु जी के सिक्ख पात्र भी एकता और सामंजस्य की मांग करते चित्रित हुए हैं।

विष्णु प्रभाकर जी के पात्र-निर्माण की विशेषताएँ– विष्णु प्रभाकर जी के पात्र-निर्माण की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उनके पात्र किसी कल्पना जगत् के वासी न होकर हमारे अपने अनुभव के संसारिक पात्र हैं। वे सभी अपने परिवेश से संपृक्त हैं। उससे कटे हुए प्रतीत नहीं होते। इनके पात्रों में मानव सुलभ अपेक्षाओं और विकृतियों का यथार्थ विस्तार है। विष्णु प्रभाकर जी के अधिकांश पात्रों में एक विशेषता और देखी जा सकती है। ये पात्र परिवेशजन्य कारणों

अथवा परिस्थिति से समायोजन न करने के कारण विभिन्न कुंठाओं और ग्रंथियों से विकृत है। टूटने और बनने की सतत् प्रक्रिया इनमें देखी जा सकती है और इस टूटने-बनने की प्रक्रिया के कारण ही उनमें गत्यात्मकता है। 'आश्रिता की सोना' 'अंधेरी सुरंग की दीपा' 'कैसी हो मरिअम्मा' की मरिअम्मा, 'हिमालय की बेटी' की रेवती, 'आकाश की छाया में' की सरला आदि अनेक पात्र परिस्थिति से समझौता न कर पाने के कारण विभिन्न मनोवृत्तियों और कुंठाओं से ग्रस्त है। असमायोजित परिस्थिति से उबरने की इनकी हलचल कहानी का केंद्रबिंदु है।

विष्णु प्रभाकर जी के नारी पात्र एक स्वतंत्र व्यक्तित्व को लेकर उभरे हैं। नारी स्वतंत्रता का मूल विष्णु प्रभाकर जी ने विशेष रूप से पकड़ा है। नारी आज तक पुरुष के आधीन ही रही और इसका मुख्य कारण था कि वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र न हो पाई थी। आर्थिक परतंत्रता ने ही उसके व्यक्तित्व को संकुचित व परावलंबी बना रखा था। विष्णु जी ने अधिकांश नारी पात्रों को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाया। नारी को अब यह आवश्यकता नहीं रही कि वह पुरानी परंपरागत थोथी मर्यादाओं का आँख मूंदकर पालन करती जाएँ। मानव-जीवन की सहज-स्वाभाविक इच्छाओं, आकांक्षाओं और अधिकारों को झूठलाने वाले धार्मिक बंधन उसे सह्य नहीं है। सच! 'मैं सुंदर हूँ-कहानी' पति के साथ सामंजस्य ही न रहने पर वह अपने जीवन का इच्छित मार्ग चुन लेती है। 'कैक्टस के फूल-कहानी' अपने आदर्शों-सिद्धांतों के लिए वह राजनैतिक जीवन में भी पति की प्रतिद्वंदिता कर सकती है। 'पतिव्रता कहानी' अब यह अल्पायु में भी पिता की इच्छानुसार जीवन-यापन करने के लिए बाध्य नहीं 'युगांतर कहानी' वह घरबार छोड़कर घरवालों से दूर स्वतंत्र जीवन यापन कर सकती है। 'मैं नारी हूँ' पिता से अलगाव महसूस करने पर वह तलाक देने और दूसरा विवाह कर लेने के लिए भी स्वतंत्र है। 'राखी कहानी', अपनी इच्छानुसार वह अपने इष्ट मित्रों की आर्थिक सहायता करने में भी पीछे नहीं है। 'अंधेरी सुरंग' कहानी इस प्रकार ये सभी पात्र स्वतंत्र जीवन-यापन करने में पूरी तरह समर्थ होकर भी अपनी मानव-सुलभ सहजता का त्याग नहीं कर सके हैं। उनके नारी पात्रों में एक और बात देखी जा सकती है कि भौतिक रूप से सफल होकर भी उनके अधिकांश नारी पात्रों का नारीत्व अतृप्त है। कहीं असफल प्रेम उनकी इस प्रवृत्ति के मूल में है 'अभाव', 'कैसी हो मरिअम्मा', 'नाग-फांस', तो कहीं असफल वैवाहिक जीवन 'एक और कुंती' 'एक और दूराचारिणी, 'राजम्मा' और कहीं कुंठित यौन लालसाएँ, 'एक मौत समंदर किनारे' सार रूप में कहा जा सकता है कि ये सभी पात्र अपने यथार्थ रूप में चित्रित हुए हैं।

विष्णु प्रभाकर जी की कई कहानियों में सामाजिक ढ़कोसलों और विकृतियों पर प्रहार अवश्य हुआ है। साथ-साथ उनके पात्रों में आदर्शवादिता की भी पुट दिखाई देती है।

विष्णु प्रभाकर जी के पात्रों का चरित्रांकन– नई कहानी में पात्रों की स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता से उद्‌घाटित करने का अधिक प्रयास हुआ है। अतः चरित्र को विश्लेषित करने के लिए कहानीकारों ने जो अभिनव प्रयोग किए हैं उनके संदर्भ में विष्णु जी के चरित्र-चित्रण को परखना उचित होगा।

पारस्परिक चरित्र-चित्रण– यह प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण का ही प्रकार है जिसमें पात्रों की वेशभूषा आदि द्वारा अनेक बाह्य व्यक्तित्व का उद्‌घाटन किया जाता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इस पद्धति से चरित्र-चित्रण बहुत कम हुआ है। 'अब्दुल्ला' कहानी में अबदुल्ला का प्रस्तुत चित्रण इस पद्धति के अंतर्गत आता है। 'उसका काला अहमद बिना बटनों वाली बंडी जो उसके बदन पर चिपकी रहती थी, 'छोटी सी दाढ़ी जिसे कभी संवारने की जरूरत नहीं महसूस हुई। पिचके हुए गाल जिनमें कभी मांस न भरा, जलती हुई आंखें, जिनमें से सदा परेशानी झांका करती, यह था अब्दुल्ला का रूप जो तन मन बिसराए इधर से उधर, उधर से इधर यह कह कर घूमता रहता था।

वर्णनात्मक चरित्र-चित्रण– वर्णनात्मक चरित्र-चित्रण तीन प्रकारों से किया जाता है...... ..

जब कहानीकार स्वयं पात्र का चरित्र वर्णन करता है, जब एक पात्र दूसरे पात्र के स्वभाव, आचार-विचार आदि का वर्णन करता है। इन दोनों पद्धतियों का चित्रण विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में प्राप्त होता है।

जब कहानीकार स्वयं पात्र का वर्णन करता है– 'द्वंद्व' कहानी में सुजाता का यह वर्णन चरित्रांकन की इसी शैली में गिना जाएगा।

'सारे चित्र उसके सामने इस तरह घूम गए मानों वे सब सजीव घटनाएँ अभी उसके सामने घेर रही है। और वह उन्हें देख रही है– असमर्थ, विवश, पत्थर के बुत की तरह, न हिल सकती है, न बोल सकती है। केवल उसके दिल का दर्द आँखों में उमड़कर चारों ओर फैलता जा रहा है, जिसकी चमक देखकर वह स्वयं ही कांप उठती है, लेकिन वह सोचती है, उस कंपन का मूल्य ही क्या, जो हाथों को आगे न बढ़ा सके, जो पैरों को चलने पर विवश न करे।[२९]

जब एक पात्र दूसरे पात्र का चित्रण करता है– 'एक मौत समंदर किनारे' कहानी में शैलेन्द्र के इस कथन को इस पद्धति में गिना जाएगा, जो वह जाबाला के संबंध में कहता है– 'वह निर्भीक और साहसी लड़की है, इतनी की उसे आवारा और बदचलन भी कहा जा सकता है। वह शराब पीती है और अपनी इच्छा से किसी के भी साथ घूम सकती है। बुद्धिजीवी से लेकर उच्छृंखल व्यक्ति तक के साथ। निठल्ला शराबी हो या आवारा-मसीहा फर्क करना उसने नहीं सिखा।[३०]

आत्मकथात्मक और आत्मविश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण– 'ऑपरेशन' कहानी में पुरुष पात्र का व्यक्तित्व उसके इस आत्मकथन द्वारा उजागर होता है–

''जिस समय वह मानवता की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए प्राणों का होम कर रहा था उस समय मैंने अपने प्राणों की रक्षा के लिए हिंसा का स्वर उठाया। उस

समय मैंने गीता के कृष्ण की दुहाई दी और शस्त्र-बल का प्रचार किया। जिस समय वह दुश्मन को दोस्त पर हमला बोल देने को उकसाया– यह सब मैंने किया, मैं जो अपने को उसका शिष्य, उसका साथी कहता था---"[२८]

संवादात्मक चरित्र–चित्रण– इस पद्धति में दो प्रकार के संवादों द्वारा चरित्र-चित्रण माना जाता है---

१. प्रत्यक्ष संवाद द्वारा

२. स्मरणात्मक संवाद द्वारा

१. प्रत्यक्ष संवाद द्वारा चरित्रांकन का उदाहरण 'बेटे की मौत' कहानी में पाया जाता है, वहाँ पहला युवक, दूसरा युवक, लड़की बिंदा और केदारनाथ के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा मोहन के चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है।

'बिंदा उसे संभालती-संभालती बोली, "नहीं-नहीं चाचा। वह तुम्हें पापी नहीं समझते थे। वह तुम्हें बेहद प्यार करते थे। "पहला युवक बोला", "मोहन सदा आपकी तारीफ करता था। "दूसरा युवक बोला "युद्ध में जाने से पहले उसने मुझसे कहा था, मेरे पिता को अपना पिता समझना। "केदारनाथ उठ बैठा। आँखें पोंछते हुए कहा, "अहा, मेरे बच्चों, तुम कहना चाहते हो, वह गद्दार के साथ मुझे कायर भी समझता था। यह उसकी भूल थी। वह अगर देश के लिए मर सकता है तो मैं क्यों नहीं मर सकता? आखिर वह मेरा बेटा था, बेटा---[२९]

२. स्मरणात्मक संवादों द्वारा चरित्रांकन का 'युगांतर' कहानी में यह उदाहरण द्रष्टव्य है, जब रामधन की बेटी की शादी में वर पक्ष दहेज की पूरी भुगतान नहीं दे पा रहे हैं, वह चिंता से व्यथित है तो उसे अपने विवाह की घटना अतीत की स्मृति के रूप में याद आ जाती हैं। उस व्यतीत घटना में जो संवाद रामधन को स्मरण आते हैं उससे उसकी पत्नी के चरित्र का उद्घाटन होता है---- जो संपूर्ण नारी जीवन की एक समस्या को चित्रित करता है।

'शायद विवाह के उस पुनर्जीवित हो- हल्ले में किसी ने भी उसकी व्यथा को नहीं समझा। लेकिन अब पहचानती-सी टीस उसके दिल में उठ रही है। उसे अब पता लगा है कि वह टीस उन पच्चीस वर्षों में बराबर उसके वक्ष में दबी रही है। आज उसकी बेटी की दृष्टि ने जैसे उसी पर से आवरण उतार दिया है। जिसके साथ वह पच्चीस वर्षों से गिरस्ती बिता रही है, उसके बच्चों का जनक है, वहीं तो जमींदार की दया घोड़े पर चढ़कर उसका उद्धार करने आया था-- और अगर वह कमोवेश सुख : दुःख के साथ उसकी गिरस्ती चलती। इसीं तरह वह उसके बच्चों का जनक बनता। हाय रे! कैसा है यह विधान? स्वामी नामधारी किसी भी व्यक्ति को नारी प्यार कर सकती है। उसे बस एक कवच चाहिये।---[३०]

मनोविश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण– इस प्रकार के चरित्र-चित्रण में विगत स्मृतियों के माध्यम से, स्वप्नों के माध्यम से, अंतर्विवादों के माध्यम से चरित्रांकन किया

जाता है। विष्णु जी की कहानियों में इन सभी तरह का चरित्र-चित्रण पाया जाता है।

'कितना झूठ' कहानी मे निशिकांत का मन अनेक अंतर्विवादों से भरा है– आखिर वह सब क्या है ? उस अव्यक्त अगोचर परमात्मा को क्यों यह सक्त सवार हुआ? क्यों उसने मकड़ी की तरह ताना-बाना बुन डाला? फिर इस जाले में कितना तेज आकर्षण स्त्री और पुरुष एक दूसरे की तरफ इस प्रकार खींचते हैं जैसे कभी वे एक रहे हो और फिर किसी के क्रूर हाथों द्वारा अलग कर दिए गए हो और अब जैसे फिर एक होना चाहते हों– बिल्कुल उस काल्पनिक अर्ध्व-नारीश्वर की तरह। लेकिन वे एक हो कहाँ पाते हैं — केवल एक क्षणिक, अपरिमेय, अद्भुत और आनंदमय आवेग के बाद अलस-उदास और धीर-गंभीर हो अपने ही समान अपने अनेक स्वरूपों का निर्माण करने में लग जाते हैं। स्वयं स्रष्टा बनकर नियंता की बेवकूफी को दोहराने लगते हैं और इस कार्य में उन्हें इतना आनंद मिलता है कि मृत्यु के समान प्रसव-पीड़ा भी अनेक प्राणों में उन्माद पैदा कर लेती है।"[31]

'नफरत, केवल नफरत' कहानी में गुलाब की विगत स्मृतियाँ उसके वास्तविक जीवन की असलियत को सामने लाती है जो कि आज मजबूरी ने उसको वेश्या बनाया है– 'कि सात साल पहले वह ऐसी बस्ती में आई थी कि एक दिन वह किसी की घरवाली थी-- कि, कि--- एक दिन वह मजदूरी करके पैसे कमाती थी।

'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी में पारसनाथ के स्वप्नों के माध्यम से उसके विगत कर्मों का जायजा प्रस्तुत होता है जो उसके वास्तविक रूप पर प्रकाश डालता है।--- मैं नहीं जानता, तुम यहाँ कैसे आ गए। क्या तुम सचमुच जिंदा हो ? मैंने तो तुम्हें अपने हाथों से जलाया था। तुम जरूर प्रेत बनकर मेरी हत्या करने आए हो। लेकिन एक बात मैं भी तुमसे कह देता हूँ, तुम अपनी संपत्ति मुझसे किसी भी प्रकार वापस नहीं ले सकते।"[33]

पूर्वदीप्ति शैली द्वारा चरित्र–चित्रण– कहानी में कुछ पात्र ऐसे होते हैं जो अपने भीतर अपने विगत जीवन की कई स्मृतियों को संजोए होते हैं। ये स्मृतियाँ जब-जब भी वर्तमान में उभरकर आती हैं, तब-तब उनके व्यक्तित्व का उद्घाटन होता जाता है।

'नफरत, केवल नफरत' कहानी में गुलाब के अतीत स्मृति द्वारा उसकी सहेली मनभरी के चरित्र पर प्रकाश डाला जा सकता है– 'तभी रोटी सेंकते-सेंकते उसे याद आया कि बारह साल बाद उसने आज तीन रुपयों को अपना कहा था। लेकिन इन बारह सालों ने कितना अंतर डाल दिया है उसके जीवन में, तब वह बहू बनकर किसी का घर बसाने आई थी और अब–

वह चौंकी-सी। क्षणभर के लिए कुछ मन में आया कि एक चमार की लड़की मनभरी बारह वर्ष पहले एक कस्बे में विवाह करके गई थी। उसका

घरवाला किसी के खेत में काम करता था और वह नए बनने वाले मकानों पर ईंटें ढोती थी।

हाँ! वह ईंटें ढोती थी पर एक बात वह नहीं समझती थी कि घर से लेकर नए मकान तक लोग उसे अजीब नजर से देखते, मुस्कराते और कुछ कह भी बैठते। क्या कहते यह यह अब गुलाब के लिए अचरज की बात नहीं थी ? उसे तो यही बात विशेष रूप से याद आई कि मकान के ठेकेदार ने उससे एक दिन कहा था–'मनभरी! डबल मजूरी कर दूँगा।

और वह झूठ नहीं कहता था। उसकी जैसी एक औरत पाँच आने पाती थी और वह तीन आने। और ठेकेदार ही क्यों ? राज भी उसे ऐसा ही कुछ कहते थे और रातों में एक बाबू का लड़का भी कभी चाँदी के चमकदार रुपये दिखा देता था।

संकेतात्मक चरित्र-चित्रण– संकेतात्मक चरित्र-चित्रण पद्धति द्वारा चित्रांकन में सूक्ष्मता लाने का प्रयास किया जाता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों मे अधिकांश स्थानों पर इस पद्धति का प्रयोग देखा जा सकता है। 'मूड' कहानी में रोशन का फुलस्केप से लेकर आधा इंच तक की करतनें बनाना, 'मुहूर्त टल गया' में चाची का बार-बार बेटे की चिंता करते रहना, 'ऑपरेशन' कहानी में संतकुमार का बार-बार डॉ० नागेश मस्तिष्क का ऑपरेशन करवाने के लिए कहना, 'ठेका' कहानी में रोशन का पति से एक बार मना करने पर भी बॉस के साथ पार्टी में जाना, 'कितने जेबकतरे' कहानी में सपना का इच्छा न होते हुए भी डॉ० खन्ना के साथ प्रेम संबंध रखना, 'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी में एक वृद्ध का बेटी की मृत्यु पर दुःख प्रकट करना, 'एक माँ एक देश' में मृणाल का अपने बेटे को एक प्रौढ़ा के पास छोड़कर चला-आना या 'अभाव' में पड़ोसिन की बच्ची द्वारा खिलौने तोड़ने पर नायिका का आनंदी होना, आदि संकेतों द्वारा इन पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

प्रतीकात्मक चरित्र–चित्रण– विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में प्रतीकों का प्रयोग कर पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने का प्रयास भी किया है। 'पिचका हुआ केला और क्रांती' कहानी में रास्ते पर गिरे हुए पिचके केले के माध्यम से अभावग्रस्त जीवन जी रहे बच्चों की वास्तविकता को स्पष्ट करना अस प्रतीक द्वारा निम्नवर्ग की भूख के कारण विवशता से लाचार होकर जीवन जीने के कारण उस पर उच्च नेता लोगों की केवल रिश्वतखोरी, स्वार्थांधता, संकुचितता के झूठे भावों को दिखाकर झूठे परिवर्तन की मांग करना आदि भाव स्पष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार 'चितकबरी बिल्ली' कहानी में बिल्ली के प्रतीक द्वारा नारी जीवन की विवशता, लाचारी के भाव आदि से नारी के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरण, उसने कहा, "ऐसा जान पड़ता है बच्चों को मां से अलग करने का तुम्हें दुःख है? पत्नी झिझकी, "दुःख तो है। सभी को होता है उसके दुःख की मैं कल्पना नहीं कर सकती हूँ।"

"तो फिर ले आओ न उन बच्चो को ढूँढ़कर। उनको पालो, दूध पिलाओ, बिस्तर में सुलाओ। फिर कपडे साफ करो, मुझे क्या? पत्नी बोली, "मैंने यह तो नहीं कहा, मैं तो यही कहती हूँ माए सब एक सी होती हैं। यह तो तुम भी मानोंगे।[35] पति-पत्नी के संबधो द्वारा नारी जीवन की स्वाभाविकता पर प्रतीकात्मक रूप में प्रकाश डाला गया है।

घटनात्मक चरित्र-चित्रण– अक्सर पात्रों के क्रियाकलापों और कहानी में घटित होने वाली घटनाओं द्वारा भी चित्रांकन किया जाता है। विष्णु जी द्वारा इस प्रकार का चित्रांकन अधिकांश कहानियों में किया गया है। 'एक और कुंती', 'सत्य को जीने की राह', 'आखिर क्यों ?' 'मैं जिंदा रहूँगा', 'राखी', 'मेरा बेटा', 'अगम-अथाह', 'नाग-फांस', 'संबल', 'जज का फैसला', 'शरीर से परे', 'हिमालय की बेटी', 'धरती अब भी घूम रही है', 'सलीब', 'जीवन का एक और नाम', 'एक रात एक शव' आदि अनेक कहानियों मे घटित होने वाली घटनाएँ और पात्रों के क्रियाकलाप उनके चरित्र को प्रस्तुत करते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं–

'आखिर क्यों? कहानी में शंकर उसे मारने के लिए आए हत्यारे से बात करता है। इस वार्तालाप से शंकर के चरित्र पर प्रकाश डाला जा सकता है, जो कि मानव स्वभाव की विरूपता को मिटाना चाहता है,– "फल दरख्त की खुराक नहीं है। जो उसकी खुराक है, वह उसे खुद-ब-खुद मिलती है। कुदरत उसे गैस देती है, इन्सान खाद देता है, पानी देता है। न दे तो फल न मिले लेने का देना है। दूसरी तरफ, अनाज पैदा करने वाले किसान की जिंदगी वही अनाज है जो वह पैदा करता है। वही उससे छीन लिया जाता है और उनको दे दिया जाता है जिन्होंने उसके लिए कोई मेहनत नहीं की। आखिर क्यों? आखिर तुम जेब में छुरे डाले उन आदमियों को मारने की टोह में रहते हो जो कमोबेश तुम्हारी ही तरह भूखे, नंगे और बेघर हैं।[36]

'मैं जिंदा रहूँगा' कहानी का पात्र प्राण दंगों में खोए राज नाम की औरत और दिलीप नाम के बेटे को सहारा देते हैं पर जब उसका असली पति और बेटे की असली मॉ मिल जाने से वह उनके पास सौंप देता है। दिलीप की माँ जब दिलीप को लेने आती है तो प्राण राज को समझाता है, "मैं कुछ नहीं कहता, वह उन्हीं का है। तुम उनका खोया लाल उन्हें सौंप रही हो, इस कर्तव्य में जो सुख है उससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा ? उस सौभाग्य को क्षणिक कायरता के वश होकर ठुकराओ नहीं राज!"[37]

इस प्रकार विष्णु जी ने अपनी कहानियों में उपर्युक्त सभी पद्धतियों द्वारा चरित्रांकन किया है। आत्म-विश्लेषणात्मक, मनो-विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक आदि पद्धतियों की उनकी कहानियों में बहुलता है, जिससे पात्रों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म कृतियों का उद्घाटन करने में वे पूर्णतया सफल हुए हैं।

विष्णु प्रभाकर जी के चरित्रांकन की विशेषताएँ– विष्णु प्रभाकर जी ने पात्रों का जो चरित्र–चित्रण अपनी कहानियों में किया है, उसकी सर्वप्रमुख विशेषता यह है

कि उसमें मनोविज्ञान का यथेष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। चरित्र प्रस्तुत करने में मनोविज्ञान का जो प्रभाव पात्रों पर पड़ा है, उसे कई रूपों में देखा जा सकता है।

प्रथम तो यह कि विष्णु जी ने सामान्य जीवन की परिस्थितियो के अनुरूप ही पात्रों की समग्रता को नितांत वैयक्तिक रूप में प्रस्तुत किया है। ये पात्र जीवन की अनुरूपता के अनुकूल चित्रित होने के कारण अपने परिवेश से अलग नहीं हैं। उन्होंने पात्रों को परिवेश के संदर्भ में ही देखने और प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जिजीविषा से प्रेरित, कुंठित पात्रों के चारित्रिक विश्लेषण को भी युग के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से प्रभावित माना जा सकता है। इन पात्रों की मानसिक स्थिति कहीं– इतनी संक्रामक हो गई है कि वह उसकी जीवन-दशा का ही नियमन करने लगती है। 'भोगा हुआ यथार्थ', 'ऑपरेशन', 'पडोसी', 'मैं जिंदा रहूँगा' आदि कहानियों में यह स्थिति देखी जा सकती है। इनमें से कई पात्र विकृत मनोग्रंथियों से ग्रस्त हैं। अंतद्वंद्व की स्थिति भी मनोविज्ञान से पुष्ट है और उनकी अधिकांश कहानियों में यह स्थिति प्राप्त होती है। 'कैसी हो मरिअम्मा', 'आश्रिता', 'हिमालय की बेटी', 'संबल', एक और दुराचारिणी आदि कहानियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु जी ने अपने पात्रों के चरित्र को उभारने में मनोविज्ञान का प्रश्रय लिया है। उन्होंने सामान्य जन-जीवन में ही प्राप्त होने वाले पात्रों का किसी विशेष परिस्थितियों में उनके आचार-विचार व क्रियाकलापों का अध्ययन कर उनके चरित्र को उभारा और उसमें स्वभावतः ही मनोविज्ञान का समावेश हो गया है। विष्णु जी की कहानियो में मनोविज्ञान के साथ दर्शन और साम्यवादी विचारधारा का भी प्रश्रय मिलता है। मानवतावाद युगदर्शन का मूल धरातल बन गया है। नैतिक मान्यताओं और आदर्शों में व्यापकता है। इसी पृष्ठभूमि पर देखा जाए तो उनकी कहानियों में पात्रों द्वारा विश्लेषण करने की प्रवृत्ति अत्यंत विस्तृत है। चिंतन, मनन से लेकर मार्क्सवाद, धर्म, दर्शन, कला, मनोविज्ञान, राजनीति, आयुसीमा आदि सभी समस्याओं के संबंध में विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में परिलक्षित होती है।

कथोपकथन या संवाद– पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप का कथोपकथन अथवा संवाद कहते हैं। संवादों के माध्यम से ही लेखक अपना अनुभव ज्ञात करता है तथा निरीक्षण शक्ति का परिचय देता है। इस संदर्भ में 'कहानी का रचना-विधान' ग्रंथ में डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के विचार ध्यातव्य हैं, "यदि देशकाल और संस्कृति विशेष का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है तो उसकी बातचीत की प्रांजलता और विदग्धता, शब्द और वाक्य के प्रयोग, भाषा और पदावली से हमें प्रत्यक्ष मालूम होता है कि व्यक्ति किस कोटि, वर्ग, देश और काल का है?"[5] तात्पर्य, साहित्य नाम से अभिहित होने वाले रचना के जितने भी रूप हैं, उनमें संवाद तत्व अनिवार्य होता है। साहित्य में उसके महत्त्व पर प्रकाश डालते

हुए 'हिंदी कहानी का रचना-विधान' ग्रंथ में डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है, "संवाद जहाँ एक ओर कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है, वही चरित्रोंद्घाटन का भी, साथ ही देश काल का भी पर्याप्त बोध करा देता है।"[३६] इसके अभाव में कथा की कलात्मकता, उसकी प्रभावशीलता एवं संवेदनशीलता प्रायः समाप्त हो जाती है। जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कथानक में संवादों का समावेश होता है वे अधोलिखित हैं –

१. कथानक को गति प्रदान करने हेतु
२. पात्रों का चरित्रोद्घाटन करने हेतु
३. लेखक द्वारा स्वयं का उद्देश्य स्पष्ट करने हेतु
४. किसी घटना का पूर्व संकेत देने हेतु
५. वातावरण सृष्टि करने के निमित्त

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में उपर्युक्त सभी उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले संवाद प्राप्त होते हैं।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में कथोपकथन– कथोपकथन के संदर्भ में विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का विवेचन करने से एक महत्त्वपूर्ण बात यह दृष्टिगत होती है कि कथोपकथनों का अधिक प्रयोग उनकी प्रारंभिक कहानियों में ही हुआ है नई कहानियों में अपेक्षाकृत कम है। किसी एक मानसिक स्थिति अथवा अंतर्द्वंद्व को लेकर उनकी अधिकांश नई कहानियों के कथानक गूंथे हुए हैं अतः उनमें संवादों का प्रयोग स्वभावतः ही कम हुआ है फिर वे यथावसर प्रयुक्त किए गए हैं।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में जहाँ-जहाँ भी संवाद प्रयुक्त हुए हैं, उनके संदर्भ में हम उनकी विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे।

कथानक को गति प्रदान करने वाले कथोपकथन– कथानक को आगे बढ़ाने में संवादों का महत्त्व बहुत अधिक होता है परंतु इसके स्वच्छंद, अनियंत्रित व आवश्यक प्रयोग से कहानी में नीरसता एवं बोझिलता उत्पन्न होने की संभावना रहती है। अतः कहानीकार को विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि संवादों का प्रत्यक्ष संबंध कथासूत्र से है। विष्णु प्रभाकर जी ने इस सावधानी का सजगता से पालन किया है। उनकी कहानियों में जहाँ-जहाँ भी संवादों का प्रयोग हुआ है, वह कथानक को गति प्रदान करने में पर्याप्त सहायक हुआ है।

कथोपकथन के द्वारा कथावस्तु के विकास का एक उदाहरण विष्णु प्रभाकर जी की 'दीप जले ये घर-घर' शीर्षक कहानी से यहाँ प्रस्तुत किया गया है। उसमें बच्चे मुंशीजी से वार्तालाप करके उन्हें पिछली घटना से अवगत कराते हैं और तब आगामी घटना का सूत्र नियोजित होता है–

"---उसे सुनते ही हम उछल पड़े और छोटे मुन्ने ने तो एकदम रोना शुरू कर दिया। मुंशीजी ने सब कुछ देखा, मुन्ने को गोदी में उठा लिया, और बोले। परदीप।

"क्या है यह सब? अंधेरा क्यों है ?"

मैंने कहा- 'ताऊजी! अब की दीवाली नहीं मनी।

'क्यों रे।'

सरला बोल उठी- 'दीदी ने मना कर दिया ताऊजी।

'मना कर दिया, आखिर हुआ क्या ?"[४०]

ओह एक उदाहरण देखिए–'समझौता' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया गया है। उसमें फर्म के लोग, अनिरूद्ध की पत्नी आयशा से वार्तालाप करके फर्म के ठेके-के बारे में अवगत कराते हैं और तब आगामी घटना का सूत्र नियोजित होता है।

'आप कुछ कर सकते हैं?

'बहुत कुछ!'

ओह! तब मैं कितनी कृतज्ञ हुई। मैंने तुरंत कहा, 'तो बताइए मुझे क्या करना होगा? क्या अपना सब जेवर देकर मैं अनिरुद्ध को बचा सकती हूँ?

आप सचमुच अनिरुद्ध क़ो बचाना चाहती हैं, यह मैं जानती हूँ। पर क्षमा कीजिएँ, रुपया उन्हें नहीं बचा सकता।

'तो———'[४१]

पात्रों का चरित्रोद्‌घाटन करने वाले कथोपकथन– कथानक को गति प्रदान करने के साथ-साथ कथोपकथन का दूसरा कार्य है, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना, उसे स्पष्ट करना। कई पात्रों के चरित्र व्यक्तित्व पर आधारित होते हैं, अतः संवादों का प्रत्यक्ष संबंध पात्रों से ही होता है। कथोपकथन के अभाव में पात्रो के व्यक्तित्व की रूपरेखा उभारना एवं उनके चरित्र का विश्लेषण करना संभव नहीं होता। विष्णु प्रभाकर जी के अधिकांश कथोपकथन पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण करने में और नए यथार्थ का उद्‌घाटन करने में पर्याप्त सहायक हुए हैं। जैसे, 'सच! मैं सुंदर हूँ' शीर्षक कहानी का यह उदाहरण प्रस्तुत है----

"हाँ, लाला ! वर्षभर रोकर एक दिन हँसना या एक दिन हँसकर वर्षभर रोना-सौदा काफी मँहगा है। है न देवरजी।"

"भाभी"

"झूठ कहती हूँ मैं। हॅसना-रोना क्या कभी एक साथ होता है। जब एक रोता है तो दूसरे को हॅसी आती है।"

"नहीं भाभी! आज के दिन कोई नहीं रोता। सभी हॅसते हैं।

सहसा वह उठ बैठा। दृष्टि नीचे की ओर गई। पाया अधिकांश यात्री ऊँघ रहे हैं। कुछ पढ़ भी रहे हैं, कुछ दीवार से सटे खड़े हैं। गाड़ी है कि अपनी रफ्तार से चली जा रही है, निर्मुक्त–र्निद्वंद्व।

सोचा सभी हँसते हैं? सचमुच क्या सभी हँसते हैं? आज भी चारों ओर रोना ही कुछ अधिक है। भूख, अभाव, आत्महत्याएँ, पुलिस़, जेल-सभी कुछ पूर्ववत

हैं। फिर भी हँसने वाले हँसते हैं। लेकिन जिसके प्रिय बिछुड़ गए हैं, वे भी क्या हँस सकते हैं? इसके लिए रोना ही सत्य है। वे रोएँगे। तभी तो हँसने वाले हँसेंगे। कैसी विडम्बना है। कैसा चक्रव्यूह है? हँसना रोना, रोना हँसना।

सहसा भाभी को एक और बात याद आ जाती है, "देवर जी हँसना और रोना, क्या यही जीवन के मूलतत्व हैं।"

"तो?"

'आत्मसमर्पण"

"भाभी"

पल के उस सहस्त्रवें भाग में कहकर भाभी को लज्जा आई और मुकुल हो उठा विभोर। प्रेम की सिहरत जैसी उसकी सिराओं में उमड आई। भाभी मुस्कराती हुई बोली, "किसी के होना चाहते हो?

"किसका?"

"किसी के भाभी?"

अनायास ही जैसे अपने से ही कहता है, मुकुल बोल उठा, "तुम्हारा?"

भाभी तनिक भी चकित नहीं हुई। जैसे वह यही सुनना चाहती थी। सहज स्वाभाविक स्वर में बोली, "मेरे भी हो सकते हो? लेकिन अब मुझमें आत्मसमर्पण कहाँ है? तुम नहीं चाहोगे——[४२]

इस प्रकार के कथोपकथनों में साथ-साथ व्याख्या एवं विश्लेषण भी होता है क्योंकि कहानीकार का उद्‌देश्य व्यापक संवेदनाओं एवं मानवीय अनुभूतियों का अकन करना है।

कथोपकथन के ब्याज से अपना उद्‌देश्य स्पष्ट करना– कई स्थानों पर कहानीकार कथोपकथन द्वारा अपना उद्‌देश्य एवं विचार भी प्रकट करता है। 'वह रास्ता' कहानी में अहमद और निशिकांत इन दो पात्रों में यह संवाद है–

"जरा सोचो तो सही हम सब एक-दूसरे से इसीलिए लड़ते हैं कि मैं मुसलमान हूँ और आप हिंदू। लेकिन मुझे मुसलमान बनाया किसने? मैंने जब से होश संभाला तब से अपने को मुसलमान पाया और यह सुना कि हिंदू काफिर हैं, गुमराह हैं, उनको रास्ते पर लाना हमारा पहला फर्ज है। उस फर्ज को पूरा करने के लिए झूठ, फरेब, मक्कारी, धोखेबाजी जो कुछ भी करूँ सब जाएज है। यही हालत तुम्हारी है।"

"कुछ ज्यादा ही है दोस्त। हम लोग तुम्हारी छुई चीज को भी नापाक समझते हैं।"

"हाँ, देख लीजिए, कुछ हद है हैवानियत की?"

"बेशक, वह धर्म और तहजीब क्या जो हमें उंचा नहीं उठा सकती, जो हमें इन्सानियत के रास्ते पर नहीं ला सकती। कभी-कभी तो मुझे अपने मुसलमान होने पर घृणा होने लगती है।

निशिकांत ने कहा, "इसमें तुम्हारा क्या दोष? यह तो परमेश्वर की बात है। उसी ने तुम्हें मुसलमान बनाया और मुझे हिंदू। हम-आप तो कुछ बने नहीं, तब क्यों इस बात के लिए नफरत या मोहब्बत करें ? सोचने की बात इतनी है कि क्या हम इन्सान बन सकते हैं ?

"नहीं बन सकते।"

"क्यों?"

क्योंकि जब तक खुदा और मजहब है तब तक इन्सान की अक्ल आजाद नहीं हो सकती।"[५३]

कथोपकथन के माध्यम से पूर्व–संकेत देना– भविष्य की किसी संभावित घटना अथवा क्रियाकलाप के संबंध में कथोपकथनों द्वारा कभी-कभी पूर्व-सूचनाएँ भी प्राप्त हो जाती हैं। 'खिलौने' कहानी में दीपा के मन में उठने वाले भावों के माध्यम से विष्णु जी दो पीढी के विचारों में आने वाले अंतर की ओर संकेत करते हैं। दीपा को मानों सपने में इसकी पूर्व सूचना मिलती है जैसे,[५४]

'दीपू ने रोज की हिचकी ली। क्षण-भर बाद फिर कहा, "बहू ने उस हार को देखा। उसका चेहरा घृणा से विरूप हो गया। उसे उतारकर उपेक्षा से उसने सुनील के हाथ थमा दिया। कहा, 'कितना पुराना डिजाइन है।'

"जैसे सागर की उमडती लहर को किसी ने रोक दिया। किसी तरह मैं उसे अंदर ले जाती हूँ। वह चारों ओर देखती है। सहसा उसकी दृष्टि रेश्मा के खिलौने पर पड़ती है और वह जैसे चीख उठती है, छिः ये मिट्टी के कलाहीन खिलौने। लोग अभी भी पिछली सदी में रहते हैं।"

"और कहती ही नहीं, उन्हें उठाकर एक कोने में फेंक देती है। मैं यह सब नहीं कह सकती। चीख उठती हूँ–– तभी आँखे खुल जाती हैं, देखती हूँ, कहीं कुछ नहीं है। सब सपना है। पर मैं जानती हूँ कि यही सच है। सपने में आने वाली बातें सच होती हैं।

"होती है तो इसमें दुखी होने की क्या बात है? सपना ठीक ही तो है। तुम समझती क्यों नहीं? कुछ दकियानूसी लोगों को छोडकर अब कौन सोने के भारी-भारी हार पहनता है? अब तो तरह-तरह के कलापूर्ण पत्थर आते हैं और रेश्मा के खिलौने में भी कहीं कला है? वह तो दूर से देखने के हैं। पास से देखो तो न रंगों का मेल न अंगों का सौंदर्य।"

प्रोफेसर ने जैसे सुना ही नहीं। एक क्षण निस्संग भाव से कहा, कि "मुझे ऐसा लगता है कि सुनील सुमिता से विवाह निश्चित करके ही आएगा। तुम उससे कुछ भी मत कहना। मन में यही बात रचा लो तब न सपने आएँगे और न रोना। सुख-दुख तो मानने के हैं। तुम्हें कैसे समझाऊँ कि तुम्हारा दुख-सुख मेरे साथ बँधा है। बाकी रही दुनिया की बात, वह जितना हमें मानेगी उतना ही हम----"[५५]

कथोपकथनों द्वारा वातावरण सृष्टि– कथोपकथनों का एक उद्देश्य वातावरण सृष्टि एवं देशकाल का बोध करना भी होता है। ऐतिहासिक कहानियों में इस

उद्देश्य की पूर्ति के लिए कथोपकथन प्रबल रूप से सहायक होते हैं। उनके माध्यम से तत्कालीन सभ्यता संस्कृति आदि पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियाँ तत्कालीन स्थिति पर लिखी हैं। अतः उनकी कहानियों में सवादों द्वारा तत्कालीन समाज का रूप प्रतिध्वनित होता है। इन संवादों में प्रयुक्त होने वाली भाषा और शब्द हमारे वर्तमान युग के ही हैं। अतः इन कथोपकथनों द्वारा किसी विशेष युग के वातावरण की निर्मिति नहीं देखी जा सकती। जैसे, 'मणि, कलंक और राजनीति' इस पौराणिक कथावस्तु पर लिखी कहानी में मणि को लेकर पूरे यादव कुल में विवाद खडा हो जाता है अंत में कृष्ण द्वारा मणि पर किसका अधिकार है, यह यादव सभा में प्रस्तावित किया जाता है--

"सभा में अब नई उत्सुकता जाग उठी, "किसे मिले ? उग्रसेन, वसुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, सात्यकि, सुकुमार आदि सभी प्रमुख यादवों ने एक साथ सोचा कि मणि मुझे मिलेगी, क्योंकि मैं अंधक कुल का नेता हूँ, क्योंकि मैं पिता हूँ, मैं भाई हूँ, मैं परमसुंदर हूँ, मैं प्यारा सखा हूँ, मैं महाबली हूँ-- लेकिन कृष्ण परमशांत थे। उन्होंने कहा,

"यादव संघ के सभासदों! अंधक और वृष्णि वीरों। आप मुझसे सहमत होंगे कि यह मणि योग्यतम व्यक्ति को मिलनी चाहिए और संघ में योग्यतम कौन है, यह आप भी जानते हैं।" कृष्ण बोलते रहे, "आप वे दिन नहीं भूले होंगे जब यादव कुल पर विपत्तियों के बादल मंडरा रहे थे। हमारा ऐश्वर्य, हमारी संपदा, हमारी शक्ति नष्ट हो चुकी थी। हमारा पौरुष बेकार था, हमारी बुद्धि कुंठित थी। संघ महानाश की ओर अग्रसर हो रहा था और मामा कंस उसका काल बन चुके थे। ऐसे समय में केवल एक वीर पुरुष था, जिसने उसके अत्याचार के विरुद्ध अपनी एकाकी वाणी बुलंद की। उस वीर ने साम, दाम, दंड, भेद से कंस से लोहा लिया और यादव संघ को तब तक जीवित रखा जब तक वह स्वयं जाकर भैया और मुझे वृंदावन से नहीं ले आए। वह वीर और विज्ञ पुरुष आज आपके सामने उपस्थित हैं।"[४५]

विष्णु प्रभाकर जी के कथोपकथनों की विशेषताएँ— उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन की सफलता भी उसकी सार्थकता, अनुकूलता, सरलता, रोचकता, संबद्धता, स्वाभाविकता, वैविध्यपूर्णता व सक्षिप्तता आदि गुणों के कारण संभव होती है। विष्णु प्रभाकर जी के कथोपकथन उद्देश्यपूर्ण होने के साथ-साथ उपर्युक्त सभी गुणों से भी पूर्ण है।

सार्थकता और अनुकूलता— कहानी में यदि निरर्थक संवादों को स्थान दिया जाए तो निश्चय ही वे उसे भयाक्रांत बना देते हैं। विष्णु जी की कहानियों के लगभग सभी संवाद सार्थक कथानक के अनुकूल हैं। उन्होंने अपने कथोपकथनों में सदैव इस बात का ध्यान रखा है कि वे घटना, अवसर और वातावरण के उपयुक्त हो। उनके संवाद सार्थक होने के साथ-साथ विषयानुकूल भी हैं। उनके कथोपकथनों

की और एक विशेषता यह भी है कि कथोपकथनों में कथानक को गतिशीलता प्रदान करने के साथ-साथ चारित्रिक विश्लेषण का भी गुण समाविष्ट है। 'एक माँ-एक देश' की कहानी का यह उदाहरण देखिए।

दीदी बोली, "बच्चों के लिए सारी दुनिया जीती और मरती है।" न न दीदी। यह बात नहीं। वह कहते रहे, ये क्या हमारे बच्चे हैं देश की धरोहर है, और धरोहर का मान प्राण से ज्यादा होता है। दर्द भरे अकाल ने सोने के देश को राख बना दिया। कहते थे कि हमारे देशवाले हैं, जो मुख का ग्रास छीनकर तिजोरी में बंद कर रहे हैं। सच क्या वे सोना खाते हैं? वह भी एक दिन मिट्टी बनेगा, पर तब तक सारे-का सारा देश मिट्टी बन चुकेगा।"

दार्शनिक-सी दीदी बोली, "अरी पगली, मिट्टी का खेल ही है यह सब।"

"जानती हूँ, दीदी! मिट्टी का खेल है यह सब। मिट्टी का घर है, मिट्टी में ही अन्न उपजता है। पर दीदी, उस मिट्टी का सोना बनाकर क्या जीना हो सकेगा?" दीदी प्रभावित हुई। बोली, "तू ठीक कहती है, इसी सोने ने मौत को बुलाया है। हाय! किस तरह धरती लाशों से फटती जा रही है! जो जिंदा हैं वे शहर भागे जा रहे हैं।"

मृणाल चौकी, "शहर?"

हॉ, कहते हैं वहाँ भूख नहीं है। सब को खाने को मिलता है।"

मृणाल की आँखें चमकी, "सच, क्या दीदी शहर में खाने को मिलता है।"[४६]

नाटकीयता— कहानी में कथोपकथनों की नाटकीयता नाटक से भिन्न होती है। नाटक में अभिनयात्मकता महत्त्वपूर्ण होती है तो कहानी में सवादों की नाटकीयता तब मानी जाती है, जब कहानीकार संवादों के द्वारा पात्रों की चेष्टाओं एवं मुद्राओ को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। विष्णु प्रभाकर जी के कथोपकथन मे यत्र-तत्र नाटकीयता का गुण देखा जा सकता है। जैसे 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी में बच्चों का न्यायाधीश के साथ संवाद—

"आपने हमारे पिताजी को जेल भेजा है। आप उन्हें छोड दें---"

कमल ने उसी दृढता से कहा, "हमारे पास पचास रुपये हैं। आपने तीन हजार लेकर एक डाकू को छोड़ा है---"

नीना बोली, "लेकिन हमारे पिताजी डाकू नहीं हैं। मँहगाई बढ गई थी। उन्होंने बस बीस रुपये की रिश्वत ली थी।" कमल ने कहा, "रुपये थोड़े हा तो--

नीना बोली, "तो मैं एक-दो दिन आपके पास रह सकती हूँ।

कमल ने कहा, "मेरी जीजी खूबसूरत है। आप खूबसूरत लडकियों को लेकर काम कर देते हैं।

इस संवाद में भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश, क्रोध एवं पिता को छुडाने के लिए बच्चों की छटपटाहट आदि मनोभाव उभर आए हैं।

स्वाभाविकता और सरसता– विष्णु प्रभाकर जी के कथोपकथनों की यह प्रमुख विशेषता है कि वे स्वाभाविक एवं सरस हैं। उनके संवाद बोलने वाले पात्र के उपयुक्त एवं परिस्थिति विशेष के अनुसार सहज तथा संगत प्रतीत होते हैं। उनके संवादो में कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है, साथ ही यथावसर हास्य आदि भावों को व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत कर देने से वे स्वाभाविक और सरस बन पडे हैं। 'अभाव' कहानी की नायिका की व्यथा सरसता से व्यक्त होती है।

'देखते-देखते बेबी को गोद में भर लिया और पागलों की तरह चूमने लगी,

"बेबी, मेरी बेबी! जानती हो तुमने आज एक बहुत बड़ा काम किया है, बहुत बड़ा।" और फिर प्रोफेसर की ओर मुड़कर उसने कहा, "आप बड़े निर्दयी हैं। ऐसे प्यारे बच्चे को पीटते हैं। खिलौनो का मूल्य खेलने में है और जब उनसे खेला जाएगा, तो उनका टूटना जरूरी है।"

फिर क्षण-भर के लिए रुकी, जैसे सांस लेती हो। धीरे से बोली, "न जाने कब से रखे थे। न कोई छूता था, न खेलता था। देखते-देखते आँखें थक गई थीं। आज बेबी ने उसी थकान को दूर किया है।"

और कहकर उन्होंने फिर बेबी को जोर से चूमा और फिर उतार-उतारकर सारे खिलौने उसके सामने डालने लगी, "खेलो और तोडो मेरी बच्ची! खूब तोडो। आखिर इनका अत आना ही चाहिए, आना ही चाहिए।"[४८]

पात्रानुकूलता– कथोपकथनों के स्वाभाविक होने की प्रथम शर्त यह होती है कि वे पात्रानुकूल हो। साथ ही यह भी आवश्यक होता है कि वे पात्रों के विविध भावों, प्रवृत्तियों, मनोवेगों की अभिव्यक्ति के साथ–साथ उनकी वैयक्तिकता की रक्षा में भी सफल हो। विष्णु प्रभाकर जी संवादों के माध्यम से पात्रों की वैयक्तिकता को उभारने में भी पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। 'संबल' कहानी में मि० सिंह अपनी मृत पत्नी की स्मृतियों को जगाकर कहते हैं, मैं बोला, "आप शराब पीए, आप शराब पीए बिना नहीं रह सकते ?"

"रह क्यों नहीं सकता ? वे बोले, पर तभी तक जब तक कोई संभालने वाला न हो जैसे ही मुझे संभालने वाला मिला, मैं फिर पीने लगूँगा। उसी दिन के लिए मैंने शराब रख छोड़ी है। अपने अंदर तो सब कुछ होता है क्रांत! पर कोई बनाने वाला न हो तो 'दिए तले अंधेरा' वाली बात हो जाती है। सुरजीत इतने वर्ष मेरे साथ रही, पर मैं उसे पहचान नहीं पाया। कभी उसका कहना नहीं माना। सदा शराब पी और उसे तंग किया। अब वह नहीं है तो चाहता हूँ कि शराब न पीऊँ।"[४९]

'नफरत, केवल नफरत' कहानी में गुलाब के दबंग व्यक्तित्व का आभास उसके संवादों द्वारा ही होता है। आँखें फाड़कर पड़ोसिन वेश्या कह उठी, तीन रुपये! कहाँ डाका डाला तुमने ?

डाका डाला है? हाँ,उसका ही था वह ! तूने देखा था न वह मोरा चौधरी जो मुझे बाहर आने भी नहीं देता था। आठ आने का सौदा करके मेरे पास आया था।

'अरे वही जो अभी देख रहा था कि मुझे लूट लिया, उसे तो करीम ने जूते मारकर निकाल दिया है। तू बड़ी डाकीन निकली, गुलबियॉ कुत्ती।'

"कुतिया, तू चुडैल ! मैने तो उस पर दया की है, दया की बीमारी नहीं दी। सूखा ही निकाल दिया है। अब के आएगा तो तेरे पास भेज दूँगी। चूम-चाटकर रखना मुझे तो पैसे चाहिए पैसे। पेट पैसे से भरता है।"[५०]

भावनुकूलता– विष्णु प्रभाकर जी के कथोपकथनों की एक और यह विशेषता भी दृष्टिगत होती है कि वे पात्रानुकूल होने के साथ-साथ भावानुकूल भी हैं। विभिन्न परिस्थितियों में पात्र यदि एक-सा ही आवरण करता रहे, एक ही प्रकार के भावों को व्यक्त करता रहे तो संवाद पात्रानुकूल होकर भी अस्वाभाविक हो जाऐंगें। विष्णु प्रभाकर जी ने इस बात का भी संवादों मे ध्यान रखा है। पात्रो के भावों के अनुसार ही रुक्षता, कोमलता, सरसता, तीव्रता आदि गुण उनके संवादों मे प्राप्त हैं।

भावानुरूप संवादों के कुछ उदाहरण यहॉ द्रष्टव्य हैं........

'जीवन का एक और नाम' कहानी का यह वार्तालाप काका और सुमिती के भावों को व्यक्त करता हैं सुमिती को अपनी मौत नजदीक आने का अहसास हो गया है। उसकी कायरता उसके इस संवाद कथन से व्यंजित होती है---

"अद्भूत शांति है मेरे चारो ओर। बस ऐसा लगता है कि सो जाऊँ गहरी शांत नींद में।"

अनंत काका ने सहज भाव से कहा, "सो जाओ, बेटी ऐसी प्यारी बच्ची हरेक को कहाँ मिलती है।"

"यह क्या है मेरे पैरों पर...........अहा ! मेरा प्रिय शाल। आप इतने अच्छे क्यों हैं, काका ! लेकिन क्या यह सब भी मोह ही नहीं है..... आहा! मुनिया गा रही। इसे आप अपने पास रखिए, काका !"

"ह.........हाँ, रखूँगा। सब कुछ सहेजकर रखूँगा।"

"काका ! ऐसा लगता है कि गार्ड ने हरी झंडी दिखा दी है गाड़ी रवाना होने वाली है.........पापा !"

"हाँ, बेटी।"

परसों मेरे सब मित्रों-सखियों को बुलाकर पार्टी देना। मेरे जन्मदिन पर नहीं दे सके थे ना ! वैसी हीं शानदार पार्टी होनी चाहिए ! अच्छा पापा ! अनंत काका, मेरे भैया-भाभी, आप सब को मेरा राम-राम ! गाड़ी ने सीटी दे दी है --"[५१]

'हिमालय की बेटी' कहानी में रेवती और कुशलनंद, दोनों के मन में उठने वाली भावना के द्वंद्व को चित्रित करने वाला यह संवाद है---

रेवती ने सिर उठाकर, रुंधे स्वर में कहा, "तुम क्यों आ गए?"

"क्योंकि--- क्योंकि मैं अब भी तुझसे प्रेम करता हूँ।"

"मैं सच कहता हूँ। मैं बहुत सजा पा चुका।" रेवती नहीं बोली, 'क्या तुम मुझे मेरे बेटे को बेटा कहने का अधिकार नहीं दोगी? "रेवती अब भी मौन रही।

"क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करती, बोलो?"

रेवती ने दृढ़ स्वर में कहा, "करती हूँ !"

कुशलनंद ने विह्वल होकर कहा, "अब क्यो सोच रही हो? उठो चलो।"

रेवती पहले जैसे दृढ स्वर में बोली, तुमने कुछ भी किया हो मैं तुम्हें हमेशा चाहती रही, अब भी चाहती हूँ, काश की वे दिन लौट आए पर एक बात सोचती हूँ, तुम्हारे प्यार की निशानी तुम्हारा बेटा मेरे पास है लेकिन--- लेकिन जिसने दो-दो बार तुम्हारे बेटे के शरीर में अपने प्राण उंडेले उसकी तो मेरे पास याद ही बाकी है,--"[५२]

इस तरह 'कैसी हो मरिअम्मा' कहानी में सत्येन और मरिअम्मा का यह पारस्पारिक वार्तालाप उसके समावेश को व्यक्त करने में पूर्णरूपेण सुलभ हुआ है --

एक दिन घूमते हुए सत्येन ने पूछा था, "तुम्हारे मन में किसी प्रकार की इच्छा होती है ?"

सहसा मुँह उठाकर ऑखों में झॉकते हुए मरिअम्मा ने कहा था, "होती है।"

"क्या?"

"यही कि मेरा भी एक घर हो, एक पति पुरुष हो और--बीच में बात काटकर सत्येन बोल उठा था, "मैंने कहीं पढा था कि हृदय में किसी प्रकार की इच्छा का होना इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर ने वह वस्तु उसके लिए सुरक्षित कर रखी है।"

एक-एक शब्द पर जोर देते हुए वह बोली थी,

"सोचती तो मैं भी हूँ।"[५३]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विष्णु जी की कहानियों के संवाद सरस, स्वाभाविक, पात्रानुकूल, भावानुकूल और गतिशील है। कथोपकथनों के द्वारा पात्रों के व्यक्तित्व पर उनकी गहरी पकड़ का स्पष्ट ज्ञान होता है। उनके कथोपकथनों में मनोवैज्ञानिकता के साथ ही सोद्देश्यता तथा बौद्धिकता भी दृष्टिगत होती है। इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में कथोपकथन का पूर्ण कलात्मक विकास हुआ है।

शीर्षक– कथानक के साथ ही कहानी में शीर्षक और आदि-अंत भी जुड़े हुए हैं। कहानी की पहचान के लिए शीर्षक उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण है जिस प्रकार किसी मनुष्य की वैयक्तिक सत्ता के लिए नाम। शीर्षक से संपूर्ण कहानी का बोध होता है। पाठकों का ध्यान आकर्षिक करने की दृष्टि से भी शीर्षक की महत्ता कम नहीं

है। इस प्रकार देखा जाए तो कहानी के बाह्य एवं स्थूल पक्ष का विचार करते समय 'शीर्षक' की मीमांसा बड़ी महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ती है। इस महत्व को दो रूपों में देखा जा सकता है--

१. कहानी के रचनाकाल का संकेत इससे मिल जाता हैं।

२. इससे कृतिकार की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का पूरा परिचय हो जाता है। लेखक की अभिरुचि किस प्रकार के विषयों की ओर है या वह विषय में कहाँ तक व्यावहारिक है या कहाँ तक काव्यात्मक, इसका भी संकेत शीर्षक से मिल जाता है।

विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों के लिए शीर्षकों का चुनाव करते समय इन सारी बातों को महत्ता दी है। उनके शीर्षकों में विविधता है।

भावात्मक शीर्षक– भावात्मक शीर्षकों द्वारा प्रतिपाठ्य के अनुरूप बाह्य वातावरण भी चित्रित किया जाता है। कहानी की सामूहिकता किसी न किसी प्रकार के भाव को जगाती मिलती है, जैसे– 'जीवन का एक और नाम', 'सत्य को जीने की राह', 'निरंतर सत्य', 'तिरछी पगडंडियाँ', 'एक और कुंती', 'धरती का स्वर्ग', 'स्नेह', 'एक अनचीन्हा इरादा', 'आस्था की मौत', 'आकाश की छाया में', 'खिलौने और बेटे', 'फांसिल, इन्सान और--', 'संबल', 'मैं जिंदा रहूँगा', 'अंधेरे आंगनवाला मकान', 'कैक्टस के फूल', 'समझौता', 'ठेका', 'ये उलझनें', 'नारी चरित्रम्', 'नफरत', केवल नफरत', 'राजकुमार और मछली' आदि।

तथ्योद्बोधक शीर्षक– इसमें किसी न किसी प्रकार के तथ्योद्घाटन की ओर संकेत होता है अथवा कहानी के अंत में आकर विषय की स्थिति किसी न किसी आधारित सत्य से संलग्न दिखाई पड़ती है, जैसे 'अन्तर्वेदना', 'अधूरी कहानी', 'जिंदगी एक रिहर्सल', 'पुल टूटने से पहले', 'कितना झूठ', 'साँझ के साँए', 'चितकबरी बिल्ली', 'अर्धनारीश्वर', 'राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा', 'आदर्श', आँसू और अंधियारा', 'रात की रानी और लाल गुलाब' आदि।

इतिवृत्तात्मक (वर्णनात्मक) शीर्षक– इनमें कथा के माध्यम से ही अभिसिप्त व्यंग्य स्फूटित होता है अथवा उस कथा के प्रसार के भीतर ही कहीं किसी जीवन दर्शन या तथ्य को उभार मिल जाता है। इसी वर्ग के अंतर्गत वर्णनात्मक शीर्षक भी आएँगे, जैसे– 'जीवन दीप', 'स्वर्ग और मर्त्य', 'मणि', 'कलंक और राजनीति', 'अन्तर्वेदना', 'अभाव', 'धरती अब भी घूम रही है', 'बंद खिड़की 'खुला दरवाजा', 'कितने जेबकतरे', 'भुख और कुलीनता', 'चट्टान पर से देखा इंद्रजाल', 'डायन', 'जरूरत', 'जज का फैसला', 'नांग-फांस', 'वे दोनों', 'गर्विता', 'आत्मग्लानी', 'क्रांतिकारी', 'पर्वत से ऊँचा', 'द्वंद्व' आदि।

संबंधवाची शीर्षक– कुटुंब के अंतर्गत आने वाले विशेष संबधों को लेकर कहानीकार शीर्षक निर्दिष्ट कर देता है। ऐसी कहानियों में किसी प्रकार के कौटुंबिक संबंध अथवा उसके किसी भाव की विवृत्ति इस ढंग से उपस्थित की जाती है कि जिससे

विशेष प्रभावात्मक संवेदनशीलता निखर उठती है। संबंधवाची सूक्ष्म भावनाओं अथवा उनकी भंगिमाओं का ही चित्रण इन कहानियों में विशेषतः दिखाई पड़ता है, जैसे– 'वे दोनों', 'गर्विता', 'आत्मग्लानि', 'क्रांतिकारी', 'भाईसाहब', 'रहमान का बेटा', 'माँ-बाप', 'बच्चा माँ का था', 'एक माँ' 'एक देश', 'चैना की पत्नी', 'वर्षगाठ', 'तीन तारीखे', 'पड़ोसी', 'पंडितजी', 'चाची', 'टीपू सुल्तान', 'हरिश पांडे' आदि।

इस प्रकार शीर्षक विभाजन से यह सरलता से समझा जा सकता है कि कृतिकार में कहानी के सामूहिक प्रभाव को कितने कम अथवा अधिक शब्दों में समेटने की क्षमता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के बहुत से शीर्षक कहानी की संपूर्ण विषय वस्तु की ही अभिव्यंजना कर देते हैं। कहानी में अधिक स्पष्टता, संक्षिप्तता, अर्थपूर्णता, विषयानुकूलता और नवीनता है। इसलिए विष्णु जी की कहानियों के शीर्षक कथावस्तु की सूचकता को सहज स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

देश-काल, वातावरण एवं परिवेश– कहानी के रूप-विधान में उसके विभिन्न तत्वों को संबंध के किसी-न-किसी बिंदु पर संयोजित करने में वातावरण के साथ परिस्थिति, देश-काल, परिवेश आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। कहानी के सभी अवयवों को कलात्मक रूप से जोड़ने एवं उन्हें एक अपेक्षित मोड़ देने में कहानी के सूक्ष्म तत्व अत्यधिक सहायक होते हैं। इसी आधार भूमि पर पात्रों की बाह्य एवं आंतरिक मनःस्थितियों का विश्मरणीय चित्रण तथा कार्य एवं परिस्थितियों के बीच सामंजस्य स्थापित होता है कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण आदि के अभाव से अनुरूप वातावरण की सृष्टि मे लेखक के लिए सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर मानव-जीवन का गहन अध्ययन अपेक्षित है। पात्रों के चरित्र को यथार्थ और जीवंत रूप प्रदान करने के लिए देश-काल वातावरण की नितांत आवश्यकता होती है। कहानी में सजीवता लाने के लिए रीति-रिवाज, परंपरा एवं रहन-सहन के सूक्ष्मतम आकलन के साथ ही उसमें नियोजित घटनाओं, कार्य-व्यापारों का देश काल सापेक्ष होना जरूरी है। अतः कहानी की मूल संवेदना को गहराने के लिए वातावरण की जीवंतता अत्यावश्यक है।

देशकाल वातावरण से संबंधित 'हिंदी कहानियों में शिल्प-विधि का विकास' ग्रंथ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल जी के विचार ध्यातव्य हैं, "वास्तविक जीवन देशकाल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियो से निर्मित होता है, अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी में वातावरण को उपस्थित करना है। कहानी की कथावस्तु और उनके संचालक पात्रों का सीधा संबंध उक्त स्थितियों से होता है, अर्थात् उनका उद्‌गम-सूत्र और संबंध किसी देश से होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश से होगा।"[५४] तात्पर्य, वातावरण का अभिप्राय किसी देश, समाज एवं जाति के आचार-विचार, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों

का चित्रण है। कहानियों मे किसी विशेष देश, समाज एवं जाति को ही वातावरण के रूप में उपस्थिति किया जाता है और उस देश, समाज या जाति की समस्त विशेषताएँ चित्रित की जाती हैं। इसमें कहानी की स्वाभाविकता एवं सत्यता की अभिवृद्धि होती है।

कहानी जीवन से आत्यंतिक रूप से जुडी होती है और जीवन देश-काल तथा परिवेश सापेक्ष होता है, इसीलिए कहानी में इनके चित्रण को ही प्राय· वातावरण मान लिया जाता है किंतु देश-काल या परिवेश का यथातथ्य चित्रण वातावरण नहीं होता। कहानी में वातावरण से युगीन सापेक्षता की सृष्टि होती है। वातावरण की प्रभावपूर्ण सृष्टि कहानी में सहानुभूति एवं संवेदनशीलता उत्पन्न करने में सफल होती है। वातावरण की सृष्टि में पात्रों के चरित्र एवं व्यक्तित्व पर भी प्रकाश पड़ता है। वातावरण की सजीवता एवं सशक्तता होती है। वातावरण की स्थानीयता से स्थान विशेष की भाषा, संस्कृति, लोक-व्यवहार, मुहावरे आदि का प्रयोग एवं सामाजिक, धार्मिक, परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। वातावरण की स्थानीयता एवं यथार्थता अत्यंत आवश्यक होती है। तात्पर्य, जीवन का संबंध किसी देश, काल और परिस्थितियों से आवश्यक रूप से जुड़ा होता है और इन्हीं का चित्रण करना वातावरण की सृष्टि करना है।

नई कहानियों के वातावरण में नवीनता– नई कहानी का स्वरूप पुरानी कहानी से नितांत भिन्न है। कथानक, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन आदि सभी तत्वों में वह पुरानी कहानी से परिवर्तित रूप में प्राप्त होता है। विभिन्न धरातलों पर कहानी में घटित होने वाला यह परिवर्तन् देश, काल और वातावरण के संदर्भ में देखा जा सकता है। आज कहानी में वातावरण की परिकल्पना का अर्थ यथार्थ संदर्भों की सृष्टि कर उसे सप्राणता के साथ अभिव्यक्त करना है।

आज कहानीकार वातावरण योजना में देशकाल से अधिक परिस्थिति चित्रण की ओर प्रवृत्त है। इस संदर्भ में 'हिंदी कहानियों की शिल्प–विधि का विकास' ग्रंथ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल जी का कथन है कि "आज की कहानी–कला प्रायः व्यक्ति के चरित्र के धरातल से निर्मित होकर अपने वास्तविक रूप में मनोवैज्ञानिकता की ओर उन्मुख हो रही है। इसीलिए परिस्थिति चित्रण पर अधिक बल दिया जाता है, देशकाल पर कम।"[५५] इस प्रकार आज कहानी में वातावरण की परिकल्पना का अर्थ और स्वरूप पूर्व-रूप से नितांत भिन्न हो गया है, और अब तो वह देश-काल वातावरण संज्ञा से मुक्त होकर परिवेश चित्रण के रूप में कहानी में प्रयुक्त हो गया है।

प्रेमचंदोत्तर काल से देशकाल और वातावरण चित्रण के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मता दृष्टिगत होती है। इस युग में देशकाल और वातावरण के सभी परंपरागत रूपों के विकास के साथ उनका स्वप्न भी परिष्कृत हुआ। राजनैतिक चेतना के इस विशिष्ट गुण में राजनीतिक वातावरण प्रधान कहानियाँ भी बडी

संख्या में लिखी हुई हैं। सामाजिक वातावरण के अंतर्गत पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का अंकन हुआ है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिंदी कहानी में वातावरण चित्रण का सर्वाधिक व्यापक क्षेत्रीय और वैधिध्यपूर्ण रूप मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति तथा भारत विभाजन के उपरात उत्पन्न होने वाली जटिल परिस्थितियों ने जन-चेतना को जागृत किया है। वैचारिक आंदोलनों ने भी नवीन सामाजिक संरचना की भूमिका प्रस्तुत की है। राजनैतिक गतिविधियों में भी तीव्रता आई, फलतः हिंदी कहानी के क्षेत्र में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का यथार्थपरक आधारभूमि पर चित्रण करने वाले कहानी लेखकों में विष्णु प्रभाकर जी का नाम उल्लेखनीय है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में परिवेश या वातावरण– विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में वातावरण–सृष्टि पूर्ण सजगता के साथ की है। उनके वातावरण निर्माण की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने जहाँ भी इसे चित्रित किया है, पात्रों को ध्यान में रखकर। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, उसका आचरण, रहन-सहन आदि सब परिवेश से प्रभावित होता है। इस सत्य का स्वीकार करना ही होगा कि व्यक्ति अपने विशिष्ट परिवेश की उपज होता है। जिन परिस्थितियों में वातावरण में अथवा परिवेश में वह जीवन-यापन करता है, उन्हीं के अनुसार उसकी मानसिकता और व्यावहारिकता विकसित होती है। उसके समस्त क्रियाकलाप, आचरण आदि बातें परिवेशजन्य ही होती हैं अथवा वे परिवेश द्वारा पूर्णतः प्रभावित होती हैं। 'जरूरत' कहानी में विष्णु प्रभाकर जी ने एक सहायता-केंद्र के वातावरण को चित्रित किया है जिससे वहाँ की पूरी स्थिति को दृश्य रूप में खड़ा किया गया है–

'वे पंक्तिबद्ध भी नहीं बैठे थे। बस बैठे थे। उनके सामने पत्ते पड़े थे और हर पत्ते पर एक रोटी, एक मुट्ठी सोयाबीन और थोड़ा सा बाजरा था, जिसके पत्ते पर कुछ नहीं पड़ा था वह मांग नहीं रहा था। टुकर-टुकर देखना ही उसकी नियति हो। हाँ नंग-धड़ंग, दुबले-पतले भुक्कड़ बच्चे उन पत्तों पर टूट पड़े थे। मगर उनके चेहरों पर भी मुस्कान की कोई रेखा नहीं थी। शिशु में जो कुछ तरल होता है, उस सबको भूख ने जैसे सोख लिया था। बस शेष रह गई थी एकमात्र मौत डरावनी छाया जो अपने पैने फैलाए समग्र अस्तित्व पर छाई हुई थी। वातावरण में शमशान की चिराध भरी हुई थी और दूर-दूर तक क्षितिज को छूती हुई फैली हुई पड़ी थी सूखी जमीन, जहाँ जानवर चारे के अभाव में थककर गिर जाते, आकाश में गिद्धें और कौओं की टोली डेने पसारती धरती पर कंकाल (कुत्ते) हांफ-हांफकर ऐसे भौंकते कि उनकी धवल दंत पंक्तियाँ छाती में सालने लगती।''[५६]

१. देशकाल और स्थानीय रंग– विष्णु जी ने अपनी कहानियाँ 'विषयों के विविध प्रारूपों के अनुरूप लिखी हैं। यह विधि अधिक खुले रूप में जैनेंद्र, इलाचंद

जोशी, यशपाल में मिलती है। इस अर्थ में विष्णु जी उन कौशलकारों में गिने जाते हैं जो अपने समय की घटनात्मकता का भरपूर इस्तेमाल कर एक सजीव वातावरण चित्रित करते हैं। 'मुरब्बी' जैसी सहज कहानी में कथन संदर्भों को उसकी संपूर्ण गहराई से व्यक्त या चित्रित करने के लिए उन्होंने क्षेत्रीय विशेषताओं का भी अंकन किया है। जैसे 'मुरब्बी' कहानी का यह उदाहरण--

"उस दिन पेंठ का दिन था। छोटा-सा बाजार भीड़ से गुलजार था। चारों ओर उठती आवाजों और धूल के कारण वातावरण में एक धुँधली गूँज पैदा हो आई थी, सहसा भीड में से किसी ने कहा– "मका राम-राम नंदू चौधरी किंधे चले।"

चौधरी ठिठके फिर हंसकर बोले, " ओहो! शेख जी दिक्खे हैं। लौंडियॉ के हाथ पीले करने हैं। सौधा-सुलफ लेने आया हूँ। तुम सुनाओ किंधे जाओ हो।"[४७] बोलचाल की भाषा में उन्होंने वर्ण बिंबों के सहारे छोटे–से संकेत से ही मेले के वातावरण को उकेरने के लिए भाषा का प्रासंगिक प्रयोग किया है। क्षेत्रीय शब्दों के प्रयोग से पात्रों की पदवस्था, वय और व्यवसाय एवं सदायशता का शीघ्र ही अनुमान हो जाता है।

२. देशकाल और आंचलिक चित्रण– विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में आंचलिकता का भी आधार लिया जाता है। उनकी कहानी 'अब्दुल्ला' इसके संपूर्ण मानसिक क्रिया-कलापों के साथ उसकी भाषा, सभ्यता, संस्कृति और मान्यताओं आदि को भी विशद कर देती है। प्रस्तुत क़हानी में छोटे बच्चों की वृत्ति के स्वाभाविक चित्रण का भी परिचय है जो पूरी कहानी में यथार्थता के साथ चित्रित होता है। 'अब्दुल्ला' कहानी में एक विशिष्ट मानसिकता को निर्मित करने में उसके वातावरण का चित्रण द्रष्टव्य है–

'लेकिन जब तीन-चार दिन और बीत गए तो अब्दुल्ला को एक अजीब सी उदासी ने जकड़ लिया। उसने बीबी से कहा–"आज कल बाग में काम कम है।"

बीबी बोली, "हां, फसल बस खत्म समझो।"

अगले दिन जब कल्लू पहलवान बैलों को राजबहाये पर ले जा रहा था तब अब्दुल्ला बाग के बाहर ही खड़ा था। कल्लू ने रामरमी करके पूछां, "कैसे खड़े हो चाच्चा ?" "काम बड़ा हल्का है कल्लू। पहले तो दिखे आंधी ने मौत गिरा दिया था।

अब्जी पानी ने सही-सही आमीयां झाड़ दी।"

"हाँ चाचा। सच कहो तो, इस साल आम कम हुआ है।"

कल्लू के बैल आगे निकल गए थे। वह उन्हें पुकारता हुआ आगे बढ़ गया, पर अब्दुल्ला अंधेरा पड़ने तक वहीं घूमता रहा। उसका मन बेचैन था। उदासी की पकड़ गहरी हो रही थी। वह कहता कुछ नहीं था पर जैसे वह बिल्कुल थक गया हो। जैसा कि वह पहले किया करता था एक दिन उसने

कंकरों का ढेर इकट्ठा किया और फिर ठीक समय उन्हें चारों ओर फेंकने लगा। तब न कहीं कोयल कूक रही थी, न बैलों की घंटी बज रही थी, न कहीं उसे किलकारी सुनाई दी पर वह कंकरियां फेंकता गया, फेंकता गया जैसे उन्हीं की आवाज में वह अपने दिल की आवाज डूबो देना चाहता हो।"[५८] इस प्रकार बच्चों को पिटवाना और बच्चे फिर से सताने के लिए न आना दोनो का दुःख अबदुल्ला के मन में था।

विष्णु जी की कहानियों में वर्ण्य-विषय तथा प्रसंग के साथ-साथ आंचलिकता का समावेश भी हुआ है। यह गुण प्रायः उनकी भाव परक कहानियों में अधिक मिलता है। उनकी 'जिंदगी के थपेड़े' कहानी में इस प्रकार के वातावरण का एक उदाहरण–

"उसके सामने कल-कल, छल-छल करती हुई पहाड़ी नदी थी, जिसका जल पत्थरों से टकराता, शोर मचाता और नाचता हुआ आगे बढ रहा था। उस नदी के एक किनारे पर धर्मशाला थी। उसी के ठीक सामने पुल पार करके सहस्त्र धारा की काली गूफा दिखाई दे रही थी, जिसकी छाती को चीरकर पानी की असंख्य बूंदे टपक रहीं थी, मानो कोई शापग्रस्त वरुण वहाँ आ बसा है और यक्ष के समान अपनी प्रियतमा के विरह में रुदन कर रहा था। यह विधाता का वैचित्र्य है कि देवता का रुदन आदमी के रुदन को शांत करता है और यही नहीं, अनजाने ही उन अनंत वर्षों में शापग्रस्त देवता के आँसूओं ने उन बेजान पत्थरों को कला के अंनत रूपों में पलट दिया था।"

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में वातावरण योजना अत्यंत प्रभावपूर्ण बन पड़ी है। पारिवारिक, सामाजिक वातावरण, गांव–शहरों का वातावरण आदि सारे वातावरण पात्रों की हलचल, गतिविधियों और उनकी मानसिकता को उभारने में सशक्त रूप से प्रयुक्त हुए हैं। निःसंदेह विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों की वातावरण योजना सफल और भावपूर्ण है।

उद्देश्य–जीवन दर्शन– कहानी-शिल्प का महत्त्वपूर्ण भाग कहानीकार का उद्देश्य होता है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि कहानियाँ कभी उद्देश्यहीन नहीं होती। वे किसी न किसी उद्देश्य को सामने रखकर लिखी जाती हैं। इस उद्देश्य का क्षेत्र बड़ा व्यापक होता है। कहानी कला का यह तत्त्व अंतिम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के लिए कहानीकार अपनी कहानी में विविध प्रयोग करता है। समाज की नाना परिस्थितियों, समस्याओं के प्रति कहानीकार का अपना दृष्टिकोण और उनके प्रति उसके निदान, उसके निर्णय आदि कहानी के उद्देश्य बनते हैं तथा इसी उद्देश्य के भाव-बिंदु पर कहानी का कथानक, चरित्र और शैली की अवधारणा होती है। अतः कहानीकार कहानी के उद्देश्य बिंदु पर पहुंचने के लिए घटनाओं, पात्रों, कार्यों आदि का संकलन करता है और शैली के नए-नए प्रयोगों की सृष्टि करता है। इसीलिए आज कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजनात्मक

नहीं है तो उसके साथ उपदेशात्मकता भी सम्मिलित हो गई है। आज जैसे-जैसे कहानी की विधि विधा विकसित होती गई, उसमें नए-नए उद्देश्यों का प्रतिफलन होता गया।

इन उद्देश्यों का स्वरूप कहानियों में भिन्न-भिन्न होता है। किसी कहानी का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं को दिखाना और उनके विषय में निर्णय देना होता है। किसी का उद्देश्य अतीत के गौरवमय भाव-चित्रों द्वारा आदर्श की स्थापना करना होता है, तो किसी का लक्ष्य व्यक्ति की मनः स्थिति, उसकी कुंठाओं, ग्रंथियों और संघर्षों से परिचित कराना होता है। अतः कहानी का मूल उद्देश्य जीवन के किसी एक पक्ष का, किसी एक विशेष दशा का चित्रण करता है, किसी आदर्श की व्यंजना करता है, तो पाठकों की आत्मीयता प्राप्त करके उन्हें अनुप्रेरित कर सके और साथ ही उनका मनोरंजन करने में भी पूर्णतया समर्थ हो। कहानी के चरम उद्देश्य पर प्रकाश डालने पर यह सत्य निश्चित होता है कि उसमें मानवता और मानव-मूल्यों की व्याख्या होती है, मनुष्य के शास्वत भावों, अनुभूतियों और समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है। इन विशेषताओं से शून्य कहानी किसी भी तरह आधुनिक कहानी नहीं कही जा सकती। इस व्याख्या से स्पष्ट कहा जा सकता है कि जीवन-दर्शन को कहानीकार के विचार एवं उद्देश्य के रूप में ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि सारी कहानी का 'होना' या 'न होना' इसी तत्व पर आधारित रहता है, इस दृष्टि से यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

रीति-परंपरा से लेकर आधुनिक काल तक विवेचन करते हुए 'हिंदी कहानी : उद्भव और विकास' ग्रंथ में डॉ० सुरेश सिन्हा के विचारों से इन बातों पर प्रकाश डाला जा सकता है। उनकी मान्यता है कि "रीति परंपरा के आचार्यों के मतानुसार रस एवं आनंद की उपलब्धि और उसका साधारणीकरण रसोद्रेक की मात्रा में पाठकों पर पहुँचाना ही साहित्य का उद्देश्य होता है और प्रत्येक लेखक को अपने साहित्य सृजन में इसका अनिवार्यता के साथ पालन करना चाहिए। आधुनिक युग में कदाचित इन मान्यताओं को न स्वीकारा जाएगा और निश्चित रूप से आज का साहित्यकार परिवर्तित परिस्थितियों में रीति-आचार्यों की इन मान्यताओं को स्वीकृत कर देगा। आधुनिक हिंदी कहानियों के बारे में भी यही बात सत्य है।"[६०] दूसरे शब्दों में कहना हो तो, मानव जीवन की विभिन्न संवेदनशील परिस्थितियाँ ही कहानियाँ हैं और यथार्थ परिवेश को लेकर लिखी जाने वाली कहानियाँ ही मानव जीवन की विभिन्न सवेदनशील परिस्थितियाँ हैं।

इस प्रकार प्राचीन युगीन कहानी साहित्य से लेकर वर्तमानकालीन कहानी तक उद्देश्य तत्व का स्वरूप भी परिवर्तित और विकसित होता रहा है। स्वतंत्र्योत्तर युग के बाद कहानी की दिशा तीव्रता से परिवर्तित होती गई, जो नई कहानी के वर्तमान रूप में आज हमारे सामने है। आज का युग संक्रमण का युग है। बौद्धिकता के अतिरेक के कारण आज विज्ञान का प्रभाव प्रत्येक दिशा में

अग्रसर हुआ है। आज मनुष्य को जानने-पहचानने और समझने के लिए भी कोरी भावुकता की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक मानदंडों का प्रयोग होता है। पुरानी कहानी में व्यक्ति के बाह्य को देखने का प्रयास अधिक था, लेकिन मनोविज्ञान के अत्यधिक प्रभाव के कारण आज व्यक्ति का चारित्रिक विश्लेषण ही प्रमुख हो गया है। वर्तमान युग में व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन अपनी चरम स्थिति में है जिसके कारण व्यक्ति आत्मकेंद्रित हो गया है। फलस्वरूप वह अपने बाह्य की अपेक्षा अंतर में झाँकने का प्रयास अधिक करता है। इसी सदर्भ में 'नई कहानी' के अग्रगण्य लेखक कमलेश्वर जी का यह कथन भी ध्यात्व्य है, उन्होंने लिखा है कि "आज का लेखक जीवन की इसी समग्रता को यथासंभव रूपायित करने के प्रयास में संलग्न है।-- वह किसी बात का दावा नहीं करता, वह सिर्फ चिंतन की स्वतंत्रता लेकर अपने परिवेश से आए मनुष्य और उसके मानवीय संकट तथा यथार्थ को यथासंभव प्रामणिकता से प्रस्तुत करने और निरंतर नई होती स्थितियों को आत्मसात करने का प्रयास करता है।"[६१]

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो आज उद्देश्य को कहानी के एक विशिष्ट तत्व के रूप में मान्य किया जा सकता है, क्योंकि इसकी सम्यक परिपूर्णता ही कहानी रचना की मूल प्रेरणा होती है। व्यावहारिक दृष्टि से कहानी में मानव-जीवन का विविध पक्षीय चित्रण होता है जिसके माध्यम से लेखक अपने अभिष्ट को अभिव्यंजित करता है। सामाजिक जीवन में मानव-चरित्र की विरूपताओं ने अनेक प्रकार की नवीन स्थितियाँ उत्पन्न की हैं। इन्हीं से संबंधित समस्याओं के निर्मूलन अथवा मान्यताओं के नियमन से कहानी के उद्देश्य का निर्धारण तथा स्वरूप का स्थिरीकरण होता है। आधुनिक जीवन की जटिलता ने भी कहानी तथा रचनात्मक साहित्य की अन्य विधाओं को उद्देश्यमूलक स्वरूप प्रदान किया है। बदलते संदर्भों में जिदंगी की सही पहचान स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का लक्ष्य है। वर्तमान जीवन बोध के बीच आधुनिक दृष्टि चेतना निर्मित होती है जिसे आज की कहानी नाना रूपों में चित्रित करती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट होती है कि आज की कहानी मात्र मनोरंजन करने अथवा उपदेश देने के उद्देश्य तक सीमित नहीं है, तो व्यक्ति के अंतर को विश्लेषित करने, उसके परिवेशजन्य मानवीय संकटों, परिस्थितियों, समस्याओं को प्रस्तुत करने और सामाजिक स्थिति का बोध कराने के उद्देश्य से अनुप्राणित है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के उद्देश्य– विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में जिस प्रकार नए विषयों की प्रस्तुति है उसी प्रकार उनकी कहानियों के उद्देश्य भी विभिन्न धरातलों पर प्रस्तुत होते हैं। जैसे

अ. कुंठित चरित्रों का विश्लेषण– आज कहानी, कथा प्रधान न रहकर चरित्र प्रधान हो गई है। वस्तुतः सामाजिक जीवन-दर्शन का प्रभाव इस परिवर्तन के लिए

उत्तरदायी माना जा सकता है। इस दृष्टि से व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन आज के युग की उपलब्धि कही जा सकती है। इसी व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन के कारण मानव के क्रियाकलापों का सूक्ष्म चित्रण, कथा-साहित्य का प्रमुख उद्देश्य रहा है। पात्र के प्रत्येक क्रिया-कलापों को स्थूल रूप से हम नैतिक-अनैतिक या सही-गलत कह सकते हैं परंतु वैयक्तिक दृष्टिकोण से गलत या अनैतिक वस्तु भी नैतिक या सही हो सकती है और चरित्र विश्लेषण का सही पक्ष आज के कहानीकार को अधिक पसंद रहता है। विभिन्न ग्रंथियों से कुंठित चरित्रों को विश्लेषित करने में भी विष्णु प्रभाकर जी का झुकाव दिखाई देता है।

विष्णु जी ने अपनी कहानियों में ऐसे अनेक पात्रों की सर्जना की है, जो आंतरिक रूप से उलझे हुए और कुंठित है। किसी प्रकार के वैयक्तिक संत्रास, पारिवारिक तनाव, आर्थिक दबाव या सामाजिक विसंगतियाँ इन पात्रों को कुंठित बना देती हैं। ऐसे पात्रों की उलझी हुई मानसिकता का विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रण विष्णु जी की कहानियों का उद्दिष्ट है। 'आश्रिता' की सोना का विधवा-विवाह का प्रश्न, 'राजम्मा' की राजम्मा' हँसी के कारण पति के शंकालूपन से कुंठित, 'कैसी हो मरिअम्मा' की मरिअम्मा पति के त्याग के बाद मित्र-प्रेम की सहायता का स्वीकार न करने के कारण 'कुंठित वृत्ति' 'युगांतर' की उमा मध्यवर्ग में आने वाली विवाह की समस्याओं से तंग, 'नचिकेता' की शांति आंतर्जातीय विवाह की समस्या 'एक माँ—एक देश' की मृणाल अकाल जैसी आपदा से तंग, 'आकाश की छाया में', की सरला नौकरी में सिफारिश न मिलने के कारण त्रस्त, 'एक और कुंती', की प्रतिभा, 'हमें गिराने वाले' का बिहारी, 'अगम—अथाह' का वृद्धा पात्र, 'मूड' का रोशन, 'चाची' की वृद्धा आदि पात्र को आर्थिक विषमताओं की समस्या ने घेर रखा है। इस प्रकार विष्णु जी के सभी पात्र किसी न किसी स्तर पर कुंठित और उलझे हुए हैं। इन सभी कुंठाओं के कारण भी भिन्न हैं और इन विभिन्न धरातलों पर कुंठित पात्रों का विश्लेषण करना, विष्णु जी की कहानियों का उद्देश्य है।

आ. समस्याओं की प्रस्तुति— यह बात बहुत अधिक सही है कि आज तक नारी को पुरुष के दृष्टिकोण से ही देखते-परखते गया है। साहित्य में भी अधिकांश मात्रा में नारी चरित्रों का अंकन भी पुरुष की ही दृष्टि से होता आया है। अतः बहुत सारी बातें छिपी ही रह गई हैं, जो नारी के दृष्टिकोण से लिखी गई हैं, अतः नारी को वे एक मानवी मन-भावना का केंद्र मानते हैं। तात्पर्य, यह स्वीकार करना होगा कि कथ्य और घटना को नारी के 'एंगिल' से प्रस्तुत करना विष्णु जी की कहानियों का उद्देश्य रहा है। विष्णु जी ने इससे न केवल नारी के अंतर में छिपे हुए अनेकानेक रहस्य उजागर किए हुए हैं तो किसी भी बात को देखने-परखने का उनका दृष्टिकोण भी सामने आया है। नारी जाति के ऐसे अनेकानेक रहस्य हैं, जो शायद पुरुष अपने दृष्टिकोण से कभी न जान पाता, वे ही रहस्य विष्णु जी की

कहानियों के इस उद्देश्य से सामने आते हैं। 'एक और कुंती', 'शरीर से परे', 'राजम्मा', 'एक और दुराचारिणी', 'तिरछी पगडंडियाँ', 'कैसी हो मरिअम्मा', 'मारिया', 'मैं आपको उतना प्यार नहीं करती', 'सच! मैं सुंदर हूँ', 'मैं नारी हूँ', 'संघर्ष के बाद', 'रजनी', 'राखी', 'पाषाणी' आदि कितनी ही कहानियाँ नारी दृष्टिकोण से लिखी जाने के कारण स्त्री के अंतस् और मानस का मौलिक स्वरूप प्रस्तुत करती हैं।

इ. राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना– द्वितीय विकास काल में राजनीति का स्वरूप बिल्कुल भिन्न था। समाज सुधार के साथ-साथ राजनीति में युवकों ने सक्रिय क्रांति को प्रधानता दी थी। कहानियों का आधार शोषण, अंधःविश्वास, दहेज, नारी जीवन की समस्याएँ, वैवाहिक जीवन की समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ, अकाल तथा क्रांतिकारी आंदोलनों ने जनता की सुप्त सक्रिय चेतना की रचना को जागृत किया। इसीलिए राजनीतिक उद्देश्य प्रधान कहानियों की रचना भी अनेक लेखकों द्वारा की गई। विष्णु प्रभाकर जी की 'सुराज', 'दीप जले घर-घर', 'आजादी', 'क्रांतिकारी', 'रहमान का बेटा', 'पड़ोसी', 'निशिकांत', 'वे दोनों' आदि कहानियाँ राष्ट्रीय चेतना को जागृत करती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के तथा भारत विभाजन के उपरांत हुई परिस्थितियों को भी उन्होंने व्यापक स्तर पर अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

ई. सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार– हमारे समाज में और जीवन में अनेकानेक भ्रष्टताएँ, विसंगतियाँ और ढकोसलें व्याप्त हैं। इन ढकोसलों और विसंगतियों पर प्रहार करना भी विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का उद्देश्य रहा है। 'अर्ध-नारीश्वर', 'तीन तारीखें', में धार्मिक आडंबरों और पाखंडों पर, 'भटकन और भटकन', 'एक मौत समंदर किनारे' में जीवन मूल्यों के थोथेपन पर, 'धरती अब भी घूम रही है', 'ठेका', 'सलीब' आदि में व्यवस्था की भ्रष्टता पर, 'भोगा हुआ यथार्थ' में विकृत मनोवृत्तियों पर, 'नया राजा', 'सत्य को जीने की राह' में वर्तमान राजनेताओं पर, 'ढोलक पर थाप', अभिजात्य वर्ग की जिंदगी के तौर-तरीकों पर कड़ा प्रहार हुआ है।

इस प्रकार द्रष्टव्य है कि विष्णु जी की कहानियों के उद्देश्य गभीर एवं मौलिक हैं। कहानियों की मौलिक सोद्देश्यता ने उसे अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है।

विष्णु प्रभाकर की कहानियों का अध्ययन करने पर एक बात निश्चित रूप से लक्षित होती है कि उनकी विभिन्न रचनाएँ हमें सर्वथा नई भावभूमि से परिचित कराती है। यह भावभूमि यथार्थ, आदर्श और स्वाभाविकता की टकराहट से ऊपजी हुई लगती है। उनकी कृतियाँ इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इन तीनों प्रवृत्तियों की सीमाएँ एक छोर पर आकर मिलती हुई-सी प्रतीत होती हैं। कहानियों में हमें कोमल क्षणों की मार्मिक संवेदना मिलती है। कहीं-कहीं दुरूहता भी है किंतु अभी तक केवल अच्छी झलकियाँ मात्र मिलती हैं उसकी विवश

अनिवार्यता इनकी कृतियों में नहीं दिखाई देती। 'हिंदी साहित्य कोश', में डॉ० धीरेंद्र वर्मा का कथन उनकी कहानियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। उनका वक्तव्य है कि, "विष्णु जी की कहानियाँ रोचक होने के साथ-साथ संवेदनशील भी हैं। चरित्र-चित्रण में कहीं-कहीं आदर्शवादी वृत्ति खटकती अवश्य है लेकिन कहानी के प्रवाह को वह रोकती नहीं। इसीलिए वह बाधा न पहुँचाकर जहाँ संघर्ष को तीव्र बनाती है, वही सफल भी हुई है।"[६२]

मानव का अध्ययन, समाज के चरित्र उनके साहित्य की विशेषता है। उनकी कहानियाँ जीवन के बहुविविध पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं और विविधता के रंग प्राप्त होते हैं। उनका मूल स्वर सामाजिक है। उन्होंने सामाजिक दायित्व का निर्वाह अत्यंत सफलतापूर्वक किया है और मानव-मूल्य एवं मर्यादा को यथार्थ अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है। उनकी कहानियों में यथार्थ धरातल उजागर तो हुआ है पर उनकी दृष्टि आदर्श पर टिकी है। कला के क्षेत्र में भी उनका मानवता ही लक्ष्य रहा है। इसीलिए मानवतावाद को लेकर ही उन्होंने अनेक सशक्त पात्रों की रचना की है। इनकी कहानी के प्रारंभिक भाग अथवा अंश में प्रस्तावना अथवा भूमिका का संस्पर्श है। कहानी के मध्य में कहीं-कहीं समस्या का विश्लेषण और चित्रांकन की रेखाओं में जीवनगत मूल्यस्तर का विवेचन है। एक विशुद्ध मानवीय नैतिक सहानुभूति सदैव उनके पात्रों तथा जीवन-स्थितियों को इनसे मिलाती रहती है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों के बारे में और एक बात महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है कि उन्होंने समसामयिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन-यथार्थ का अच्छा चित्रण किया है। उन्होंने बड़ी कलात्मकता से आज की व्यवस्था में झूठ और उसमें पिसते हुए आदमी के दर्द को उभारा है। इनकी कहानियों में हमें मार्मिक क्षणों की संवेदना मिलती है इसलिए वे रोचक और संवेदनशील बन गई है। इनकी आदर्शवादी वृत्ति कहानी के प्रवाह को रोकती नहीं, तो संघर्ष को तीव्र बनाती है। उदाहरण के तौर पर 'धरती अब भी घूम रही है' को लिया जा सकता है। यह उनकी एक अत्यंत सशक्त कहानी है जिसमें एक साथ पारिवारिक, सामाजिक और शासकीय व्यवस्था की क्रूरता और नकली मानवता का पर्दाफाश किया गया है। इसमें एक ही साथ व्यंग्य, व्यथा और जिजीविषा के समन्वय से अद्‌भूत प्रभाव पैदा किया गया है। यह कहानी नई कहानी के दौर की श्रेष्ठ कहानियों में से है। उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं– 'गृहस्थी', 'रहमान का बेटा', 'ठेका', 'जज का फैसला', 'मेरा बेटा' आदि। विष्णु जी का मानना है कि कथाकार अज्ञान और पाखंड को नष्ट करके विवेक का दीप जलाता है और यही भाव बोध ही उनकी रचनाओं का प्राण है।

विष्णु जी की कहानियॉ एक व्यापक संदेश के लिए होती हैं जिनकी प्रखरता से पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। 'पिछले वर्षों के युद्ध के

परिणाम, अकाल, हिंसा, आदि की बीभत्सता तथा नाटकीयता का चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में किया है, किंतु वह केवल बीभत्स न होकर अपनी पृष्ठभूमि में गहन संवेदना छिपाए हुए है और मानव मानव के बीच स्थित एकता, प्रेम, मैत्री, सहानुभूति आदि की भावना जो शाश्वत है और अखंड भी है। विष्णु जी के विचार में मनुष्य इसी शाश्वत संबधों की प्राप्ति के लिए निरंतर संघर्ष करता है और उसे करना चाहिए यही उनके जीवन का आदर्श है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियाँ इसी महान संदेश की वाहक है।

संदर्भ सूची

१. हिदी कहानियो की शिल्प विधि का विकास– डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० १
२ हिन्दी साहित्य कोश – धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १८४
३ स्वातत्र्योत्तर हिंदी कहानी – कथ्य और शिल्प – डॉ० शिवशंकर पाण्डेय, पृ० १४४
४ हिदी कहानी की रचना–प्रक्रिया–परमानंद श्रीवास्तव, पृ० १७६
५ आघात और मुक्ति (सारिका) सितबर १९६५, पृ० ११
६. हिदी कहानी का स्वरूप और विकास – डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० ४३७
७ कहानी . नई कहानी – डॉ० नामवर सिह, पृ० १६
८ हिदी कहानियो का शिल्प विधि का विकास– डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ३३०
९. हिदी कहानी – डॉ० प्रकाश दीक्षित, पृ० ३५, ३६
१० हिदी कहानी : दो दशक – डॉ० सुरेश धींगडा, पृ० १६
११ धरती अब भी घूम रही है – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २६६
१२. मैं नारी हूँ, – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४१२
१३. लैम्प पोष्ट के नीचे एक लाश – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३२५
१४. बेमाता – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३४२
१५ जीवन एक और नाम – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४३१
१६. वही, पृ० ४३०
१७ आस्था का द्वद्व – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४४६
१८. विष्णु प्रभाकर – प्रतिनिधिक रचनाएँ – डॉ० कमल किशोर गोयनका, पृ० ६
१९. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी पात्रों में युगचेतना– डॉ० विजयलक्ष्मी, पृ० २६
२० एक मौत समन्दर किनारे– (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३७८
२१. बच्चा माँ का है– (खिलौने), पृ० ६१
२२. पुल टूटने के पहले – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३८८
२३. ऑपरेशन – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० १६३
२४. मेरा बेटा, (मेरा वतन), पृ० ७३
२५. अब्दुल्ला (सफर के साथी), पृ० ३३
२६. द्वद्व – पृ० १०७
२७. एक मौत समदर किनारे – (मेरी प्रिय कहानियाँ), पृ० ६६
२८. ऑपरेशन – (सफर के साथी), पृ० ६२
२९. बेटे की मौत – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ५६
३०. युगांतर (खंडित पूजा), पृ० ४१, ४२
३१ कितना झूठ – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ५६
३२. नफरत, केवल नफरत (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० १०५

३३. भोगा हुआ यथार्थ – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३४६
३४. नफरत, केवल नफरत (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० १०६, १०७
३५. चितकबरी बिल्ली (एक आसमान के नीचे), पृ० १०४, १०५
३६. आखिर क्यो ? (आखिर क्यों ?) पृ० ७४
३७. मैं जिदा रहूँगा – (आखिर क्यो), पृ० ३६
३८. कहानी का रचना–विधान – डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ० १२१
३९. कहानी का रचना–विधान – डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ० १२१
४० दीप जले घर–घर – (रहमान का बेटा), पृ० ३१
४१. समझौता (साँचे और कला), पृ० ८५
४२. सच, मैं सुन्दर हूँ – (मेरी तैंतीस कहानियॉ), पृ० १४
४३. वह रास्ता – (मेरा वतन), पृ० १०४
४४. खिलौने – (मेरी प्रिय कहानियॉ), पृ० १०३
४५. मणि, कलक और राजनीति – (खंडित पूजा), पृ० ६३
४६. एक मॉ–एक देश – (खंडित पूजा), पृ० ५७
४७. धरती अब भी घूम रही है-(इक्यावन कहानियाँ), पृ० २६६
४८. अभाव-(इक्यावन कहानियाँ), पृ० ८५
४९. सबल-(इक्यावन कहानियाँ), पृ० २१३
५० नफरत, केवल नफरत, (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० १०४
५१. जीवन एक और नाम-(इक्यावन कहानियॉ), पृ० ४३१
५२. हिमालय की बेटी-(इक्यावन कहानियाँ), पृ० २६२
५३ कैसी हो मरिअम्मा-(मेरी प्रिय कहानियाँ), पृ० १३४
५४. हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास-डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० २६७
५५. वही, पृ० ३३६
५६ जरूरत-(मेरी प्रिय कहानियाँ), पृ० ६४, ६५
५७ मुरब्बी-(मेरा वतन), पृ० २८
५८. अब्दुल्ला-(सफर के साथी), पृ० ३८, ३६
५९. जिदगी के थपेडे-(जिंदगी के थपेडे), पृ० ३६
६०. हिंदी कहानी . उद्‌भव और विकास-डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० ११४
६१ नई कहानी की भूमिका-कमलेश्वर, पृ० २०
६२. हिंदी साहित्य कोश, भाग-२ स० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५४६

7

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों का शिल्प विधान

पृष्ठभूमि– साहित्य में कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार जिन विधियों एवं प्रक्रियाओं को साधन स्वरूप स्वीकारता है, वही विधियाँ, तरीके, पद्धतियाँ, शिल्प-विधान कहलाती हैं। इसके बिना कोई भी रचनाकार अपनी अनुभूतियों को कलात्मक एवं सफल अभिव्यक्ति नहीं दे सकता। शिल्प-विधान का संबंध साहित्य की रूप-योजना से है। रूप-योजना कथ्य को अधिकाधिक प्रभावी बनाने में सार्थक होती है। शिल्प-विवेचन के संदर्भ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का मत विशेष रूप से ध्यातव्य है। लाल के अनुसार शिल्प-विधान रचना का वह व्यापक तत्व है, जिसके माध्यम से रचनाकार अपनी संप्रेष्य वस्तु को सफल अभिव्यक्ति और प्रभावान्विति को संभव बनाता है। उन्हीं के शब्दों में, "जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा मनुष्य के मन और मस्तिष्क में घनीभूत होती है तब वह उसकी अभिव्यक्ति में संलग्न होता है। अभिव्यक्ति के लिए वह कभी वाणी का सहारा लेता है, कभी आकृति का, लेकिन वह अपने भाव प्रकाशन में अधिक से अधिक रोचकता, आकर्षण और प्रभाविष्णुता लाने के लिए अन्यान्य रूप-विधानों की योजना करता है।"[१] इस दृष्टि से 'भारत विभाजन और हिंदी कथा साहित्य' ग्रंथ में डॉ० प्रमिला अग्रवाल जी का दिया वक्तव्य भी बिल्कुल सार्थक लगता है। वह लिखती है, "शिल्प ही कथा के सर्चनात्मक धरातल को प्रभावित करनेवाला एक प्रमुख तत्व है।"[२]

कलाकार के अंतर्गत की बाह्य अभिव्यक्ति शिल्प के माध्यम से ही होती है। संप्रेषणीयता की दृष्टि से देखा जाए तो शिल्प का सुगठित एवं कथ्य के अनुकूल होना आवश्यक है तभी वह प्रभावोत्पादक हो सकता है। साहित्य में जैसे-जैसे नवीन प्रवृत्तियाँ उभरती हैं, नई अनुभूतियों का चित्रण होता है, नई समस्याएँ उपस्थित होती हैं और नए मूल्य बनते हैं वैसे-वैसे उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए कलाकार को नए-नए शिल्प-प्रयोग करने पड़ते हैं। इस प्रकार शिल्प के माध्यम से ही रचनाकार का भाव-जगत मूर्त रूप धारण करता है।

साहित्य में शिल्प का अस्तित्व अनिवार्य है। शिल्प-विधान रूप और अरूप के बीच, अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच तथा लेखक और पाठक के बीच का अनिवार्य माध्यम है। जब तक साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति की

अनिवार्यता बनी रहेगी तब तक अभिव्यक्ति के प्रकार के रूप में शिल्प का महत्त्व बना रहेगा। इस दृष्टि से प्रत्येक रचनाकार को शिल्प का आश्रय लेना ही पड़ता है। 'हिंदी उपन्यास शिल्प और प्रयोग' ग्रंथ में दिए डॉ० त्रिभुवन सिंह के विचार इसी से मिलते-जुलते हैं। वे लिखते हैं, "शिल्प अथवा रचना का संबंध उस परिणति से है, जो कृति को सभी रचना–विधायक तत्वों के सहयोग से कृतिकार की प्रतिभा द्वारा प्राप्त होता है।"[३] उपर्युक्त विवेचन से साहित्य में शिल्प-विधान की अनिवार्यता स्पष्ट हो जाती है।

विष्णु प्रभाकर जी कहानी के नए-नए प्रयोगों में रत हैं और मानव जीवन की अनेक समस्याओं को उनके समग्र परिपार्श्व में उपस्थित करके नव-मानव चेतना को उद्‌बुद्ध करने में प्रयत्नशील भी हैं। विष्णु प्रभाकर जी का नाट्य साहित्य कहानी, उपन्यास, नाटक एवं जीवनी का साहित्य इन चार विधाओं को ग्रहण कर परिपुष्ट हुआ है और वह उनके विशिष्ट कौशल रूप से अभिव्यक्त हो सका है। लेखक की कलाकृति में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उसका व्यक्तित्व, उसकी भाषा और उसकी शैली होती है।

भाषा का स्वरूप– भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। शैली उस साधन का उपयोग करने की रीति अथवा पद्धति है। भाषा की शक्ति पर शैली की उत्कृष्टता अवलंबित होती है। भाषागत सौंदर्य के अंतर्गत कहानीकार की शब्द-योजना, पद तथा वाक्य-विन्यास, प्रसंगों, कहावतों, मुहावरों, अलंकारों आदि का समावेश होता है।

"पोकॉक नामक एक पाश्चात्य विचारक के अनुसार कहानी का प्रत्येक भाग प्रसंगानुकूल और उचित होना चाहिए। प्रत्येक शब्द, शब्द समूह और वाक्य का कथा वस्तु, पात्र या वातावरण से संबंधित होना आवश्यक है जिससे कहानी पढ़ने के पश्चात् हमें ऐसी प्रतीत हो कि यदि हम वहीं एक भी पंक्ति छोड़ जाते, तो कहानी ही अपूर्ण रह जाती।"[४] तात्पर्य, कहानी शिल्प का सर्वविदित एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन भाषा है। यह वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक अपने विचारों एवं उद्‌देश्य को पाठकों के समक्ष रखता है। पाठक इसके माध्यम से लेखक के विचारों को समझने का प्रयास करता है। भाषा शैली से भिन्न नहीं की जा सकती। भाषा को यदि शैली का प्राणतत्व माना जाए तो गलत नहीं होगा। भाषा समग्र रूप से शैली से भले ही जुड़ी हुई हो, पर अपने सूक्ष्म रूप में वह शैली से कुछ अलग है। भाषा वह मुख्य आधार है, जिसको विशिष्ट ढंग से संयोजित किया जाता है और भाषा की विशिष्ट संयोजना-शैली का निर्माण करती है।

भाषा जीवन और साहित्य के बीच की अविभाज्य कड़ी है। यह सामाजिक उपलब्धि तथा व्यक्तिगत अनुभवों एवं विचारों को समाज तक संप्रेषित करने का एक अनिवार्य माध्यम है। 'हिंदी कहानी का विवेचनात्मक अध्ययन' ग्रंथ में डॉ ब्रह्मदत्त शर्मा के विचार से इस बात की पुष्टि करते हैं उनका कथन है,

"जगत् की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है और भाषा किसी अर्थ को प्रकट करती है। जगत् का ज्ञान प्राप्त करने तथा देने के लिए भाषा द्वारा, इष्ट अर्थ तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है।"[५] इस प्रकार सैद्धांतिक रूप से देखा जाए तो भाषा ही शिल्प का प्रमुख साधन है जिस पर कहानी की सफलता एवं असफलता निर्भर करती है। भाषा शिल्प का निर्माण लेखक स्वयं अपनी अनुभूति के स्तर पर करता है। यही कारण है कि कहानियों की अभिव्यक्ति में विविधता पाई जाती है।

मुहावरों, लोकोक्तियों एवं शब्द शक्तियों के सटीक प्रयोग से बिंबो, प्रतीकों एवं संकेतों के सहारे भाषा सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर भावों-विचारों को बड़े कलात्मक ढंग से कहानी में रूपायित करती है। स्वातत्र्योत्तर भारतीय जन-जीवन के अनेकानेक पहलुओं की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति के दबाव से कहानी की भाषा में वैविध्य आया है। इसमें तत्सम, तद्भव और देशज, आंचलिक शब्दों के साथ विदेशी भाषा के शब्द प्रयोग से और भी तीक्ष्णता आई है। यह युगीन जीवन यथार्थ को पूरी सच्चाई के साथ अभिव्यक्ति देनेवाली भाषा है, आज के विघटन एवं विद्रूप को समेटनेवाली भाषा है। जीवन में आए अंतर्विरोधों, विसंगतियों को सह जानेवाली भाषा हैं। यह नगरों, महानगरों, भाव-प्रदेशों, अंचलों में बिखरी और चारों ओर के वातावरण में समायी जिंदगी की भाषा है। इस प्रकार युग की बदलती परिस्थितियों एवं जीवन-बोध के अनुकूल ही भाषा का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा है।

कहानी का भाषिक तेवर उसके कथ्य और कहानीकार की मानसिकता पर निर्भर करता है। हर कहानी को अपने कथ्य के अनुरूप ही भाषा की अपेक्षा होती है। कथ्य की संप्रेषणीयता की दृष्टि से भाषा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए, 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-तथ्य और शिल्प' ग्रंथ में डॉ० शिवशंकर पांडे जी का वक्तव्य इस बात को स्पष्ट करता है, उनका कथन है, "कथ्य की संप्रेषणीयता की दृष्टि से एक जीवंत भाषा का प्रवाहात्मक, आलंकारिक, चित्रात्मक, प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक, नाटकीय आदि होना भी जरूरी है।"[६] इस प्रकार कहानी की मूल संवेदना भी बदलती रहती है। कभी वह वर्णनात्मक से अभिव्यक्त होती है, तो कभी पात्र, डायरी, संस्मरण आदि रूपों में। कभी उसके नाटकीय ढंग की अपेक्षा होती है तो कभी संवादात्मक, लोककथात्मक, आंचलिक या स्वप्नशैली की। इस प्रकार समूची कहानी और उसके अन्य तत्वों को रूपायित करने का पूरा-पूरा उत्तरदायित्व भाषा-शैली पर है।

भाषा की साहित्य में अनिवार्यता पर ध्यान देते हुए प्रस्तुत अध्ययन में हम पहले विष्णु प्रभाकर जी की भाषा और उसके अंगोपांगों का विवेचन करेंगे।

अभिव्यक्ति में उपमान और बिंबचयन की नवीनता तथा गहराई– शिल्प उपलब्धि की आधारभूत पृष्ठभूमि भाषा है। भाषा वह साधन है जो यथार्थ एवं तत्व

के उद्‌घाटन की परिचायिका है। भाषा परिवेश एवं पात्रों के अनुकूल होने पर ही रचना-विधान में स्वाभाविकता आती है। साहित्यकार अपने विचारों की अभिव्यक्ति से समाज को प्रभावित करता है, साथ ही दिशा–निर्देश भी देता है। इसीलिए उसकी भाषा जितनी सरल, भावव्यंजक एवं बोधगम्य होगी उतनी ही उसकी रचना प्रौढ़, सशक्त और प्रभावशाली बनती है। रचनाकार अपने भाषा नियोजन में अलंकार, बिंब, प्रतीक, मुंहावरों, कहावतों आदि का प्रयोग करता है। इन भाषायी प्रयोगों से ही उसकी कृति में प्रवाहात्मकता और नाटकीयता आ जाती है। प्रतीक भावों को अभिव्यक्त करने का सहज माध्यम है। प्रतीकात्मक शब्द प्रणाली से साहित्य में प्राणों का नवीन संचार होता है तथा सजीवता एवं संक्षिप्तता के दर्शन होते हैं। प्रतीक बिखरी हुई अनुभूतियों एवं विचारों को एक सूत्र में संगठित करने का सेतु है। प्रतीक कहानी में अंतर्निहित संकेतों को और अर्थपूर्ण बना देते हैं। इनके कारण कहानियों में गुणात्मक अभिवृद्धि के साथ-साथ बौद्धिकता में भी अभिवृद्धि हो जाती है। कहानी में प्रतीकों की अनिवार्यता बनाते हुए 'प्रेमचंदोत्तर कहानी साहित्य' ग्रंथ में डॉ० राधेश्याम गुप्त लिखते हैं कि, "कहानी साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग समष्टि सत्य को प्रमुख रूप से अपने में संजोए हुए हैं। जीवन की समस्याओं को अधिक प्रभावशाली रूप में अभिव्यंजित करने के लिए प्रतीक अथवा संकेत का प्रयोग किया जाता है।"[७] प्रतीकवादी कहानियों में अनुभूति एवं उसकी व्यंजना पर अधिक बल दिया जाता है। 'चितकबरी बिल्ली', 'राजकुमार और मछली', 'अर्धनारीश्वर', 'बंद खिड़की खुला दरवाजा', 'पिचका हुआ केला और क्रांती' जैसी कहानियों में विष्णु प्रभाकर जी ने समाज की समस्याओं, वर्ग-विशेष की मनोवृत्तियों, व्यष्टि की उंलझनों आदि को अपने अनुभवों के आधार पर सांकेतिक रूप में चित्रित किया है। 'राजकुमार और मछली' कहानी में राजकुमार भ्रष्ट सेठ का प्रतीक है तो मछली सामान्य जनता का प्रतीक है। कहानी में चुन्नीलाल जैसे गर्वीले धनाढ्य व्यक्ति अपनी निरीह एवं साधनहीन व्यक्तियों में अपनी इच्छापूर्ति का साधन बनाते हैं। इस प्रकार व्यक्तियों को अपने षड्‌यंत्र में फँसाने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देते हैं। यह आज के युग की ज्वलंत समस्या है।

प्रतीकात्मकता के साथ कथा को अर्थपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक बनाने में सांकेतिकता की भी अनिवार्य भूमिका है। कथाकार अपने यथार्थ को जितनी संकेतपूर्ण अभिव्यक्ति देगा, कहानी में उतनी ही संवेदना उत्पन्न होगी। आज सांकेतिकता कथा के शिल्प में इस प्रकार गिरती हुई है कि उसका स्वरूप ही बदल गया है। सांकेतिकता की महत्ता को स्पष्ट करते हुए 'भारत विभाजन और हिंदी कथा साहित्य' ग्रंथ में डॉ० प्रतिभा अग्रवाल जी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनका कथन है, "शिल्पगत सांकेतिकता के कारण रचनाओं में आंतरिक अर्थवत्ता, कथ्य की सूक्ष्मता और प्रभावक्षमता का विकास हुआ है।"[८] संकेतों के

इस प्रतिबिंब से किसी घटना, स्थान एवं वस्तुस्थिति का सायास चित्रण होता है। शब्द संकेतों से कथावस्तु संक्षिप्त, सार्थक, कलात्मक एवं अभिव्यंजनापूर्ण होती है। संकेतात्मक अभिव्यक्ति कहानी के शिल्प सौंदर्य में अभिवृद्धि के साथ-साथ बिखरी हुई अनुभूतियों एवं भावों को भी एकाकार करती है। सांकेतिक अर्थवत्ता से युक्त होने पर ही आज की कहानी सीधी चेतना तथा अनुभूति के गहरे स्तरों को छूने में समर्थ हो सकी है। 'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है, जैसे, "लैम्पपोष्ट उस सडक पर बहुत है, परंतु प्रकाश किसी में भी नहीं है। शायद उस सडक का कुछ सामरिक महत्त्व है। इसीलिए प्रकाश वहन करनेवाली लाईनें वहाँ से गुजरती अवश्य हैं पर उसे आलोकित नहीं करतीं। मुक्ति की चाह के लिए वह उसके अंतर में बंदी ही बना रह जाता है। आस-पास घना जंगल भी है। एक अजीब सी गहरी सोंधी गंध वहाँ फैली रहती है और जिले का सदर मुकाम होने के कारण सड़क भी खूब चलती है। ट्रक, कारें, दूसरी हल्की-भारी गाड़ियाँ, शहर के शौकीन लोग सभी वहाँ से गुजरते हैं। मैं भी गुजरता हूँ। उस समय प्रायः अंधेरा रहता है कभी-कभी मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि आस-पास का वह अंधेरा, मेरे अंतर में प्रवेश कर गया है। बाहर-भीतर कहीं कुछ नहीं देख पाता हूँ। जब से मैं हूँ तभी से शायद ऐसा रहा है। यहाँ तब कि अचानक आ जानेवाली गाड़ी के प्रकाश को मैं अनदेखा कर जाता हूँ।"[९]

नई कहानी में संकेतों, प्रतीकों की लहर, बिंबों का भी शिल्पगत और भाषागत प्रयोग हुआ है। बिंब-विधान के उपयोग से रचनाकार अपनी कृति में एक सार्थक चित्र शिल्प का विकास करता है। बिंब, अर्थ, कथ्य को और सरल बना देता है। इनके प्रयोग से सूक्ष्म बातें भी मूर्त रूप धारण कर लेती हैं, जिससे वे सरलता से आस्वादित होती हैं। बिंब-विधान द्वारा रचनाकार अपनी कृति में एक सार्थक चित्रात्मकता को प्रस्तुत करता है। बिंब द्वारा वस्तु के साथ एक दृष्टिगत या चाक्षुष संबंध निर्मित होने के कारण उसका वही रूप सबसे पहले सामने आता है, पर सूक्ष्मता से विचार किया जाए तो बिंब-निर्माण की प्रक्रिया इंद्रिय-बोध के अन्य पक्षों, स्पर्श, गंध, आस्वाद आदि को सामान्यतः प्रभावित करती है। सुख-दुख के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर संबंधों को रचनाकार बिंबों द्वारा बड़ी सार्थक कुशलता और सांकेतित संयम से व्यक्त करने में समर्थ होता है। इस पर 'आधुनिक हिंदी कहानी में चरित्र विधान ग्रंथ में डॉ० रामरतन सिंह भ्रमर का दिया वक्तव्य विशेष लक्षणीय माना जाता है। उनका कथन है, "बिंबों के सार्थक प्रयोग से अमूर्त भावों, संवेदनाओं, विचारों की अनेक परतें उघड़ती हैं और कल्पना के सहारे वस्तुजगत् सौंदर्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थों की गहरी पकड़ आती है।"[१०] बिंबों के प्रयोग के कारण आज की कहानी में एक नया आकर्षण पैदा हो गया है, साथ ही वह सपाट होने से बच सकी है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में बिंबों का भी सफल प्रयोग हुआ है। उनकी कहानियों में बिंब, कला सृजन एवं विश्लेषण का अंग बदल

गया है। 'पुल टूटने से पहले', 'चितकबरी बिल्ली', 'नई ज्यामिति' आदि कहानियों में प्रतीक तथा बिंब-विधान अधिक सफल हुए हैं। 'पुल टूटने से पहले' कहानी का यहाँ उदाहरण द्रष्टव्य है, "भीड़ जब छट गई तो देखता हूँ कि पक्की सड़क और पक्के फर्श सब घित्तीदार द्वेत मखानों से ढक गए हैं। एकाएक मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया- कितनी बर्बादी है यह, पैरों तले रौंदेंगे ये अब, क्यों न इन्हें बटोर लूँ। नहीं-नहीं तुम नहीं छू सकते इन्हें, ये लाश के ऊपर से वारे गए हैं, अशौच रहने अशौच को, फर्श साफ-सुथरा है, फिर भी सुखी मेवा है, धो-पोंछकर अशौच दूर किया जा सकता है। आह, कितने दिन हो गए मखाने खाये। मेवा तो अब संपन्न लोगों की निजी पार्टियों में ही मिलती है। शब्द नहीं दे सकता इतना तुमुल-नाद सच्चा था भीतर। मात्र साहस से ही नहीं लीला जा सकता संस्कारों को, पर उस क्षण मेरे पास वह कुछ भी था जो उन्हें लील सका, जो हर युग के संस्कारों को लीलता है। परिवेश और परिस्थिति का दबाव ही तो क्रांति को जन्म देता है, लेकिन अवसर इस दबाव की पहचान इतने देर में होती है कि हम तब तक क्रांति करने लायक नहीं रह जाते--"[११] 'चितकबरी बिल्ली' विशुद्ध प्रतीकात्मक कहानी है। इसका उदाहरण द्रष्टव्य है, "सोते-सोते उसकी आँख खुल गई। अंधकार में देख सका कि दो आँखें चमक रही हैं और 'म्याउँ-म्याऊँ' का शब्द उस भयानक मौत से कँप रहा है। जैसे वह उसे अपने में समेट लेगा। और फिर वह स्वर और उसका अस्तित्व एक होकर रह जाएँगे।"[१२]

इस प्रकार भाषा में पारदर्शी सौंदर्य और बोधकता लाने के लिए विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में बिंब, प्रतीक और सांकेतिकता का उपयोग हुआ है। सांकेतिक अर्थवत्ता से युक्त होने पर ही उनकी कहानी सीधी चेतना तथा अनुभूति के गहरे स्तरों को छूने में समर्थ हो सकी है। तात्पर्य, कहानी में प्रयुक्त शिल्प जितना मौलिक एवं स्वाभाविक होगा, उतना ही कहानीकार की सृजन प्रक्रिया एवं रचना उत्कृष्ट एवं परिष्कृत होगी। किसी भी रचना को शिल्प के अभाव में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

भाषा शैली कहानी-शिल्प के मूल साधन हैं। इनकी सफलता कृति की सफलता होती है। कहानी का उद्देश्य भी इसकी भाषा पर निर्भर है। 'शैलीगत अभिनवता, सफलता कहानी को अधिक प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाती है। इसका संबंध शब्दों, विचारों एवं भावों सभी से होता है। भावों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा है। भाषा जितनी ही सुंदर और भाव उपयुक्त बन पड़ेगी, भाषाभिव्यंजना उतनी ही आकर्षक होगी। इस प्रकार भाषा के अंतर्गत शब्द-योजना, वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास आदि गुण आते हैं। गद्य में शब्दों का चयन, भाव योजना और साथ ही वाक्यों की बनावट जितनी ही स्वाभाविक, सार्थक, संयत और सुगठित होगी, भाव चित्र भी उतने ही सजीव हो उठेंगे। प्रत्येक पर कहानीकार के व्यक्तित्व की छाप रहती है। यही कारण है कि सभी की भाषाशैली

एक समान नहीं होती। प्रत्येक का अपना स्वतंत्र शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास और भाषा सौंदर्य होता है। इसी पृष्ठभूमि पर हमें विष्णु प्रभाकर जी की भाषा का अध्ययन करना पड़ेगा।

भाषा का जीवन के निकट का स्थान– विष्णु प्रभाकर जी की कहानी की संवेदना का केंद्रीय बिंदु उसका यथार्थ चित्रण है। जिसके आग्रह के कारण कहानी की भाषा भी यथार्थ के रंग में रंगी हुई नहीं है, जीवन की विषमताओं, विसंगतियों, चारो ओर व्याप्त असंतोष, आक्रोश आदि के बीच से ही उसने जन्म लिया है। फलतः कहानी की भाषा जीवन के अधिक निकट है। जीवन के निकट का अर्थ है, सामान्य बोलचाल की भाषा। उन्होंने बोलचाल की भाषा को ही कहानी का संस्कार दिया है।

एक श्रेष्ठ कहानीकार होने के नाते उनकी भाषा मानव मन के रेशे-रेशे को उघाड़ने के लिए सूक्ष्म अर्थ देनेवाली सक्षम भाषा भी है। नित्य-प्रति के शब्द-प्रयोगों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि के समन्वय से यह भाषा जनसाधारण के हृदय की बात सरलतापूर्वक कहती चलती है। इसी भाषा में उर्दू, अंग्रेजी आदि शब्दों का भी प्रयास होता है, जो भाषा को और भी स्वाभाविक बना देते हैं। इसके साथ कहानियों में स्थानीय शब्दों का प्रयोग भी है और कहीं-कहीं बोलचाल के शब्द आ गए हैं।

जनसाधारण बोलचाल की भाषा के साथ-साथ विष्णु जी अपनी कहानियों में अलंकार-प्रधान संस्कृत गर्भित भाषा शैली को भी लाते हैं। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों, समास तथा अलंकारों का अद्‌भुत समन्वय पाया जाता है। कहीं यह भाषा-शैली सरल, आकर्षक और अत्यंत मोहक सिद्ध हुई है तो कहीं-कहीं भावदुरूहता तथा कृत्रिमता का कारण भी बन गई है। इन दो भाषा-शैलियों के अलावा विष्णु प्रभाकर जी ने परिमार्जित तथा गंभीर भाषा-शैली का भी प्रयोग किया है। इसमें उनके चिंतन-मनन का गांभीर्य दिखाई देता है। यह बोलचाल की भाषा के समान सरल भी नहीं है और संस्कृतनिष्ठ, अलंकृत भाषा के समान चित्रात्मक है, तो उसमें भाषा का एक परिष्कार और विश्लेषणात्मकता दिखाई देती है। उनकी मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में इस भाषा शैली की प्रचुरता दिखाई देती है।

उपर्युक्त भाषा शैलियों से स्पष्ट है कि उनके अलग–अलग प्रयोगों से विष्णु जी की प्रत्येक कहानी में भिन्न प्रवाह की सृष्टि हो गई है। उनकी कहानियों में भाषा के विविध रूप प्राप्त होते हैं। भाषा की व्यंजनाशक्ति, अमूर्तता, सांकेतिकता एवं अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता समर्थकता में अभिवृद्धि हुई है जिस पर उनके व्यक्तित्व की अलग-अलग छाप है और भिन्न-भिन्न संदर्भों में इसे देखा जा सकता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि विष्णु जी की कहानियों में भाषा यथा-प्रसंग लालित्यपूर्ण, ध्वन्यात्मक, चित्रात्मक, प्रवाहात्मक, आलंकारिक, लाक्षणिक और सहज संवेद्य है।

भाषागत विशेषताएँ– भाषा कहानी शिल्प का मूल साधन है। यह जितनी सहज एवं सरल होगी उसमें उतनी ही प्रवाहशीलता होगी। भाषा कथावस्तु, पात्र-योजना, शैली एवं परिवेश के अनुकूल होनी चाहिए। काव्य, नाटक, उपन्यास एवं निबंधों की भाषा में कुछ भिन्नता होती है। इसी प्रकार विभिन्न लेखकों की भी अपनी-अपनी भाषागत विशेषताएँ होती हैं। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों की अपनी भाषा है। इनकी भाषागत विशेषताएँ लिखित बिंदुओं के आधार पर वर्गीकृत की जा सकती हैं।

१. शब्द प्रयोग, २. शब्द शक्ति ३. मुहावरों-कहावतों का प्रयोग ४. प्रतीकात्मकता ५. चित्रात्मकता ६. आलंकारिकता ७. नाटकीयता ८. व्यंग्यात्मकता ९. भावात्मकता १०. प्रवाहात्मकता ११. विषयानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा प्रयोग १२. काव्यात्मक भाषा १३. भाषागत प्रेषणीयता।

शब्दप्रयोग– भाषा का मुख्य आधार शब्द होते हैं। भाषा में शब्दों का महत्त्व अक्षुण्ण है। विष्णु जी ने अपनी रचनाओं में जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें जहाँ एक ओर मधुरता है, वहीं दूसरी ओर तीक्ष्णता भी। उन्होंने अपनी भाषा का सौष्ठव समस्त प्रकार के प्रचलित शब्दों को ग्रहण कर बढ़ाया है। उर्दू, अंग्रेजी तथा ग्रामीण शब्दों की प्रधानता भी उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। इनकी ऐतिहासिक कृतियों में संस्कृत, जो देश-विभाजन पर रचित कहानियों में उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है। इस संबंध में 'स्वर्ग और मर्त्य' इस ऐतिहासिक कहानी का उदाहरण द्रष्टव्य है–''सदा की भाति, स्वर्ग की सरिता अपूर्व मादक संगीत से तरंगित हो उठीं। उर्वशी के संगीत ने त्रिलोकी को विमुग्ध कर दिया। लोकपालों ने सब कुछ भूलकर उस मनोमुग्धकारी गान को सुना, नक्षत्र लोकवासी गतिहीन होकर स्थिर हो गए, पृथ्वीं पर निद्रा की मदहोशी छा गई, दिशाएँ विमुग्ध हो उठीं, वसंत का आनंदोच्छ्वास तीव्रतम होने लगा। महाराज ने चशक से मदिरा उड़ेलते हुए कहा, 'उर्वशी! तुम अनुपमेय हो।'''[१३] इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग है जिनका वर्गीकरण निम्नलिखित दृष्टि से किया जा सकता है।

अ. तत्सम शब्द– विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है, जैसे 'तख्त'[१४], प्रणय[१५], खब्ज[१६], प्रसूत[१७], शल्य-चिकित्सा[१८], जिंदा[१९], भृकुटी[२०], प्रकंपित[२१], गुंठनमय[२२], शक्तिम[२३] आदि।

आ. तद्भव शब्द– लहुलुहान[२४], जद्योजहर[२५], गोलमटोल[२६], गुमाश्ता[२७] आदि।

इ. देशज शब्द– दिसावर[२८] डिबिया[२९], ग्याभन[३०], गुब्बारे[३१], नालिश[३२], गुलबंद[३३], कुंजडा[३४], अंगीठी[३५], ढिबरी[३६], टिकाऊ[३७], हलुआ[३८], छटाक[३९], खिचड़ी[४०], पालकी[४१] आदि।

ई. उर्दू, अरबी-फारसी शब्द– फरिश्ता[४२], खिदमत[४३], नकाब[४४], फ्राइशा[४५], फरिश्ता[४६], कांफले[४८], अफसोस[४९], कम्बख्त[५१], औलाद[५२], तहमद[५३], मुखबिरी[५४], शुक्रगुजार[५५], मुनाफा[५६] आदि।

उ. अंग्रेजी शब्द– विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। देखिए– ड्रामा[५७], लैक्चर[५८], टाईफाइड[५९], एक्सप्रेस[६०] एरोड्राम[६१], कम्युनिस्ट[६२], एसोसिएशन[६३], इंजिनियरिंग[६४], डिपार्टमेंट[६५] आदि।

ऊ. उपसर्ग–प्रत्यय वाले शब्द– विष्णु जी के अधिकांश शब्द निर्मित हैं। उपसर्ग से बने अनेक शब्दों का प्रयोग उनकी कहानियों में किया गया है। प्रत्ययों से निर्मित उनके उदा. स्वरूप शब्द देखिए– तडपाकर[६६], निकम्मापन[६७], खडखड़ाहट[६८], गुड़गुड़ाहट[६९], सनसनाहट[७०], अल्हड़ता[७१], तिलमिलाहट[७२], गिड़गिड़ाहट[७३] आदि।

ए. युग्म शब्द– अलस-उदास[७४], तांक-झांक[७५], विकल-विह्वल[७६], आसवित-विरवित[७७], उद्विग्न-उत्तेजित[७८], उफनती-उमडती[७९] आदि।

ऐ. ध्वन्यार्थक शब्द– शडाकच्छूं-शडाकच्छूं[८०], खड़क-खड़ड-खड़-खड़ा[८१], धाय-धाय-ढें-ढें[८२], ट्रिंग-ट्रिंग[८३] आदि।

ओ. समान दो शब्दों का प्रयोग– विष्णु जी ने अपनी रचनाओं में समान दो शब्दों का प्रयोग कई स्थानों पर किया है। शायद ऐसे शब्दों का प्रयोग करने में उनकी अधिक रुचि रही है। उदा. गुटर-गुटर[८४], लकदक-लकदक[८५], खिलर-खिलर[८६], घुमड़-घुमड[८७], झुलस-झुलस[८८], अकेला-अकेला, तेज-तेज[९०], झुलस-झुलस[९१], उदी-उदी[९२], इठला-इठला[९३], झिलमिल-झिलमिल[९४] आदि।

अं. समानार्थक शब्द प्रयोग– अनथक-अनवरत[९५], कटे-छॅटे[९६], स्वस्थ-सबल[९७], आमने-सामने[९८], विस्मित-विमूढ़[९९], लंबित-प्रताड़ित[१००] आदि।

अः. अंक प्रयोग– तापमान देखा तो १०५[१०१], १० वर्ष से[१०२], १५ मई १९३६[१०३], २४००० किलोवॉट[१०४], १०० के १००[१०५], ४० सीटों के लिए ६५ इन्सान[१०६], २०,००० रू० देने पडते[१०७], ५००० रू० का है[१०८] आदि।

इन शब्दों के अतिरिक्त विष्णु जी की भाषा में बंगाली और पंजाबी भाषा का प्रयोग हुआ है। एक स्थान पर इसका प्रयोग देखिए–

"एक देवता धरती पर उतरा सी। छेती नाल टूट गया। देवता छेती ही दूर हो जाते हैं। उणादा असली तो ओही होंदा है।[१०९], अतः प्रभाकर जी की भाषा मिश्रित है जो भी और जिस भाषा के शब्द उन्होंने प्रयोग में लिए हैं, वे शुद्ध, सुगठित और पात्रानुकूल हैं।

शब्दशक्ति– विष्णु प्रभाकर जी की भाषा में अभिधा के साथ-साथ लक्षणा और व्यंजना भी प्रयोग है। इनके प्रयोग से उनकी भाषा वजनदार, प्रौढ़ एवं सशक्त बन गई है। लक्षणा शब्दशक्ति का यह एक उदाहरण-- "अक्सर वह इसी तरह दिल में कमजोरी का अहसास लिए अवारा बच्चों की तरह घूमता रहता है और फिर थके हुए पंछी की तरह अपने ठिकाने पर लौट आता है। उसके अंतर में हास-उल्लास नहीं, रोशनी भी नहीं। बस, जैसे सायं-सायं करती हवाएँ कानाफूसी करती रहती हैं। और वह अबोध शिशु उसे समझ नहीं पाता इसीलिए कुछ सोच भी नहीं पाता। और चुपचाप लौट आता है और बिना आहट किए दूसरे भाई-बहनों

के खेल में शामिल हो जाता है।"[१११] विष्णु जी ने अनेक स्थानों पर लक्षणा शक्ति का प्रयोग किया है। 'नारी-चरित्रम्' कहानी का यह उदाहरण-

"सबसे विदा लेकर उड़ चला पर मेरा हृदय तो नहीं रह गया था। जितनी देर देख सका उसे देखता रहा। फिर घायल पंछी की तरह सीट में घुस गया। मैंने अनुभव किया कि तब वसंत ऋतु भी वियोगिनी के रूप में गा रही थी।"[११२]

विष्णु जी की कहानियों की भाषा में व्यंजनाशक्ति भी कूट-फूट कर भरी हुई है। इसका एक उदाहरण देखिए– "फिर कल के बाद आनेवाला कल, यानि निरंतर समीकरण बदलेंगे, लक्ष्य भी बदलेंगे लेकिन आदमी के भीतर सोया राक्षस इसी प्रकार निरंतर जागता रहेगा अपनी भूख मिटाने को नए-नए मुखौटे लगाकर--"[११३] सत्य को जीने की राह' कहानी के संदीप खन्ना के इन शब्दों में कितनी व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। अतः कहा जा सकता है कि उनके शब्दों में इतनी ताकत एवं वजन है कि किसी कसौटी में नापा नहीं जा सकता। विष्णु प्रभाकर जी की भाषा तीनों प्रकार की शब्द शक्तियों से युक्त होकर सामने आती है।

मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग– कहावतों-मुहावरों को भाषा का श्रृंगार कहते हैं। इनके प्रयोग से भाषा में सजीवता और स्फूर्ति का संचार हो जाता है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी भाषा में प्रचलित कहावतों और जीवन संबंधी मौलिक उक्तियों का प्रयोग भी यत्र-तत्र किया है। प्रसंगानुकूलता उनके प्रयोग की विशेषता है। जहाँ भी इनका प्रयोग है, वहाँ भाषा के सौंदर्य में द्विगुणित वृद्धि हुई है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं। रोंगटे खडे होना[११४], बलि के बकरे[११५], नाक रगड़ जाना[११६], मुँह तॉकते रहना[११७], आँखें फाड़-फाड़ कर देखना[११८], खाल उधेड डालना[११९], रोंगटे खड़े होना[१२०], काठ मार जाना[१२१], डींग मारना[१२२], आँखें मूँद लेना[१२३], डींग हांकना[१२४], भूत सवार होना[१२५], दिल बैठा जाना[१२६], पानी सर से उतरना[१२७], कानों में रूई ठोसना[१२८], भौंचक रह जाना[१२९], हाथ पीले करना[१३०], कलेजा मुँह को आना[१३१] आदि।

विष्णु जी की कहानियों में कहावतों का भी कम प्रयोग नहीं है जैसे- हंसों में कौआ[१३२], सब रास्ते रोम को जाते हैं[१३३], दिया तले अंधेरा[१३४], गाडी के नीचे चलनेवाला कुत्ता समझता है कि गाड़ी का बोझ उठा रहा है[१३५], शक्करखोर को शक्कर और मूंजी को टक्कर[१३६], दिन दूनी रात चौगुनी[१३७], दुनिया अपनी आँख के शहतीर नहीं देखती, दूसरों की आँख का तिनका उसे खटकता है[१३८], मन चंगा तो कठौती में गंगा[१३९] आदि। अतः विष्णु जी की कहानियों में मुहावरों एवं कहावतों का भी पर्याप्त प्रयोग है।

विष्णु प्रभाकर जी की भाषा अधिक यथार्थवादी है– जिनमें बोलचाल के शब्दों और मुहावरों तथा अन्य जनवादी तत्वों को मिलाकर भाषा को यथार्थ, स्वाभाविक, सजीव एवं प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया गया है। उन्होंने कथ्य को अधिकाधिक संप्रेषित करने की दृष्टि से सूत्रात्मक वाक्यों का प्रयोग भी किया

है। जिससे भाषा की अर्थ-क्षमता और गांभीर्य देखते ही बनती है। 'चाची' कहानी का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, "जब कभी उसका पोता अब तक का होता तो उसके दरवाजे पर एक गंभीर हलचल मच उठी। झाड़ने-फूँकनेवाले, टोने-टोटकेवाले आते और जाते। "वह आपादमस्तक कुरीतियों में डूबी हुई थी। झाड़-फूँक, टोने-टोटके, मान-मनौती, भेंट-पूजा उसके आस-पास यही सब सत्य था।"[१४०] आशीर्वाद के पैर जब धरती पर लग जाते हैं, तब वह शक्ति बन जाता है।[१४१] इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी का कहानीकार अत्यंत समर्थ भाषा का धनी है।

प्रतीकात्मकता– कहीं-कहीं विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों की भाषा प्रतीकात्मक भी बन गई है। स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानी की भाषा में यह गुण अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। विष्णु जी स्वातंत्र्योत्तर पूर्व के काल से कहानी लेखन करते आ रहे हैं, फिर भी उनकी भाषा में प्रतीकात्मकता है। 'कितना झूठ' कहानी में उनकी यह विशेषता द्रष्टव्य है– "उसने देखा, उस ब्रह्मलोक (मैटरनिटी हॉस्पिटल) में अंदर ही अंदर एक गुप्त कोलाहल, एक मधुर वेदना, एक मीठा दर्द जागता चला आ रहा है। सफेद बगुले जैसे कपड़ों में कसी नर्सें तेजी से खट-खट करती डाक्टरनियाँ, स्ट्रेचर या इनवैलिड चेअर थामे सहायक दाइयाँ और बार-बार दरवाजे पर आकर पुकारती हुई मिसरानी-सभी एक नियम से बंधे, सदा तरह मशीन के समान अपना काम करती चली जाती है।"[१४२] विष्णु प्रभाकर लिखित 'चितकबरी बिल्ली' कहानी तो पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक भाषा में लिखी गई कहानी है। इस कहानी का एक उदाहरण देखिए जिसमें बिल्ली को नारी का प्रतीक मानकर कहा गया है– "वह इन बिल्लियों से बेहद परेशान था। वे उसकी चारपाई पर कूदती थीं। उसकी सफेद चादर को खराब कर देती थी। फर्श पर बिछी हुई जाजम को धोते-धोते उसकी पत्नी परेशान हो गई थी। अवसर पाते ही वे दूध, दही और दूसरी चीजों में भी मुँह डाल देती थीं। उसकी पत्नी बार-बार चीख कर कहती, 'इन बिल्लियों ने नाक में दम कर रखा है। इस घर में इतनी बिल्लियाँ क्यों हैं ? 'कभी-कभी वह मजाक करता। कह देता 'घर में बिल्लियाँ ही तो रहती हैं। बिल्ली नारी का प्रतीक है।"

उसकी पत्नी क्रुद्ध होती, तुम्हें शर्म नहीं आती यह कहते। बिल्ली हरजाई नारी का प्रतीक है। वह कभी किसी से प्रेम नहीं कर सकती। वह कभी किसी की नहीं हो सकती।

वह और भी हँसता, और नारी भी तो किसी की नहीं होती। केवल शक्ति की होती है। दूसरी ओर कुत्ते को देखो, एक बार जिसका हो जाता है उसके लिए प्राण दे देता है।"[१४३]

चित्रात्मकता– चित्रात्मकता से अर्थ है कि, पाठक लिखी हुई बात को पढ़कर अपने मानस में सजीव चित्र की कल्पना कर सके। विष्णु जी के शब्दों में चित्र उपस्थित करने की बड़ी सबल शक्ति है। विष्णु जी के विशिष्ट शब्द संचयन से

अनेक स्थानों पर घटनाओं, पात्रों और स्थितियों के चित्र-सजीव साकार हो उठते हैं। परंतु कहीं-कहीं विवरणात्मक व्याख्या के मोह से ऐसे स्थान धुंधले पड जाते हैं। 'चाची' कहानी का यह उदाहरण द्रष्टव्य है–"झुर्रियों से भरा पतला लंबा मुख, कृशकाय पान खाने से भद्दे हुए दांत, लंब पर दबे से नयन लेकिन चमक इतनी की बिल्ली को भी झिझकना पड़े। हँसती तो दोहरी हो जाती, हर वक्त खों-खों करती, सांस ऐसे चलती जैसे धोंकनी। पर जब इठलाकर ही चलती तो आसपास की हवा सांय-सांय कर उठती और अक्सर वह इठलाकर ही चलती थी। जब बोलने लगती तो बडे-बड़े वाकपटु कान दबाकर रफूचक्कर हो जाते। शब्द मोहल्ले के इस छोर से उस छोर तक गूँज उठता।"[१४४]

वातावरण एवं अनुभूत्यात्मक प्रसंग का ही एक चित्रमय उदाहरण देखिए– "सामने देखा, किवाड़ खुले हैं और अंदर का सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है। कोई कमरा नहीं, परदा तक नहीं, पर जो है उसमें नियम है। सामान संक्षिप्त है पर व्यवस्थित है। बीच में एक खाट बिछी है, जिस पर एक पुरुष लेटा है। शायद पति है। उसी के पास एक फर्श पर सरला बैठी है। उसका एक हाथ पति के वक्ष पर है दूसरा एक शिशु की पीठ पर जो अपने तीन भाई-बहनों के साथ माँ के पास धरती पर लेटा है।"[१४५]

आलंकारिता– गद्य के लिए उपमा, रूपक आदि अलंकारों की महत्ता निर्विवाद रूप से स्वीकार की जाती है। इसको स्वीकार करते हुए 'पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की परंपरा' ग्रंथ में डॉ० नगेंद्र जी का वक्तव्य इस बात की पुष्टि करता है। डॉ० नगेंद्र लिखते हैं", जहाँ तक मेरा संबंध है मैं कहूँगा कि बिना उपमा व रूपक की शैली ऐसी ही है, जैसे बिना सूर्य के दिन या बिना चिड़ियों के जंगल।"[१४६] विष्णु जी ने अपनी रचनाओं में भाषा का प्रयोग सर्वत्र अपनी स्वभावगत सहजता से किया है, जिससे यत्र-तत्र, उपमा-रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग अनायास ही हो गया है। आलंकारिता के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं–

"वह पहाडी बस्ती तेज बौछारों में नहा जाती है। देखते-देखते धरती पर पानी उमडता है, आकाश में बिजली चमकती है। प्रमाणित हो जाता है कि यह प्रलयंकर शिव की भूमि है जो जब भी जी में आता है डमरू बजाकर नाच उठते हैं। धरती कांप उठती है। बंद कमरे से उठती बीमारी की दर्दभरी कराहट उसमें डूब जाती है। गोपाल के अंतर का आर्तनाद उभर-उभरकर बिखर जाता है। वह धीमे-धीमे भाई के माथे को सहलाना चाहता है कि चौंक उठता है, जलते तवे पर हाथ पड़ गया हो जैसे--।"[१४७] उसके नाना सुगंधों से सिक्त, स्निग्ध केशपाश में मंदार-पुष्प उसी प्रकार सुशोभित था, जिस प्रकार हिमशिखरों के ऊपर के नीलांबर में इंद्रधनुष। ऊपर सा जो वैराग्य उस पर छाया सी दीखता था, उसने उसके रूप-लावण्य को हिमप्रदेश के संध्याकालीन सूर्य के समान बना दिया था।"[१४८] हिम की कठोरता-सा बदन सूर्य की किरणों में आलिंगन करते सजल बादलों की

अरूणाभा-सा मुख, वनश्री की सुषमा-सा मानस, वह हँसती तो मानो निर्झर खिलखिलाते। श्रम की प्रतिमा वह कभी फेंटा कसे भैंसों के पीछे घूमती, कभी खेत में जल्दी-जल्दी हसियाँ चलाती तो कभी पुआल का भारी बोझ उठाकर जीवन के उतार-चढ़ाव जैसे पथरीले मार्गों पर दौड़ती। इसी तरह दौड़ते-दौडते न जाने किस अनजान क्षण में झरनों का छलछलाता हुआ संगीत, प्रेम के मधुर संगीत में रूपांतरित हो गया।[१४९]

इस प्रकार विष्णु जी की रचनाओं में अलंकारों की मनोरमता यथास्थान विद्यमान है। इससे भाषा में काव्यात्मकता की प्रभावोत्पादकता का सुंदर आविर्भाव हुआ है।

नाटकीयता— पुरातन काल से लेकर आधुनिक काल तक इस प्रकार की भाषा का प्रयोग होता रहा है। इस तत्व से पाठक के मन में उत्साह एवं उमंग की वृद्धि होती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों की भाषा में नाटकीयता का तत्व विद्यमान है। इस संबंध में 'शरीर से परे' कहानी का एक उदाहरण देखिए—

मैं जैसे ही ऊपर चढी, वे बोले, "रश्मि"।

"जी!"

'घूमने आई थी ?"

'जी"

"प्रदीप के साथ?"

"जी!"

"फिर उसे कहाँ छोड़ आयी?"

"वे भी अपने घर गए।"

"और तुम?"

"मैं अपने घर आ गई।"

"यह तुम्हारा घर है?"

"जी हाँ।"

वे सहसा तेज हो उठे, "दुष्टा! दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से। यह तेरा घर नहीं है। मैं तुम्हें अंदर नहीं आने दूँगा।"[१५०]

"मैं नारी हूँ, कहानी का यह उदाहरण देखिए—

धर्मगुरू : चेतना शक्ति कभी निष्क्रिय नहीं होती इच्छाशक्ति असंख्य आतंताइकों को नष्ट कर सकती है।

रंजना : आप प्रमाणित कर सकते हैं उस स्थिति में अपनी चेतनाशक्ति की सक्रियता को?

धर्मगुरु : प्रश्न मेरा नहीं, तुम्हारा है मैं पुरुष हूँ। पुरुष का शरीर अपवित्र नहीं होता।

रंजना : तो नारी का क्यों होता है?

धर्मगुरु : क्योंकि वह प्रकृति है।

रंजना : नहीं, वह इसीलिए होता है कि क्योंकि का निर्माण हर युग में पुरुष ने किया है।

धर्मगुरु : निर्माण सदा पुरुष ही करता है।

रंजना : नहीं धर्मगुरू, निर्माण का विशेषाधिकार नारी के हाथ में है। आप मुझे मूल प्रश्न से हटाकर नारी के अधिकारों की भूल-भूलैया में नहीं भटका ले जा सकते।''[५१]

व्यंग्यात्मकता– विष्णु प्रभाकर जी ने अच्छे कथाकार की तरह कहानी को सब तरह से संभाव्य बनाने की कोशिश की है। व्यंग्य का सहारा लेकर वे अपनी बात को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करते हैं। इस संबंध में 'नई पौध' कहानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''घूमते-घूमते एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचा, जहॉ पाप कभी पुण्य कहकर बेचा जाता था। आज देखता हूँ– बाहर एक बड़े से बोर्ड पर लिखा है– 'ठहरिए, यह वह स्थान है, जहाँ आपके दु:ख-दर्द का इलाज हो सकता है। जहाँ आप सहायता और सहानुभूति पा सकते हैं इत्यादि, इत्यादि।

मुस्करा आया। स्वाधीन देश में सहायता और सहानुभूति भरे बाजार बिकने लगे। कुछ आगे बढने पर शायद बापू के रामराज्य को किसी शो-केस में देख सकूँगा।[५२]

'वे दोनो' कहानी में रमण का व्यंग्य से भरा वक्तव्य देखिए जो बडा तीव्र एवं शोचनीय है– ''गुलामी की जड़ उखाड़ने के लिए प्राण देनेवाले वीर और अपने मालिक के टुकड़ों के लिए जान देनेवाला गुलाम दोनो महान कैसे?''

शायद इसीलिए कि उन दोनों को प्राणों का मोह नहीं था और जिन्हें प्राणों का मोह नहीं होता वे महान हैं।''[५३] देश की राजनीति का व्यंग्यात्मक चित्रण 'भारत माता की जय' कहानी में आया है। बुलुकी और उसका परिवार जो अतिवृष्टि से नष्ट हो गया है और समाचार पत्रों में बाढ और सरकारी सहायता की झूठी चर्चा हो रही है। बुलुकी इस पर व्यग्य बाण चलाती है, यह सब क्या हो गया ? सुनती हूँ कि आदमी चंद्रमा तक पहुँच सकेगा पर अभी तो वह प्यास बुझाने को पानी के लिए तरसता है। मकान भी नहीं है। जीवन-यापन का मूल्य सुरसा के मुँह जैसा बढ़ रहा है। लोग भूखों न मरें, पर यह कंकाल अर्ध-नग्न, बेकार, अपराधी रोगी यह गायब?

बर्तन माँजते वक्त मैले हाथों को देखकर हंसते व्यंग्य से कहती -''कनाट प्लेस, चाँदनी चौक, लिपिस्टक, कर्णफूल, अर्ध-नग्न सुवासित असाई देह, अध-मुँदी पलकें– ।''[५४]

भावात्मकता– भाषा में यदि भाव प्रवणता का गुण न हो तो वह भाषा केवल शब्दों का संचय बनकर मात्र रह जाएगी। व्याकरणिक दृष्टि से सही होने पर भी उसमें

वह आकर्षण नहीं रह पाता, जो पाठक को बांध कर रखे, भाव विह्वल कर दे। विष्णु जी की भाषा में भावप्रवणता का, संवेगों के उत्कर्ष का यह गुण विद्यमान है। विष्णु जी की भावप्रवण भाषा का यह उदाहरण देखिए–जिसमें एक छोटी बच्ची अपने पिता के प्रति आर्द्र-भाव, मोह, आत्मीयता और भावों की संवेदनशीलता अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ उभरकर हृदय को बींध जाती है-- "नीना सोचती है। उसने अपने कानों में पिता को कहते सुना था कि रिश्वत लेना पाप है। लेकिन फिर उन्होंने रिश्वत ली--क्यों ली--आखिर क्यों ?"

पड़ोसिन कहती, उसका खर्च बहुत था, और आमदनी कम। वह बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहता था, और तुम जानो अच्छी शिक्षा बहुत मँहगी है--

मँहगी--बहुत मँहगी थी तो उसने रिश्वत क्यों ली। मँहगी होना क्या होता है,--और अब पिता कैसे छूटेंगे? मौसा कहते थे, 'जज को रिश्वत देते तो छूट जाते है एक जज ने तीन हजार रुपये लेकर एक डाकू को छोड़ दिया था। एक आदमी जिसने एक औरत को मार डाला था उसे भी जज ने छोड़ दिया था। पांच हजार रु० लिए थे– पांच हजार कितने होते हैं। सौ-हजार-दस-हजार लाख- ये कितने होते हैं।[१५५]

और एक दूसरा उदाहरण देखिए- जिसमें मां के मन में डर है जो अपने पुत्र के प्रति आर्द्र वात्सल्य, मोह, आत्मीयता को व्यक्त करता है– "और वह तीव्र वेग से कांपती हुई पीछे हटी, हटती गई : कांपती गई और फिर लडखड़ाकर गिर पडी। लाला चंद्रसेन उधर दौडे : इधर डॉक्टर ने सबसे पहले खिड़की बंद की। फिर सुशील का कपडा उठाया तब सुशील माँ की ओर झुका। वह बेहोशी में बडबडा रही थी-- सुशील अच्छा हो रहा है-- अब कॉलेज जाएगा उसके भाई भी नहीं लौटे थे---नहीं, नहीं, वह शहर नहीं जा सकता-- वह मुझे नहीं छोड़ सकता--"[१५६]

भाषा की इस विशेषता में कहानी का चरित्रांकन मूर्तिमय एवं सजीव हो उठता है। विष्णु प्रभाकर जी की अनुभूतिपरक एवं करुणा प्रधान कहानियों में यह गुण बहुलता से पाया जाता है।

१०. प्रवाहात्मकता–शब्द प्रयोग में लयात्मकता– भाषा की सफलता उसकी प्रवाहात्मकता में है। विष्णु जी की कहानियों में यह गुण विशेष रूप से मिलता है। प्रवाहात्मकता से कहानियों में सजीवता के साथ-साथ विकास को भी बल मिलता है।

भाषा के धारावाहिक प्रवाह को ही लय कहते हैं। काव्य के समान गद्य में भी लय होती है। शब्द संगठन की संरचना विष्णु जी की कुशलता की परिचायक है। उनकी कहानियों में शब्दों के लय में मनोहारिता विद्यमान है। इसका एक उदाहरण है, 'हिमालय की बेटी' कहानी से उद्धृत है।

'रेवती सोचती कि यह सब ठीक–ठीक इलाज न होने के कारण है। काश कि उसके पास पैसा होता। होता तो वह मन के अनुसार इलाज करवाती। पर्वत की बेटी श्रम से नहीं डरती पर आज के युग में पैसा श्रम से नहीं मिलता-- लेकिन जोर पैसे का ही है। तो वह क्या करे--क्या करे---कहाँ से लाए पैसा?

कभी–कभी वह खींझ उठती, 'कितना करती हूँ इनके लिए फिर भी ये हाल है। इनसे तो किशुन अच्छा है। पास-पड़ोस में क्या नहीं देखता। मांगता भी है पर जब मैं एक बार मना कर देती हूँ तो फिर नहीं बोलता और ये है कि जीना दूभर कर रखा है--। 'लेकिन दूसरे ही क्षण वह काँप उठती है, नहीं, नहीं इस चोट ने इन्हें ऐसा कर दिया है नहीं तो ये कितने बड़े हैं, कितने बडे।''[१५७]

विष्णु जी की रचनाओं में कहीं-कहीं सामान्य शब्दों में भी तीव्रगति उत्पन्न कर देने का सामर्थ्य निहित है। यथा–

'यह राखी-- जैसे वह एक इतिहास की पुस्तक थी। उसके पृष्ठ इतनी तेजी से खुलने शुरू हुए कि विश्वनाथ कांप उठा। झुँझलाया-सा जैसे वह अपने आप से बोला—क्या वाहियात बात है। मनुष्य इतना मोहग्रस्त क्यों है? क्यों मैने इस राखी को आज तक संजोकर रखा हुआ है? नहीं-नहीं, मैं इसे नहीं रखूंगा। एक बात भी जो हो गई। वह हमेशा मुझे क्यों जकडे रहें। मुझे अपंग क्यों बनाए रहे ?--''[१५८]

'समझौता' कहानी में आयशा के शब्दों में व्यक्त खींझ उसके अंदर छिपी भावों की अभिव्यक्ति को और भी सचेत करती है– ''मुझे धूलि से उठाकर स्वर्ग के सिंहासन पर बैठानेवाले देवता! तुम्हारे प्रकाश में मैंने इस नए समाज को देखा, तुम्हारी प्रेमवाणी ने मेरे प्राणों में प्रेरणा भरी, पर--मेरे हृदय-धन! यह समाज--यह समाज ओह मैं इस समाज को क्यों दोष दूँ। दोष मेरे अंतर में ही तो छिपा है। समाज ने तो मेरा उससे परिचय मात्र कराया है। हाय! कैसा विषाक्त था वह परिचय कैसा मधुर-मोहक आकर्षण! विष ही तो मोहक होता है आकर्षण पाप में ही है। तभी व्यक्ति पाप करता है। इस समाज ने मुझे यही तो सिखाया-पाप करना चाहिए पर छिपकर---'' ।[१५९]

विषयानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा– विष्णु जी की कहानियों की भाषा विषय एवं पात्रों के अनुकूल है। जहाँ से उन्होंने कथ्य लिया है, वैसे ही भाषाई रूपता प्रदान की है। उनकी कहानियों की मुख्य विशेषता– जैसे पात्र वैसी भाषा है। इसके शिक्षित पात्र शुद्ध हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं तो अशिक्षित एवं आंचलिक पात्र क्षेत्रीय एवं विकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इस संबंध में एक उदाहरण देखिए–

''भाग्य की बात, दो दिन बाद मंगल स्वयं आ पहुँचा। हाथ में लकड़ी और कंधे पर चादर डाले जब तक वह मेरे सामने ही न आ गया मैं उसे पहचान न

सका। वह काफी दुबला हो गया था और चिंता के कारण उसका रंग धुएँ जैसा हो रहा था। मैंने पूछा, "कैसे हो मंगल ? तुम तो आए ही नहीं।"

"बस हुजूर! ऐसा फंसा कि निकलना न हुआ। बहुरिया मरी, मुझे मार गई।"

"हाँ मंगल, हुआ तो बुरा, पर।"

"जी हाँ, पर सबर तो करना ही है। कर लिया है।"[१६०]

नीना उस स्तब्ध वातावरण में उसे जोर-जोर से थपथपाती रही और वह सुबकता रहा, बोलता रहा, "जीजी! आज मौसी ने हमें बासी रोटी दी। सारा हलुआ प्रदीप और रंजन को दे दिया और हमें बस खुरचन दी और जीजी, जब दोपहर को हम मौसी जी के कमरे में गए तो हमें घुडककर निकाल दिया। जीजी, वहाँ हम क्यों नहीं जाने देते? जीजी, तुम स्कूल से जल्दी आ जाया करो। जीजी, पिताजी को जेल में क्यों बंद कर दिया? वहाँ पिताजी को रोटी कौन खिलाता है? हम वहाँ क्यों नहीं रहते? प्रदीप कहता था, तेरे पिताजी चोर हैं--[१६१]

'उसके बदन में कांटे उग आए। जी में आया वह चीखें कि माँ बोली बेटे तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है क्या ? तुम्हें नींद नहीं आ रही। पानी पिओगे? उसने घूरकर माँ की ओर देखा और बरुखी से जवाब दिया, "नहीं।"

"सिर में दर्द है। लाओ बाँद दूँ–" वह तिलमिलाया कि माँ के उठे हाथ को मरोड़ दे, पर ऑखों से आँखें मिल गईं। क्या है यह तरल-तरल इन आंखों में? उसकी अपनी माँ की आँखें भी कभी-कभी इसी तरह तरल हो उठती थी। वह उसको गोद में खींचकर कहती,

"बड़े होकर अच्छे काम करना, दारू को कभी हाथ न लगाना--"

"क्या होते हैं अच्छे काम ? अच्छे काम क्या होते हैं?"[१६२]

काव्यात्मक भाषा– विष्णु प्रभाकर जी की एक और प्रस्तुत विशेषता उनकी काव्यात्मकता है। प्रेम के प्रसंग अभिव्यक्त करते हुए भाषा की यह काव्यात्मकता स्थान-स्थान पर देखी जा सकती है। ऐसे स्थानों पर प्रयुक्त भाषा में सरसता, कोमलता, लयात्मकता और भावावेश दर्शनीय है। काव्यात्मक भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'स्वर्ग सुख उर्वशी! सत्य ही तुम सुंदर हो चिर सुंदर।

"और मानव उस चिर यौवन, चिर सौंदर्य का पुजारी है।

कहते--कहते उर्वशी की मादकता थिरक उठी। पैर गतिमान हुए। नुपूर संकरित हो आए। बंद सीधे होकर तन गएं उरोजों पर झूलते हुए पुष्पहार के फूल एक-एक कर झरने लगे। आंचल मलय पवन की चंचल तरंगों पर बहने लगा, क्षण के सहस्त्रवें भाग में समस्त वातावरण मादक संगीत से आलोड़ित हो उठा।"[१६३]

काव्यात्मक भाषा का दूसरा उदाहरण देखिए– 'उस दिन जैसे ही मैंने घर में प्रवेश किया तो हठात् चौंक आया। एक मुक्त हंसी की मादक धारा सारे वातावरण

को आवेष्ठित किए हुए थी। मेरे तन-मन में जैसे विभोर कर देनेवाले हिल्कोरे उठने लगी। बरबस ठिठक गया और वह मुक्त धारा बहती रही।"[१६४]

भाषा की प्रेषणीयता— विष्णु जी की भाषा शुद्ध, सरल, सहज, परिष्कृत एवं पात्रानुकूल हैं। उन्होंने अपनी भाषा में देशकाल एवं परिवेश का पूर्ण ध्यान रखा है। 'आकाश की छाया में' कहानी के आरंभ में ही वे बहुत तटस्थता से स्पष्ट करते हैं कि अभावग्रस्त देशों की परिपाटी है— बहुत से सिफारिशी पत्र भी उनके साथ—साथ आ रहे थे।.......... उन पत्रों को लिखने या लिखवाने में मंत्री, सचिव, बड़े—बड़े सरकारी अफसर, जन-प्रतिनिधि दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति सभी थे।'[१६५] यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ न वे स्थिति के प्रति स्वीकृति का भाव व्यक्त कर रहे हैं, न वह किसी तरह पक्षधर हैं, न स्थितियों में उभरनेवाली ग्लानि के 'पापबोध' से मुक्ति पाने के लिए ऐसा कर रहे हैं और न कोई दबाव है बल्कि स्थितियाँ जैसी हैं उन्हें उनके समग्र यथार्थ के परिदृश्य में ही रूपायित किया जा रहा है। इस प्रकार भाषा के अत्यंत सहज प्रयोग के साथ संकेत देना उनके शैल्पिक प्रयास का हिस्सा है।

भाषा शास्त्र के अनुसार गद्य के तात्विक विवेचन के लिए व्याकरण के नियमों का पालन करना लेखक के लिए आवश्यक होता है। वाक्यों का समुचित प्रयोग, विराम चिन्हों के प्रति सावधानी, अनुच्छेद आदि की सजगता लेखक की व्याकरणिक क्षमता को दर्शाती है, साथ ही औचित्यपूर्ण वाक्य-विन्यास शैली की गरिमा बढ़ा देता है।

विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी रचनाओं में सरल, संयुक्त और मिश्र सभी प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक और व्याख्यात्मक स्थानों पर अधिकांशतः संयुक्त और मिश्र वाक्यों का प्रयोग हुआ है। विष्णु जी की कहानियों के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं—

"मालनी! बहुत कुछ करना चाहता था तुम लोगों के लिए पर सदा भाषण ही रहा, सादे कपड़े पहनो, सादा भोजन करो, और तुम सब तरह-तरह के पकवानों और कीमती कपड़ों के सपने देखते रहो। तब बच्चे विद्रोही न होते तो क्या होते। अगर मैं जानता कि साहित्य-साधना में यह गति होनेवाली है तो जूता गाँठना, सीखता, पाकेटमारी का पेशा अपनाता मगर, इस गली में पैर नहीं रखता। और तुम्हारी ओर देखता हूँ तो अपने को क्षमा नहीं कर पाता। इस तंगी में, इस कच्चे घर में, तुमने कैसे चलाई मेरी गृहस्थी ? काश तुम विद्रोह कर पाती।'"[१६६]

'सहसा न जाने क्या हुआ धरती बड़ी जोर से कांपी, थरथराई और फिर धस-धस-धरड़-धरड़ के रौख शब्द समूचे वातावरण में गूंज उठे। निमिष मात्र में चीख पुकार हाहाकार, भागदौड़ सब कुछ हो गया। बुलुकी को भागना तक न पड़ा। ऊपर की सारी मंजिल उसके सिर पर से होकर गली में बिखर गई और वह उन क्षणों तक जैसे शून्य में विलीन होकर रह पाई। जब सब कुछ हो गया

तो उसकी चेतना लौटी और वह पागलों की तरह पुकार उठी 'अरे नीलू! ओ गंगू! अरे ओ चित्री ? दौड़ो-दौड़ो, अरे बचाओ-बचाओ।'[१६७]

एक-एक करके न जाने कितनी घटनाएँ उसके मस्तिष्क के पटल पर उभरती रही, मिटती रही, और वह सोचती रही इनमें से कुछ परजीवी हो सकते हैं पर यह पुलिसवाले, इस कुर्सी पर बैठे लोग! ये जनता के सेवक थे तो हमारे रक्षक हैं। ये भी निर्दोष को सताएँगे–'[१६८]

वाक्यरचना की दृष्टि से विष्णु जी की रचनाएँ अत्यंत स्वाभाविक हैं। लंबे वाक्यों से न तो पाठक ऊबता है और न छोटे वाक्यों को पढ़कर रूकता है। जो तथ्य जिस दृष्टिकोण से वांछित थे, उसे उसी भाव और लहजे में व्यक्त किया गया है। इससे न केवल भाषा संयत हुई है अपितु वाक्यों की सहजता और स्पष्टता के कारण वह अत्यंत सक्षम भी हुई है। विष्णु जी ने गतिप्रवाह के लिए प्रायः छोटे-छोटे वाक्यों के स्थैर्य के लिए मिश्र व संयुक्त वाक्यों का प्रयोग किया है।

वाक्यों के सहज प्रयोग के साथ विष्णु जी ने भाषा को भाव-प्रवण बनाने के लिए लोकगीतों का भी आधार लिया है : जिससे भाषा में यथार्थ की सहजता अभिव्यक्त होती रहती है, जैसे 'नदी, नारी और निर्माण' कहानी में नायिका शांताबाई का भावचित्र स्पष्ट करते हैं.. माथे पर बिंदी और बालों में गुलाब लगाए वह थिरकती थी। सिर का बोझ फेंककर वह टोकरी को दोनों हाथों से टोप की तरह ओढ लेती और थिरक थिरककर गा उठती.

नदियाँ पै सांस ढले
कटहल की छांह तले,
साज सजा, राग सुना साज सजा।[१६८]

और एक उदाहरण देखिए– 'आरंभ' कहानी में बच्चे स्कूल मास्टर के साथ हँसी मजाक करते समय लोकगीतों का प्रयोग..

ढाँऊ ढाँऊ ।
कूकड़ा बजाऊ।।
कूकडे में भारी लाल
तीन ढ़ाँऊ साढ़े सात।।''[१७०] और
...तख्ती पै तख्ती।
तख्ती पै रोड़ा।।
गुरुजी मर गये।
लकड़ियों का तोड़ा।।[१७१]

शब्दों के भीतर अनेक अर्थ विद्यमान होते है। विशेष अभिप्राय प्रकट करनेवाले शब्द एक विशिष्ट अर्थ का बोध कराते हैं। इस संदर्भ में 'आधुनिक हिंदी गद्य शैली का विकास' ग्रंथ में डॉ० श्याम वर्मा जी का वक्तव्य बहुत कुछ स्पष्ट करता है। उनका कथन है, ''यद्यपि शब्दों का अर्थ जब विशेष बोध कराता है तब

अर्थ मस्तिष्क में रहता है, किंतु उस अर्थ से शब्द का संसर्ग परस्पर इतना पुराना हो जाता है कि दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता।"[102] विष्णु प्रभाकर जी ने अधिकतर साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है परंतु कहीं-कहीं उनकी भाषा विशुद्ध साहित्यिक रूप भी धारण कर लेती है। जहाँ बौद्धिक उहापोह या तर्क-वितर्क आदि के स्थल हैं।... वहाँ भाषा साहित्यिक और जहाँ भाषा में तीव्रता और सहजता है वहाँ आम व्यवहार की भाषा प्रयुक्त हुई है। शब्दों के अर्थबोध के प्रयास में उन्होंने प्रचलित हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। उसकी रचनाओं में शब्द प्रयोग सबंधी यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि स्वाभाविक रूप से जो शब्द जिस स्थान पर आना चाहिए वह उस स्थान पर आ गया है। भाषा में प्रभावोत्पादकता तभी आती है, जब शब्द साहित्यकार द्वारा बिना किसी प्रयास के यथोचित स्थान पर प्रयुक्त हो जाते हैं और विष्णु जी की भाषा में प्रभावोत्पादकता का यह विशेष कारण माना जा सकता है।

शैली का सैद्धांतिक विश्लेषण– वर्तमान हिंदी कहानी में शैली तत्व को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया जाता है। शैली तत्व के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में मिलते हैं। शैलीगत अभिनवता कहानी के प्रभाव की वृद्धि की दृष्टि से उपयोगी होती है। सामान्य रूप से कहानी की कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण किसी भी शैली में किया जा सकता है। सभी शैलियों की अपनी पृथक सीमाएँ व विशेषताएँ हैं जो कहानी में अभिव्यंजित होती हैं। कहानी की शैली का विवेचन करते हुए 'काव्य के रूप' ग्रंथ में डॉ० गुलाबराय ने उसके समग्र स्वरूप को स्पष्ट किया है। उनके विचार से शैली का संबंध कहानी के किसी एक तत्व से नहीं वरन् सब तत्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पड़ता है। कला की प्रेषणीयता अर्थात दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है।"[103] कहने का तात्पर्य यह है कि रचना से शैली और भाव, विषय दोनों का बोध होता है। इसीलिए वर्तमान कहानी में शैली को न केवल प्रमुखता दी जाती है, वरन् इसे ही कहानी की सफलता का आधारभूत तत्व स्वीकार किया जाता है।

आलोचकों ने शैली के दो पक्ष निर्धारित किए हैं---सैद्धांतिक और तात्विक। शैली के सैद्धांतिक पक्ष में लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव, युग-विशेष का प्रभाव, विषयवस्तु एवं उद्देश्य आदि का संयोजन समग्र रचनाओं में देखा-परखा जाता है एवं तात्विक विवेचन में भाषा तथा उसके अंगोपांगों का विवेचन रहता है। पहले हम यहाँ विष्णु प्रभाकर जी की शैली का सैद्धांतिक पक्ष देखते हैं।

विष्णु प्रभाकर जी की शैली का सैद्धांतिक-विवेचन– विष्णु प्रभाकर हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठित एवं सामाजिक संचेतना के जाने-माने कथा लेखक हैं। जहाँ तक उनकी शैली की सैद्धांतिकता का प्रश्न है, उनकी निजी अनुभूति, पाठक की

अनुभूति से एक प्रमाण हो जाती है। इसी दृष्टि से उनकी शैली उनके व्यक्तित्व से भी संबंध रखती है और उनकी रचनाओं की विषयवस्तु से भी। विभिन्न आचार्यों ने शैली का निर्माण करनेवाले विभिन्न उपकरण माने हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं– आचार्य वामन रीति के मूल-तत्व गुणों में, आचार्य रुद्रट ने समास में, आचार्य दंडी एवं कुलक ने व्यक्तित्व एवं कवि के स्वभाव में शैली के उपकरण माने हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शैली के निर्माण में-ग्रंथाकार के व्यक्तिगत, युग-विशेष में प्रचलित काव्यरूपों एव काव्य रूढियों तथा शास्त्रीय उपस्थापनों की गणना भी करते हैं।

विभिन्न आचार्यों के मतों से स्पष्ट है कि शैली में---

१. साहित्यकार का व्यक्तित्व
२. युग-विशेष का प्रभाव
    अ. काव्य-रूपों का प्रभाव
    ब. साहित्यिक परंपराओं का प्रभाव
३. विषयवस्तु एवं उद्देश्य

भाषा और उसके अंगोपांग की आवश्यकता होती है और इन्हीं से मिलकर शैली का निर्माण होता है।

विष्णु प्रभाकर की शैली में व्यक्तित्व का प्रभाव– विष्णु प्रभाकर जी ने जीवन और उसके व्यवहार को अनुभवों के आधार पर जाना और परखा है। अतः उनमें जीवन के मर्म को, उसके छिपे हुए पहलुओं को अभिव्यक्त करने की शक्ति अधिक सहज है। विषमताओं से जकडे प्रश्नों को उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों से हल करने का प्रयत्न किया है और शायद इन्हीं प्रयास के फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व के आंतरिक एवं बाह्य रूपों में स्थिर तटस्थता आ सकी है। कतिपय रचनाओं में उनका व्यक्तित्व अत्यधिक तीव्रता के साथ उभरकर व्यक्त हुआ है, जैसे 'आकाश की छाया में' 'सत्य को जीने की राह', 'आखिर क्यों ? 'मृत्युंजय' 'मेरा वतन' 'पतिव्रता' 'समझौता' 'चिरंतन सत्य' आदि कहानियों को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। इन रचनाओं के माध्यम से पाठक के सम्मुख जो कुछ भी प्रस्तुत होता है, उससे लगता है कि यह सब लेखक भोगा हुआ, जिया हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओं से भी कहीं-न-कहीं, किसी रूप में उनके व्यक्तित्व का प्रभाव झलकता है।

युग-विशेष का प्रभाव– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक उथल-पुथल यथेष्ट रूप से जनमानस से एवं ज़न-जीवन से जुड़ी है। इस उथल-पुथल एवं विभिन्न आंदोलनों का प्रभाव विष्णु प्रभाकर जी के साहित्य में सर्वत्र दृष्टिगत होता है। नारी-स्वतंत्रता, पुरुषों से समानाधिकार की होड़ एवं आर्थिक सक्षमता-इस स्वातंत्र्योत्तर युग में उभरनेवाले नारी आंदोलन से समग्र रूप में जुड़े हैं।

विष्णु जी का साहित्य युग-चेतना का सही आभास देता है। वह कम अथवा अधिक रूप में परंपरा से प्रभावित भी है। प्रेमचंद जैसी सहजता और युगानुसार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई बौद्धिक चेतना उनकी कहानियों में नई दृष्टिगत होती है। कहानी, सचेतन कहानी, समानांतर कहानी आदि विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों का प्रभाव और मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति, जो इस युग की देन है– उनके साहित्य में सर्वत्र देखी जा सकती है।

विषय-वस्तु एवं उद्देश्य– विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी रचनाओं में द्विमुखी विषय-वस्तु का प्रतिपादन किया है। एक ओर कहीं वे जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण वृत्ति का निरूपण करते हैं तो दूसरी ओर सांसारिक भावभूमि की विवेचना। एक ओर 'आखिर क्यों?' 'छोटा चोर-बड़ा चोर', 'एक और दुराचारिणी', 'चट्टान पर से देखा इंद्रजाल', 'पैड़ियों पर से उडते पदचाप' आदि वृत्ति-निरूपण करने वाली कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं तो दूसरी ओर 'बॅटवारा', 'गृहस्थी', 'आश्रिता', 'एक माँ एक देश', 'अपना–अपना सुख', 'द्वंद्व' जैसी सांसारिक भावभूमि का विवेचन करनेवाली कहानियाँ भी हैं। उनका साहित्य जहाँ एक ओर वैयक्तिक जीवन-दर्शन और मनोविश्लेषण के उद्देश्य से आबद्ध है, तो दूसरी ओर विकृत सामाजिक-पारिवारिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से भी जुड़ा है।

शैली का तात्विक विवेचन– शैली के तात्विक विवेचन से कहानी के कलात्मक आविष्कार का परिचय मिलता है। शैली कहानी के भावपक्ष को तो सफल बनाती है, साथ ही वह उसके कलापक्ष की उत्कृष्टता में भी वृद्धि करती है। शैली के रूप-विधान पक्ष के अंतर्गत प्रत्येक प्रणालियाँ आ जाती हैं, जिनके द्वारा कहानी का निर्माण होता है। शैली के रूप-विधान पर भी लेखक के व्यक्तित्व की गहरी छाप होती है। कहानी के अंतर्गत विविध नवीन प्रवृत्तियों का जन्म होने के कारण शैली के रूप विधान में भी अनेक नए-नए प्रयोग हुए हैं। कहानीकार विभिन्न शैलियों के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। शैली के अभाव में कहानी संगठित एवं परिपक्व होने में असमर्थ रहती है। कहानीकार की विशिष्ट अभिव्यक्ति में आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता, रोचकता, भावात्मकता तथा व्यंग्यात्मकता आदि विशेषताओं के होने से कहानी सशक्त एवं प्रौढ़ होती है। स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिंदी कहानी में शैली क्षेत्रीय प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। इस काल में कहानी लेखन की प्रायः सभी शैलियों का व्यवहार लेखकों द्वारा हुआ है।

शैली के निम्नलिखित प्रकार विद्वानों ने निर्धारित किए हैं—
१. वर्णनात्मक शैली २. आत्मकथात्मक शैली ३. डायरी शैली ४. पत्रात्मक शैली ५. नाटकीय या वार्तालाप शैली ६. रूपकात्मक शैली ७. पूर्वदीप्ति या प्लेशबैक शैली ८. विश्लेषणात्मक शैली ९. काव्यात्मक या भावात्मक शैली १०. मनोविश्लेषणात्मक शैली ११. लघु–कथात्मक शैली १२. मिश्रित शैली १३. स्वैर-कल्पना शैली।

शैलियों के उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में एक और नवीन प्रकार की शैली प्रचलित हुई है, वह है– 'चेतना-प्रवाह शैली। वैसे तो कम अधिक रूप में विष्णु जी ने सभी प्रचलित शैलियों का प्रयोग अपनी कहानियों में किया है।

विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में प्रयुक्त विभिन्न शैलियों का विवेचन :
वर्णनात्मक या अन्य पुरुषात्मक या ऐतिहासिक शैली– कहानी कहने की यह शैली सबसे अधिक प्रचलित है तथा उसे सरलतम भी माना जाता है किंतु वस्तुतः लेखक के वर्णन कौशल की परख इसी शैली द्वारा ही की जा सकती है। इसी शैली में कहानीकार स्वयं एक कथावाचक के रूप में रहता है। कहानी के सभी पात्रों का वर्णन, सभी घटनाओं का चित्रण, परिस्थिति तथा वातावरण आदि सभी को समेटने के लिए कहानी लेखक को उन सब तत्वों का विशेष ज्ञान रहता है। वह पात्रों का स्वयं परिचय देता है, उनके मानसिक संघर्षों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है। आवश्यकतानुसार वह यथास्थान प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करता है, समस्त स्थितियों की अवधारणा करता है। तात्पर्य, यह कि वह स्वयं समूची कहानी का सूत्रधार और उसका विधाता होता है।

इस शैली में सभी मूल उपकरणों के विकास की संभावनाएँ विद्यमान रहती हैं। यह कहा जा सकता है कि केवल यही एकमात्र ऐसी कहानी शैली है, जिसमें कहानी के सभी उपकरण आनुपातिक और संतुलित रूप में समाविष्ट होते हैं। विष्णु जी की 'चाची', 'जिंदगी के थपेड़े', 'मार्ग में', 'भारत-माता की जय', 'बच्चा माँ का था', 'भींगी पलकें', 'जरूरत' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। विष्णु जी की चाची कहानी का यह उदाहरण देखिए–

'उस दिन अचानक चाची के दो मास पूर्व स्वर्गवास होने का समाचार पाकर सन्न रह गया। इतने दिन तक कोई सूचना नहीं, कहीं कोई हलचल नहीं, दूसरा जो अपना है पर जिसकी भाषा अलग, वेशभूषा अलग, खान-पान अलग, नितांत अपरिचित—उसी अपरिचितों से चाची ऐसे दूर जा पड़ी जैसे बरसाती नदी के किनारे।''[१७४]

दूसरा उदाहरण देखिए–

'वे पंक्तिबद्ध भी नहीं बैठे थे। बस बैठे थे। उनके सामने पत्ते पड़े थे और हर पत्ते पर एक रोटी, एक मुट्ठी सोयाबीन और थोड़ा सा बाजरा था, जिसके पत्ते पर कुछ नहीं पड़ा था वह माँग नहीं रहा था। टुकर-टुकर देखना ही जैसे उसकी नियति है। हाँ, नंग-धड़ंग, दुबले-पतले भुक्कड़ बच्चे उन पत्तों पर टूट पड़े थे। मगर उनके चेहरों पर भी मुस्कान की कोई रेखा नहीं थी। शिशु में जो कुछ तरल होता है, उस सबको भूख ने जैसे सोख लिया था। बस शेष रह गई थी एकमात्र मौत की डरावनी छाया, जो अपने डैन फैलाए समग्र अस्तित्व पर छाई हुई थी।''[१७५]

आत्मकथन प्रधान शैली– कहानी की इस शैली को प्रथम पुरुषवाचक शैली भी कहा जा सकता है। इस पद्धति में लिखी गई कहानियों में कहानीकार का रूप कहानी के एक पात्र का हो जाता है। पात्र आत्मचरित्र के रूप में सारी कहानी का वर्णन करता है। ऐसी कहानी में घटनाओ की यथार्थता का पात्र से सीधा संबंध होता है। इस शैली में रचित कहानी में पाठक को सत्य का अधिक आभास होता है। अतएव उस कहानी के पात्रों तथा घटनाओं के प्रति वह स्वभावतः अधिक विश्वस्त रहता है। इसके अतिरिक्त पात्रों के अंतराल तक पहुँचने, इनके मूर्त-अमूर्त तथा सूक्ष्मतम भावों एवं अंतर्द्वंद्वों की अभिव्यक्ति के लिए यह शैली उपयुक्त एवं उत्तम ठहरती है। इस शैली में जो कहानियाँ लिखी जाती हैं वे अन्य शैलियों में लिखी गई कहानियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक मर्मस्पर्शी होती हैं।

इस शैली के प्रयोग से विष्णु प्रभाकर जी की कथा-कृतियों में सर्वप्रमुख विशेषता यह उभरी है कि लेखक में और एक पाठक में पर्याप्त निकटता उत्पन्न हुई है चूँकि इस शैली में लेखक स्वयं महत्त्वपूर्ण पात्र का स्थान ग्रहण करके कथा का प्रत्यक्ष वर्णन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है, अतः प्रभावात्मकता अधिक उत्पन्न होती है। उदा, 'साँझे के साँए', 'द्वंद्व', 'एक और दुराचारिणी', 'जिंदगी एक रिहर्सल', 'एक और कुंती' आदि जैसी कहानियों को देखा जा सकता है। साँझ के साँए कहानी का उदाहरण देखिए–

'एक दिन मैंने अनुभवित किया जैसे मेरे अपने अंतर में कोई मुझे पुकार रहा है। पहचाना, वह मेरा मन था। बोला, "तुम खुश दिखाई देते हो लेकिन हो नहीं।"

चकित स्वर में मैंने पूछा, "कैसे रे!"

वह मुस्कुराकर बोला, "तुम्हारी पत्नी सुशिक्षता है परंतु उसका रूप? क्या वह तुम्हारे योग्य है ?"

एक बारगी काँप आया, "छिः-छिः, क्या बोलते हो ?"

तन का रूप दो दिन की शोभा है। मैं जिस रूप का उपासक हूँ वह हृदय में बसता है।"

मन क्रुद्ध हो आया। बोला, "तुम एकदम झूठे हो।"

"मैं?"

हाँ, तुम !"

मैंने शांत स्वर में कहा, "नहीं-नहीं, मैं सत्य कहता हूँ। विज्ञापन में रूप शब्द तक नहीं था। मैंने सदा यही माना कि शरीर से बढ़कर हृदय की सुंदरता है।"[306] 'एक और दुराचारिणी' कहानी का यह दूसरा उदाहरण देखिए–

'शरबती रोती क्यों है ? क्योंकि गत वर्ष उसके दोनों बच्चे दस दिनों के भीतर चेचक का शिकार हो गए थे, क्योंकि उसका पति शराब पी-पीकर निकम्मा हो गया है, क्योंकि उसकी जालिम सास उसे पीटने के लिए बेटे को शराब पीन को प्रोत्साहित करती है।"

वे सभी शराब पीते हैं और शायद उनकी औरतें पसंद भी करती हैं, क्योंकि पिछले वर्ष पति को लेकर वह उसके पास आई थी और शिकायत करते हुए कहा था, ''मै कहती हूँ, मैं शराब पीने को मना नहीं करती पर इतनी पियो जितनी झेल सको। पी-पीकर अपने को गलाने से क्या फायदा ?''[१०७]

डायरी शैली– कहानी लेखक की डायरी शैली हिंदी कहानी के अपेक्षाकृत परिपक्व और कलात्मक रूप की द्योतक है। डायरी शैली मुख्यतः प्रथम पुरुष में लिखी जाती है। इस शैली में कहानीकार अपनी कृति के किसी पात्र की डायरी के माध्यम से उसके जीवन के विविध क्षेत्रीय विवरण उपस्थित करता है। यह शैली पत्रात्मक शैली से पर्याप्त समानता रखती है। इस शैली के अंतर्गत डायरी के पृष्ठों द्वारा संपूर्ण कहानी घटित हो जाती है। इस पद्धति में लिखित कहानी में कहानीकार पात्रों की दैनिक डायरी की संकल्पना इस प्रकार करता है कि भिन्न-भिन्न घटनाएँ किसी कहानी की श्रृंखलाबद्ध घटनाओं के रूप में दिखाई देने लगती हैं। 'हिंदी कहानी का विश्लेषणात्मक अध्ययन' ग्रंथ में डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा का वक्तव्य इस बात पर प्रकाश डालता है। उनका कथन है, ''व्यक्ति अपने जीवन की अनुभूतियों, अपने भावों-विचारों को अपनी डायरी में बडे ही भावात्मक तथा सजीव ढंग से प्रस्तुत करता है।''[१०८] इस शैली में आत्मविश्लेषण तथा आत्मविवेचन का भी संयोग हो जाता है। इस शैली में लिखी गई कहानियों में प्रभावोत्पादकता अधिक मिलती है। विष्णु जी की 'रात की रानी और लाल गुलाब', 'आघात और मुक्ति', 'मैं आपको उतना प्यार नहीं करती' आदि कहानियों में इस शैली को देखा जा सकता है।

'रात की रानी और लाल गुलाब' कहानी का उदाहरण देखिए –

''१३ जनवरी १९३५–पांच दिन हो गए इस धर्मशाला में लेकिन अब और नहीं। कल आगे चलूँगा, बढता चला जाऊँगा कभी न रुकने के लिए। हम पर विश्वास किए बैठी होगी कि मैं दो-तीन दिन बाद में लौट जाऊँगा। लेकिन नहीं, मैने निश्चय कर लिया है कि मैं इस बार नहीं लौटूँगा। हेम कैसी भोली है, कहती है, 'तुम मेरा त्याग नहीं कर सकते। तुम परमात्मा हो। 'हूँ परमात्मा! शब्दों का यह कैसा मायाजाल है ? किस मायाजाल में मनुष्य अपने को फंसाए रहता है। नहीं, नहीं मैं अब और अपने आपको पराजित नहीं होने दूंगा। मैं जाऊँगा। वह फिर पटक-पटककर मर जाएगी। उसे मर ही जाना चाहिए।''[१०९]

इस डायरी का लेखक रोहित ने अपने मन के गुह्यतम भावों को डायरी के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है। शायद वह प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः इस बात को किसी से नहीं कह पाता-परंतु डायरी में घटनाओं को यथावत लिखकर उसने अपनी क्षीण होती मनःस्थिति का परिचय दे दिया है। इस प्रकार डायरी शैली के माध्यम से 'रात की रानी और लाल गुलाब' के रोहित के मानसिक अंतर्द्वन्द्व और विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति साकार हो सकी है।

पत्रात्मक शैली– पत्रात्मक शैली में कहानी का माध्यम पात्र होते हैं। कहानी में एक या दो अथवा अधिक पात्र होते हैं, जो पात्रों के आदान-प्रदान में संपूर्ण कहानी की सृष्टि कर लेते हैं। कभी-कभी लेखक विचारों, भावों, घटनाओं, व्यक्तियों और अन्य आवश्यक बातों का ज्ञान कराने हेतु पत्र-शैली का आश्रय लेता है। इस शैली में भी कहानी लेखक के तीन रूप प्राप्त होते हैं यथा संपूर्ण कहानी एक ही पात्र द्वारा कह दी जा सकती है, संपूर्ण कहानी कई पात्रों के माध्यम से कहीं जा सकती है। यह पात्र एक व्यक्ति के भी हो सकते हैं और कई पात्रों के भी। जैसे कहानी का आरंभ तथा मध्यभाग का अभिव्यंजन कई पात्रों के द्वारा किया जाता है किंतु कहानी का अंत स्वतंत्र वर्णन या विवेचन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। पत्रात्मक शैली में एक और प्रणाली हाल ही में दृष्टिगत हुई है। जिसमें कहानी का प्रारंभ तथा मध्य का कुछ भाग वर्णन, विश्लेषण तथा आत्मकथन द्वारा किया जाता है। कहानी का अंत एक या दो पात्रों द्वारा किया जाता है। कहानी का रहस्य तथा उसकी सांकेतिकता अंत में पत्र में ही निहित रहती है। सैद्धांतिक रूप से कहानी लिखने की यह प्रणाली आत्मकथात्मक शैली से साम्य रखती है।

विष्णु प्रभाकर जी की 'स्वप्नमयी', 'एक और कुंती', 'उस दिन', 'शरीर से परे', 'नई-ज्यामिति', 'क्रांतिकारी', 'राजकुमार और मछली', 'आकर्षण और मुक्ति' आदि कहानियों में इस शैली का प्रयोग किया गया है। उनकी 'स्वप्नमयी' कहानी 'पत्रों द्वारा ही घटित होती है।' 'एक और कुंती', 'उस दिन' कहानियों में संपूर्ण कहानी एक ही पात्र द्वारा कह दी जाती है। 'शरीर से परे' कहानी के प्रारंभ तथा मध्य का कुछ भाग वर्णन, विश्लेषण तथा आत्मकथन द्वारा किया है और अंत एक-दो पात्र द्वारा किया है। 'उस दिन' कहानी का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है—

"रानी ! स्वंप्न फिर भी स्वप्न है, पर मैं जिसे स्वप्न माननेवाली थी, वह तो ऐसी वास्तविकता है, जो सत्य होने का दावा करती है। याद नहीं पड़ता कहीं पढ़ा था– सत्य तो केवल मनुष्यता है। पर आज तो सत्य नहीं है, वही वास्तविकता सत्य बनने जा रही है। मैं कहूँ, वह बन चुकी है। मनुष्य स्वयं अपने पतन को अपना सत्य मान बैठा है। नियति का कैसा क्रूर व्यंग्य है। मनुष्य मनुष्यता का हवन करके समझाता है, उसने मनुष्य की रक्षा की है।"[१८०]

'राजकुमार और मछली' कहानी का यह दूसरा उदाहरण देखिए– "खेद है कि आपने पुस्तक में बताया रास्ता स्वीकार किया। मैंने आपको पाया और खो दिया। यह मेरा दुर्भाग्य है। पर मैं अब भी आपका आदर करता हूँ। आपसे प्रेम करता हूँ। कहते हैं कि प्रेम फिर-फिर कर मिलता है। यही सत्य मेरी आशा है। कृपा कर आज संध्या को मेरे घर जूठना गिराने आइए।"[१८१]

नाटकीय, वार्तालाप (संवाद) शैली– कहानी में नाटकीयता तथा सजीवता लाने के लिए प्रायः इस शैली का प्रयोग किया जाता है। नाटकीय शैली में प्रायः सारी कथा पात्रों के प्रत्यक्ष वार्तालाप द्वारा उपस्थित की जाती है। कहानी का प्रारंभ

तथा विकास संवादों द्वारा ही किया जाता है तथा अंत भी कथोपकथन के माध्यम से ही होता है। इन कथोपकथनों के बीच-बीच में आवश्यकतानुसार लेखक वर्णन विवरण भी देता चलता है। संवादों की प्रधानता से कहानी में आत्मीयता, कौतूहल तथा आकर्षण की सृष्टि होती है। कहानी में एक प्रकार का धारावाह-सा आ जाता है। पात्रों के चरित्र एवं घटनाओं का विकास संवादों द्वारा ही प्रायः दिखाया जाता है।

इस शैली के माध्यम से कथा में नियोजित पात्रों का भी चरित्रांकन हुआ है। इस शैली का एक रूप प्रथम पुरुष के रूप में स्वगत कथन के रूप में भी मिलता है, जिसका आधार कहानी के किसी पात्र की स्मृतियाँ और अतीत जीवन की घटनाएं हैं। इसका विकास मनोवैज्ञानिक आधारभूमि पर हुआ है।

विष्णु प्रभाकर जी की 'नाग-फांस, धरती अब भी घूम रही है, शरीर से परे, माँ-बाप, तांगेवाला, स्नेह, पतिव्रता आदि कहानियों में नाटकीय संवादों की प्रचुरता है। नाग-फांस कहानी का यह उदाहरण देखिए–

'सुशील की माँ अक्सर कहा करती थी और अक्सर क्या, अब तो कहने के लिए उसके पास एकमात्र यही कहानी शेष रह गई थी। लंबी सांस खींचकर गर्व और वेदना भरे स्वर में वह कहती, भगवान की कृपा से उसने चौदह पुत्रों को जन्म दिया था।'

'सुननेवालों की आँखों में कौतूहल साकार हो उठता। कोई वाचाल पूछ बैठती, "चौदह पुत्र! पर माँ जी, अब तो केवल दो हैं।"

"बेटी! देखने के लिए ये ही दो हैं। वैसे मेरे चार बेटे दिसावर रहते हैं।

"अच्छा कमाने के लिए गए हैं ?"

"हां कमाते ही होंगे।"[८२]

'तांगेवाला' कहानी का दूसरा उदाहरण देखिए–

'उसका दिल कृतज्ञता के भार से दबा जाता था। वे दोनों युवक उसकी दृष्टि में फरिश्ते थे। उसने कई बार मुड़कर उन्हें देखा। फिर सहसा बोल उठा–

"बाबूजी, क्या होगा ?

"किस बात का ?" एक युवक बोला।

"इस झगडे का।"

"एक दिन सब ठीक हो जाएगा।"

"पर कब, जब घर जल चुकेगा ?"

दूसरा युवक मुस्कराया, शायद ?"

तांगेवाला दर्दभरे– स्वर में बोला– "बाबूजी! सबेरे से अब तक कोई सवारी मेरे तांगे में नहीं बैठी।"

"क्यों ?"

क्योंकि मैं मुसलमान हूँ और वे हिंदू थे। तांगेवाला तकरीबन सभी

मुसलमान हैं और जानेवाले ज्यादातर हिंदू। इसीलिए जो भी आता था हिंदू का तांगा ढूँढ़ता था। मुस्लिम बस्तीवाले मुसलमान भी शायद ऐसा ही करते होंगे।"[१८३]

रूपात्मक शैली— इस प्रकार की शैली में पशु, पक्षी, वृक्ष, पत्ते आदि के प्रतीकों द्वारा मानव जीवन की समस्याओं तथा मानवीय अनुभूतियों का चित्रण किया जाता है। इस शैली में लिखित कहानियों में भावपक्ष तथा कलापक्ष का उत्कृष्ट सामंजस्य लक्षित होता है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी 'चितकबरी बिल्ली' कहानी में इस शैली का प्रयोग किया है, जैसे

"सोते-सोते उसकी आँख खुल गई। अंधकार में देख सका कि दो आँखें चमक रही हैं और 'म्याऊँ-म्याऊँ' का शब्द उस भयानक मौन को काँप रहा है। उसे लगा जैसे उसके चारों ओर नाना रूपों में वही स्वर उठ रहा है, जैसे वह उसे अपने में समेट लेगा और फिर वह स्वर और उसका व्यक्तिगत एक होकर रह जाएंगे।"[१८४]

पूर्व-दीप्ति या फ्लैश-बैक शैली— 'फ्लैश-बैक' मुख्यतः सिनेमा-शिल्प से संबंधित शब्द है जिसमें घटना या घटनाओं को तत्काल न दिखाकर किसी पात्र की स्मृति में लौटकर दिखाया जाता है। इसमें संदेह नहीं कि इस तकनीक द्वारा एक ही घटना पर पात्र-विशेष के दोहरे मनोभावों का प्रभाव सरलता से दिखाया जा सकता है। 'हिंदी उपन्यास कला' ग्रंथ में डॉ० प्रतापनारायण टंडन का वक्तव्य इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट करता है। उनका वक्तव्य है, "अतीत परिस्थिति जो जीता हुआ पात्र न केवल उन भावनाओं और विचारों का विश्लेषण करता चलता है, जिनका तत्काल संबंध परिस्थिति से था, बल्कि उस भावना का भी आरोप करता है, जिसका उस परिस्थिति को पुनः सोचते हुए स्वाभाविक है।"[१८५] इस पद्धति का समावेश आधुनिक युग की कहानियों में सफलतापूर्वक हुआ है। इस पद्धति के अनुसार कथाकार कथा कहते-कहते अकस्मात प्रसंग के सूत्र को किसी विगत घटना के सूत्र से जोड़ देता है, जिससे कथा की गति विकास की ओर अग्रसर होती है।

इस शैली में भावात्मकता अधिक होती है। अनुभूति प्रदान होने के कारण यह शैली भी चमत्कारिता की सृष्टि करके पाठकों के हृदय पर प्रभाव डालने में सफल होती है। अपेक्षाकृत अभिनव शिल्प रूप की द्योतक होने के कारण इसके समावेश से कहानी की कलात्मकता में वृद्धि हो जाती है।

विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में इसी शैली का भी खुलकर प्रयोग किया है। 'बेमाता', 'चिरंतन सत्य', 'कितने जेबकतरे', आदि कहानियों में इस शैली का प्रयोग किया गया है। उदा० 'कितने जेबकतरे' कहानी में सपना को याद आ जाता है कि किस तरह उसकी सहेली प्रतिमा ने उसे किसी से प्रेम करने की सलाह दी और उसने सलाह मान ली। आर्थिक तंगी के कारण बार-बार उसे माँ से झिड़की सुननी पड़ती थी।

—माँ ने मशीन चलानी शुरू की लेकिन भविष्य का लेखा-जोखा उतना सरल नहीं था और वर्तमान की बही में हिसाब तभी सही रह सकता था जब अस्मत और अस्मिता दोनो पर दाँव पर लगाया जा सके। एक सीख थी सपना की प्रतिमा। बहुत अंतरंग, बोली एक दिन बहुत स्पष्ट भाषा में, "सभी समस्याएँ सुलझ सकती हैं। किसी से प्रेम करने लग।— उस दिन उसे बार-बार माँ की झिड़की सुननी पडी, "मैं अकेली कब तक खटती रहूँगी। चार-चार मील दौडना पडता है। मुझे काम लाने को। तु न जाने कहाँ खोई रहती है। ये बटन लगाए हैं तूने ? काज कहाँ, बटन कहाँ और–

विश्लेषणात्मक शैली– यह शैली विवेचना अथवा तर्क प्रधान होती है। इस शैली में प्रस्तुत घटना, पात्र, संवाद अथवा वातावरण का सम्यक स्वरूप वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया जाता है। जहाँ पात्र विशेष के चरित्र तथा स्थिति विशेष के विश्लेषण की आवश्यकता प्रतीत होती है वहाँ इस शैली का प्रयोग किया जाता है। यह शैली मुख्यतः मनोवैज्ञानिकता, बौद्धिकता और यथार्थपरक और आदर्श परक रूपों से चलती है। मनोवैज्ञानिकता, बौद्धिकता और यथार्थपरक और आदर्श परक रूपों से चलती है। मनोवैज्ञानिकता शैली में केवल किन्हीं पात्रों के व्यावहारिक और बाह्य कार्यकलापों का ही उल्लेख नहीं होता तो उनके मूल चालक स्रोतों तथा मानसिक पृष्ठभूमि का भी विश्लेषण प्रस्तुत करने की चेष्टा की जाती है। बौद्धिकतायुक्त शैली का आरंभ भी वर्तमान युग में ही हुआ है। कथानक को बौद्धिक प्रश्नों से आवृत्त करके प्रस्तुत किया जाता है। बौद्धिकता प्रधान विश्लेषणात्मक पद्धति का एक रूप विद्रोहात्मक भी है। इसमें नीति, आचार के प्रति विद्रोह, विविध मूल्यों के प्रति विद्रोह तथा सामाजिक परंपराओं के विविध पहलुओं का आधार लेकर विकसित हुआ है। विविध राजनैतिक दर्शनों, विचारधाराओं का पोषण या खंडन विश्लेषणात्मक रूप में करना इसका उद्देश्य होता है। यथार्थपरक विश्लेषण पद्धति का विकास ऐतिहासिक यथार्थवाद का आश्रय लेकर भी हुआ है। ऐतिहासिक कहानियों में इसका समावेश सर्वाधिक सफलतापूर्वक हुआ है। आदर्शपरक विश्लेषण पद्धति में समाज के यथार्थ पक्षों के उद्घाटन के पश्चात् एक ऐसे आदर्श की स्थापना के संकेत मिलते हैं जो जीवन को स्वस्थता की ओर अग्रसर करने वाले होते हैं।

विश्लेषण पद्धति के इन सभी रूपों को विष्णु जी ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। 'आश्रिता', 'सच! मैं सुंदर हूँ', 'बिंब-प्रतिबिंब', 'स्वर्ग और मर्त्य', 'जीवनदीप', 'मणि', 'कलंक और राजनीति' जैसी कहानियों में विष्णु जी ने इस शैली का प्रयोग किया है। उदाहरण :

'आश्रिता' कहानी में अजीत सोना के साथ विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तब सोना इसे विरोध करती है जो एक दुनिया के नीति विचार के प्रति विद्रोह ही प्रकट करता है। "जानती हूँ, नारी के लिए वे इससे अधिक नहीं सोच सकते, परंतु

मास्टर साहब! क्या किसी विधवा के प्रति जरा भी सहानुभूति दिखाना उससे विवाह करने के लिए होता है? क्या प्रेम का अंत प्रेयसी की वासना में ही है? दुनिया ने माना है– विवाह की इच्छा के बिना विधवा युवती कभी किसी के साथ नहीं रह सकती—–"[१८७]

'स्वर्ग और मर्त्य' कहानी के पात्र राजा नहुष जिसने इंद्रपद प्राप्त किया है और इंद्राणी की प्राप्ति की अभिलाषा करता है जो उसके पतन का कारण बनती है। उसके मन में उठनेवाले विचारों का विश्लेषण वह करता है, "उर्वशी का सौंदर्य नग्न है। उसमें वह मादकता कहाँ, जो सौंदर्य की उस एक झलक में थी। वह कुलवधू है। उर्वशी प्रेयसी है। प्रेयसी केवल क्रीड़ा की वस्तु है; वधू सखी भी है, स्वामिनी भी। प्रेयसी नग्न होकर भी पराई है। पत्नी अवगुंठनमय होकर भी अपनी है। तो—–तो मुझे रुचि को प्राप्त करना ही होगा।[१८८]

काव्यात्मक या भावात्मक शैली– यह स्वरूपगत साम्य की दृष्टि से नाटकीय शैली से पर्याप्त निकटता रखती है। भावनाप्रधान कहानियों में इसका व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसमें भावनाओं की अनुभूति के प्रकटीकरण के साथ-साथ प्रकृति चित्रण की पृष्ठभूमि में कोमल कल्पनाओं की व्यंजना भी की जाती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इस शैली को सहज और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जैसे 'जिंदगी के थपेड़े', 'जीवनदीप', 'एक और दुराचारिणी', 'मार्ग में' आदि कहानियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है।

'मार्ग में' कहानी में प्रकृति के रूप का वर्णन मिलता है, "रात्रि का पहला प्रहर था। जंगल में ठंडी हवा फर्राटे से चल रही थी। उसी से उलझकर पत्ते तेजी से फड़फड़ाते और फिर हिलते रहते, वैसे चारों ओर सन्नाटा था। चॉद उग आया था और शरतकालीन आसमान नीचे प्रकाश से भरा पड़ा था। धरती की छाती पर चांदनी इस तरह चिपक रही थी, जैसे सुकुमार शिशु मॉ की छाती से चिपककर मुस्करा उठता है। ऐसे समय में एक युवक खेतों के बीच से जाती हुई टेढ़ी-मेढी पगडंडी पर तेजी से आगे बढ़ रहा था।"[१८९] काव्यात्मक शैली का एक और उदाहरण 'एक और दुराचारिणी' कहानी में मिलता है–

"कई दिनों से शरबती मेरे मन और मस्तिष्क पर छाई हुई है। नहीं जानता, उसके माँ-बाप ने उसक नाम रखते समय उसकी ऑखों में झांका था या नहीं। वे सचमुच शरबती थी। श्यामवर्णी शरबती की वाणी बुंदेलखण्ड की मिठास से छलछलाती थी। कभी-कभी मुझे लगता था कि वह इतना काम कैसे कर लेती है। पर वह जितनी कोमल-मधुर है उतनी ही पुरुष कठोर भी है।"[१९०]

मनोविश्लेषणात्मक शैली– प्रेमचंद युग से लेकर वर्तमानकाल तक हिंदी कहानी के क्षेत्र में जिन शैलियों का व्यवहार हुआ है, उनमें एक प्रमुख शैली मनोविश्लेषणात्मक शैली भी है। आधुनिक साहित्य पर मनोविज्ञान का प्रभाव बढ़ने के साथ ही इस शैली का प्रयोग भी अधिकता से हुआ है। हिंदी कथा साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक

शैली का आरंभ फ्राइड, युंग एडलर आदि मनोविश्लेषण शास्त्रियों के वैचारिक सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। इसमें कथासूत्र मूलतः पात्रों की विविध मनःस्थितियों द्वारा निर्देशित होता है और इसी आधार पर चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मनोविश्लेषणात्मक शैली आधुनिक गद्य साहित्य में सर्वप्रमुख शैली मानी जाती है।

विष्णु प्रभाकर जी की रचनाओं में इस शैली का व्यापक प्रसार पाया जाता है। 'एक और कुंती', 'राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा', 'सच! मैं सुंदर हूँ', देखा जा सकता है। मनोविश्लेषणात्मक शैली उनकी रचनाओं का प्राणतत्व है। उन्होंने इस शैली के प्रश्रय से अनेकानेक कुंठित, रहस्यमय चरित्रों को पूर्ण सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। 'राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा' कहानी में राजनर्तकी तारा का लिखित बयान अपने जीवन की कथा बताते हुए उसके रहस्यमय जीवन पर प्रकाश डालता है। जैसे–

'मेरा जीवन एक खुली हुई पुस्तक है। कम से कम अभी कुछ समय पूर्व तक संसार यही मानता रहा। आकाश का अर्थ है– जहाँ कुछ नहीं केवल रूपहीन वायु है परंतु वैज्ञानिक बताते हैं कि संसार के सारे रहस्य इसी आकाश में भरे पड़े हैं। मेरे निर्द्वन्द्व जीवन में द्वंद्व कुछ इसी तरह समाया हुआ है। मेरे रूप-यौवन की संपदा के नीचे मेरे वंश-कुल की कृपणता भी कुछ इसी तरह छिपी हुई है। स्वयं में उसे अपने स्मृति-पटल से धो चुकी थी, पर सहसा भूचाल आया और गर्त में समाई हुई रेखाएं फिर प्रकाश में चमक उठीं। मेरी जीवनधारा का मार्ग पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया। क्षण-भर में रूप की रानी और रागिनियों की प्रतिमा हत्यानि बन गई।

मनोविश्लेषणात्मक शैली का एक अन्य रूप भी मिलता है, जिसमें लेखक अपनी कहानी में आयोजित पात्रों की विभिन्न मनःस्थितियों के परिचय के साथ-साथ उसकी स्वभावगत प्रतिक्रियात्मक का भी विवेचन करता है, जो अंततः उसके मनोजगत के परिपालन सूत्रों का द्योतन करती है। इस संदर्भ में 'ऑपरेशन' का यह उदाहरण देखिए। कहानी का पात्र संतकुमार अपने मस्तिष्क का इलाज करवाने डॉक्टर के पास आते हैं। लेकिन उसके मन में उठने वाली विचारों की हलचल इतनी तीव्र होती है कि डॉक्टर के साथ वार्तालाप करते समय भावों की अभिव्यक्ति तीव्र हो उठती है– जैसे वह रह-रहकर बोल उठता है, "जिस समय वह मानवता की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए प्राणों को होम कर रहा था उस समय मैंने गीता के कृष्ण की दुहाई दी और शस्त्र-बल का प्रचार किया। जिस समय वह दुश्मन को दोस्त बनाने में लगा हुआ था मैंने लोगों को दुश्मन पर हमला बोल देने को उकसाया-यह सब मैंने किया, मैं जो अपने को उसका शिष्य, उसका साथी कहता था––"[९२]

'शरीर से परे, कहानी की रश्मि के मनोभावों को देखिए–

उन्हें समझना होता था, पर मैं उन्हें कैसे बताती कि मुझे भी कोई समझ

पाता। देख-सुन सब सकते हैं, पर समझने के लिए जो हृदय चाहिए वह हर एक के पास नहीं होता। पर सारा दोषारोपण उन्हीं पर कैसे करूँ। मुझे स्वीकार करना होगा कि उन्होंने मुझे अपने बच्चे की माँ तो बनाया, कभी विलास की सामग्री नहीं माना। घर की स्वामिनी बनाकर जैसे उन्होंने छुट्टी ले ली। विश्वास की इतनी निधि उन्होंने मुझे दी, पर नारी को केवल यह विश्वास ही चाहिए ?"[१६३]

लघुकथात्मक शैली– आधुनिक कहानी-कला में यह भी नवीन प्रयोग है। लघु-से-लघु आकार में जीवन की किसी सूक्ष्म संवेदना की झलक दिखा देना इस प्रकार की शैली की श्रेष्ठता है। शब्दों का चयन, भाषा का सौष्ठव तथा कला का चातुर्य इस शैली में स्पष्ट दिखता है। इस प्रकार की कहानी में वर्ण्य-वस्तु भी संक्षिप्त होती है, पात्र भी एक या दो होते हैं, घटनाएँ भी कम होती हैं किंतु अभिव्यक्ति अत्यंत व्यंजनात्मक और सांकेतिक होती है। विष्णु प्रभाकर जी की 'नई ज्यामिति' कहानी इस शैली में लिखी गई है। इस कहानी का एक उदाहरण देखिए–

माँ को गए महीनों बीत गए। नयनतारा अपने रूप को लेकर निपट अकेली है। शरण भौंरा नहीं है। फिर भी आना-जाना रहता है। इसलिए नयनतारा एक दिन पूछ बैठी, "मैं जीना चाहती हूँ।"

शरण ने कहाँ, 'यह क्या पूछने की बात है ?'

–तभी तो पूछती हूँ। मेरे पास जीने के साधन कहाँ हैं ?

–तुम्हारे पास जीने के साधन नहीं हैं। तुम स्त्री हो, युवती हो और उस पर सुंदर हो तुम्हें––

– रहने दो, रहने दो। मुझसे कौन विवाह करेगा?

– विवाह, शरण अट्टाहास कर उठता है, 'तुम समझी क्या खाक!' हमारे देश में विवाह का लड़की से क्या संबंध है!"

– और किससे संबंध है?

– माँ–बाप कुल मर्यादा और धन-संपदा से।

– और रूप से नहीं?

– ना, ना।

– तो मैं किस योग्य हूँ।

– तुम एक फूल हो और फूल का उपयोग जानना चाहती हो तो भौरों से पूछो।

नयनतारा काँप उठती है, पर दूसरे ही क्षण शरण से उसकी दृष्टि मिल जाती है। और एक दूसरे को चकित करते हुए दोनों हँस पड़ते हैं।"[१६४]

मिश्रित शैली– कहानी-निर्माण की एक शैली यह भी है, जिसमें अनेक शैलियों, जैसे ऐतिहासिक, पत्रात्मक, डायरी, संलाप और आत्मचरित्रात्मक शैली आदि का सहारा लिया जाता है। जैसे विष्णु प्रभाकर जी की 'तीन-तारीखें', 'आकर्षण और

मुक्ति, 'राजकुमार और मछली' आदि कहानियाँ रूप-विधान की दृष्टि से मिश्रित शैली में लिखी उत्कृष्ट कहानियाँ कहीं जा सकती हैं क्योंकि इसमें कहानीकार को इतनी विधानात्मक स्वतंत्रता रहती है कि अपनी कहानी में प्रभाव लाने के लिए चरित्र-चित्रण और विश्लेषण आदि के लिए उन समस्त कहानियों का सदुपयोग कर सकता है, जो उसकी अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण सहज और शक्तिशाली सिद्ध होंगी। इस शैली के माध्यम से कहानी मे सम्यक विकास और इसमें व्यापकता उपस्थित होती है। हिंदी की प्रायः सर्वश्रेष्ठ कहानियॉ इस शैली के अंतर्गत आती हैं। इसमें न प्रयोग का आग्रह होता है न शैली की चमक-दमक। समूची कहानी पूर्ण संयम, गंभीरता और अपूर्व प्रभाव की शक्ति लिए पाठक के सामने आती है। इस प्रकार की कहानी की शैलियों में निरंतर विविधता के दर्शन होते हैं।

'तीन-तारीखें' कहानी का यह उदाहरण देखिए--

'हवा में सरसराहट बढ़ जाती है। स्त्री शायद उसके और पास आ गई है, सट गई है। और शायद इसलिए पुरुष एकाएक शांत होकर कहता है, ''मैं तुम्हारी बात मान सकता हूँ पर एक शर्त है।''

स्त्री का स्वर विजय-गर्व से और भी कामुक हो उठता है, 'तुम्हारी एक हजार शर्तें भी मुझे मंजूर हैं।'

'मुझे रुपया नहीं चाहिए। मैं चाहता हूँ---'

'हाँ, हाँ क्या चाहते हो? जल्दी कहो। प्लीज डार्लिंग। तुम कहोगे करूँगी।'

पुरुष के दृढ़ स्वर में एक क्षण को कंपन-सा उभरता है, फिर वह तुरंत कह देता है, तुम मुझसे शादी करोगी? मेरे दोनों बच्चों की माँ बनोगी?

एक क्षण के लिए मानो सृष्टि की गति रुक जाती है। कुछ स्तब्ध हो रहता है। फिर स्त्री की हँसी का स्वप्न वहाँ गूँजता है और वह खिलखिलाकर कहती है, ''डार्लिंग तुम कैसा मजाक करते हो? नो, नो यू आर नाट सिरियस अबाउट इट। शादी कैसे हो सकती है। नो मेरेज। डार्लिंग, प्लीज ! सोचो तो, तब मैं यहाँ कैसे आ सकती हूँ? तब मैं पत्नी बन जाऊँगी न ! कोई और शर्त डार्लिंग?'

'नहीं और कोई शर्त नहीं।'

'नो डार्लिंग ! मैं सब--कुछ कर सकती हूँ पर शादी नहीं। शादी से प्यार मर जाता है।'[१६५]

स्वैर कल्पना (फैंटेसी) शैली-- वर्तमान जीव में व्याप्त अव्यवस्था, विसंगति और 'एब्सार्डिटी को तिखाई के साथ अतिरंजित बनाकर चित्रित करनेवाली कहानियों में 'फैंटेसी' शैली अपनाई गई है। इन कहानियों में एक संसार की रचना की जाती है, जो ऐन्द्रजालिक या जादुई कहानियों के रचना-संसार जैसा अवास्तविक, आश्चर्यजनक एवं विस्मयपूर्ण लगता है। 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी कथ्य और शिल्प' ग्रंथ में डॉ. शिवशंकर पांडे जी का यह कथन इस बात की पुष्टि करता

है, "फैंटेसी शैली में व्यक्ति अपने समूचे रूप में उपस्थित होता है और अपने समय का साक्षात प्रतिनिधित्व करता है।"[१६६] फैंटेसी अतिरंजित कल्पना के द्वारा कहानी की कथा, 'घटनाक्रम' को एक कल्पना-लोक में प्रक्षेपित कर वर्तमान जीवन की विसंगतियों में प्रत्येक स्तर पर परिव्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करती हुई पाठक को जागरूक बनाती है। जीवन यथार्थ की कटुताओं का तीखा अहसास कराने का यह अचूक व्यंग्यात्मक साधन है। कभी-कभी कथ्य को सीधे-सीधे न कह पाते, जब मजबूरी हो तो वाणी स्वतः ही फैंटेसी शिल्प में ढलने लगती है। विष्णु प्रभाकर जी की 'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी का यह उदाहरण देखिए– कहानी के पात्र पारसनाथ जिन्होंने अपनी जिंदगी में कई बुरी हरकतें की हैं जो आज उसके एक-एक कर औरतों के रूप में सामने आती हैं। पूरी कहानी पारसनाथ के हरकतों को यादों के रूप में प्रस्तुत कर रही है–

'कहीं से कोई जवाब नहीं आया। बस, अंधेरा!'

उसी तरह सिर फोडता रह गया। उन्होंने भी अपने सिर को कई बार ऊपर-नीचे पटका और फिर आँखें बंद करके बड़बड़ाये, "मुझे कुछ नहीं हुआ है। मैं ठीक हूँ। मेरे रहते सुदेश मेरी संपत्ति का उपभोग नहीं कर सकेगा।"

तभी एकाएक जैसे कमरे का सबसे बड़ा दरवाजा खुल गया और धड़धड़ाती हुई डाकगाड़ी अंदर चली आयी और दूसरी ओर से निकल गई। उसके कपड़े फटे हुए थे और बाल बिखरकर हवा में उड़ रहे थे। उसकी आँखों की घृणा रात की तरह चेहरे पर बह रही थी। उसने भयानक डरावनी आवाज में कहा, मेरी ओर देखो, पारसो मुझे पहचानते हो?"

पारसनाथ के हृदय की धड़कन असंख्य तूफानी झकोरों की गति से बढ गई थी। खुली आँखों से एकटक उस मूर्ति को देखते हुए उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो?"[१६७]

चेतना प्रवाह शैली– स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में प्रचलित शैलियों के अतिरिक्त इस नई शैली का भी समावेश हुआ है। कभी-कभी एक ही समय में व्यक्ति मानसिक रूप से परेशान हो उठता है और अपने प्रेम, निराशा, घृणा, सत्य, सफलता, असफलता, परिवार, समाज तथा राष्ट्र की अनेक बातों को सोच जाता है। इस शैली में 'वास्तविक समय' की अपेक्षा 'मनोवैज्ञानिक समय' पर बल दिया जाता है जो मानवीय चेतना के साथ जुड़ा हुआ रहता है। जिसमे कई ऐसी विचार-तरंगें मन में उत्पन्न हो जाती हैं जिसका संबंध लंबे समय से होता है। इससे मनुष्य के अचेतन को समझने में बहुत सहायता मिली है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में इसका खुलकर प्रयोग किया है। 'कितना झूठ', 'साँझ के साएँ', 'सच! मैं सुंदर हूँ', आदि रचनाओं में इस शैली को देखा जा सकता है। 'कितना झूठ' कहानी का यह उदाहरण देखिए–

"उसकी कल्पना कभी उसे अपने निस्पंद, निष्प्राण, जमुना के जल में समाए बच्चे को देखने को विवश करती : कभी मृत्युशय्या पर पडी सत्यभामा दिखाई पडती जो खोई-खोई सी अपनी रिक्त आँखों से कुछ ढूँढ़ने की व्यर्थ चेष्टा में लगी है और इन कल्पनाओं में डूबा वह चौंक पड़ता जैसे कोई पूछ रहा हो, "बच्चा कैसा है?" तभी वह मुस्कराकर यंत्रवत उत्तर देता, "बिल्कुल ठीक है।"

सारे कंपाउंड में निशिकांत के अतिरिक्त अब और कोई नहीं रहा था। उसने गंभीर होकर अपने आप से कहा, "सत्यभामा को बचाने के लिए मेरे अंदर इतनी तीव्र लालसा क्यों---क्यों मैं उसे मरने नहीं देना चाहता ---क्यों मैं ?"

और फिर अपने आप इस 'क्यों' का संभावित उत्तर सोचकर वह बडे जोर से हिल उठा, "नहीं, नहीं--- ।"

लेकिन उसकी वह तीव्र 'नहीं' भी क्यों के संभावित उत्तर की सच्चाई से इन्कार नहीं कर सका।[९८]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कहानी अपने आदिम रूप में वर्णनात्मक तथा इतिवृत्तात्मक थी किंतु धीरे-धीरे कहानी कला का इतना विकास हुआ उसकी मान्यताओं में इतना परिवर्तन हुआ कि शैली की दृष्टि से इस प्रकार कहानी के स्वरूप में नवीन आकर्षण आ गया है।

विष्णु प्रभाकर जी की शैली की विशेषताएँ– विष्णु प्रभाकर जी का झुकाव मनोविश्लेषण की ओर अधिक रहा है। पात्रों के अंतर में उठनेवाले विभिन्न विचारों और भावनाओं में जो द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न होती है उसका सजीव चित्रण विष्णु जी ने किया है। अंतर्द्वंद्व को साकार रूप में प्रस्तुत करना उनकी शैली की विशिष्टता मानी जाएगी। 'गृहस्थी' कहानी का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है। वीणा के पति हेमेंद्र घर में निकम्मे बैठते हैं, कुछ कमाते नहीं, साथ दो बच्चों का पालन-पोषण उसे ही करना पड़ता है। गृहस्थी जीवन की पीड़ा उसे तंग करती है। प्रस्तुत कहानी में उसकी स्थिति चित्रवत इस तरह साकार हुई है–

आपको काम करना है या नहीं? आप कभी कुछ सोचते भी हैं? शीघ्रता से बीच में टोंककर हेमेंद्र ने कहा, "यही तो मुसीबत है। इतना सोचता हूँ कि फुरसत नहीं मिलती।"

"खाक सोचते हो। कुछ सोचते हो तो ये दिन क्यों देखने पड़ते? तुम जो एकदम निकम्मे हो गए हो। तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि घर की दियासलाई ही दिखा दो।--- वीणा तिलमिला उठी। उससे वहाँ खड़ा नहीं रहा गया। बडबड़ाती हुई अंदर चली गई और हाथ के गिलास को बड़ी तेजी से जूठे बर्तनों को फेंक दिया। जोर का शब्द करता हुआ वह दूर जा पड़ा। फिर उठाया और दुगुनी तेजी से यथास्थान रख दिया। उसके सामने ढेर सारा काम करने को पड़ा है। बर्तन माँजने हैं, दाल बीननी है। फिर कहीं से आटा लेकर रोटी बनानी है क्योंकि उनके कोई एक मित्र आनेवाले हैं। "जी में आता है जिस किसी को

कह देते हैं, पर यह नहीं सोचते कि खाना आएगा कहां से? कोई बात है, मुझे दूर-दूर भटकना पड़ता है और ये है कि आराम से लेटे-लेटे जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाते रहते हैं। दोस्तों के साथ ऐसे कहकहे लगाते हैं कि आसमान फटने लगता है।—''[१९९]

विष्णु प्रभाकर जी की रचनाओं में अनेक स्थानों पर ऐसे प्रसंग उत्पन्न हुए हैं कि जहाँ पात्र क्रोध और आवेश में क्रियाकलाप करता है। विष्णु जी ने ऐसे आवेशमय स्थानों पर जिस शैली का प्रयोग किया है, वह निःसंदेह पात्रों के आवेश को सक्षम रूप में उभारने में सफल रहे हैं 'वे दोनो' कहानी में हरि के उग्र आवेश का उदाहरण द्रष्टव्य है—

हरि और रमण दोनों अपने मित्र नारायण की पत्नी और माँ को लेकर रेल से सफर के लिए निकले हैं। नारायण को १९४२ की क्रांति में रेल की पटरी उखाड़ने के कारण फाँसी पर चढ़ाया जाता है और सरकार किसी दूसरे को ही विक्टोरियाक्रास देकर सम्मानित करने जा रही है। दोनो को इस बात का पता चल जाता है। उनको बैठने के लिए जगह भी नहीं मिलती। एक वृद्धा के साथ अपना क्रोध प्रकट करते हैं। "तुम्हारे इन साथियों ने जो फौज की भाड़े की वर्दी पहनकर अपने को अफलातून का बाप समझा है। वे नहीं जानते कि जिन्हें वे दुरदुराना चाहते हैं वे सदा मौत के साथ खेलते हैं। यह बात दूसरी है कि तुम्हारी तरह उन्हें सिर काटने का पारितोषिक नहीं मिलता, बल्कि कुछ अंधे लोग उन्हें घृणित समझते हैं और बैठने को स्थान देने से इन्कार करते हैं। और चौधरी की तरह मुड़कर बोला, ख्याल न करना चौधरी साहब! दुनिया में सब इसी तरह चलता है। एक का पुण्य, दूसरे का पाप है, पर आपस में यह कड़वाहट नहीं होनी चाहिए।''[२००]

कभी-कभी पात्र अथवा लेखक स्वयं अपने मन का विषाद और कड़वापन निकालने के उद्देश्य से अपना कथन अथवा तर्क इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि उस अभिव्यक्ति में एक विशिष्ट चुभन एवं व्यंग्यात्मकता होती है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में यत्र-तत्र इसी व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। 'पिचका हुआ केला और क्रांति' कहानी का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है जिसमें एस.पी.साहब के छोटे भांजे और उनमें चल रहे, संवाद द्वारा निम्नवर्ग के लिए उच्च वर्ग की ओर से दिखाई देनेवाली झूठी अनुभूति पर व्यंग्य किया है—

उस ओर से अनभिज्ञ राकेट उड़ाते-उड़ाते उन एस.पी. साहब के छोटे भांजे ने बड़े करुण स्वर में कहा, "मामा इनके माँ-बाप इन्हें स्कूल नहीं भेजते? इन्हें खाने को क्यों नहीं देते। इन्हें पहनने को कपड़े क्यों नहीं देते?"

वह बोला, "गरीब तो हमारी आया भी है। पर उसके पास तो चांदी के गहने हैं।"

"वह जो हम लोगों की कृपा से है। अब तुम ही उसके लिए चांदी की ब्रूज ले जा रहे हो।"

छोटे भांजे ने बूच को जेब से निकाल कर उछाला, हँसा और कहा, "मामा, क्यों न सब गरीबों को मून पर भेज दिया जाए।"

मामा और बड़े भाई खूब हंसे। भाई ने कहा, "वहाँ तो अमीर लोग ही जा सकते हैं। गरीब कैसे जा सकते हैं?"

मामा बोले, "हम भी नहीं जा सकते। और ये लोग तो बेहद जाहिल हैं। असल में प्रकृति जिनको जैसा बनाती है वैसे ही वे रहते हैं। फिर भी हम उनकी गरीबी दूर करने की कोशिश में लगे हैं।"[२०१]

उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में पात्र का चित्र व दृश्य चित्र उपस्थित करनेवाली शैलियाँ भी देखी जा सकती हैं। पात्र का चित्र उपस्थित करनेवाली शैली का उदाहरण 'मारिया' कहानी में प्रस्तुत है–

"वह दुभाषिया एक युवती थी। मैं आज भी विश्वास से नहीं कह सकता कि वह सुंदरी थी या नहीं, पर निर्विवाद रूप से उसमें जादुई आकर्षण था। उसकी कटि अत्यंत क्षीण, कंधे पुष्ट और वक्षस्थल उभरा हुआ था। उसकी काली विनोदपूर्ण आँखें मेरी सबसे बडी कमजोरी थी। वह अक्सर बात-बे-बात हंस पड़ती और तब उसके मोती जैसे सफेद, छोटे-छोटे एक जैसे दांत मेरे वक्ष में चमक उठते।"[२०२]

विष्णु प्रभाकर जी की शैली के बारे में और एक महत्त्वपूर्ण बात कही जा सकती है कि उनकी शैली में जीवन के साधारण स्तरों पर व्यवहृत अनुभूतियों के मार्मिक क्षणों को साबित करके सुरक्षित रखने की कला है। 'फोटोग्राफिक' यथार्थ और अर्थ अन्वेषण की दृष्टि से निरपेक्षता ये तत्व विष्णु जी की कृतियों को जीवन और शक्ति प्रदान करते हैं। भोगी हुई विषयवस्तु को दर्शक सुलभ बनाने में उनका शिल्पी अत्यंत निपुण है। 'साहित्य कोष' में डॉ ओमप्रकाश शर्मा का यह कथन इस बात पर प्रकाश डालता है। वे लिखते हैं कि, "विष्णु जी की भाषा में एक संस्कारजन्य अभिजात्यता व्याप्त रहती है पर उसे उन्होंने दुरूहता से बचाया है। इनका शिल्प चमत्कारी नहीं है। वे वस्तुतः जीवन संवेदना के कहानीकार हैं। कलात्मक सौष्ठव के नहीं।"[२०३] इसका अभिप्राय उनका शिल्प उल्लेखनीय है। वास्तव में प्रयासहीन शिल्प में भावों की सशक्त अभिव्यक्ति ही उनकी कहानियों की महत्त्वपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति है।

तात्पर्य, विष्णु प्रभाकर जी ने अच्छे कथाकार की तरह कहानी को सब तरह से संभाव्य बनाने की कोशिश की है, जो बात सर्वथा श्लाघ्य है। इस संदर्भ में 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी को देखा जा सकता है। दस साल की बच्ची न्यायमूर्ति से यह बात कह सके, इसका ख्याल रखा है और अच्छी कहानी से शिल्प–सौष्ठव के अलावा संभावना से ज्यादा की माँग नहीं की जा सकती। कहानी के अंतिम प्रभाव को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कथाकार ने जो युक्तियाँ

जुटाई हैं, वह न जुटाई गई होती तो कहानी कच्ची और अविश्वसनीय रह जाती और उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता। यों छोटे बच्चों के मन में उस विचार का आना ही वर्तमान व्यवस्था पर गहरा व्यंग्य है। विष्णु प्रभाकर जी ने उस विचार को वाणी देकर अपनी बात पूरे जोर से कही है और कहानी का अंतिम वाक्य उस व्यंग्य को और भी गहरा बना देता है कि 'धरती अब भी घूम रही है'। इस प्रकार विष्णु जी की भाषा में यथार्थ गुणों का समावेश हुआ है। उन्होंने भाषा के रूढ संस्कारों का निराकरण कर उसे सहज और स्वाभाविक बनाया है। उसमें प्रवाह तथा ओज तो है ही, अर्थवत्ता तथा गरिमा भी है। उन्होंने आज की नवीन परिवर्तनशीलता को पूर्णतया आत्मसात कर लिया है और एक लिहाज से वे नई कहानी के अधिक निकट पाते हैं।

इन विशेषताओं के बावजूद भी विष्णु प्रभाकर जी की शैली कई स्थानों पर कमजोर भी नजर आती है। उनकी 'सलीब' कहानी भ्रष्टाचार का विरोध मूल्य-स्तर पर करती है। कहानी का उपसंहारात्मक अंत कहानी के संपूर्ण प्रभाव को तो कम कर ही रहा है, वह कहानी-शिल्प के प्रचलित मुहावरे से भी अपनी संगति नहीं रख पाता है। 'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। स्त्री-पुरुष प्रेम संबंधों पर भी विष्णु प्रभाकर जी ने कहानी रचना की है किंतु इन कहानियों के कथ्य में कोई नवीनता नहीं दिखाई देती। 'आश्रिता', 'शरीर से परे', 'बस इतना भर ही', 'एक और दुराचारिणी' आदि कहानियाँ प्रेम की 'विभिन्न स्थितियों को व्यक्त करती सामान्य सी प्रेम कहानियाँ हैं जिनमें कहीं आदर्श, कहीं भावुक रोमान्स से लेखनीय दृष्टि युक्त नहीं हो पाती है जिससे वे प्रेम-चित्रण की अमाप गहराइयों से साक्षात्कार नहीं कर पाते हैं। कहीं-कहीं उनकी कहानियों में एक ऐसा नाट्यधर्म स्वभाव पाया जाता है जो कहानी की आत्मा को क्षत करता है, यथा 'भोगा हुआ यथार्थ' कहानी में घटनाओं के तारतम्य में 'बार-बार विविध आत्माओं का अवतरण' इस रूप में हुआ है कि लगता है कि फँटेसी बुनते-बुनते विष्णु प्रभाकर जी का नाटककार कहानी पर हावी हो जाता है और कहानी अत्यधिक कल्पित बनकर रह गई है।

भावुकता का अतिशय प्रयोग, घटनाओं को नाटकीय मोड़ देना, संयोगों की भरमार आदि विष्णु जी की कहानियों की कमजोरियाँ हैं। इस संदर्भ में एक बात यह भी हो सकती है कि जिस समय उन्होंने कहानी लेखन आरंभ किया उस समय जरूर इन तत्वों का महत्त्व रहा होगा किंतु इन्होंने हिंदी के विकास के विभिन्न सोपानों को देखा है फिर भी वे अपनी गढ़ी हुई लीक से नहीं हट पाए हैं। 'नाग-फांस (१९५६) की रचना है पर उसमें भी माँ के हृदय की भावुकता का अतिरेक तथा संयोग की आकस्मिकता विद्यमान है। 'खिलौने' (१९६४) की नई पुरानी पीढ़ी के संघर्षों को उभारने का प्रयास करती है और माता-पिता पुत्र के प्रेम विवाह को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं पर पूरी कहानी में वही आकस्मिक

संयोगों की नाटकीयता विद्यमान है। 'अंधेरे आंगनवाला मकान' (१९७७) कहानी आज के जीवन में आए अलगाव को लेकर लिखी हुई है। इसकी कथा भी भावुकता से भरी हुई है। इसका अलगाव पात्रों के जीवन की विवशता न होकर एक चुहुलबाजी-सी लगती है। 'रायबहादुर की मौत' कहानी भी संयोग की आकस्मिकता के शिल्प पर टिकी हुई है।

इन कुछ अभावों के होते हुए भी विष्णु प्रभाकर जी की कहानियाँ समकालीन कथा-लेखन में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती हैं। उनकी सुदीर्घ लेखन यात्रा में विभिन्न पडावों से गुजरती हुई उनकी कहानियाँ कभी भी संदर्भ-च्युत नहीं हुई हैं। सदैव प्रासंगिक बने रहना किसी भी कलाकार की सफलता का बहुत बडा रहस्य है। विष्णु प्रभाकर जी सफल कहानीकार तो हैं ही फिर भी उनकी भाषा में प्रेमचंद जी के समान सहजता और सरलता के साथ जीवनधर्मी गंध लिए हुए हैं। प्रेमचंद जी के भाषा-संस्कार को जिन लोगों ने सफलतापूर्वक ग्रहण कर उसे विकसित किया निश्चय ही उनमें विष्णु प्रभाकर जी का नाम महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ सूची

१. हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास– डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० १
२. भारत विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य– डॉ० प्रमिला अग्रवाल, पृ० २७६
३. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग – डॉ० त्रिभुवन सिंह, पृ० २४०
४. कहानी कला की आधार शिलाएँ – डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र, पृ० १२६, १३०
५. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन – डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा, पृ० ७६
६. स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी कहानी–कथ्य और शिल्प – डॉ० शिवशंकर पाण्डेय, पृ० १५७
७. प्रेमचदोत्तर कहानी साहित्य–डॉ० राधेश्याम गुप्त, पृ० २१३
८. भारत विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य– डॉ० प्रमिला अग्रवाल, पृ० २८२
९. लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश– (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३१७
१०. आधुनिक हिन्दी कहानी में चित्र–विधान – डॉ० रामरतन सिंह भ्रमर, पृ० ६, ७
११. पुल टूटने से पहले – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३८७
१२. चितकबरी बिल्ली – (एक आसमान के नीचे), पृ० १०१
१३. स्वर्ग और मर्त्य – (साँचे और कला), पृ० ८
१४. रहमान का बेटा– (रहमान का बेटा), पृ० ३१
१५. जीवन दीप – (संघर्ष के बाद), ८६
१६. कितना झूठ – (रहमान का बेटा), पृ० ८३
१७. भीगी पलकें – (संघर्ष के बाद), पृ० २१०
१८. नींद नहीं आती – (खंडित पूजा), पृ० ८०
१९. ऑपरेशन – (सफर के साथी), पृ० ६४
२०. एक और कुंती – (एक और कुती), पृ० ६
२१. आदर्श, आवेग और सत्य – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० ६
२२. स्वर्ग और मर्त्य – (साँचे और कला), पृ० ११
२३. सच ! मैं सुंदर हूँ – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० १७
२४. सत्य को जीने की राह ' (आखिर क्यों ?), पृ० ६६
२५. वही, पृ० ६६
२६. ये बंधन – (आखिर क्यों ?), पृ० ११८
२७. भूख और कुलीनता – (एक और कुंती), पृ० १०६
२८. नाग–फाँस – (रहमान का बेटा), पृ० ४५
२९. सुराज – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ११५
३०. पर्वत से ऊँचा – (संघर्ष के बाद), पृ० २६
३१. भूख और कुलीनता (संघर्ष के बाद), पृ० ५८
३२. मुरब्बी – (आखिर क्यों ?), पृ० ६६
३३. वही, पृ० ६७
३४. सफर के साथी – (आखिर क्यों), पृ० १०३
३५. ये बंधन – (आखिर क्यों ?), पृ० ११६
३६. तांगेवाला – (संघर्ष के बाद), पृ० ६७
३७. नारी चरित्रम् – (खंडित पूजा), पृ० २४
३८. मूड – (सफर के साथी), पृ० ७१
३९. द्वंद्व – (सफर के साथी), पृ० १०८
४०. वही, पृ० १०८
४१. चिरंतन सत्य – (एक और कुंती), पृ० ८७

४२. रहमान का बेटा – (रहमान का बेटा), पृ० २५
४३. वही, पृ० २५
४४. सत्य को जीने की राह – (एक और कुंती), पृ० ३
४५. दूसरा वर (रहमान का बेटा), पृ० १६४
४६. रहमान का बेटा (मेरा वतन), पृ० ३८
४७ ये बधन – (आखिर क्यों ?), पृ० ११५
४८ सघर्ष के बाद (सघर्ष के बाद), पृ० २३८
४९ एक और कुंती – (एक और कुती), पृ० १५
५०. मेरा बेटा – (आखिर क्यों ?), पृ० १२८
५१ नींद नहीं आती – (खंडित पूजा), पृ० ७६
५२ मुहूर्त टल गया – (सफर के साथी), पृ० २८
५३. अब्दुल्ला – (सफर के साथी), पृ० ३३
५४ मेरा वतन – (सफर के साथी), पृ० १०५
५५ तिरछी पगडडियॉ (एक और कुंती), पृ० ५६
५६. बिब – प्रतिबिंब – (मेरी तैंतीस कहानियॉ), पृ० ६४
५७ रहमान का बेटा – (रहमान का बेटा), पृ० ५६
५८. वही, पृ० २९
५९. वही, पृ० ४९
६० सफर के साथी – (सफर के साथी), पृ० ६८
६१ मारिया – (खिलौने), पृ० ४१
६२ नई पौध – (सघर्ष के बाद), पृ० ४४
६३ मेरा वतन – (सफर के साथी), पृ० १०१
६४. एक और कुंती – (एक और कुंती), पृ० ४०
६५ आदर्श, आवेग और सत्य – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० ८
६६. अगम–अयाह – (रहमान के बेटा), पृ० २०
६७. गृहस्थी – (धरती अब भी घूम रही है), पृ० ३६
६८ सफर के साथी – (आखिर क्यों ?), पृ० १०२
६९ वही, पृ० १०२
७०. मेरा बेटा – (आखिर क्यो ?), पृ० १२४
७१. राखी – (संघर्ष के बाद), पृ० २२०
७२. तिरछी पगडंडियाँ (एक और कुंती), पृ० ६२
७३. पाषाणी – (दस प्रतिनिधि कहानियाँ), पृ० ८७
७४. कितना झूठ - (रहमान का बेटा), पृ० ८३
७५. नई पौध – (संघर्ष के बाद), पृ० ४६
७६. कैक्टस के फूल – (सफर के साथी), पृ० ४२
७७. खंडित पूजा – (खडित पूजा), पृ० ३३
७८. कलाकार की खोज – (खंडित पूजा), पृ० १८०
७९. पाषाणी – (दस प्रतिनिधि कहानियाँ), पृ० ८७
८०. कैक्टस के फूल – (सफर के साथी), पृ० ८७
८१. वही, पृ० ४१
८२ चिरंतन सत्य – (एक और कुंती), पृ० ६
८३. पाषाणी – (दस प्रतिनिधि कहानियाँ), पृ० ८६

८४. धरती अब भी घूम रही है – (धरती अब भी घूम रही है), पृ० ७
८५. वही, पृ० १०
८६. रहमान का बेटा – (रहमान का बेटा), पृ० २६
८७. नई पौध (संघर्ष के बाद), पृ० ४२
८८. वही, पृ० ४६
८६. नई पौध – (संघर्ष के बाद), पृ० ४४
६०. पिचका हुआ केला और क्रांति – (एक और कुंती), पृ० ६६
६१. नई पौध – (संघर्ष के बाद), पृ० ४४
६२. भारत माता की जय – (संघर्ष के बाद), पृ० ८६
६३. आदर्श, आवेग और सत्य – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० १
६४. बिंब–प्रतिबिंब – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० ६७
६५. स्यापा मुका – (आखिर क्यों), पृ० ५२
६६. नई ज्यामिति – (साँचे और कला), पृ० ३६
६७. कैक्टस के फूल, (साँचे और कला), पृ० ४२
६८. पैडियों पर उठते पदचाप – (एक आसमान के नीचे), पृ० १३६
६६. वही, पृ० १४५
१००. वही, पृ० १४५
१०१. नांग–फांस – (रहमान का बेटा), पृ० ४६
१०२. वही, पृ० ६८
१०३. वही, पृ० ६६
१०४. नदी, नारी और निर्माण – (खंडित पूजा), पृ० २०४
१०५. साँचे और कला – (साँचे और कला), पृ० २२
१०६. सफर के साथी – (सफर के साथी), पृ० १२०
१०७. कैसी हो मरिअम्मा – (एक और कुंती), पृ० ३०
१०८. वही, पृ० ६४
१०६. स्यापा मुका (आखिर क्यों ?), पृ० ५२
११०. वही, पृ० ५३
१११. एक अनचीन्हा इरादा – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३६६
११२. नारी चरित्रम् – (खंडित पूजा) पृ० २८, २६
११३. सत्य को जीने की राह – (एक दिन कुंती), पृ० ६, ७
११४. उस दिन – (खडित पूजा), पृ० ११६
११५. एक और कुंती – (एक और कुंती), पृ० २५
११६. माँ–बाप – (खिलौने), पृ० १००
११७. एक माँ, एक देश (खिलौने), पृ० १००
११८. वही, पृ० ५८
११६. नींद नहीं आती – (खंडित पूजा), पृ० ७७
१२०. उस दिन – (खंडित पूजा), पृ० २३
१२१. नारी चरित्रम् – (खंडित पूजा), पृ० २३
१२२. वही, पृ० २३
१२३. तूफान – (एक और कुंती), पृ० २७
१२४. मंजिल – (एक और कुती), पृ० ८४
१२५. रहमान का बेटा – (रहमान का बेटा), पृ० २

१२६. वही, पृ० २
१२७. हरिश पांडे, (रहमान का बेटा), पृ० ८
१२८. रहमान का बेटा – (रहमान का बेटा), पृ० २०७
१२९ सॉचे और कला – (सॉचे और कला), पृ० २०
१३० मुरब्बी – (मेरा वतन), पृ० २८
१३१ अगम – अथाह – (आखिर क्यों), पृ० ६०
१३२ नई पौध – (सघर्ष के बाद), पृ० ४४
१३३ अगम–अथाह – (धरती अब भी घूम रही है), पृ० १८
१३४ सबल – (धरती अब भी घूम रही है), पृ० ६५
१३५. राजकुमार और मछली – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० २१५
१३६. अरुणोदय – (रहमान का बेटा), पृ० १६३
१३७. रहमान का बेटा – (रहमान का बेटा), पृ० २०८
१३८. आत्मग्लानि (रहमान का बेटा), पृ० ६०
१३९. पतिव्रता (सघर्ष के बाद), पृ० ६०
१४०. चाची (धरती अब भी घूम रही है), पृ० १५२
१४१. वही, पृ० ६६
१४२ कितना झूठ (धरती अब भी घूम रही है), पृ० ८८
१४३ चितकबरी बिल्ली – (एक आसमान के नीचे), पृ० १०१, १०२
१४४. चाची (धरती अब भी घूम रही है), पृ० १५१
१४५. आकाश की छाया मे – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २७४
१४६ पाश्चात्य काव्यशास्त्र परंपरा, डॉ० जगेन्द्र, पृ० ५५
१४७. तूफान – (एक और कुंती), पृ० २७
१४८. राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा (एक और कुंती), पृ० ६६
१४९. हिमालय की बेटी (धरती अब भी घूम रही है), पृ० १३८
१५० शरीर से परे – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २४२
१५१. मैं नारी हूँ – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २४२
१५२ नई पौध – (सघर्ष के बाद), पृ० ४३
१५३ वे दोनो – (सफर के साथी), पृ० ५२
१५४. भारत माता की जय (सघर्ष के बाद), पृ० ६२
१५५. धरती अब भी घूम रही है – (धरती अब भी घूम रही है), पृ० १
१५६. नाग–फास – (धरती अब भी घूम रही है), पृ० ५५
१५७. हिमालय की बेटी (धरती अब भी घूम रही है), पृ० १४७
१५८. राखी – (संघर्ष के बाद), पृ० २१७
१५९. समझौता – (सॉचे और कला), पृ० ८२
१६०. अपना–अपना सुख – (खंडित पूजा), पु० ३४
१६१. धरती अब भी घूम रही है – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २६४
१६२. अकूर का. अहम् – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २६४
१६३. स्वर्ग और मर्त्य – (साँचे और कला), पृ० ६
१६४. राजम्मा (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३२८
१६५. आकाश की छाया में – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २७०
१६६ शेष–कथा– (खिलौने), पृ० १५३
१६७. भारत–माता की जय – (संघर्ष के बाद), पृ० ८८

१६८. आस्था का द्वंद्व – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४४३
१६६. नदी, नारी और निर्माण – (खंडित पूजा), पृ० २०८
१७० आरंभ – (खंडित पूजा), पृ० ११२
१७१. आरंभ – (खंडित पूजा), पृ० ११२, ११३
१७२. आधुनिक हिंदी गद्य शैली का विकास, डॉ० श्याम वर्मा, पृ० ११५
१७३. काव्य के रूप – डॉ० गुलाबराय, पृ० २२५
१७४. चाची (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २३१
१७५. जरूरत – (मेरी प्रिय कहानियाँ), पृ० ६४
१७६. साँझ के साँए – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ५२
१७७. एक और दुराचारिणी – (खिलौने), पृ० ११०
१७८. हिन्दी कहानी विश्लेषणात्मक अध्ययन – डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा, पृ० ५८
१७६. रात की रानी और लाल गुलाब – (खंडित पूजा), पृ० १०१
१८०. उस दिन – (खंडित पूजा), पृ० ११६
१८१. राजकुमार और मछली – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० २१४
१८२. नांग–फास – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० १७६
१८३. तागेवाला – (इक्यावन कहानियाँ), १३५
१८४. चितकबरी बिल्ली – (एक आसमान के नीचे), पृ० १०१
१८५. हिंदी उपन्यास कला – डॉ० प्रतापनारायण टंडन – पृ० २७६
१८६. कितने जेबकतरे – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ४१८
१८७. आश्रिता – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २७
१८८. स्वर्ग और मर्त्य – (साँचे और कला), पृ० ११
१८६. मार्ग में – (एक आसमान के नीचे), पृ० १२६
१६०. एक और दुराचारिणी – (खिलौने), पृ० ११०
१६१. राजनर्तकी और क्लर्क का बेटा – (खंडित पूजा), पृ० १६५, १६६
१६२. ऑपरेशन – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० १६३
१६३. शरीर से परे – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २४१, २४२
१६४. नई ज्यामिति – (साँचे और कला), पृ० ३०, ३१
१६५. तीन तारीखें – (मेरी तैंतीस कहानियाँ), पृ० २८४, २८५
१६६. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी : कथ्य और शिल्प – डॉ० शिवशंकर पांडेय, पृ० १६३
१६७. भोगा हुआ यथार्थ – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ३४७, ३४८
१६८. कितना झूठ – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० ६७, ६८
१६६. गृहस्थी – (इक्यावन कहानियाँ), पृ० १८६, ६०
२००. वे दोनों – (सफर के साथी), पृ० ५०, ५१
२०१. पिचका हुआ केला और क्राति – (खिलौने), पृ० १०८, १०६
२०२. मारिया, (इक्यावन कहानियाँ), पृ० २८८
२०३. साहित्यिक कोश – डॉ० ओम प्रकाश शर्मा, पृ० १७४, १७५, साहित्यिक समारोह, १६७३

उपसंहार

हिंदी साहित्य में कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, जीवनी, यात्रावर्णन, बाल-साहित्य आदि सभी विधाओं में विष्णु प्रभाकर जी एक हस्ताक्षर के रूप में जाने जाते हैं। पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों में विष्णु प्रभाकर का स्थान अग्रणी रहा है। स्वातंत्र्यपूर्व काल से चलती आ रही साहित्यिक प्रेरणा के साथ स्वातंत्र्योत्तर काल में उसमें परिवर्तित नए मूल्यों की स्थापना कर कई युगीन परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति और समाज का संबंध फिर से स्थापित करने में उनका योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। जीवन का समग्र लेखा-जोखा रखनेवाली चेतना का सहज स्वाभाविक रूप में चित्रण ही उनके जीवन का क्रम रहा है। विष्णु प्रभाकर एक ऐसे कथाकार हैं जो पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं, उनकी कहानियों में समय का जो व्यापक फैलाव है वह मुक्तिसंघर्ष और मुक्ति के उपरांत के बनते-बिगडते विश्व के इतिहास का हिस्सा है।

विष्णु प्रभाकर जी पर गांधीजी के प्रभाव के संदर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वह उनके सामाजिक-राजनैतिक दर्शन से अपने को न जोड़कर वर्तमान राजनीतिक सड़ांध में गांधीजी की कर्मनिष्ठा को एक जीवंत विकल्प के रूप में अधिक रेखांकित करते हैं। इसी प्रभाव में आदमी के मन में छिपे यक्ष की पहचान को ही वह अपना मुख्य रचनात्मक सरोकार घोषित करते हैं। उनके सृजन में वैचारिक अन्विति तथा जीवन दर्शन की सुस्पष्टता है। वे 'स्वान्तः सुखाय' के प्रतीक साहित्यकार हैं किंतु यहाँ 'परिजन हिताय' अपने आप आ जाता है। विष्णु जी के विचार में मानव-मानव के बीच स्थित एकता, प्रेम, मैत्री, सहानुभूति आदि की भावना शाश्वत है। इन्हीं शाश्वत संबंधों की प्राप्ति के लिये मनुष्य संघर्ष करता है, यही उनके जीवन का आदर्श है। उनकी कहानियाँ इसी महान संदेश की वाहक हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे सामाजिक जीवन में जो अनेक अच्छे-बुरे परिवर्तन आए हैं, जो नई समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं इनका सबसे अधिक सजग चित्रण उन्होंने किया है। सामाजिक एवं ऐतिहासिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में गहन मानवीय अनुभूतियों की सीधी-सादी अभिव्यक्ति का उद्‌घाटन आदि से उनका साहित्यिक मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में नए कहानीकारों के साथ-साथ स्वतंत्रतापूर्व प्रतिष्ठित पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों की कहानियों में भी युग-स्वर का ध्वनित हुआ है। व्यक्ति और समाज से संबंधित

उनके कठिन प्रश्नों का उत्तर मानव व्यक्तित्व के विश्लेषण द्वारा ढूँढ़ने का प्रयास ही इस युग-स्वर ध्वनित सत्य है। इस सत्य की प्राप्ति स्वातंत्र्योत्तर कहानी का तलाशबिंदु है। इसीलिए स्वातंत्र्योत्तर कहानी में विष्णु प्रभाकर की कहानी अपनी भी एक नई दृष्टि दे दी जाती है। विष्णु प्रभाकर के समस्त साहित्य में व्यक्ति और समाज इस रूप में आए हैं कि दोनों की अलग पहचान कराना कठिन है। उनके सृजन का मूल स्वर ही मानव की पहचान और हर प्रकार के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का है।

विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ वस्तुतः कहानी स्वरूप में उस संधियुग के चेतना को व्यक्त करती हैं, जहाँ प्रेमचंद की घटनात्मकता, जैनेंद्र जी का मनोविज्ञान और नई कहानी की व्यक्तिचेतना का संघर्ष उनकी रचना-प्रक्रिया को प्रभावित करता है। उनकी कहानियों में आधुनिक समस्याओं को समेटने की यथार्थ और संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। स्त्री-पुरुषों के नए नैतिक संबंधों की समस्या, व्यक्तिस्वतंत्रता, राजनीतिक, सामाजिक-धार्मिक आदि आधुनिक जीवन के विविध आयामों को भी विष्णु प्रभाकर जी की कहानी चित्रित करती गई है, इस दृष्टि से उनकी साहित्य चेतना भी आधुनिकता के विभिन्न कोणों को रूपायित करती गई है। उनकी कहानियों में आस्था एवं संकल्प, अपूर्व जिजीविषा भाव, कर्म एवं दायित्व की सजगता तथा मानव-मूल्य एवं मर्यादा की अभिनव जीवन-दृष्टि मिलती है। उदा० 'मेरा बेटा', 'धरती का स्पर्श', 'मेरा वतन', 'मैं जिंदा रहूंगा', 'संबल', 'डायन', 'पतिव्रता' आदि कहानियों में देखा जाता है। उनके चिंतन की जड़ें भारतीय मनःस्थितियों में ही गहरी हैं, कहीं से आरोपित नहीं हैं।

पुरानी पीढ़ी स्वातंत्र्योत्तर काल में एक परिवर्तित जीवनदृष्टि की द्योतक कही जा सकती है। विष्णु प्रभाकर इस पीढ़ी के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनमें आदर्श के प्रति आकर्षण है किंतु यह आदर्श यथार्थ की भूमि पर स्थापित है। जीवन और साहित्य दोनों में वे समन्वय और संतुलन के पक्षधर दिखाई पडते हैं। उनकी दृष्टि मूलतः मानवतावादी है और मानव की शक्ति में उनका अटूट विश्वास भी है। इसी आस्था के बल पर वे मानव को स्वतंत्र चिंतन की ओर प्रवृत्त करते हैं। यही दृष्टि उनकी कहानियों में एक नया अर्थबोध लेकर चित्रित हुई है। प्रेमचंद जी ने हिंदी में यथार्थवादी कहानी की परंपरा की नींव डाली। विष्णु प्रभाकर केवल इस परंपरा की परिपाटी से न चलकर अपने लिए एक अलग राह बनाते हैं। उदा० 'आश्रिता', 'अंतर्वेदना', 'संघर्ष के बाद', 'कैक्टस के फूल', 'राखी', जैसी कहानियों को देखा जा सकता है। उनकी धारणाओं और लेखन में कोई अंतर नहीं है। यही उनके साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है।

साहित्य समकालीन और सर्वयुगीन होता है। जिसमें लेखक सहजता से निहित होता है। विष्णु प्रभाकर सहजता के अतिरिक्त गति, अनुभूति, आत्मविश्वास, आस्था और ईमानदारी को भी आवश्यक मानते हैं। यही सच्चे अर्थ में एक सफल

लेखक की पहचान है। साहित्य में श्लील-अश्लील के प्रश्न पर भी विचार किया गया है। उनका इस संदर्भ में अभिमत है कि जहाँ सौंदर्यानुभूति है, वहाँ अश्लीलता नहीं आ सकती। सौंदर्य और प्रेम कभी अश्लील हो नहीं सकते, अश्लील होता है उनका विकृत प्रदर्शन। अश्लीलता का संबंध वे देश-विदेश की संस्कृति से भी मानते हैं। उनके साहित्य में यह दृष्टि भी एक नए जीवन-दर्शन का संकेत प्रस्तुत करती है।

विष्णु प्रभाकर जी कहानी के क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्र का बडी भावुकता और काल्पनिकता में भी वास्तविकता के साथ बडा सूक्ष्म चित्रण करते हैं। समय-समय पर समाज में होनेवाली घटनाओं, सुधारों, हलचलों, दैनिक जीवन तथा समाज की समस्याओं का वर्णन वे कहानियों में करते हैं। उदा० 'अंधेरी सुरंग', 'एक मौत समंदर किनारे', 'एक रात-एक शव' आदि कहानियों को देखा जा सकता है। उन्होंने जीवन की प्रत्येक सच्चाई को अपनी कहानियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कहानी मनुष्य के जीवन का एक प्रमुख अंग है। वस्तुतः आम आदमी जिंदगी के इस भागदौड में कहानी के द्वारा अपने सुख-दुःख का निवारण कर सकता है। एक कथाकार के रूप में विष्णु प्रभाकर जी अपनी कहानियों में न तो किसी लाक्षणिक वाद से प्रभावित हैं और न उनका कोई ऐसा आग्रह है। उनकी कहानी, 'अधूरी कहानी' को उदाहरण बनाए तो हम पाएंगे कि उसका समय आज कई दशक पूर्व का है तथापि ऐसी स्थितियाँ आज भी उपलब्ध होती हैं जहाँ दो या दो से अधिक नागरिक अपने-अपने वैचारिक केंद्र या धार्मिक दुराग्रहों से बंधे हुए हैं पर उनका यह बंधन स्थायी नहीं है। विष्णु प्रभाकर जी का लक्ष्य इस सारी कथा में यह संकेतित करता है कि जिस पदप्रेरित संकीर्णता से आदमी पीडित है वह बहुत क्षणिक है। दो धर्मों, दो विश्वासों, दो जातियों के बीच विसंगतियाँ अक्सर उभरती हैं, उनकी निर्मिति के कारण बहुत व्यक्तिगत होते हैं, कभी-कभी वे एक विराट समूह को भी प्रभावित कर डालते हैं, किंतु उन्हें न मनुष्य के विश्वास निर्मित करते हैं, न समूह के लोकानुभव। उदा० 'राखी', 'जिंदगी एक रिहर्सल', 'कितने जेबकतरे' आदि कहानियों को लिया जा सकता है। इस प्रकार उनके संदर्भ अत्यंत व्यापक हैं, उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील है और निष्कर्ष मानवतावादी है। उनमें प्रचलित विभिन्नवादों का आग्रह नहीं है। युद्ध और हिंसा की कहानियों में लक्ष्य और अनुभूति की प्रधानता है। जिससे सूक्ष्म जीवन-निर्माण की आकांक्षा का बोध होता है। एक विशुद्ध मानवीय, नैतिक सहानुभूति सदैव इनके पात्रों तथा जीवन स्थितियों को इनसे मिलती रहती है।

इस प्रकार अपने समूचे साहित्य से केवल मूल्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य नहीं रहा है पर जो कुछ उनको पुरस्करणीय लगा है, उसी को आगे बढ़ाया है। इस उपलब्धि के पीछे लेखक का सुधारवादी व्यक्तित्व है जो गांधीदर्शन और आर्यसमाजी सुधारवाद से मिलकर बना है। व्यक्ति अथवा

साहित्यकार विष्णु प्रभाकर में कोई अंतर नहीं है। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय चेतना का प्रमुख रूप से चित्रण आता है। समाज के उच्च तथा निम्नवर्ग की अपेक्षा उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय मानव का जीवन अपने मस्तिष्क संघर्ष एवं बाह्य द्वंद्व के साथ उभरकर आया है। वे मनुष्य को सामाजिक स्तर के भीतर ही समझना चाहते हैं। कहने का मतलब है कि सामाजिक स्तर का संबंध समाज में निर्मित वर्गों से होता है। सामाजिक स्तर का वर्गगत अथवा श्रेणीगत होना यह अनिवार्य प्रक्रिया है जो आर्थिक, सास्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक आदि तमाम रूपों में गुजरते हुए अपने एक विशिष्ट वर्गभेद की सृष्टि करता है। विष्णु प्रभाकर का मध्यवर्ग से संबंधित मानवतावादी एवं जीवनमूल्यों के प्रति निष्ठावान दृष्टिकोण पाठकों को प्रभावित करता है। 'बिंब-प्रतिबिब' कहानी में अविनाश इस नई चेतना का प्रतीक है, वह रागात्मक संबंधों को भीतरी सच्चाई से देखता है, जबकि कमल इस सच्चाई का केवल अनुभव करता है लेकिन ऊपर से ओढी नैतिकता के कारण उससे अपनाने का साहस नहीं करता। यही स्थिति 'कायर' कहानी मे भी व्यक्त की गई है। उन्होंने सामाजिक जीवन के तनाव में यथार्थ की खोज की है।

विष्णु प्रभाकर की कहानियों का फलक अत्यंत विस्तृत है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और इनसे जुडी भारतीय संस्कृति और इतिहास की व्यापक पृष्ठभूमि इनमें चित्रित होती है। स्वातत्र्योत्तर काल में बदलते जीवन दृष्टिकोण और संदर्भों का चित्रण करते समय उसके साथ जुड़े समस्त प्रश्न और गहराई को वे कहानियों में आँकते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जनजीवन को औद्योगीकरण तथा विज्ञान ने पर्याप्त प्रभावित किया है। समाज के सारे मापदंड ही बदल दिए हैं। इसी के मध्य मध्यवर्गीय व्यक्ति की चेतना में अधिक परिवर्तन नजर आ रहा है। यह परिवर्तन सामाजिक स्तर पर देखा गया है, साथ-साथ मानवीय संबंधों पर पडता इसका गहरा असर भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसी के परिणामस्वरूप निरर्थकता, अजनबीपन, संत्रास, घुटन और अनेक बढती कुंठाएँ-विकृतियाँ जन्म ले रही हैं। इस प्रकार व्यक्ति और परिवेश का संघर्ष और चेतन तथा अचेतन के मानसिक स्तरों को यथार्थ संवेद्य बनाने का प्रयत्न विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ करती है। उनकी 'एक मौत समंदर किनारे', 'भटकन और भटकन', 'मेरा वतन', 'अधूरी कहानी' जैसी कहानियों में संत्रास, भय और मृत्युबोध की अभिव्यक्ति बेहद ईमानदारी तटस्थता और सच्चाई के साथ चित्रित हुई है।

आज मानवीय संबंधों में विघटन की प्रवृत्ति नजर आती है। यह स्थिति बहुत सी अनकही मन:स्थितियों को खोलकर कहानी को अविस्मरणीय बना देती है। विष्णु जी की कहानियों में आधुनिकता का बुद्धिस्तर और मनोवैज्ञानिक पकड मुख्य रूप से निहित है। 'अंधेरे आंगनवाला मकान, 'फांसिल इन्सान और' जैसी कहानियों में उन्होंने अभिजात्य वर्ग की जो पहचान कराई है वह विदेशी संस्कृति

के बढ़ते प्रभाव को संकेतित करती नज़र आती है। आज आधुनातन अभिजात्य वर्ग की यह एक पहचान बन गई है। इस वर्ग में अनिवार्य रूप से बढते मनोवैज्ञानिक तनाव और जटिलता की भी व्याख्या वे करते जाते हैं। ऐसा लगता है कि आधुनिक बुद्धिवाद बिना मनोवैज्ञानिक संदर्भो से उभर ही नहीं पाता। जिंदगी की कई विसंगतियों को भोगता हुआ आज आधुनिक व्यक्ति जीवन में बहुस्तरीय संत्रास का अनुभव करता है। जिससे वह दिशाहीन, व्यक्तिहीन और मानसिक दृष्टि से कुंठित भी है फिर भी जीने की एक उत्कट अभिलाषा लेकर जी रहा है। उदा० 'राखी', 'बेमाता', 'फांसिल इन्सान और' जैसी कहानियों को देखा जा सकता है। उनके पात्रों में ये सारी प्रवृत्तियॉ नजर आती हैं। प्राचीन भारतीय मूल्यो और आधुनिक जीवनमूल्यों में संघर्ष नजर आता है। भौतिकता प्रधान वातावरण में व्यक्ति की हीनभावना बढ़ती जा रही है, जिससे आज का हर मध्यवर्गीय व्यक्ति ग्रस्त है। इसी यांत्रिकता और एकरसता का परिणाम स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जन-जीवन में नजर आता है। अजनबीपन और अपरिचय की स्थिति के कारण उसकी जिंदगी एक सपाट चेहरे की जिंदगी बन गई है। उनकी 'एक और दुराचारिणी', 'पिचका हुआ केला और क्रांति', 'रायबहादुर की मौत', 'एक अनचिन्हा इरादा', आदि जैसी कहानियों में इसकी अभिव्यक्ति मिलती है। इस प्रकार आधुनिक जीवन दृष्टिकोण के साथ स्वातंत्र्य बोध की अभिव्यक्ति भी प्रधान बन गई है। विष्णु प्रभाकर जी ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। उनकी 'अर्धनारीश्वर', 'आश्रिता', जैसी कहानियाँ स्वतंत्रता के प्रति जागृत दृष्टिकोण को चित्रित कर व्यक्ति मन की विभिन्न प्रवृत्तियों को रेखांकित कर जाती हैं।

व्यक्ति के बाद परिवार का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी मानव जीवन के समस्त पक्षों का चित्रण करती है। इसके मध्य की गई परिवार की संकल्पना भी बदल गई है। विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी कहानियों में परिवर्तन के इन सभी बिंदुओं को देखा है। दूसरे किसी समूह की अपेक्षा सामाजिक जीवन पर परिवार के बढ़ते दूरगामी प्रभाव को भी उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। आज परिवार परंपरागत मान्यताओं और नैतिक बोध के विघटन के कारण जीवनगत आस्थाओं से कटा नजर आता है। जो दो वर्गों में विभाजित है– एक पुराने मूल्यों, आदर्शों के प्रति आस्थावान, तो दूसरा नए जीवन की माँग करनेवाला। विष्णु जी की कहानियों में इनको सुधारवादी दृष्टिकोण से अपनाया गया है। उनकी कहानियाँ एक रूप से मानवता के आधार पर समाज को सामंजस्य में लाने का प्रयास है। उनकी 'डायन', 'पतिव्रता' जैसी कहानियाँ मानव के बदलते दृष्टिकोण को ही चित्रित करती हैं। उनकी कहानियों में परिवार के बदलते दृष्टिकोणों के साथ परंपरागत रूपों को भी पाया जाता है, जैसे सास-बहू, पति-पत्नी साथ-साथ इनमें बदलते स्त्री-पुरुष संबंधों के कारण पाई

जानेवाली पारिवारिक विघटन की प्रवृत्ति की ओर किया जानेवाला संकेत भी है। 'ठेका' कहानी इसका उत्तम उदाहरण है। इसमें प्रेम और अभिसार से व्यक्ति के जीवन की बदलती कल्पना चित्रित है। परिवार के बीच विवाह संबंधी बदलते दृष्टिकोणों को उन्होंने चित्रित किया है जिसे समाज आज व्यक्ति का अधिकार और निजी समस्या समझा जाने वाला है। विष्णु जी की कहानियों में मध्यवर्गीय और आर्थिक रूप से पिछडे परिवारों में बनी इस महत्त्वपूर्ण समस्या को काफी गंभीरता से देखा गया है। उनकी 'अंतर्वेदना' कहानी इस समस्या के प्रति बदलती समाज की भूमिका हमारे सामने प्रस्तुत करती है। तो 'युगांतर' में वे एक आक्रामक और अनिवार्य परिवर्तन की माँग करते नजर आते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक जीवन में दो पीढ़ियों के बीच का संघर्ष भी प्रधान रूप से चित्रित है। जो एक दूसरे की बदलती मान्यताओं को स्वीकार या नकार, पुरानी पीढ़ी का आरोपित दृष्टिकोण एवं नई पीढी का नकार। विष्णु प्रभाकर जी का दृष्टिकोण इनके कारणों को स्पष्ट तो करता है साथ-साथ नई पीढ़ी के बदलते विचारों का समर्थन भी करता नजर आता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में परिवार में बदलती नारी की भूमिका को वे स्वीकृति देते हैं। 'राखी', 'मैं नारी हूँ', 'कैसी हो मरिअम्मा' जैसी कहानियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। अभिजात्य वर्ग के तर्क से बदलते नारी जीवन पर भी उनकी कहानियॉ प्रकाश डालती हैं। बदलती नारी भूमिका के साथ सौंदर्य और भावुकता के बदलते परिणामों के साथ स्वार्थ, वासना, उद्देश्य तथा अपने-अपने कहानियों के परस्पर उन्मीलन की सफलता या असफलता को भी वे चित्रित करते हैं।

बढ़ती वैज्ञानिक प्रवृत्ति मानव जीवनमूल्यों के साथ धर्म की अवधारणा पर भी प्रभाव डाल रही है। विष्णु जी की कहानियों में यह बदलाव वास्तविकता से चित्रित होता है। आज का मध्यवर्गीय व्यक्ति निराशा और संकट के समय ईश्वर का आर्त भावना से स्मरण नहीं करता, तो मानसिक आत्मबल के आधार पर समस्याओं को सुलझने में, कामयाब रहता है। उनकी 'सफर के साथी', 'अधूरी कहानी' जैसी कहानियाँ इसका प्रमाण देती हैं। विज्ञान की प्रगति के साथ मानवेत्तर का मूल्य घटकर मानव का मूल्य बढ़ने लगा है। अतः ईश्वरीय सत्ता के प्रति आस्था में परिवर्तन आ गया। इस परिवर्तन की तीव्र प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज के धार्मिक जीवन में अनेक अंतर्विरोध प्रकट हुए। इसमें विष्णु प्रभाकर जैसे प्रगतिशील कहानी लेखकों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान में भरपूर संयोग दिया है और जीवन के माध्यम से मानव को श्रेय और प्रेय माना है।

आज पारस्परिक संबंधों में व्यक्तिवादी मानसिकता की स्वार्थी और आत्मलिप्त मनोवृत्ति प्रकट होती है। उनकी कई कहानियों में इसके उदाहरण मिलते हैं। 'धरती अब भी घूम रही है', 'ठेका', 'सलीब' आदि व्यवस्था की भ्रष्टता को बेनकाब करती हैं, कहीं वे सामान्य व्यक्ति की आर्थिक तंगदस्ती का प्रामाणिक

चित्रण करती हैं यथा, 'पूल टूटने से पहले', कहीं मनोवैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाती है। यथा 'नाग-फांस', 'कितना झूठ', 'मेरा बेटा', 'अधूरी कहानी', 'मेरा वतन' आदि कहीं आत्मीय संबंधों पर पडते आर्थिक दबावों का सशक्त चित्रण करती हैं। यथा 'राग-अनुराग', 'अंधेरे आंगनवाला मकान', 'खिलौने और बेटे', आदि टूटते दांपत्य जीवन का चित्रण करती हैं। इनके साथ इनमें आधुनिक नगरबोध के जीवन को भी चित्रित किया है। आधुनिक नगरबोध के जीवन में प्रशासनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार की त्रासदी से मध्यवर्गीय परिवार जुडे हैं। उनका सशक्त चित्रण भी इन कहानियों में मिलता है। आंचलिक और नगरीय परिवेश के बदलते चित्रण के साथ उन्होंने इन कहानियों में भारतीयता को खोजना चाहा है। यह तलाश भी एक विशिष्ट स्तर पर संपन्न हुई है। यह दृष्टि भारत की सांस्कृतिक विरासत को तो खोजती है मात्र वर्तमान को नही भूलती। उनकी कहानी का यह बदलता परिप्रेक्ष्य ही उनकी देन है।

विष्णु प्रभाकर जी ने कहानी को एक सक्षम तेवर दिया है। राष्ट्र जीवन से संबंधित कहानियों में स्वतंत्रतापूर्व से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल के सभी बदलते परिदृश्यों को कहानियों में प्रधानता दी है। १९३० से १९७६ तक प्रारंभिक कहानियों में राष्ट्रजीवन में देशप्रेम और देशहित की अनुभूति की प्रधानता को वे चित्रित करते हैं, जो उस बात में सामाजिक जीवन का केंद्र थी। विभाजनगत संवेदनाओं से जुड़े प्रश्न, सांप्रदायिकता, झगड़े, शरणार्थियों की समस्या को प्रधान रूप से चित्रित किया है। मूलतः ये कहानियाँ सांप्रदायिक सद्भाव की ही कहानियाँ हैं। इनमें विभाजन के घटनाचक्र तथा पारस्परिक द्वेष एवं अविश्वास का चित्रण करते हुए भी इन कहानियों में मानवता के प्रति उनका विश्वास, उनकी जिजीविषा, मानवीय मूल्य एवं मर्यादाओं के प्रति उनकी आस्था झलकती है। उनकी 'अधूरी कहानी', 'वह रास्ता', 'सफर के साथी', 'हिंदू', 'आजादी', 'मेरा बेटा', 'मेरा वतन', 'धरती का स्पर्श' जैसी कहानियाँ इसका सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। विभाजन की विषयवस्तु पर रचित कहानियाँ इसका सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। विभाजन की विषयवस्तु पर रचित कहानियों का स्वर मानवतावादी है। इन कहानियों का एक और सशक्त पक्ष यह भी है कि जहां उनमें एक ओर अपनी मिट्‌टी और वतन से भरपूर प्यार है वहाँ दूसरी ओर सीमा के आरपार के लोगों में विभाजन के बाद भी हिंदू-मुस्लिम के अहसास के अलग रिश्तों में आत्मीयता मिलती है। पारस्परिक वैमनस्य, सांप्रदायिक, विद्वेष और तत्कालीन वातावरण के वहशीपन की छाया इन कहानियों में नहीं है। मानवीय संवेदना को उद्वेलित करनेवाली ये कहानियाँ हैं।

विष्णु जी की कहानियों के मध्य भारतीय संस्कृति ओर इतिहास का एक स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है। किसी भी समाज की संस्कृति का अध्ययन इस समाज में प्रचलित मानवमूल्यों के आधार पर ही संभव होता है। सामाजिक मूल्य संपूर्ण संस्कृति एवं समाज को अर्थ एवं महत्ता प्रदान करते हैं।

इनका केंद्र जनकल्याण की धारणा होती है। समाज के पहियों को सुचारु रूप से गतिशील रखना, व्यक्ति तथा समाज के बीच संतुलित वातावरण और पारस्परिक सूझ-बूझ स्थापित करना सामाजिक मूल्य का काम है। सामाजिक जीवन में कुछ सामान्य आदर्शों को प्रतिष्ठित करने में मानवीय मूल्यों का योगदान रहता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इन मूल्यों की प्रस्थापना प्रधान रूप से चित्रित होती है। स्वतंत्रता के बाद देश के सांस्कृतिक निर्माण की कल्पना में काफी परिवर्तन आया है। भारतीय संस्कृति अपनी परंपरा से कटकर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को अपनाती जा रही है जिसके परिणामों की व्यापकता क्या होगी? मूल रूप में क्या मानव स्वतंत्रता आबादित रहेगी ? इन समस्त प्रश्नों की खोज उनकी कहानियों में प्रधान रूप से की गयी है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखी उनकी अधिकांश कहानियाँ नहीं है फिर भी इन कहानियों में उन्होंने कई ऐतिहासिक सत्यों के निर्वाह के साथ युगीन यथार्थ की भौतिक दृष्टिकोण से व्याख्या की है। 'जीवनदीप', कहानी में कलिंग का राजकुमार अशोक और संघमित्रा की प्रेमकथा के माध्यम से युगजीवन की अभिव्यंजना की है। 'मणि, कलंक और राजनीति', 'स्वर्ग और मर्त्य', इन कहानियों द्वारा विष्णु प्रभाकर जी ने प्रेम और विवाह के माध्यम से सामाजिक नियम, बंधन और उसके मर्यादाओं की चर्चा की है। साथ-साथ इन रचनाओं में वर्तमान समाज में व्याप्त भिन्न वैचारिक धारणाओं एवं संघर्षों के मूल स्रोत तथा विकास को स्पष्ट किया है जो वर्तमान समाज को समझने को एक ठोस आधार प्रस्तुत करती है। इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी के कहानी साहित्य के विस्तृत फलक से मध्यवर्ग की समस्त चेतना के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रस्तुति प्रधान रूप से हो जाती है।

व्यक्ति को एक सामाजिक संदर्भ में चित्रित करने की चेतना यथार्थ के मूल में होती है। हिंदी कहानियों में यही संवेदना एक नए यथार्थ बोध की उपलब्धि है जो अंततः एकता का संकेत करती है। पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों ने भी इन बदलती जीवन यथार्थ संवेदना को अपनी कहानियों में प्रधानता दी है। विष्णु प्रभाकर भी यथार्थ की इस भित्ति से जुड़े हैं, मात्र इसके प्रस्तुतिकरण की उनकी अपनी दृष्टि है जो पूरी कहानी में छायी रहती है। वे समस्या का यथार्थ चित्रण नैतिक सहानुभूति से प्रेरित होकर करते हैं। यथार्थ के विभिन्न आयामों को उनकी कहानियों में देखा गया हैं। उनके समस्त साहित्य का केंद्र नारी है; उनके लिए नारी चिंता का केन्द्र है और चिंतन की धुरी भी। इसलिए नारी जीवन से संबंधित विभिन्न यथार्थ दृष्टिकोणों को उन्होंने अपनी कहानियों में प्रधानता दी है। पारिवारिक जीवन के मध्य बदलते नारी की भूमिका को विभिन्न स्तरों पर चित्रित किया है। मूल्यों से जुड़ी और नैतिक आदर्शों से बनी नारी की प्रतिमा को वे जहाँ चित्रित करते हैं, वहाँ उनकी दृष्टि भारतीय मूल्यों के प्रति आस्था रखती नजर आती है। 'उसकी राखी' कहानी इस दृष्टि को चित्रित करती है। दूसरी ओर विष्णु

जी अपनी कहानियों में वैवाहिक जीवन का निर्वाह करते हुए नारी को भावात्मक एवं वैचारिक असांमजस्य के कारण तनावपूर्ण मानसिकता का निर्वाह करते हुए भी चित्रित करते हैं, जैसे 'अंधेरी सुरंग' की शिल्पा, 'सच! मैं सुंदर हूँ' की भाभी जैसी नारियॉ अपनी अलग-अलग गुत्थियों में तनाव में जीती हैं। परिवार में नारी विभिन्न रूपों में अपनी भूमिकाएँ निभाती हैं। इन भूमिकाओं के मध्य चल रहा संघर्ष और विवाह पूर्व जीवन के बीच की भूमिकाओं में चल रहा संघर्ष भी विष्णु जी ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। विवाह-पूर्व जीवन में मानसिक संघर्ष, अतीत और वर्तमान के बीच का संघर्ष, त्याग और बलिदान के कारण किया जानेवाला संघर्ष आदि को वे गहराई से चित्रित करते हैं। उनकी कहानियों में परंपरागत नारी रूप भी मिलते हैं, जैसे 'बंटवारा की निंदा', 'कैक्टस के फूल' की निंदा, 'गृहस्थी' की वीणा। ये नारियॉ अपनी परंपरा का निर्वाह तो करती हैं पर इनके बीच स्वाभिमान की वृत्ति है जो उन्हें परंपराओं के निर्वाह में अपनी एक अलग पहचान दे देती है। इनके बीच विष्णु प्रभाकर जी के आर्यसमाजी विचारधारा के प्रभाव को देखा जा सकता है।

स्वतंत्रता के बाद नारी के प्रति समाज के बदलते दृष्टिकोणों को भी उन्होंने देखा है, जिसमें उनकी नारी के प्रति चिंता का अंकन तो आता है, साथ-साथ जिससे एक गहरा चिंतन भी प्रकट होता है। चिंतन के मध्य नारी की बदलती भूमिकाएँ उसी के साथ किया जानेवाला संघर्ष और उससे बनती प्रतिमाएँ भी चित्रित होती हैं। इसमें एक बात निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है कि नारी शिक्षा, नारी स्वाधीनता, नारी समानता जो स्वातंत्र्योत्तर काल की माँग है, उसे इस रचनाकार ने अपनी रचनाओं में अत्यंत सघनता से चित्रित किया है। उदा. 'कैसी हो मरिअम्मा', 'मैं आपको उतना प्यार नहीं करती', 'राखी' जैसी कहानियों को देखा जा सकता है।

यथार्थ की भित्ति का दूसरा बड़ा पक्ष समाज जीवन से जुड़ा रहता है। मानव जीवन प्रणाली, इससे जुड़े आज के बदलते जीवनमूल्य और उनसे बनी सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण अंग यथार्थ से जुड़ा नजर आता है। स्वतंत्रता के बाद इन सभी क्षेत्रों के मध्य हो रहे सभी परिवर्तनों को भी विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है जिससे समाज और व्यक्ति की पहचान के मध्य लेखकीय भूमिका को हम समझ सकते हैं। आज परिवार और समाज के बीच उठ खड़े हुए कई प्रश्न हैं, जैसे संयुक्त परिवार विघटन, वर्ग विषमता से उत्पन्न सामाजिक संघर्ष, ग्रामीण परिवारों की बदलती सामाजिक दृष्टि, समाज और व्यक्ति की बदलती संवेदना, आधुनिकता के संक्रमण से आई नागरी और ग्रामीण जीवन में व्याप्त विद्रूपता, मानसिक संघर्ष के मध्य कार्य करता मानव का अकेलापन, घुटन, संत्रास जैसी स्थितियाँ, सामाजिक विसंगतियों से बदलता समाज जीवन, पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण की बढ़ती वृत्ति आदि

विभिन्न बहुआयामी स्तरों को उन्होंने अपनी रचनाओं में वाणी दी है। विष्णु जी ने स्वतंत्रता-पूर्व काल से लेंकर आज तक की पूरी सामाजिक व्यवस्था को केवल अनुभवित नहीं किया बल्कि उनकी बदली हुई स्वाभाविक व्यापक परिधि को अपनी कहानियों में समेटा भी है। सामाजिक विसंगतियाँ और आदर्श मूल्यों के मध्य फँसे आज के व्यक्ति जीवन में नारी ही अधिक मात्रा में जूझती नजर आती है। इससे उत्पन्न समस्याएँ जैसे, बढ़ती वेश्यावृत्ति, दहेज की समस्या, विघटनकारी शक्तियों का बढ़ता प्रभाव, बढती स्वार्थांध वृत्ति, कार्यालयों में व्याप्त ओछी राजनीति आदि समस्त विकृतियों के पीछे कार्य करती समाज की बदलती भूमिका आदि विभिन्न पहलू उनकी रचनाओं द्वारा सामने आए हैं। उन्होंने इन समस्याओं के मध्य मानव जीवन की व्याख्या उदा. 'वह रास्ता', 'सफर के साथी', 'परिवर्तन', 'बेटे की मौत' जैसी कहानियों को देखा जा सकता है। भावुकता और काल्पनिकता में भी वास्तविकता की सूक्ष्मता उनकी कहानियों की आत्मा कही जा सकती है।

सामाजिक जीवन की विकास प्रक्रिया के अध्ययन में मानव की बदलती आर्थिक जीवन की विकास प्रक्रिया को समझना भी उतना ही जरूरी है आज विचार और सामाजिक चेतना के मध्य राजनीति को रखा जाता है। राजनीति पहले समाज जीवन में एक समन्वय सूत्र के रूप में कार्य करती थी, आज उसकी यह भूमिका बदलकर अर्थनीति में परिवर्तित हुई है। मानव जीवन का अध्ययन करते समय सभी साहित्यकारों ने इस परिवर्तन को प्रधानता दी है। विष्णु प्रभाकर जी का ध्यान भी इसकी ओर गया है। समाज जीवन में आए उतार-चढ़ाव, उन्हीं से उत्पन्न संघर्ष स्थितियाँ, व्यक्ति जीवन की बदलती प्रतिमाएँ, बढ़ती झूठी पाखंड की लालसा वृत्ति इन महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को विष्णु प्रभाकर जी अपनी कहानियों में आँकते जाते हैं। समस्त कहानियों के मध्य उनका ध्यान मध्यवर्ग पर अधिक है। उसकी चेतना भिन्न है। इस भिन्नता को ध्यान में रखकर वे इन प्रश्नों की तीव्रता को चित्रित करते हैं।

नागरी और ग्राम्य जीवन से जुड़ी चेतना में पर्याप्त अंतर है। ग्राम्य जीवन में अर्थाधारित जीवन दृष्टि में शोषण की प्रधानता नजर आती है। यह विषमता ही वर्गसंघर्ष को जन्म देती है। साथ-साथ जातिव्यवस्था से जुड़ी अर्थचेतना से संबंधित प्रश्न ग्रामीण जीवन में विभिन्न धरातलों पर प्रस्तुत होते हैं। ग्रामीण जीवन में भी अभाव अशांति का प्रधान कारण रहता है। मध्यवर्गीय जीवन में इससे उत्पन्न संघर्ष को विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में समग्र रूप से चित्रित है। 'रहमान का बेटा' कहानी में इस वर्ग की दुरावस्था, 'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश' कहानी में परिवार की विपदाओं से त्रस्त पिता की मजबूरी, 'एक माँ और एक देश' कहानी में माँ का बेटे को बड़ा बनाने के मध्य आया संकट, 'हिमालय की बेटी' कहानी में पति की बीमारी के संकट के कारण त्रस्त नारी आदि विभिन्न मध्यवर्गीय जीवन में आए प्रश्नों को देखा गया है।

मध्यवर्ग जीवन से जुड़े और एक सत्य को उनकी कहानियाँ देखती हैं। अभाव की आपूर्ति ही उनके मध्य भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को बढावा देती है। जीवन के इस महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न को लक्षित कर उनकी कई कहानियाँ मिलती हैं। जिसमें बेरोजगारी की यातनाओं, नौकरी देने के बहाने के लिए जानेवाले रोजगार-इंटरव्यू नाटक, भाई-भतीजावाद आदि स्थितियों से जुड़े प्रश्न उनकी कहानियों में जीवन की सभी यथार्थ स्थितियों को आंकती हुई नई पीढी की कुठा, निराशा एवं घुटन को सामाजिक परिप्रेक्ष्य की सारी स्वाभाविकता से कहानियों में देखा गया है। अर्थकेंद्रित समाज जीवन में इन सारे उतार-चढावों के साथ-साथ बदलते स्त्री-पुरुष संबंधों को भी नकारा नहीं जा सकता। विष्णु जी की कहानियाँ समाज के इस बदलाव की भूमिका को परिवर्तन की दृष्टि से देखती हैं। उनकी 'राखी', 'ठेका' कहानियाँ इस भूमिका के नए चित्र प्रस्तुत करती हैं। बेरोजगारी, बढती मँहगाई के परिणाम, बेकारी आदि अर्थ जीवन से जुडे सामाजिक प्रश्नों की ओर भी उनका ध्यान गया है। प्रधान रूप से मध्यवर्गीय जीवन से जुड़े इन प्रश्नों के साथ निम्न वर्ग की विवशता, जीवन मूल्यों का टूटना, आर्थिक विवशता का लाभ उठाने हेतु किया जानेवाला यौन शोषण आदि कई समस्याओं की भूमिका को समझाने का प्रयास, 'एक मौत समंदर किनारे', 'भूख और कुलीनता', 'छोटा चोर बडा चोर' जैसी कहानियों में रहा है। इस प्रकार उन्होंने सभी सामाजिक संदर्भों को संवेदना के स्तर पर चित्रित किया है।

मानव जीवन से जुड़े सामाजिक संदर्भों के साथ-साथ धर्म और संस्कृति की सामाजिक भूमिका के निर्वाह को देखना उतना ही जरूरी है जो मानव-जीवन के परिचायक हैं। उनकी कहानियों में मानव धर्म की प्रतिष्ठा का स्वर मुखरित हुआ है। धर्म की बदलती संकल्पना ही इन कहानियों में संकेतित होती है। आज ईश्वरीय आस्थाओं का केंद्र देवी–देवताओं के साथ-साथ मानव भी हुआ है। कर्म और करुणा ही एक ओर देव बन गए हैं। कुछ अंश में मध्यवर्गीय व्यक्ति भी जातीयता पर विश्वास करता नजर आता है। मात्र विष्णु जी इस जातीयता की संकुचितता का विरोध कर धर्म भेद की निस्सारता को रेखांकित करते हैं। मूलतः उनका मानव में मूलभूत एकता का स्वप्न है। उनकी कहानियाँ भी इसी दृष्टि की परिचायक हैं। तमाम अच्छाइयों-बुराइयों के साथ जीवन संघर्ष का चित्रण करते हुए भी उनका ध्यान सदैव मूल्यों के संघर्ष पर रहा है। एक सत्य यह है, उन्होंने यथार्थ के बढ़ते आग्रह के साथ परंपरा द्वारा अनुमोदित सिद्धांत को मात्र परंपरा के नाम पर स्वीकार नहीं किया, उसे तर्क बुद्धि एवं वास्तविकता की कसौटी पर कसकर अपनाया है।

भौतिक सुधार की भावना से धर्म, रूढ़ि और अंधःविश्वासों को वे उसके अंतर्विरोधों के साथ स्पष्ट करते हैं। गाँव के सामाजिक जीवन पर बढ़ते धर्म के

गहरे प्रभाव को वे आस्तिक जीवन दृष्टि के संदर्भ में देखते हैं। उनकी 'अब्दुल्ला', 'परिवर्तन', जैसी कहानियाँ द्रष्टव्य हैं। उनकी यह आस्था अंत में मानवतावाद में ही परिणत होती है। आज गॉवों में भी भौतिकता के बढ़ते आग्रह के कारण प्राचीनता और नवीनता के द्वंद्व ने बढावा दिया है। एक ओर अशिक्षा, अंध-विश्वास, अज्ञान है तो दूसरी ओर वैज्ञानिकता को अपनाने की प्रवृत्ति भी इनके बीच पनपती जा रही है। इनकी खींचातानी के बीच धार्मिक आस्था कार्य करती नजर आती है। विष्णु जी की कहानियों में इसी आस्था को बुद्धि के धरातल पर कसकर देखने की वृत्ति को बढ़ते देखा गया है, जैसे 'बिंब-प्रतिबिंब' की 'ईरा', 'द्वंद्व' की सुजाता आदि पात्रों की मनोवृत्तियों को यहाँ देखा जा सकता है।

संस्कृति बुनियादी परंपराओं का आधार होती है। विष्णु जी की कहानियों में संस्कृति की धर्म संकल्पना इस बदलती भूमिका के साथ प्रस्तुत होती है। मानव जीवन मूल्यों की स्वीकृति, उससे उत्पन्न विचारधारा और समाज जीवन से जुड़ी सामाजिक धारणाएँ इनसे संस्कृति चलती है। यथार्थ के नए संदर्भों में भी संस्कृति की यही भूमिका कार्य करती नजर आती है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों मे इसके परंपरावादियों की संकीर्ण सांप्रदायिक दृष्टि, प्रतिवाद स्वरूप आधुनिकतावादियों की दृष्टि, ऐतिहासिक समन्वय की दृष्टि और इन सभी से बना एक समन्वित दृष्टिकोण मिलता है। उनकी कहानियों में चित्रित संस्कृति की यही एकसूत्रता लक्षणीय है।

राजनैतिक चेतना मध्यवर्गीय व्यक्ति की चेतना का स्थाई रूप है। स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर आज तक की मानवता की बदलती भूमिका को मद्देनजर रखकर विष्णु प्रभाकर जी ने इसे चित्रित किया है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में सक्रिय क्रांति से जुड़ी चेतना के मध्य देशसेवा की भावना की प्रबल आकांक्षा रखनेवाले पात्रों की भूमिका के साथ-साथ स्वातंत्र्योत्तर काल में पूर्णतः बदले इसके स्वरूप को भी विष्णु जी की कहानियों में रेखांकित किया गया है। यहाँ भी नागरी और ग्रामीण जीवन की बदलती चेतना को समग्रता से देखा गया है। ग्राम्य जीवन में आज मजदूरों की विकट आर्थिक समस्याएँ, वर्ग-संघर्ष की भावनाओं, कुंठाओं आदि के पीछे प्रमुख रूप से राजनीति ही रहती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में भौतिकवादी दृष्टि, नागरीकरण की बढ़ती गति, शिक्षा, नवीन शासन पद्धति आदि ने नए रिश्ते, नई बिरादरी को जन्म दिया है। विष्णु प्रभाकर जी की अपनी कहानियों में राजनीति की गहराई के साथ उसकी परिवर्तित मानसिकता का चित्रण अधिक स्पष्ट होता है। आज के सामाजिक परिवेश में राजनीति के भ्रष्ट, स्वार्थलोलुप और घिनौने स्वरूप ने पूरी प्रशासनिक व्यवस्था को बुरी तरह ध्वस्त कर दिया है। भाई-भतीजावाद, घूसखोरी, षडयंत्र, राजनीति के दबाव आदि के कारण नौकरशाही भी बुरी तरह सड़ चुकी है और प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था का तेजी से विघटन हो रहा है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इस यथार्थ

के प्रति एक जागरूकता का भाव दृष्टिगत होता है। इस प्रकार कहीं वे व्यंग्य रूप से समाज की बदलती मनोवृत्ति को, कहीं सामाजिक विषमता में फँसे चरित्रों द्वारा, कहीं संवेदनाओं-आक्रोश द्वारा कहानी की पीठिका बनाते हैं। उन्होंने अपनी, कहानियों में राजनीति की गहराई के साथ उनकी परिवर्तित मानसिकता को अधिक स्पष्ट किया है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ दूरगामी जीवन दृष्टि रखती हैं।

यथार्थ के प्रति जागरूकता के साथ-साथ उन्होंने मानव को अंतःर्बाह्य आंदोलित करनेवाले प्रश्नों से पैदा हुई धारणाओं के परिवर्तन को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। विष्णु प्रभाकर की कहानियों में बदलते जीवन संदर्भ एवं उसमें रूप ग्रहण कर रहे आदमी की यथार्थ तस्वीर को रूपायित किया है जिसमें सदैव मानवहित और मानवकल्याण की ही कामना दृष्टिगत होती है। जीवन की यथार्थ भूमिका को स्पष्ट करते समय यहॉं एक बात ध्यान में रखना विशेष जरूरी है कि विकास प्रक्रिया के साथ चल रही व्यक्ति की छटपटाहट भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है जिसके बीच समाज की परंपरागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना नजर आती है। संघर्ष ही व्यक्ति के जीवन का एक आयाम बन जाता है। स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकारों द्वारा इसका प्रधान रूप से चित्रण किया गया है क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर काल में वह मानव की अपनी पहचान बन गई है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में संघर्ष की इस पृष्ठभूमि को विस्तार से देखा गया है।

मानव जीवन में संघर्ष का प्रतिफलन ही उसका विकास माना जाता है। साहित्य के माध्यम से मनुष्य के भावों और विचारों का विकास करना ही उसका प्रधान उद्देश्य रहता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में धर्म, ईश्वर तथा नैतिकता संबंधी धारणाओं में जो काफी परिवर्तन नजर आता है, यथार्थ के संदर्भ में उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ही अपनाया जाने लगा है। आज इन सारी परिस्थितियों के मध्य जूझना व्यक्ति गतिमान बनता जा रहा है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर काल की परिवर्तित मानसिकता ने व्यक्ति के समूचे दृष्टिकोण को ही एक नई चेतना दी है। स्वातंत्र्योत्तर काल में साहित्य में इस संघर्ष के विभिन्न कोण नजर आते हैं। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में संघर्ष की विभिन्न धरातलों पर प्रस्तुति होती है।

मानव संघर्ष के मूलतः दो रूप होते हैं– एक अंतः संघर्ष और दूसरा बाह्य संघर्ष। अंतःसंघर्ष का चित्रण करते समय विष्णु जी ने उसके व्यक्तित्व की प्रेरक मूल प्रवृत्तियों, गतिविधि को स्वाभाविक चित्रण द्वारा कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। जहाँ उन्होंने नारी के विभिन्न भावों को पकड़ने का प्रयास किया है वहाँ उसके अचेतन में व्याप्त प्रणयावेग और चेतन में उसका दृष्टिगत होता विवेक इनके बीच संघर्ष को स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है। 'ठेका' कहानी की संतोष के मन

में उठी कामेच्छा की अतृप्ति ही उसके मन में अपनी सहेली स्यामा के प्रति बदले की आग को कुंठा बनाकर जगा देती है। 'एक मौत समंदर किनारे' की जाबाला का उद्दाम प्रणयावेग ही उसके ऐश्वर्य एवं विलासिता का एक साधन है। व्यक्ति की आत्मपीड़ा और आत्महीनता के बीच संघर्ष को भी वे चित्रित करते हैं। 'हमें गिरानेवाले' कहानी बिहारी की आत्महीनता के रूप में उसकी निराशा आत्मपीड़ा बनकर रहती है। 'साँझ के साएँ' की सौंदर्य के प्रति अलग धारणा उसके संघर्ष का कारण बनता है। व्यक्ति की अहंभावना और उसके व्यवहार के बीच असामंजस्य के कारण भी संघर्ष उत्पन्न होता है। 'मैं नारी हूँ' कहानी की रंजना को इसी संघर्ष ने झेला है। आत्मविश्लेषण के संघर्ष के प्रकटीकरण को भी विष्णु जी ने कहानियों में चित्रित किया है, जैसे–'मैं जिंदा रहूंगा' कहानी के प्राण की सबकुछ खोने पर जीवित रहने की अभिलाषा को बचाना, 'शरीर से परे' कहानी के रश्मि का पति प्रेम की अपेक्षा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रदीप जैसे साहित्यकार से 'शरीर से परे' प्रेम की अभिलाषा की रक्षा करने की कोशिश, 'सच ! मैं सुंदर हूँ' कहानी के भाभी का पति से स्वाभाविक प्रेम की अपेक्षा रखने मे नारी के स्वाभाविक गुणों की पहचान की माँग रखना आदि कहानियों के चरित्रों को विष्णु जी ने विभिन्न भावों के धरातल पर प्रस्तुत किया है। विष्णु जी इन संघर्षों के माध्यम से पात्रों के मनोवैज्ञानिक स्थिति का केवल जायजा नहीं लेते तो इन स्थितियों का विश्लेषण भी करते जाते हैं।

उनकी कहानियों में बाह्य संघर्ष की व्याप्ति का प्रस्तुतीकरण यथार्थ की पृष्ठभूमि पर हुआ है। इसकी पृष्ठभूमि स्वतंत्रतापूर्व काल से लेकर आज तक के समाज को अपने में समा लेती है। स्वतंत्रतापूर्व काल में राजनैतिक चेतना में स्वार्थ भावना की आहुति को प्रधानता दी जाती थी। साथ-साथ इस काल में सामाजिक बुराइयों को सुधारने के लिए चलाए जानेवाले सुधार आंदोलनों में शरीक होनेवाले परिवारों का संघर्ष चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उनकी 'मुक्ता', 'निशिकांत का स्वप्न', 'हरिश पांडे' जैसी कहानियों में देखा जा सकता है। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष चेतना में मध्यवर्गीय व्यक्ति की चेतना को विष्णु जी की कहानियों में अधिक प्रधानता मिलती है। इस प्रकार उनकी कहानियों में स्वतंत्रता-पूर्व काल का समाज, घटनाएँ, उसका संघर्षमय जीवन, हलचलभरी राजनैतिक चेतनाएँ अपनी मिसाल छोड़ जाती हैं।

विभाजन से संबंधित उनकी कुछ कहानियों में समाज और व्यक्ति के जीवन में आए इस सांस्कृतिक परिवर्तन की यातना के अनेक पहलू उजागर हुए हैं। उन्होंने विभाजन से उत्पन्न संघर्ष को विभिन्न कोणों से चित्रित किया है, जैसे 'देशद्रोही' से विभाजन से जुड़ी क्रूर मानसिकता के उद्घाटन के साथ विभाजन के हिंसक परिवेश में जीवित मानवीय चेतना की ओर भी संकेत किया है। अपहृत, विस्थापित औरतों की समस्याओं से पारिवारिक संबंधों में विकट संकट पैदा हो

गया है, जिसने केवल पारिवारिक संबंधों को ही नहीं, सांस्कृतिक मूल्यों को भी प्रभावित किया है। बँटवारे के दौरान औरतों के अपहरण और बलात्कार जैसी प्रत्यक्ष घटनाओ के कारण पैदा हुई मानसिक विकृतियों और ग्रंथियों से 'हिंदू' कहानी की कथावस्तु का निर्माण हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक चेतना के विकास की प्रवृत्ति समाज से व्यक्ति की ओर बढने लगी। इस व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के संबंधों का स्वरूप भी बढने लगा। विकास की इस प्रक्रिया की पृष्ठभूमि पर सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं को विष्णु जी ने अपनी कहानियों में देखा है। इसमें नगरीय समाज जीवन का चित्रण करते समय अनेक भयाक्रांत स्थितियों से उत्पन्न संघर्ष की स्थितियाँ हीन-भावना का बोध, कुंठा, निराशा, संत्रास, अजनबीपन की स्थिति आदि अनेक नगरीय जीवन में स्थित समस्याओं से उत्पन्न संघर्ष की स्थितियों को उनकी कहानियों में लाया गया है। व्यक्ति को अपने अस्तित्व के लिए चल रहे संघर्ष के साथ परिवेश के लिए भी संघर्षरत होना पडता है। परिवार समाज के विशाल भवन की नींव है मात्र व्यक्ति और समाज के बीच चल रही छटपटाहट, सामाजिक विश्वासों और संस्थाओं की टूटन आज परिवार की नींव को हिला रही है। इसीसे उत्पन्न संघर्ष भी आज चिंता का कारण है। विष्णु प्रभाकर जी ने कहानियों में इस संघर्ष की चेतना को विस्तार से देखा है।

पारिवारिक संबंधों में बढ रहे संघर्ष के कई चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं। परिवार में पति-पत्नी के संबंधों के साथ-साथ अन्य संबंधों में भी बदलाव आया है। जिसमें आर्थिक चेतना से प्रभावित बदलते दृष्टिकोण, भावात्मक संबद्धता का टूटना, आर्थिक असमानता, नवीन नैतिक प्रतिमानों की स्वीकृति के कारण आई आधुनिक मानव जीवन में बहुस्तरीयता आदि कई कारणों को नई कहानियों में विस्तार से लाया गया है। विवाह जैसी सामाजिक संस्था में परिवर्तित दृष्किोणों के कारण संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होने लगी हैं। इनके मध्य बदलती सामाजिक जीवन की परिस्थितियाँ भी तीव्रता से परिवर्तित हुई हैं। विष्णु प्रभाकर का ध्यान इन बदली हुई मानसिक और सामाजिक स्थितियों की ओर गया है, जैसे 'संघर्ष' के बाद' में अंतर्जातीय विवाह के कारण परिवार में बढ़ता संघर्ष, 'बिंब-प्रतिबिंब' में जातीयता के कारण पारिवारिक सदस्यों के द्वारा प्रेम को नकारना आदि कई कारण चित्रित होते हैं। पारिवारिक ढाँचों में ही इस प्रकार परिवर्तन हुआ है, जिससे उनके सदस्यों की बदली मानसिकता से उत्पन्न संघर्ष का स्वरूप भी अधिक व्यापक है। पीढ़ियों का अंतराल पारिवारिक संबंधों में अनेक रूपों में संघर्ष निर्माण का कारण बनता है। पुत्र-पुत्री, माता-पिता संबंधों तक को 'अर्थ' के आधारों पर नापा जाने लगा है। सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में भाई-भाई

संबंध भी कई धरातल पर उलझे हुए हैं। इन सबकी सशक्त अभिव्यक्ति विष्णु जी की कहानियों में मिलती है।

संघर्ष में अर्थचेतना अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक व्यवहार, आदान-प्रदान, संबंधों की अपेक्षाओं में काफी बदलाव आया है, जिसमें ये अर्थ तत्व अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। समाज के आर्थिक जीवन में 'अर्थ' से उत्पन्न संघर्ष ने सामाजिक जीवन में तनाव और बिखराव पैदा किए हैं। इसके छोर कहीं व्यवस्था और व्यक्ति, व्यक्ति और समाज और कहीं व्यक्ति और व्यक्ति होते हैं। इनमें पारिवारिक जीवनमूल्यों को भी चुनौती दी है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में संघर्ष के इन सभी रूपों की प्रस्तुति हुई है, जिसमें उन्होंने मध्यवर्ग के वास्तव को ही वाणी दी है। मूल्यों के परिवर्तन से मध्यवर्गीय व्यक्ति ही साम्यवादी न रहकर अधिक तर्कवादी हो गए है। विषम आर्थिक स्थिति का शिकार सबसे अधिक यही वर्ग हुआ है। जिसके जीवन में आर्थिक स्थिति और बौद्धिक बोध तथा आधुनिक मूल्य बोध के कारण अंतर्विरोध भी अधिक प्रौढ़ हो गया है जिससे उसके जीवन में व्यावहारिक जीवन मूल्य ही प्रधान बन गए हैं। स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति के विचारों, दृष्टिकोणों में आए अंतर को इनकी कहानियाँ नजरअंदाज नहीं करतीं। मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में आर्थिक स्थिति और बौद्धिक बोध तथा आधुनिक मूल्य-बोध के कारण पैदा हुए अंतर्विरोध, सांस्कृतिक, आर्थिक विपर्याय के कारण आई अस्तित्व संकट की गहरी व्यथा को विष्णु जी की कहानियों में अभिव्यक्ति मिली है। इस प्रकार समग्र रूप में मानव जीवन में आए परिवर्तन के कारण संघर्ष प्रबल बन गया है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जीवन दृष्टि एवं मूल्यबोध में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। विज्ञान की उन्नति के साथ बढ़ता मानव मूल्य, ईश्वरीय सत्ता को नकारना, धर्म का सामाजिक नियामक बनना आदि प्रकृति की नई परिकल्पना मानव जीवन संदर्भ में की जाने लगी है। मानव जीवन से संबंधित यह सभी धारणाएँ यथार्थ रूप में परिणत है तो इनसे संबंधित सभी प्रश्नों के उत्तर की खोज के लिए किया गया अनुसंधान और परीक्षण का शुद्ध भौतिक दृष्टिकोण आज आदर्श रूप में परिणत है; इनके बीच का संघर्ष आस्था में परिवर्तित हो रहा है। यह आस्था ही मूल्यबोध बनकर आज साहित्य में चित्रित होती है। विष्णु जी की कहानियों में चित्रित संघर्ष इन सभी बिंदुओं को एक साथ जोड़ने का कार्य करता है। उनकी कहानियाँ यथार्थ और आदर्श के बीच का संघर्ष, असत् के साथ सत् का संतुलन स्थापित करते हुए नव–निर्माण की ओर अग्रसर होने का संदेश देती हैं।

विष्णु प्रभाकर जी के आदर्शों में भी मानवतावादी दृष्टि का एक सशक्त छोर छिपा हुआ है जो व्यक्ति को अपने प्रति संघर्ष के लिए केवल प्रेरित ही नहीं करता बल्कि अपने आप को पहचानने के लिए मजबूर भी करता है। उनकी

रचनाओं में व्यक्ति-परिस्थिति के मध्य संघर्ष चित्रण में जीवन के अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों की पहचान करके उनको अपना मान लेने के बाद उनके असली घर का पता लगाने पर खुशी से वापस करा देना, 'कितना झूठ' कहानी मे निशिकात का बच्चे की मृत्यु की खबर को पत्नी से दूर रखकर उसके प्राण बचाने के लिए झूठी तसल्ली से कोशिश करना, 'हिमालय की बेटी' में असहाय रेवती का विपदा मे बेटे की रक्षा करनेवाले किशुन का स्वीकार और प्रेमी कुशलानंद द्वारा फिर से पत्नी रूप में स्वीकृति की माँग का नकार आदि कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। उन्होने यथार्थ और आदर्श की भित्ती को स्वीकार कर उनको सामाजिक बदलाव की पृष्ठिभूमि में अनेक प्रकार की स्थितियों के दबाव में स्वीकार किया है जो एक नए भावबोध का ही संकेत है। जिसके द्वारा जीवन की वास्तविकता को समझने के लिए व्यक्ति सक्षम सिद्ध होता है।

विष्णु जी ने संघर्ष को विभिन्न रूपों मे चितेरा है। इससे उत्पन्न चयन की समस्या की अभिव्यक्ति भी वे प्रधान रूप से करते हैं। आत्महत्या, कुंठा, बेचैनी, अवसाद की स्थिति, तनाव आदि इस समस्या के रूप कहानी मे विस्तार से वर्णित हैं जिसे उन्होंने नारी और पुरुष के भिन्न-भिन्न धरातलो पर प्रस्तुत किया है। नारी संघर्ष की व्यापकता के चित्रण के साथ पुरुष पात्रों के संघर्ष को भी कहानियो में देखा है। जहॉ व्यवस्था के प्रति विद्रोह, पारिवारिक सामाजिक संबधो में अकेलेपन की घुटन, मध्यवर्ग में दिखाई देने वाली बेबसी और उससे उत्पन्न कामचोर और परजीवी जीवन प्रवृत्ति, आर्थिक विपन्नता से आई विवशता इन सभी संवेदनाओं की आर्थिक अभिव्यक्ति उनकी कहानियों मे हुई है। उन्होंने कई पात्रों को इस तरह प्रस्तुत किया है कि उनके मनोविश्लेषण से उनके संघर्ष का पता चलता है, जैसा 'भोगा हुआ यथार्थ' के पारसनाथ को याद आती घटनाएँ, उसके जीवन में किए बुरे कर्मो की पहचान कराती है। मरणासन्न स्थिति में भी वह इस अवसाद को छोड़ना नहीं चाहता। 'ऑपरेशन' कहानी का पात्र अपने दिमाग का ऑपरेशन इसलिए करवा लेना चाहता है कि वह यह मानता है कि उस दिमाग ने ही उसके हाथों को गांधी हत्या करने की सलाह दी थी। जो बुरा कार्य दिमाग करता है ऐसे दिमाग की यादों को वह भूलना चाहता है। पीढ़ी अंतराल के साथ मूल्यों के विघटन से उत्पन्न संघर्ष चित्रण भी उनकी कहानियों में मिलता है।

कहीं सामाजिक वास्तविकता और निष्ठुरता में टूटते व्यक्ति को वे चित्रित करते हैं तो कहीं आस्थावादी मूल्यों की रक्षा के लिए संघर्ष करता व्यक्ति उनकी रचनाओं में नजर आता है। नारी जीवन से संबंधित संघर्ष के पारिवारिक, पारिवारेतर संबंधों से उत्पन्न कारण, आर्थिक स्वावलंबन से उत्पन्न समस्या, आर्थिक परावलंबन के कारण उत्पन्न विवशता, विचार और भावना से निरंतर चलता संघर्ष प्राचीन विचारधारा से जुड़ी आस्था और आधुनिक विचारधारा की

स्वीकृति, बढ़ती वर्ग भावना से उत्पन्न संघर्ष प्रवृत्ति आदि सभी पक्षों को विस्तार से देखा गया है। उनके संघर्ष चित्रण में एक तथ्य निश्चित रूप से विचारणीय है कि जब वे संघर्ष की व्यापक पृष्ठभूमि को चित्रित करते हैं तो इसकी पृष्ठभूमि यथार्थ का धरातल प्रस्तुत करती है– बाह्य परिस्थितियों के साक्ष पर नहीं तो निजी अनुभवों के साक्ष पर आधारित है। साथ-साथ उनकी रचनाएँ आधुनिक समस्याओं और स्थितियों के यथार्थ का विश्लेषण और जीवन के रचनात्मक मूल्यों का प्रयास भी करती है। विष्णु जी की रचनाओं द्वारा स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में नए पुराने मूल्यों का संघर्ष, मूल्य विघटन तथा मूल्य संक्रमण जैसे तथ्य उभरे हैं जिससे परिवर्तित होते सामाजिक संदर्भों में व्यक्ति की सही पहचान तथा सामाजिक परिवेश और समाज व्यवस्था के प्रति उसका संघर्ष और विद्रोह की प्रासंगिकता, सार्थकता और असार्थकता का विश्लेषण होता है। इस प्रकार उनकी रचनाएँ समाज में व्यक्ति के बाह्य और मनोःसंघर्ष की वास्तविक तस्वीर अंकित करती है।

किसी भी रचनाकार का अध्ययन करते समय वह भी किसी एक विधा विशेष के अध्ययन के संदर्भ में इस बात को ध्यान में रखना जरूरी होता है कि युगबोध और सामाजिक दायित्व से वह रचनाकार कितना जुड़ा हुआ है। विष्णु प्रभाकर जी को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि वे दायित्व और युगबोध की भावना से जुडे हैं। कहानीकार अपनी रचना में युग के सत्य को अपनी संवेदनशक्ति और व्यक्तित्व विशेष के अनुरूप ढालकर उसे एक नवीन आयाम प्रदान करता है।

मूल्यों से उत्पन्न चिंतन प्रणाली युगचेतना का गहरा साक्षात्कार कराती है। विष्णु प्रभाकर सामाजिक, संचेतना के प्रतिबद्ध कहानीकार होने के नाते एक लंबे साहित्य क़ी पृष्ठभूमि के इतिहास से जुडे हैं। स्वातत्र्यपूर्व काल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक की सभी गतिविधियों को उन्होंने नजदीक से देखा है और उसे अपने साहित्य में चितेरा है। इससे उत्पन्न एक गहरी जीवनदृष्टि उनकी रचनाओं में मिलती है। समकालीन बोध की भूमिका को उनकी रचनाओं में देखते समय इस बात को भी भूलना नहीं चाहिए कि उन पर गांधीवादी और आर्यसमाजी विचारधारा का काफी प्रभाव है। उनके स्वातंत्र्योत्तर काल के कहानी साहित्य में मार्क्सवाद के साथ कई स्थलों पर साम्यवादी विचारधारा और वग-संघर्ष की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे समाज को प्रगतिशील दिशा की ओर ले जाने के पक्ष में हैं जो उनके समकालीनता का एक महत्त्वपूर्ण पहलू कहा जा सकता है।

विष्णु जी की रचनाओं में युगीन यथार्थ के समस्त पहलुओं को देखा गया है। इसमें पहला महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि उनकी दृष्टि आधुनिकता के प्रति समग्र चिंतन की रही है जो सामाजिक अवधारणा कही जा सकती है जिसका संबंध सामाजिक संस्थिति, चिंतन प्रक्रिया तथा जीवन मूल्य और विचारधारा से है। आधुनिकता युगबोध से जुड़ी रहती है। अंपने समकाल के प्रति सचेत,

वैज्ञानिक और विवेकसम्मत दृष्टिकोण को अपनाना ही आधुनिकता है। विष्णु जी की कहानियों में आधुनिकता को अधिक व्यापक, युग सापेक्ष, समाजोन्मुख दृष्टि से देखा गया है। विभाजन के घटनाचक्र तथा पारस्परिक द्वेष एवं अविश्वास का चित्रण करते हुए भी इन कहानियो मे मानवता के प्रति उनका विश्वास, उनमे जिजीविषा, मानवीय मूल्य एव मर्यादाओं के प्रति उनकी आस्था झलकती है। आधुनिकता जीवन की गहराई को नापने का एक नया मानव सापेक्ष दृष्टिकोण है। युग का बदलता जीवन, परिस्थितियों के कारण व्यक्ति का आत्मकेंद्रित होते जाना, उसका परिवेश से टूटना, पारिवारिक संबंधों में बिखराव आ जाना आदि कई समस्याओं को कहानियों में चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ पति-पत्नी के साथ परिवार के प्रति गहरा विश्वास, मानवीय गरिमा तथा पावनता का समर्थन करती है। उन्होंने देश की अद्‌भुत स्थितियों, प्रभावों और अभावों से बने आधुनिकता के नए संदर्भों को आत्मसात कर कहानियों में अभिव्यक्त किया है।

परिवर्तन की प्रक्रिया में आज मूल्यों में भी काफी परिवर्तन नजर आता है। विष्णु प्रभाकर मूल्य प्रक्रिया और उसकी आवश्यकता पर गहरा विश्वास रखते है। केवल आधुनिकता के धरातल पर उनको स्वीकृति न देकर शाश्वत सत्य के रूप में अपनाते हैं। परिवेश की गहराई और उसके साथ जुडा शाश्वत मानव भी उनकी कहानियों में चित्रित होता है। एक ओर महानगरीय सभ्यता के साथ बनते बिगड़ते मानव संबंध तो दूसरी ओर कस्बा, गॉव से जुड़ा मानव भी उनकी कहानियों में अपने बने बनाए जीवन मूल्यों को लेकर उभरता है। 'रहमान का बेटा', 'शमशू मिस्त्री', 'वह रास्ता', 'टीपू सुल्तान', 'काफीर', 'हिंदू' आदि कहानियाँ द्रष्टव्य हैं। ये कहानियॉ सांप्रदायिक वैमनस्य. के वातावरण के बीच मानवीय एकता के सूत्रों को खोजने की कोशिश करती हैं। उनके पात्रों के अपने मूल्य हैं और उन्हीं मूल्यों को अपनाकर ही वे एकता के सूत्रों द्वारा एक दूसरे को जोड़ने का प्रयास करते है।

सामाजिक मूल्य भी हर युग में साहित्य को प्रभावित करते हैं। समाज, राष्ट्र तथा धर्म के द्वारा स्वीकृत व्यवहार ही मूल्य के अंतर्गत आते हैं। बीसवीं शदी के आरंभिक काल में हुए समाज सुधार आंदोलनों के प्रभाव के कारण रूढ़ियों और परंपराओं में काफी परिवर्तन हुआ जिनसे रूढियों और परंपराओं से जकड़े समाज को प्रगतिशील विचारों को स्वीकार करने के लिए एक पृष्ठभूमि निर्माण की गई। विष्णु प्रभाकर जी के पात्र इन परिवर्तनशील मूल्यों को अपनाते नजर आते हैं। कहीं भी वे नैतिक जीवनवादी विचारों को खोने नहीं देते। उन्होंने अपनी कहानियों में उच्चवर्ग में अर्थ के लिए बढ़ती अनैतिकता, मध्यवर्ग में मजबूरी के कारण उत्पन्न संबंधों में परिवर्तन, अंतर्जातीय विवाह के प्रति उचित और समयानुकूल दृष्टिकोण आदि को समाज के बदले नैतिक मानदंडों के अनुरूप चित्रित किया है।

बदलते मूल्यों की स्वीकृति विष्णु जी के आदर्शवादी जीवन मूल्यों का परिचायक है। उसकी स्वातंत्र्यपूर्व काल की कहानियों में यह प्रवृत्ति अधिक मिलती है। उनके पात्र अलग-अलग स्तर के हैं। अधिकतर मध्यवर्गीय युवक-युवतियो में स्वातंत्र्यपूर्व काल में एक चेतना के रूप में आदर्शवादी वृत्ति को अपनाने की दृष्टि नजर आती है। उनका मूल चिंतन ही समाजहित, मानव कल्याण की कामना करता नजर आता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में यह दृष्टि एक अलग स्तर पर पनपती है। जीवन के साथ संघर्ष करने के लिए जो अदम्य साहस आवश्यक है। वही आदर्श बनकर उनकी कहानियों में समाज के सम्मुख प्रस्तुत होता है।

यथार्थवाद साहित्य को नई दृष्टि देता है। कहानी में यह आक्रोश तथा विद्रोह के रूप में प्रकट होता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में यह प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई देती है। समाजवाद, अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद, अति-यथार्थवाद, प्रकृतवाद, अश्लीलता इन विभिन्न रूपों मे इसकी प्रस्तुति होती है। यह आज के साहित्य की एक चेतना बन गया है। यथार्थ के साथ जुडी उसकी वायवीयता को वे जिस प्रकार 'जज का फैसला', 'संबल' कहानियों द्वारा प्रस्तुत करते है उसी प्रकार हमें गिराने वाले में झूठे पाखंड के कारण निम्नवर्ग की बनती लाचारी, 'बच्चा माँ का था' में उसी वर्ग की विवशता, 'जरूरत' में जीवन की जरूरतों के लिए दूसरों से छीन लेने की बढ़ती प्रवृत्ति को चित्रित किया है। आक्रोश और विद्रोह का दूसरा पक्ष सक्षमता से चित्रित होता है। विष्णु जी जीवन के एक बहुत बड़े फलक को कहानी में लाते हैं। मानव में जीवन के प्रति वैयक्तिक दृष्टि की प्रधानता अस्तित्त्ववाद के विचारों का केंद्र है। अस्तित्ववाद का मूल प्रेरक व्यक्तिपरक दृष्टिकोण है जिसके मूल में रही तमाम पुरातन धारणाओं, जीवनमूल्यों, मान्यताओ वैचारिक सरणियों को नकारकर नवीन अनुभूतियों का संक्रमण करते हुए स्वातंत्र्योत्तर कालीन युगचेतना को स्वीकारा है। इसी पृष्ठभूमि पर विष्णु प्रभाकर जी ने आधुनिक जीवन में आई अकेलापन, पराएपन, अजनबीपन, अनास्था को अनुभूति के स्तर पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में कहानियों का कथ्य बनाया है।

भारतीय जनमानस में व्याप्त कुंठा, घुटन, हताशा, भय, असुरक्षा की मिश्रित प्रतिक्रिया है। इसकी पृष्ठभूमि में देशविभाजन, सांप्रदायिक दंगे, युद्ध एवं अकाल की भयावहता, भ्रष्टाचार, महंगाई तथा बेरोजगारी का क्षोभ है। यह महानगरीय जीवन विषमताओं और यांत्रिकी प्रणाली के दुष्परिणामों के कारण उत्पन्न असुरक्षा बोध की धरोहर है। विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में इसकी सहज स्वाभाविक प्रस्तुति होती हैं। मेहनतकश वर्ग के हताशा की सहज स्वाभाविक प्रस्तुति, देशविभाजन से उत्पन्न सांप्रदायिक वैमनस्य की विभीषिका की त्रासदी से ग्रस्त मानव का चित्रण, आपातकाल में भी अपनी पूरी जिंदगी ध्वस्त हो जाने के कारण करुणा से भरी वास्तविक जिंदगी जीने वाले परिवारों का चित्रण इन सभी में असुरक्षा बोध को ही चित्रित होता है। इसके साथ उनकी कहानियों में

विसंगतियों के बीच सही आदमी की पहचान की कोशिश भी मिलती है।

'खिल्लौने', 'एक रात एक शव' जैसी कहानियों ने विसंगति चित्रण के साथ-साथ सच्चे मानव की तलाश की है जिससे जीवन की एक नई दृष्टि बन गई है। साथ-साथ उनकी कहानियों में आक्रोश के विभिन्न स्तर भी दिखाई देते हैं। 'हम गिराने वाले' गरीबी से उत्पन्न 'आक्रोश', 'रहमान का बेटा' सार्थक जिंदगी की मांग के लिए आक्रोश 'सुराज आजादी की मांग की कारुणिक व्यथा द्वारा टूटन के रूप में 'आक्रोश', 'तांगेवाला', अभाव की आपूर्ति से उत्पन्न आक्रोश आदि। विष्णु प्रभाकर स्वतंत्रता के बाद मानव जीवन स्तर की अभिव्यक्ति जितनी निकटता से करते हैं उतनी तटस्थता से स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों को भी चित्रित करते जाते हैं, जैसे 'रायबहादुर की मौत' कहानी महानगरीय जीवन में व्याप्त विसंगति, एक दूसरे के प्रति झूठी सहानुभूति कहानी के भावजगत् को चित्रित करती है। 'पुल टूटने से पहले' कहानी में उच्चवर्ग के द्वारा निम्नवर्ग के प्रति घोर वितृष्णा के रूप में इसकी अभिव्यक्ति की है। विसंगति से पनपती युगबोध की संत्रास की अभिव्यक्ति का चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है। 'नई पौध, 'एक और कुंती' कहानियों में संघर्ष की अभिव्यक्ति के रूप में इसकी स्वाभाविकता को चित्रित किया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में ईश्वरीय बोध की बदलती संकल्पना को युगबोध के संदर्भ में देखा जा सकता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में यह संकल्पना मानवतावाद के स्तर पर देखी गई है। धर्म की प्रतिष्ठित मान्यताओं का विघटन कर नई पीढ़ी में नास्तिकता की बढ़ती प्रवृत्तियों के चित्रण के माध्यम से उन्होंने इसकी प्रस्तुति दी है। इस प्रकार विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में युगबोध की प्रस्तुति इन विभिन्न धरातलों पर होती है। युगचेतना का दूसरा पक्ष भी इनकी कहानियों में अपना अलगपन दे देता है। सामाजिक जीवन चेतना में उनकी युगचेतना से बनी दृष्टि की प्रस्तुति को यहाँ देखना आवश्यक हो जाता है। युगबोध की दृष्टि से परिवार और व्यक्ति का समाज की दृष्टि से आकलन आवश्यक है। ग्रामीण और नागरी संस्कृति में इसके स्तर भिन्न हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् बदलते जीवन मूल्य, जातिव्यवस्था की बदलती भूमिका, औद्योगीकरण तथा नागरीकरण का बढ़ता प्रभाव परंपरागत स्थापनाओं और आदर्शों का खंडन इस पृष्ठभूमि पर युगबोध का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के कई स्रोत हैं उनमें जातिप्रथा तथा अस्पृश्यता निवारण संबंधी दृष्टिकोण पर विचार करते, उनकी कहानियों में इसके मूल को ही उखाड़कर फेंकने की प्रवृत्ति की ओर संकेत मिलता है। सामाजिक रूढ़ियों के मध्य कार्य करती दहेज प्रथा के खंडन का दृष्टिकोण भी एक नई चेतना है। इसमें वे सामाजिक दृष्टिकोण के बदलते स्वरूप की मांग के साथ नवयुवकों में इसके प्रति चेतना जागृति की माँग करते हैं। अंतर्जातीय विवाह की बदलती धारणाओं को भी उनकी रचनाओं में प्रधानता दी

है। संयुक्त परिवार विघटन की समस्या की ओर वे विभिन्न कोणों से देखते है। कहीं परिवार के विघटन की चिंता-'संघर्ष के बाद', कहीं आर्थिक तंगी, बंटवारा परिवार के सदस्यों की स्वाभाविक वृत्ति से उत्पन्न समस्या- 'बेमाता', मूल्य विघटन से उत्पन्न समस्या, 'अंधेरे आंगनवाला मकान', 'खिल्लौने और बेटे' आदि में नई पुरानी पीढ़ी का संघर्ष विभिन्न स्तरों पर चित्रित है।

विष्णुजी की कहानियों में पारिवारिक रिश्तों में उभरते नए सामाजिक बोध की प्रस्तुति हुई है। वर्तमान युग में बदलते जीवन-मूल्यों के साथ परिवार की बढती उपेक्षा के चित्र कहानियों मे मिलते हैं। जिसकी यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति मिली है। स्वातंत्र्योत्तर काल में पारिवारिक जीवन के बदलते मूल्यों के साथ प्रेम संबंधों में बदलाव नजर आता है। स्त्री-पुरुषों की मानसिकता में अर्थ केंद्रित बदलाव नजर आता है जिससे अनेक प्रश्न उलझकर उनके जीवन में आते हैं। इन विचारों के मध्य अविवाहित मातृत्व की स्वीकृति को प्रधानता मिल रही है। उनकी 'शतरूपा की मौत' में इस प्रश्न को देखा गया है। विभिन्न स्तरों पर शोषित नारी ही अधिक मात्रा में मिलती है।

राजनैतिक पृष्ठभूमि पर टिकी समाज की मूलभूत जीवन दृष्टि को भी उनकी कहानियों में उतनी ही सक्षमता से देखा गया है। देश की स्वतंत्रता और देश का विभाजन इन दोनों घटनाओं से उनका कहानी साहित्य पूर्णतः प्रभावित दिखाई देता है। विभाजन की त्रासदी को आधार बनाकर विष्णु प्रभाकर जी ने अनेक कहानियों की रचना की है। इन कहानियों में विभाजन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन हुआ है। कुछ कहानियों में हिंदू-मुस्लिम दोनों संप्रदायों का आपसी सौहार्द्र चित्रित है। विघटनकारी शक्तियॉ से भारतीय जन मानस की चेतना में आए परिवर्तन को भी उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रधानता दी है। भारत की राजनीति पर पड़े युद्ध के प्रभाव को कहानियों में देखा गया है। १९८४ में दिल्ली में जो दंगे हुए उनके मूल में जो विघटनकारी शक्तियाँ काम करती थीं उनकी मनोवृत्ति की यथार्थ अभिव्यक्ति का चित्रण कहानियों में मिलता है। 'सत्य को जीने की राह' कहानी समाज के एक व्यापक सत्य को एक घटना के माध्यम से खोजने का प्रयास करती है। राजनीतिक वातावरण को आपातकाल विषाक्त बनाता है। शहरों की अपेक्षा गॉवों को अधिक सहना पड़ता है। विष्णु प्रभाकर की कहानियों में बंगाल के अकाल और उसके बाद की मानव जीवन की क्रूर नियति को चित्रित किया है। 'मार्ग में'; 'धरोहर'; 'भूख और कुलीनता', 'एक माँ एक देश' आदि जैसी कहानियों द्वारा इस विभीषिका की भयावहता को चित्रित किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बदलते राजनैतिक दृष्टिकोणों को भी चित्रित किया है। 'अधूरी कहानी' में मानवता की प्रतिष्ठा एवं गांधी दर्शन का समर्थन है। 'मुरब्बी'; 'सफर के साथ', 'आखिर क्यों ?' में अहिंसा और प्रेम द्वारा हृदय परिवर्तन पर विश्वास जताया गया है। भ्रष्टाचार राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। विष्णु

जी कहानियों में इसके यथार्थपूर्ण सत्य सामने आते हैं। युगबोध के आर्थिक पक्ष का चित्रण करते समय अनेक समस्याओं को उभारा गया है जिनमें प्रधान रूप से जनसख्या, दिशाहीन शिक्षा, बेरोजगारी, महँगाई, आवास तथा दैवी एवं भौतिक आपदाएँ भी हैं जिनका चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है? साथ-साथ आर्थिक स्थिति से जूझती नारी की चेतना को भी वे चित्रित करते हैं। नारी यत्रणा के समस्त पक्षो को कहानियों मे देखा गया है। विष्णु प्रभाकर जी की समस्त जीवन दृष्टि मानवतावाद पर टिकी हुई है। संस्कृति के बदलते मूल्यों में मानवतावाद का उदय हुआ है। विष्णु जी की दृष्टि में मानव की सार्थकता कर्म में निहित है इसलिए वे कर्मवादी जीवनदर्शन का प्रतिपादन करते हैं। कर्म मानव का उच्चतम मूल्य है। जिसके मूल में जनकल्याण का भाव होता है। विष्णु जी की कई कहानियों में इसका बोध होता है।

विदेशी संस्कृति के बढते प्रभाव को भी वे नकारते नहीं है। नए सांस्कृतिक मूल्यों के उदय में निश्चित रूप से इस संस्कृति का प्रभाव रहा है। लेकिन वे इन सभी सांस्कृतिक मूल्यों को भारतीय परिवेश एवं जन-जीवन की आवश्यकताओ के अनुरूप ढालने का प्रयास करते हैं। धार्मिक अंध-विश्वास का तिरस्कार भी इसी बात का परिचायक है। 'सफर के साथी', 'शमशू मिस्त्री', 'मुरब्बी', 'धरती का स्वर्ग', 'वह रास्ता', 'अगम-अथाह', 'मेरा बेटा', 'आज होली है', 'ये बंधन', 'स्यापा मुका', 'इतनी सी बात' आदि कहानियों द्वारा विष्णु प्रभाकर जी ने धर्मनिरपेक्षता जैसे सांस्कृतिक मूल्य की सशक्त अभिव्यक्ति की है। व्यक्ति की स्वतंत्रता में उनकी पूर्ण आस्था झलकती है। धर्म, जाति, परंपराएँ व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा नहीं बननी चाहिए। उनकी मेरा बेटा, देशद्रोही जैसी कहानियाँ इसका सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। स्वतंत्रता, समानता, विश्वबंधुत्व ऐसे युगीन सांस्कृतिक मूल्यादर्श हैं, जो मानवीय संबंधों को उदात्त आधारभूमि निर्मित करते हैं। विष्णु जी ने इन आदर्शों को यथास्थान स्थापित किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में युगीन संस्कृति के लिए आयाम उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। जीवन के नव-निर्माण में यही आयाम उनकी अटूट आस्था के रूप में उदित होते हैं। 'क्रांतिकारी', 'वे दोनो', 'मुक्ता', 'दीप जले घर-घर' जैसी कहानियों में चित्रित पात्र दूसरों को भी जीने की एक नई चेतना दे देते हैं। 'जीवन का एक और नाम' कहानी में कैन्सर से ग्रस्त पात्रों द्वारा देहदान, नेत्रदान जैसी आधुनिक संकल्पनाओं को मानव जीवन की सार्थकता के रूप में नए परिवर्तन की माँग की ओर संकेत किया है।

युगबोध को सीमाकाल के साथ बाँधा नहीं जाता। विष्णु प्रभाकर जी की समकालीन विचारधारा और उससे अभिव्यक्त मानव जीवन दर्शन के अध्ययन को यहाँ देखा जा सकता है। इस प्रकार उनकी कहानियों में युगबोध का आयाम सर्वव्यापी है जो कहानी के माध्यम से मनुष्य को पहली बार परंपरा, धर्म, दर्शन

तथा सस्कृति से अलग कर नए युगबोध के साथ नवीन यथार्थ की भूमि पर देखने को बाध्य करता है।

किसी भी साहित्यकार की कृति में जितनी उसकी अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण होती है उतनी उस अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने की उसकी कलात्मक दृष्टि भी महत्त्वपूर्ण होती है। इसलिए समग्र रूप से किसी विधा का अध्ययन करते समय उसके कलापक्ष की सक्षमता को भी ध्यान में लेना जरूरी हो जाता है। इसलिए यहाँ विष्णु प्रभाकर जी के इस पक्ष की प्रस्तुति को देखना जरूरी हो जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर काल की कहानी एक साथ दो भावों को लेकर चलती नजर आती है एक है जीवन के सामाजिक यथार्थ एवं युगबोध तथा भावबोध की प्रधानता को चित्रित करना, दूसरा आत्मपरक दृष्टिकोण की प्रधानता को चित्रित करनेवाला पक्ष। सामाजिक यथार्थता की परंपरा मुख्यतः प्रेमचंद परंपरा का ही समर्थन करती नजर आती हैं। विष्णु प्रभाकर ने इसी परंपरा को आगे बढ़ाया है। इसी पृष्ठभूमि पर उनकी कहानी की तात्त्विक भूमिका को देखना होगा।

विष्णु जी के कथानकों की मूल प्रवृत्ति स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर रही है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि इनकी कहानी जिंदगी के जटिलतम यथार्थ की अभिव्यक्ति की दिशा में उन्मुख होती है और युगबोध के तनाव के परिणामस्वरूप इसके कथ्यगत तेवर में भी बदलाव नजर आता है। उनकी अधिकतर कहानियाँ सामाजिक यथार्थ की भावभूमि को चित्रित करती है मात्र सातवें, आठवें दशक तक आते-आते वे कुछ हद तक आत्मपरक रचनाओं की ओर मुड़े नजर आते हैं। ये कहानियाँ भी जीवन के किसी-न-किसी प्रश्न को चित्रित करती रहती है जिनमें जीवन की व्यापक संवेदना को ही प्रधानता रही है, वहाँ वे स्पष्ट व्यंजना, यथार्थ अभिव्यक्ति एवं सत्यान्वेषण की ओर झुके नजर आते हैं कथानक के ह्रास को लेकर लिखी कहानियाँ भी मिलती हैं मात्र बहुत कम मात्रा में। वर्तमान जीवन की संक्रमणशीलता को उन्होंने अपनी कहानी में आवेष्टित किया है। उनकी कहानियाँ जीवन के विविध पक्षों का प्रतिनिधित्व करती है, मात्र उनका स्वर सामाजिक है। उन्होंने कथानक की परंपरागत धारणाओं को तोड़कर बौद्धिक धरातल से कथानक का चुनाव किया है जिससे कथा संदर्भों में अधिक सूक्ष्म और गहन बौद्धिकता की प्रवृत्ति लक्षित होती है। उन्होंने सूक्ष्म-मनोवेगों की जटिलता को रूपायित करने के लिए कहानी की रूपगत शैली या अभिव्यक्ति की नई पद्धतियों का आविष्कार किया है। परिणामतः पत्र या डायरी के रूप में भी उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं, जैसे 'सच! मैं सुंदर हूँ', 'एक और कुंती', 'साँझ के साएँ' आदि।

विष्णु जी की कहानियों में अवस्था नारी, वर्ग, संप्रदाय आदि भेदों पर आधारित पात्र मिलते हैं। उन्होंने बाल पात्रों को चेतन-अचेतन में झुलसते चित्रित किया है। 'धरती अब भी घूम रही है' के नीना और कमल विचारों से परिस्थिति

के मध्य झुलसते देखा है। 'एक अनचीन्हा इरादा' का सातवर्षीय बालक माता-पिता के झगड़ों से तंग आकर अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति एक कल्पना के माध्यम से करता है। कल्पना में वह पडोस के बच्चो को खूब पीटता है। उसके माँ-बाप बचाने आते हैं तो वह और भी उग्र रूप धारण कर लेता है। युवा पात्रों में वे समकालीन युग के युवा मानस को चित्रित करते समय उनकी सचेतन वृत्ति, पुरानी-पीढ़ी की नैतिकता, ईश्वर और धर्म संबंधी विचार, अपरिवर्तनीय मान्यताओं के शिकार आदि के प्रति युवा वर्ग की बदलती मान्यताओं को देखते हैं। वृद्ध पात्रों की परंपरावादी, संवेदनशील, उदारवादी, दया, ममता, वात्सल्य से भरे रूपों की प्रस्तुति होती है। उन्होंने नारी के स्वतंत्र रूप को अधिक पकड़ा है जिसमें नारी के व्यक्तित्व रूपों को देखने का ही अधिक प्रयास रहा है। नारी चित्रण का केंद्रीय स्वर वर्तमान में जीने का आग्रह ही है। उनकी नारी भावात्मक आवश्यकताओं के लिए पुरुष पर आश्रित है पर उसमें कहीं एक ऐसा विश्वास बोध भी है जितनी पुरूष की आवश्यकता उसे है उतनी ही पुरुष को उसकी भी। वह अर्जनशीला है अतः उसका विवेक, उसका आत्मगौरव पुरुष से समानता की मॉग करता है। उनकी कहानियों में सभी वर्गों के पात्र चित्रित हैं मात्र इनमें मध्यवर्गीय व्यक्ति की संवेदना की प्रस्तुति प्रधान है। सभी संप्रदायों पर भी उनका ध्यान गया है। स्वाभाविक रूप से हिंदू पात्रों का प्रयोग समाजसापेक्ष और युग-सापेक्ष भी हुआ है। यही कारण है कि कहानियों में हिंदू पात्रों की अधिकता है उनकी कहानियों में एक रूप से सांप्रदायिक एकता को स्थापित करने का प्रयास रहा है, जिसे कहानी में चित्रित मुस्लिम, सिख पात्रों को भी स्थान दिया है। 'मुरब्बी' में हिंदू-मुस्लिम दोनों संप्रदायों के पारस्परिक स्नेह, विश्वास का चित्रण, 'सफर के साथी' में मजहब से बढ़कर कर्तव्य की पूर्ति, 'मेरा बेटा', 'इतनी-सी बात' में धर्म-भेद की निस्सारता को व्यक्त किया है। 'मंजिल', 'स्यापा मुका' जैसी कहानियों में चित्रित सिक्ख पात्र मनुष्य स्वभाव की विरूपता को मिटाने का संकेत करते हैं। उनके पात्र अपने अनुभव संसार के पात्र हैं। वे सभी अपने परिवेश से संपृक्त हैं। उनके पात्रों में आदर्शवादिता का पुट नजर आता है।

पात्रों का चरित्रांकन करते समय उन्होंने 'अब्दुल्ला' (परिचयात्मक), 'द्वंद्व', 'एक मौत समंदर किनारे' (वर्णनात्मक), 'ऑपरेशन' (आत्मकथात्मक और आत्मविश्लेषणात्मक), 'बेटे की मौत', 'युगांतर' (संवादात्मक), 'कितना झूठ', 'नफरत केवल नफरत', 'भोगा हुआ यथार्थ' (मनोविश्लेषणात्मक), 'नफरत केवल नफरत' (पूर्वदीप्ति शैली), 'मूड', 'मुहूर्त टल गया', 'ठेका', 'कितने जेबकतरे', 'लैम्पपोष्ट के नीचे एक लाश', 'एक माँ एक देश' (संकेतात्मक), 'चितकबरी बिल्ली' (प्रतीकात्मक), 'एक और कुंती', 'सत्य को जीने की राह', 'आखिर क्यों?', 'मैं जिंदा रहूँगा', 'अगम-अथाह', 'संबल', 'जीवन का एक और नाम', 'एक रात एक शव', 'राखी', 'मेरा बेटा', (घटनात्मक) आदि में चित्रांकन की शैलियों का प्रयोग किया है।

आत्मविश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक आदि पद्धतियों की कहानियों में बहुलता है जिससे पात्रों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्तियों का उद्‌घाटन करने में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। उनके चित्रांकन की एक सर्वप्रमुख विशेषता है उसमें मनोविज्ञान का यथेष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। जिजीविषा से प्रेरित कुंठित पात्रो के चारित्रिक विश्लेषण को भी युग के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से प्रभावित माना जा सकता है। मनोविज्ञान के साथ-साथ दर्शन और साम्यवादी विचारधारा का भी उन्होंने आश्रय लिया है। उनका मानवतावाद युगदर्शन का मूल धरातल बन गया है। चिंतन मनन से लेकर मार्क्सवाद, धर्म, दर्शन, कला, मनोविज्ञान, राजनीति, आयुसीमा आदि सभी समस्याओं के संबंध में उनमें विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में परिलक्षित होती है।

विष्णु प्रभाकर जी की प्रारंभिक रचनाओं में संवादों का अधिक प्रयोग मिलता है, इसकी अपेक्षा उनकी नई कहानियों में अपेक्षाकृत कम है। उसकी कहानियों में संवादों का निर्माण कई हेतु से लक्षित होता है, जैसे कथानक को गति प्रदान करना, पात्रों का चरित्रोद्‌घाटन करना लेखक द्वारा उद्‌देश्य स्पष्ट करना या वातावरण की सृष्टि निर्माण करना आदि। उनकी कहानियों के बारे में यह भी एक सत्य है कि किसी एक मानसिक स्थिति या अंतर्द्वन्द्व को लेकर ही उनकी अधिकांश नई कहानियों के कथानक गुँथे हुए हैं। इनमें 'राखी', 'एक रात-एक शव', 'कितने जेबकतरे' आदि महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं। इस प्रकार उनके संवादों में किसी महत्त्वपूर्ण उद्‌देश्य के साथ ओजस्विता आ जाती है जो उनको परिपूर्ण बना देती है।

शीर्षकों का चुनाव करते समय भी उन्होंने भाव, तथ्य, वर्णन, संबंध आदि गुणों को प्रधानता दी है, जैसे– 'सत्य को जीने की राह', 'एक अनचीन्हा इरादा', 'जिंदगी एक रिहर्सल', 'अतर्वेदना', 'धरती अब भी घूम रही है', 'जज का फैसला', 'मणि', कलंक और राजनीति, 'चैना की पत्नी', 'वे दोनो', 'एक माँ एक देश आदि कहानियों के बहुत से शीर्षकों द्वारा कहानी की संपूर्ण विषयवस्तु की अभिव्यंजना की जा सकती है।

जीवन का संबंध किसी देश, काल और परिस्थितियों से अवश्य होता है, इन्हीं का चित्रण करना वातावरण की सृष्टि करना है। विष्णु जी की कहानियों में वातावरण की सृष्टि सजगता से होती है जो वे पात्रों को ध्यान में रखकर करते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व, आचरण, रहन-सहन सब परिवेश से प्रभावित होते हैं। अतः व्यक्ति अपने विशिष्ट परिवेश की उपज होता है। उसी के मध्य उसकी मानसिकता, व्यावहारिकता विकसित होती है। उसके समस्त क्रियाकलाप, आचरण, बातें, परिवेशजन्य होती हैं। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में इन सभी स्वाभाविकताओं को ध्यान में लेकर विषयों के विविध प्रारूपों की पृष्ठभूमि तैयार होती है– 'मुरब्बी' जैसी सहज कहानी में कथन संदर्भों को उसकी संपूर्ण गहराई व्यक्त करने के लिए उन्होंने क्षेत्रीय विशेषताओं का भी अंकन किया है। क्षेत्रीय,

शब्दों के प्रयोग से पात्रों की पदावस्था, वय और व्यवसाय में सदाशयता का शीघ्र ही अनुमान हो आता है। उनकी कहानियो में वर्ण्य-विषय तथा प्रसंग के साथ-साथ आलंकारिकता का भी समावेश हुआ है। आज उद्देश्य को कहानी के एक विशिष्ट तत्व के रूप में मान्य किया जा सकता है। व्यावहारिक दृष्टि से कहानी में मानव-जीवन का विविध पक्षीय चित्रण होता है जिसके माध्यम से लेखक अपने अभीष्ट को अभिव्यंजित करता है। विष्णु जी की कहानियों में उद्देश्य विभिन्न धरातलों पर प्रस्तुत होते हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में आंतरिक रूप से उलझे हुए किसी प्रकार के वैयक्तिक संत्रास, पारिवारिक तंनाव, आर्थिक दबाव या सामाजिक विसंगतियों के कारण उलझी हुई मानसिकता के विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया है। विभिन्न समस्याओं की प्रस्तुति उनकी कहानियों द्वारा होती है। नारी दृष्टिकोण से कथ्य की प्रस्तुति, राष्ट्रीय चेतना को जागृति देना, सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार इस प्रकार अनेक कहानियों के उद्देश्य गंभीर और मौलिक हैं। इसीलिए उनकी रचनाएँ सर्वथा नई भावभूमि से परिचित कराती हैं। यह भावभूमि, यथार्थ, आदर्श और स्वाभाविकता की टकराहट से उपजी हुई लगती है। इन तीनों सीमाएँ एक छोर पर आकर मिलती हुई-सी प्रतीत होती हैं।

मानव का अध्ययन, समाज के चरित्र विष्णु जी के साहित्य की विशेषता है। उनकी कहानियों में जीवन के बहुविध पक्षों के प्रतिनिधित्व के साथ विविधता के रंग प्राप्त होते हैं, उनका मूल स्वर सामाजिक है। उन्होंने सामाजिक दायित्व का निर्वाह अत्यंत सफलतापूर्वक किया है और मानव-मूल्य एवं मर्यादाओं को यथार्थ अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है। कला के क्षेत्र में भी उनका मानवता ही लक्ष्य रहा है। एक विशुद्ध मानवीय, नैतिक सहानुभूति सदैव इनके पात्रों तथा जीवन-स्थितियों को इनसे मिलती है। उनका मानना है कि कथाकार अज्ञान और पाखंड को नष्ट करके विवेक का दीप जलाता है और यही भावबोध ही उनकी रचनाओं का प्राण है।

शिल्प के माध्यम से रचनाकार का भावजगत मूर्त रूप धारण करता है। साहित्य में लेखक और पाठक के बीच यह एक अनिवार्य माध्यम होता है। विष्णु प्रभाकर कहानी के नए-नए प्रयोगों में रत है और मानव जीवन की अनेक समस्याओं को उनके समग्र परिपाश्र्व में उपस्थित करके जनमानस चेतना को उद्भूत करने में प्रयत्नशील भी हैं। लेखक की कलाकृति में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उसका व्यक्तित्व, उसकी भाषा और उसकी शैली होती है जो जीवन और साहित्य के बीच कड़ी का काम करती है। यह व्यक्तिगत अनुभवों एवं विचारों को समाज तक संप्रेषित करने का एक अनिवार्य माध्यम है। भाषा, शिल्प निर्माण लेखक अपनी अनुभूति के स्तर पर करता है जिससे कहानियों की अभिव्यक्ति में विविधता पाई जाती है। रचनाकार अपने भाषा नियोजन में अलंकार, बिंब, प्रतीक, मुहावरों,

कहावतों आदि का प्रयोग करता है। इन भाषाई प्रयोगों से उसकी कृति में प्रवाहात्मकता और नाटकीयता आ जाती है। विष्णु प्रभाकर जी 'चितकबरी बिल्ली' 'राजकुमार और मछली', 'अर्धनारीश्वर', पिचका हुआ केला और क्रांति जैसी कहानियों द्वारा समाज की समस्याओं, वर्ग विशेष की मनोवृत्तियों, व्यक्ति की उलझनों आदि को अपने अनुभवों के आधार पर सांकेतिक रूप में चित्रित करते हैं। बिंबों के सार्थक प्रयोग से अमूर्त भावों, संवेदनाओं, विचारों की अनेक पर्तें उघड़ती हैं जिसके कारण कहानी में एक नया आकर्षण पैदा हो जाता है। विष्णु प्रभाकर जी की कहानियों में बिंब कला सृजन एवं विश्लेषण का अंग बन गया है। सांकेतिक अर्थवत्ता से युक्त होने पर ही उनकी कहानी सीधी चेतना तथा अनुभूति के गहरे स्तरों को छूने में समर्थ हो सकी है।

विष्णु प्रभाकर की कहानी की संवेदना का केंद्रीय बिंदु उसका यथार्थ चित्रण का आग्रह है। इसी आग्रह के कारण उनकी कहानी की भाषा भी यथार्थ के रंग में रंगी हुई नहीं है, जीवन की विषमताओं, विसंगतियों, चारो ओर व्याप्त असंतोष, आक्रोश आदि के बीच से ही जन्म लेती है। फलतः उनकी भाषा जीवन के अधिक निकट है। बोलचाल की भाषा को कहानी का संस्कार देने के कारण उनकी भाषा मानव मन के रेशे–रेशे को उखाडने के लिए सूक्ष्म अर्थ देनेवाली सक्षम भाषा का स्थान पा चुकी है। उनकी सामान्य व्यवहार की भाषा होने से उसमे एक सहज प्रवाह भी लक्षित होता है उदाहरण के तौर पर 'नई ज्यामिति', 'बेमाता', 'माँ-बाप' जैसी कहानियों को देखा जा सकता है। उन्होंने भाषा में पात्रों की अनेक प्रकार की भावनाओं से प्रसंगानुकूल व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता सृजित की है। भाषा में अपने समय तथा परिवेश से साक्षात्कार करने तथा कथ्य के अनुरूप मुद्रा धारण करने की पर्याप्त क्षमता दृष्टिगोचर होती है। जहाँ उन्होंने परिमार्जित गंभीर भाषा को लाया है उसमें चिंतन-मन का गांभीर्य बन पाता है। उनकी मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में इस भाषा शैली की प्रचुरता दिखाई देती है।

उनकी भाषा का सौष्ठव समस्त प्रकार के प्रचलित शब्दों से बना है। इनकी ऐतिहासिक कहानियों में संस्कृत तो देशविभाजन पर रचित कहानियों में उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है। वे बंगाली और पंजाबी भाषा के भी प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों से युक्त होकर सामने आती है। उनकी भाषा अधिक यथार्थवादी होने के कारण बोलचाल के शब्द, मुहावरे तथा अन्य जनवादी तत्वों के मिलाप से स्वाभाविक बन गई है। उदा० 'चाची', 'अब्दुल्ला' इन कहानियों को देखा जा सकता है। कहानी को अधिकाधिक संप्रेषित करने की दृष्टि से उनके सूत्रात्मक वाक्यों के प्रयोग में भाषा की अर्थ क्षमता और गांभीर्य देखते ही बनता है।

विष्णु प्रभाकर का कहानीकार अत्यंत समर्थ भाषा का धनी है। उनकी कहानियों में 'चितकबरी बिल्ली' (प्रतीकात्मकता), 'चाची' (चित्रात्मकता), 'तूफान',

'राज नर्तकी और क्लर्क का बेटा', 'हिमालय की बेटी' (आलंकारिकता), 'मैं नारी हूँ', 'शरीर से परे' (नाटकीयता) 'वे दोनों', 'भारत माता की जय' (व्यंग्यात्मकता), 'धरती अब भी घूम रही है', 'नाग-फांस, (भावात्मकता), 'राखी', 'समझौता' (प्रवाहात्मकता), 'अपना-अपना सुख, 'अंकुर का अहम' (विषयानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा) 'स्वर्ग और मर्त्यः', 'राजम्मा' (काव्यात्मकता), 'आकाश की छाया में' (भाषा की प्रेषणीयता) आदि सभी गुण पाए जाते है। भाषा को भाव प्रवण बनाने के लिए वे लोकगीतों का आधार लेते हैं जिससे उनकी भाषा में यथार्थ की सहजता अभिव्यक्त होती है। शब्दों के अर्थबोध के प्रयास में उन्होंने प्रचलित हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और देशज शब्दों को भी उचित स्थानों पर प्रस्तुति दी है।

विष्णु जी की निजी अनुभूति पाठक की अनुभूति से एक प्रमाण हो जाती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो उनकी शैली उनके व्यक्तित्व से भी संबंध रखती है और रचनाओं की विषयवस्तु से भी। उन्होंने जीवन और व्यवहार को अनुभवों के आधार पर जाना और परखा है। अतः उनमें जीवन के मर्म को, उसके छिपे हुए पहलुओं को अभिव्यक्त करने की शक्ति अधिक सहज है। विषमताओं से जकडे प्रश्नों को उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों से हल करने का पूरा प्रयत्न किया है और शायद इसी प्रयास के फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व के आंतरिक एवं बाह्य रूपों में स्थिर तटस्थता आ सकी है। उनका साहित्य युगचेतना का सही आभास देता है। नारी स्वतंत्रता, पुरुषों से समानाधिकार की होड़ एवं आर्थिक सक्षमता स्वातंत्र्योत्तर युग में उभरने वाले नारी आंदोलन से जुड़े समग्र रूप इनकी कहानियों में नजर आते हैं। प्रेमचंद जैसी सहजता और युगानुसार उत्तरोत्तर बढ़ती बौद्धिक चेतना उनकी कहानियों में दृष्टिगत होती है। विष्णु जी के कहानी साहित्य का शैल्पिक दृष्टि से अवगाहन करने पर यह पाया जाता है कि उनके साहित्य की कतिपय विशेषताएँ साठोत्तर कथा साहित्य की शिल्पगत विशेषताओं के अनुकूल ठहरती हैं।

विष्णु जी विषयवस्तु का प्रतिपादन जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण वृत्ति और सांसारिक भावभूमि की विवेचना के रूप में होता है। उदा० 'आखिर क्यों?' 'छोटा चोर बडा चोर', 'एक और दुराचारिणी' 'पंडियों पर उठते पदचाप' (वृत्तिनिरूपण), 'बँटवारा', 'गृहस्थी', 'अपना-अपना सुख', 'द्वंद्व' (सांसारिक भावभूमि का चित्रण) इस प्रकार उनका साहित्य वैयक्तिक जीवन दर्शन और चिंतन के उद्देश्य से आबद्ध होकर विकृत सामाजिक पारिवारिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से जुड़ा है। उन्होंने सभी प्रचलित शैलियों का प्रयोग किया है। जैसे– 'जिंदगी के थपेड़े', 'मार्ग में', 'भीगी फलकें', (वर्णनात्मक) 'साँझ के साएँ', 'जिंदगी एक रिहर्सल', (आत्मकथन परक)' 'आघात और मुक्ति', 'रात की रानी और लाल गुलाब', (डायरी)' 'एक और कुंती', 'नई ज्यामिति', (पत्रात्मक)' 'माँ–बाप', 'स्नेह (संवादात्मक)', 'चितकबरी बिल्ली (रूपकात्मक)', 'बेमाता', 'निरंतन सत्य',

(पूर्व–दीप्ति), 'बिंब प्रतिबिंब', 'जीवनदीप', 'विश्लेषणात्मक', 'मार्ग में', जिंदगी के थपेड़े', (भावात्मक), 'कैसी हो मरिअम्मा', 'ऑपरेशन', (मनोविश्लेषणात्मक) 'नई ज्यामिती', (लघुकथात्मक), 'तीन तारीखें', 'आकर्षण और मुक्ति', (मिश्रित), 'भोगा हुआ यथार्थ', 'छोटा चोर-बडा चोर', (स्वैर कल्पना), 'कितना झूठ', 'साँझ के साएँ' (चेतना प्रवाह) आदि।

विष्णु जी की शैली में जीवन के साधारण स्तरों पर व्यवहृत अनुभूतियों के मार्मिक क्षणों को साबित करके सुरक्षित रखने की कला है। फोटोग्राफिक यथार्थ और अर्थ अन्वेषण की दृष्टि में निरपेक्षता यह तत्व उनकी कृतियों को जीवन और शक्ति प्रदान करते हैं। भोगी हुई विषयवस्तु को दर्शक सुलभ बनाने में उनका शिल्पी अत्यंत निपुण है। इस प्रकार भाषा के रूढ संस्कारों का निराकरण कर उसे सहज-स्वाभाविक बनाया है, उसमें प्रवाह तथा ओज के साथ अर्थवत्ता और गरिमा भी है। आज की नई परिवर्तनशीलता को पूर्णतः आत्मसात कर उन्होंने एक लिहाज से अपने आप को नई कहानी के निकट पाया है।

विष्णु प्रभाकर जी की शैली कई स्थानों पर कमजोर भी नजर आती है। स्त्री-पुरुष प्रेम संबंधों पर लिखी कहानियों के कथ्य में कोई नवीनता नहीं दिखाई देती, जैसी 'आश्रिता', 'शरीर से परे', आदि। इनमें कही आदर्श, कहीं भावुक रोमान से उनकी दृष्टि मुक्त नहीं हो पाई है। कहीं-कहीं कहानियों में एक ऐसा नाट्य धर्म स्वभाव पाया जाता है जो कहानी की आत्मा को क्षत करता है। भावुकता का अतिशय प्रयोग, घटनाओं को नाटकीय मोड देना, संयोगों की भरमार आदि उनकी कहानियों की कमजोरियॉं हैं। इस संदर्भ में एक बात यह भी हो सकती है कि जिस समय उन्होंने कहानी लेखन आरंभ किया उस समय जरूर इन तत्वों का महत्त्व रहा होगा, किंतु उन्होंने हिंदी के विकास के विभिन्न सोपानों को देखा है फिर भी वे अपनी गठी हुई लीक से नहीं हट पाए हैं। 'नाग-फांस' (१९५६)' की रचना है पर उसमें भी माँ के हृदय की भावुकता का अतिरेक तथा संयोगों की आकस्मिकता विद्यमान है। खिलौने (१९६४) की रचना में नई पुरानी-पीढ़ी के संघर्षों को उभारने का प्रयास करती है और माता-पिता पुत्र के प्रेम विवाह को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं पर पूरी कहानी में वही आकस्मिक संयोगों की नाटकीयता विद्यमान है। 'अंधेरे आंगनवाला मकान' (१९७७)' कहानी आज के जीवन में आए अलगाव को लेकर लिखी हुई है, इसकी कथा भी भावुकता से भरी हुई है।

उनकी कहानियाँ समकालीन कथा लेखन में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती है। उनकी सुदीर्घ लेखन यात्रा में विभिन्न पड़ावों से गुजरती कहानियाँ कभी भी संदर्भच्युत नहीं हुई हैं। प्रेमचंद जी के भाषा संस्कार को जिन लोगों ने सफलतापूर्वक ग्रहण कर उसे विकसित किया है निश्चित ही उनमें विष्णु प्रभाकर का नाम महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

❖❖❖

संदर्भ सूची

१. कमलेश्वर · नई कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९६६
२ कमलकिशोर गोयनका : विष्णु प्रभाकर-प्रातिनिधिक रचनाएँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १९८८
३. कीर्तिकेसर स्वातत्र्योत्तर हिंदी कहानी का समाजसापेक्ष अध्ययन, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, १९८२
४ कृष्णा रैना : हिदी कथा साहित्य-विविध सदर्भ, विभूति प्रकाशन, दिल्ली, १९८७
५. गगाप्रसाद विमल : आधुनिक हिदी कहानी, दि मैकमिलन कं., दिल्ली, १९७८
६ गोविद शर्मा, रागेय राघव : सस्कृति और समाजशास्त्र भाग-२, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, १९६१
७ नामवर सिह कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६५
८ गुलाबराय : काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९८४
९. ब्रह्मदत्त शर्मा . हिदी कहानियो का विवेचनात्मक अध्ययन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, १०००
१० वि विजयलक्ष्मी . स्वातत्र्योत्तर हिदी उपन्यासों में नारी पात्रो में युग चेतना, लेखक मच, दिल्ली, १९८८
११ अश्वघोष : हिदी कहानी : सामाजिक सदर्भ, राजश्री प्रकाशन, मथुरा, १९८१
१२. एम व्यकटेश्वर . हिदी उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, १९९८
१३ मजुला गुप्ता हिदी उपन्यास-समाज और व्यक्ति का द्वंद्व, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, १९८६
१४ मीरा सीकरी नई दिल्ली-शोध प्रबध, दिल्ली, १९७३
१५ जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : हिदी कहानी का रचना विधान, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९६१
१६ महीप सिह विष्णु प्रभाकर · व्यक्ति और साहित्य, अभिव्यजना प्रकाशन, दिल्ली, १९८३
१७ मोहिनी शर्मा हिदी उपन्यास और जीवन मूल्य, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, १९८६
१८ पुष्पपाल सिह · समकालीन कहानी युगबोध का सदर्भ, नेशनल पब्लिसिग हाउस, दिल्ली, १९८६
१९ देवेश ठाकुर हिदी कहानी का विकास . मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, १९८६
२० भैरूलाल गर्ग : स्वातत्र्योत्तर हिदी कहानी मे सामाजिक परिवर्तन, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७९
२१ भगवानदास वर्मा . कहानी के सवेदनशीलता · सिद्धात और प्रयोग, ग्रथम प्रकाशन, कानपुर, १९७२
२२. लक्ष्मीनारायण लाल हिदी कहानी का शिल्प-विधि का विकास, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९७४
२३ लक्ष्मीसागर वार्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६६
२४. परमानद श्रीवास्तव . हिदी कहानी की रचना प्रक्रिया, ग्रथम प्रकाशन, कानपुर
२५ प्रमिला अग्रवाल · भारत विभाजन और हिदी कथा साहित्य, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९२
२६ प्रतापनारायण टडन : हिदी उपन्यास कला, हिदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ
२७. त्रिभुवन सिह : हिदी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, हिदी प्रसारक सस्थान, वाराणसी, १९७३
२८. दुर्गाशकर मिश्र : कहानी-कला की आधारशिलाएँ, नवयुग, ग्रथागार, लखनऊ, १९५८
२९. शिवशकर पाण्डेय : स्वातत्र्योत्तर हिंदी कहानी · कथ्य और शिल्प, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, १९७८
३०. सरिता वशिष्ठ : युग बोध और हिदी नाटक, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, १९९३
३१ सुरेंद्र : नई कहानी . प्रकृति और पाठ, अपोलो प्रकाशन, जयपुर, १९६८
३२ सुरेश धिंगडा : हिदी कहानी : दो दशक, अभिनव प्रकाशन, १९७८
३३ सुशीला मित्तल . आधुनिक हिदी कहानी में नारी की भूमिका, अनुपमा प्रकाशन, बंबई, १९७४
३४. श्याम वर्मा : आधुनिक हिंदी गद्य शैली का विकास, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८
३५. सुरेश सिन्हा : हिंदी कहानी का स्वरूप और विकास, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६७
३६. राम प्रसाद : साठोत्तरी हिंदी कहानी मे पात्र और चरित्र-चित्रण, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९५
३७. राजेंद्र यादव : प्रेमचंद की विरासत और अन्य निबन्ध, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९७८
३८. रामदरश मिश्र : हिंदी कहानी : अतरग पहचान, नेशनल पब्लिसिग हाऊस, दिल्ली, १९६६

३९. राधेश्याम गुप्त : प्रेमचंदोत्तर कहानी साहित्य, विमल प्रकाशन, जयपुर, १९७०
४०. राम रतन सिंह 'भ्रमर' : आधुनिक हिंदी कहानी मे चित्र विधान, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
४१. राजेंद्र प्रसाद शर्मा : हिंदी कहानियो में व्यक्तित्व विश्लेषण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
४२ रघुवर दयाल वार्णेय : हिंदी कहानी के बदलते प्रतिमान, पाडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, १९७५
४३. रघुवीर सिन्हा : आधुनिक हिदी कहानी समाजशास्त्रीय दृष्टि, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९७७
४४. हुकुमचंद राजपाल : विविध बोध नए हस्ताक्षर, भारतीय सस्कृत भवन, जालंधर, १९७२
४५. मंजुलता सिंह . हिंदी कहानी में युगबोध, पराग प्रकाशन, दिल्ली, १९६४
४६. गिरिजाकुमार माथुर · नई कविता सीमाएँ और सभावनाएँ, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९६६
४७. मंजुला पुरोहित : नई कविता सवेदना और शिल्प, पचशील प्रकाशन, जयपुर, १९७३
४८. हेमेंद्र पानेरी : स्वातंत्र्योत्तर हिदी उपन्यास मूल्यसंक्रमण, सिधी प्रकाशन, जयपुर, १९७४
४९. श्यामसुदर मिश्र : अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिदी साहित्य, विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, १९८०
५०. दंगल झाल्टे : नए उपन्यासों में नए प्रयोग : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १९८५
५१. मजुलता सिंह : हिंदी उपन्यासो मे मध्यवर्ग, पराग प्रकाशन, दिल्ली
५२ सुधाकर गोकाककर : मार्क्सवाद और हिदी कहानी, विद्या विहार, कानपुर, १९७९
५३. ओमप्रकाश : बदलते मूल्य और आधुनिक हिदी नाटक, ग्रथम पब्लिकेशन, रोहतक, १९८४
५४ नगेन्द्र : नई समीक्षा : नए संदर्भ, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली, १९७०
५५. उमाकान्त गुप्त : नई कविता के प्रबंध काव्य-शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८५
५६ नगेद्र . पाश्चात्य काव्यशास्त्र परपरा, नेशनल पब्लिसिग हाऊस, दिल्ली

पत्र पत्रिकाएँ एवं कोश

१ हिंदुस्थानी
२ सचेतना
३. वीणा
४. प्रकर
५ विमर्श

कोश

१ साहित्यिक कोश : ओम प्रकाश शर्मा, साहित्य समारोह, दिल्ली, १९७३
२ हिंदी साहित्य कोश : धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमंडल, लि० वाराणसी, १९६३, भाग-१
३. मानविकी पारिभाषिक कोश : डॉ० पद्मा अग्रवाल, सं. डॉ० नगेद्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६५

❖❖❖